यंक, उसे ऐसी प्रार्थना करनी चाहिए:-
:ति और श्रद्धा उत्पन्न कर।" जहां एक
। मिल जायगी वहीं समझ लो कि सब
। श्रद्धा से अधिक और कुछ नहीं।
के सामर्थ्य की आख्यायिकाएं तूने सुनी
थे। पर (लंका और आर्यावर्त के
इ पुल बांधना पड़ा। और हनुमान सिर्फ
-नाम की महिमा पर बड़ी श्रद्धा थी।
जप किया, और क्या हुआ, देखो!
का उल्लंघन कर लिये! सिर्फ श्रद्धा का
में आने के लिए ही स्वयं प्रभु को सेतु
नाम की महिमा पर श्रद्धा रखनेवाले
पार करने के लिए सेतु-वतु की कुछ भी
और सब शिष्य हँसने लगे)।

समुद्र पार जाना था तब एक रामभक्त
लिखा और उसे उस मनुष्य को देकर
कोई बात नहीं; श्रद्धा रख और समुद्र पर
जा; पर यह बात ध्यान में रखना कि तू
चल-विचल न होने देना। यदि उसमें कुछ भी
डूब मरेगा।" उस मनुष्य ने वह पत्ता
और समुद्र पर चलने लगा वह अपना
जाते जाते उसे यह उत्कंठा हुई कि देखना
लिखा है। उसने वह पत्ता खोला और
लिखा हुआ राम उसने पढ़ा) इसके बाद
लगा:-"अरे! बस, यही राम का नाम!"
होतेही वह पानी के भीतर डूब मरा!
की अचल श्रद्धा भर होनेदो; कि बस मैं
कि फिर उसके लिए मुक्ति दूर नहीं है;
से ब्रह्महत्या, स्त्रीहत्या आदि महापातक
"परमात्मन्! अब फिर मैं ऐसा कभी न
उसे कहना चाहिए और उसका पवित्र नाम

गाने लगे:—

नाम महिमा।

शुचि तेरा, आवे मुझे मरण मेता!
मुक्ति क्यों नहीं मैं तुरन्त जगसे पाता!
नाम जपे तो नहीं पाप का भय भारी।
जपने से है व्यथा दूर होती सारी।
सामने बैठे हुए नरेन्द्र के सम्बन्ध में

सीधा, निरभिमानी और सादी चाल
का है। उपद्रवी लड़का जब अपने बाप के
के सामने आता है तब तो बड़ा सीधा बन
जाता है और जब बाहर इधर उधर
दौड़ता और खेलता रहता है तब विल-
जाता है। ऐसा लड़का नित्यमुक्तों के वर्ग

संसारबन्धनों में नहीं फँसते। जहां वे कुछ बड़े
में जागृति उत्पन्न हो जाती है और वे एकदम
है। मनुष्य को सन्मार्ग दिखलाने के लिए
लेते हैं। ऐहिक बातों पर उनका प्रेम ही
दारा की ओर उनका ध्यान ही नहीं जाता।
पक्षी का वेद में उल्लेख है। यह पक्षी
बहुत ऊंचे आकाश में, बादलों के उस
उसकी मादी अंडा देती है, अंडा तुरंत
गिरने लगता है। पृथ्वी तक आने में उसे
है कि वह बीच में फूट भी जाता है और
है। यह अन्तर इतनी दूर है कि वह बच्चे
निकलकर फिर नीचे आने लगता है; अन्त में नीचे
तक निकल आते हैं और उनकी पैरों भी

के पास ही उसका निवास है-अनन्त में और उसमें मिलना नहीं)।
उनके लड़कों में जो महात्मा-पुण्यात्मा-होते हैं वही उनके समीप
रहते हैं (उन्हें अपत्य ही उसका वियोग बिलकुल सहन नहीं
होता)। जब तक उनकी आंखें नहीं खुलतीं और वे अपने पंखों से
नहीं उड़ सकते तभी तक उन्हें यह जीवन एक कठिन प्रश्न सा जान
पड़ता है। जहां एक बार उनकी आंखें खुल गईं कि बस फिर उन्हें
अपने सामने मुंह पसारे खड़ी हुई मृत्यु—द्रव्य, मान, इन्द्रियोपभोग
इत्यादि विषयों के स्पर्श मात्र से होनेवाला नाश-बिलकुल स्पष्ट देख
पड़ने लगती है। आंखें खुलते ही वे अपना आचरण बदल देते हैं
और ईश्वराभिमुख हो जाते हैं; क्योंकि उनकी दृष्टि में यह भान
आने लगता है कि उस जगन्माता के बिना इस संसार में और कुछ भी
सत्य नहीं है, हमारी उत्पत्ति, स्थिति और लय केवल उसीके अधीन
है, तथा प्राण और अपने जीवन का एक मात्र वही आधार है।

इस समय नरेन्द्र कोठरी के बाहर गया।

केदार, रामकृष्ण, एम० और अन्य बहुत से लोग महाराज के
पास कोठरी ही में बैठे थे। महाराज हँस हँसकर नरेन्द्र के विषय
में बोल रहे थे।

महाराज (शिष्यों से):—तुम्हीं देखो, प्रत्येक बात में नरेन्द्र सब
से आगे रहता है। गायन, वादन, लेखन, वाचन, चाहे जिसमें देख
लो। उस दिन केदार का और उसका वाद हो रहा था। पर केदार
के मुख से शब्द न निकलने पाता था कि बस वह उसे मानों उखाड़
ही डालता था (महाराज और अन्य सब हँसते हैं)।

(एम० से) तर्कशास्त्र पर क्या कोई अँगरेजी में पुस्तक है।

एम०:—हां, महाराज, उसे लॉजिक कहते हैं।

महाराज:—अच्छा, उसके विषय में मुझे कुछ बतलाओ।

अब तो एम० के जी पर ही आ बना। तथापि धैर्य धरकर
बोला:-लॉजिक (अँगरेजी तर्कशास्त्र) के एक भाग में यह कहा है
कि किसी सर्वमान्य सिद्धान्त पर से किसी विशिष्ट वर्ग के विषय
में अथवा व्यक्ति के विषय में अपने सिद्धान्त कैसे स्थिर करना
चाहिए। उदाहरणार्थ:—

सब मनुष्य मरणाधीन हैं,
पंडित मनुष्य हैं;
इस लिए पंडित भी मरणाधीन हैं।

उस के दूसरे भाग में यह कहा है कि एक एक विशिष्ट व्यक्ति के
लक्षणों पर तर्क बांधते हुए साधारण सिद्धान्त किस प्रकार निश्चित
करना चाहिए। उदाहरणार्थ —

यह कौवा काला है,
वह कौवा काला है,
वह तीसरा कौवा भी काला है, आदि, आदि;
इस लिए सभी कौवे काले होते हैं।

सिर्फ एक एक व्यक्ति के लक्षण देखकर उन पर से उस वर्ग के
विषय में, उपर्युक्त रीति से, सामान्य सिद्धान्त स्थिर करने
बहुत बार चूक हो जाने की सम्भावना रहती है; क्योंकि कि
किसी देश में सफेद कौवे भी कदाचित् होंगे।

* * * * *

जान पड़ता था कि उपर्युक्त भाषण की ओर श्रीरामकृष्ण का कु
बहुत ध्यान न था। मानों यह भाषण उनके कानों में भरता ही
था। इस कारण तद्विषयक सम्भाषण का आपही आप अन्त हो गय
सभा-विसर्जन हुई शिष्य मंडली इधर उधर बाग में फिरने लगी
एम० अकेला ही पंचवटी के समीप घूमता था (महात्मा रामकृष्ण
ने दक्षिणेश्वर के मन्दिर के आसपासवाले बाग में बरगद, पीपल
निम्ब, आंवला और बेल के वृक्ष एक ही जगह, खास तौर पर, लग
वाये थे। और उस स्थल का उन्होंने पंचवटी नाम रक्खा था
उसी जगह बैठकर उन्होंने अनेक साधन किये। फिर आगे चलकर
बहुधा वे अकेले ही अथवा अपने शिष्यगणों के साथ यहां घूमने
आया करते। वृन्दावन की यात्रा के समय वे यहां की पवित्र धूल
अपने साथ ले आये थे और उस पंचवटी में डलवाया था।)

संध्याकाल के पांच बजे; उस समय महाराज की कोठरी के उत्तर
ओर आने पर एम० को एक विचित्र दृश्य देख पड़ा। उसने क्या
देखा कि महाराज खड़े खड़े हैं, १ नरेन्द्र एक मलिनार्थ पर था

ठरी में इतनी स्तब्धता थी कि सुई गिरने तक की आवाज
ई दे सकती थी।)

शिष्य:—महाराज, ऐसा संसारी मनुष्य कैसे तर सकता
है? उसके लिए कोई साधन है?

श्रीरामकृष्णः—जरूर। उसे सत्समागम ढूँढ़ते
हिए; कुटुम्ब की उपाधि छोड़कर परमेश्वर का चिंतन न
लिए बीच बीच में उसे एकान्तवास का सेवन
हिए; विवेक का अभ्यास उसको करना चाहिए; जग-
, अन्तःकरणपूर्वक, उसे ऐसी प्रार्थना करनी चाहिए:-
, मेरे हृदय में भक्ति और श्रद्धा उत्पन्न कर।" जहां एक
र शरीर में श्रद्धा भिन जायगी वहीं समझ लो कि अब
म हो गया। अहाहा! श्रद्धा से अधिक और कुछ नहीं!
र से) श्रद्धा के सामर्थ्य की आख्यायिकाएं तूने सुनी
मचन्द्र ईश्वरी अवतार थे। पर (लंका और आर्यावर्त के
समुद्र पर उन्हें पुल बांधना पड़ा। और हनुमान सिर्फ
क था; पर राम-नाम की महिमा पर बड़ी श्रद्धा थी।
, राम के नाम का जप किया, और क्या हुआ, देखो!
ने उसी समुद्र का उल्लंघन कर लिया! सिर्फ श्रद्धा का
ोगों के प्रत्यय में आने के लिए ही स्वयं प्रभु को सेतु
ा; और उसीके नाम की महिमा पर श्रद्धा रखनेवाले
त को समुद्र पार करने के लिए सेतु-एतु की कुछ भी
ीं पड़ी। (महाराज और सब शिष्य हँसने लगे)।

एक मनुष्य को समुद्र पार जाना था तब एक रामभक्त
पर राम-नाम लिखा और उसे उस मनुष्य को देकर
डरने की कोई बात नहीं; श्रद्धा रख और समुद्र पर
पार निकल जा; पर यह बात ध्यान में रखना कि तू
में जरा भी चल-विचल न होने देना। यदि उसमें कुछ भी
" तो तू अवश्य डूब मरेगा।" उस मनुष्य ने वह पत्ता
में बांध लिया और समुद्र पर चलने हुए वह अपना
लगा। जाते जाते उसे यह उत्कंठा हुई कि देखना
पत्ते में क्या लिखा है। उसने वह पत्ता खोला और
अक्षरों में लिखा हुआ राम उसने पढ़ा। इसके बाद
आप कहने लगा:-"अरे! बस, यही राम का नाम!"
का लोप होतेही वह पानी के भीतर डूब मरा!
में मनुष्य की अचल श्रद्धा भर रहेगी; कि बस मैं
कहता हूं कि फिर उसके लिए मुक्ति दूर नहीं है;
उसके हाथ से ब्रह्महत्या, स्त्रीहत्या आदि महापातक
हुए हों! "परमात्मन्! अब फिर मैं ऐसा कभी न
इतना बस उसे कहना चाहिए और उसका पवित्र नाम
।

महाराज गाने लगे:—

नाम महिमा।

हुए नाम शुचि तेरा, आवे मुझे मरण मेला!
फिर तो मुक्ति क्यों नहीं मैं तुरन्त जग से पाना!
वाणी नव नाम जपे तो नहीं पाप का लेश भारी।
नाम के जपने से है व्यथा दूर होती मेरी।

बाद अपने सामने बैठे हुए नरेन्द्र के सम्बन्ध में
—

देखो कितना सीधा, निरभिमानी और सादा चाल
का है। उपद्रवी लड़का जब अपने बाप के
सामने आता है तब तो बड़ा सीधा बन
जाता है और जब बाहर इधर उधर
दौड़ता और खेलता रहता है तब बिल-
दूसरा बन जाता है। ऐसा लड़का निम्नगुणों के वर्ग
।

) संसारबन्धनों में नहीं फँसते। जहां ये कुछ बड़े
मन में जागृति उत्पन्न हो जाती है और ये एकदम
झुक जाते हैं। मनुष्य को सन्मार्ग दिखलाने के लिए
ये अवतार लेते हैं। ऐहिक बातों पर उनका प्रेम ही
और दाम की ओर उनका ध्यान ही नहीं जाता।
एक पक्षी का वेद में उल्लेख है। वह सदा की
रहता है-बहुत ऊंचे आकाश में, बादलों के ऊपर
है। उस जगह उसके अंडा देती है; ऐसा सुनते
की ओर गिरने लगता है। गिरते गिरते ही में उसे

इस प्रकार जब उसकी आंखें खुल जाती हैं तब कहीं उसे
ज्ञान होता है कि मेरा भयंकर वेग से पतन हो रहा है और पृथ्वी
का स्पर्श होते ही मेरा कपालमोक्ष हो जायगा। इस प्रकार जब
उसके मन में आता है कि पृथ्वी पर गिरकर मैं चूर हो जाऊंगा तब
वह भयभीत होता है और अपनी मा, जो बादलों से भी ऊपर
रहती है, उसे ढूंढने के लिए वह फिर ऊपर जाने लगता है।

प्यारे बच्चो! वह उस पक्षी की मादी जगज्जननी ही है। वह
इन्द्रियगम्य सृष्टि के उस पार अनन्त के पास ही रहती है। (अनन्त
के पास ही उसका निवास है-अनन्त में और उसमें भिन्नता नहीं)।
उसके लड़कों में जो महात्मा-पुण्यात्मा-होते हैं वही उसके समीप
रहते हैं (उन्हें अवश्य ही उसका वियोग बिलकुल सहन नहीं
होता); जब तक उनकी आंखें नहीं खुलतीं और वे अपने पंखों से
नहीं उड़ सकते तभी तक उन्हें यह जीवन एक कूटक प्रश्न सा जान
पड़ता है। जहां एक बार उनकी आंखें खुल गईं कि बस फिर उन्हें
अपने सामने मुहँ पसारे खड़ी हुई मृत्यु—द्रव्य, मान, इन्द्रियोपभोग
इत्यादि विषयों के स्पर्श मात्र से होनेवाला नाश-बिलकुल स्पष्ट देख
पड़ने लगती है। आंखें खुलते ही वे अपना आचरण बदल देते हैं
और ईश्वराभिमुख हो जाते हैं; क्योंकि उनकी दृष्टि में यह ज्ञान
आने लगता है कि उस जगन्माता के बिना इस संसार में और कुछ भी
सत्य नहीं है, हमारी उत्पत्ति, स्थिति और लय केवल उसीके अधीन
है, तथा ज्ञान और अपने जीवन का एक मात्र वही आधार है।

इस समय नरेन्द्र कोठरी के बाहर गया।

केदार, रामकृष्ण, एम० और अन्य बहुत से लोग महाराज के
पास कोठरी ही में बैठे थे। महाराज हँस हँसकर नरेन्द्र के विषय
में बोल रहे थे।

महाराज (शिष्यों से):—तुम्हीं देखो, प्रत्येक बात में नरेन्द्र सब
से आगे रहता है। गायन, वादन, लेखन, वाचन, चाहे जिसमें देख
लो। उस दिन केदार का और उसका वाद हो रहा था। पर केदार
के मुख से शब्द न निकलने पाता था कि बस वह उसे मानों उखाड़े
ही डालता था (महाराज और अन्य सब हँसते हैं)।

(एम० से) तर्कशास्त्र पर क्या कोई अँगरेजी में पुस्तक है।

एम०:—हां, महाराज, उसे लॉजिक कहते हैं।

महाराज:—अच्छा, उसके विषय में मुझे कुछ बतलाओ।

अब तो एम० के जी पर ही आ बना। तथापि धैर्य धरकर
बोला:-लॉजिक (अँगरेजी तर्कशास्त्र) के एक भाग में यह कहा है
कि किसी सर्वमान्य सिद्धान्त पर से किसी विशिष्ट वर्ग के विषय
में अथवा व्यक्ति के विषय में अपने सिद्धान्त कैसे स्थिर करना
चाहिए। उदाहरणार्थ:—

सब मनुष्य मरणाधीन हैं;
पंडित मनुष्य हैं;
इस लिए पंडित भी मरणाधीन हैं।

उस के दूसरे भाग में यह कहा है कि एक एक विशिष्ट व्यक्ति के
लक्षणों पर तर्क बांधते हुए साधारण सिद्धान्त किस प्रकार निश्चित
करना चाहिए। उदाहरणार्थ --

यह कौवा काला है,
वह कौवा काला है,
यह तीसरा कौवा भी काला है, आदि, आदि;
इस लिए सभी कौवे काले होते हैं।

सिर्फ एक एक व्यक्ति के लक्षण देखकर उन पर से उस वर्ग के
विषय में, उपर्युक्त रीति से, सामान्य सिद्धान्त स्थिर करने में
बहुत बार चूक हो जाने की सम्भावना रहती है; क्योंकि किसी
किसी देश में सफेद कौवे भी कदाचित् होंगे।

* * * * * *

जान पड़ता था कि उपर्युक्त भाषण की ओर श्रीरामकृष्ण का कुछ
बहुत ध्यान न था। मानों यह भाषण उनके कानों में भरता ही न
था। इस कारण तद्विषयक सम्भाषण का आगे आप अन्त हो गया।

सभा-विसर्जन हुई शिष्य मंडली इधर उधर बाग में फिरने लगी।
एम० अकेला ही पंचवटी के समीप घूमता था (महात्मा रामकृष्ण
ने दक्षिणेश्वर के मन्दिर के आसपासवाले बाग में बरगद, पीपल,
निम्ब, आंवला और बेल के वृक्ष एक ही जगह, आसपास, लगा-
वाये थे। और उस स्थल का उन्होंने पंचवटी नाम रक्खा था।
उसी जगह बैठकर उन्होंने अनेक साधन किये। फिर आगे समय
बहुधा वे अकेले ही अथवा अपने शिष्यगणों के साथ वहां घूमने
जाया करते। वृन्दावन की यात्रा के समय वे वहां की पवित्र धूल

रहा है, अन्य तीन चार शिष्य आसपास खड़े हैं. महाराज बीच में हैं।

उस गान से एम० का भान बिलकुल जाता रहा। इतनी मधुर और सुन्दर आवाज उसने आजन्म नहीं सुनी थी। महाराज की ओर देखकर तो एम० इतना आश्चर्यित हुआ कि उसके मुख से शब्द भी न निकलने लगा। महाराज निश्चल खड़े थे, उनके नेत्र एकटक थे; और यह भी कहना कठिन है कि उनका श्वासोच्छ्वास चलता था या बन्द था।

एक शिष्य ने एम० से बतलाया कि ब्रह्मानन्द का अनुभव करानेवाली इस अवस्था को समाधि बोलते हैं। एम० ने ऐसी स्थिति प्रत्यक्ष कभी नहीं देखी थी और न सुनी ही थी। उसके मन में ये विचार आने लगेः—"क्या यह सम्भव है कि ईश्वरी विचारों से मनुष्य बाह्य सृष्टि को भूल जाय? जिसकी यह दशा होती है—जो समाधिस्थ होता है—उसकी श्रद्धा, उसकी ईश्वरभक्ति भला कैसी होनी चाहिए!" नरेन्द्र यह पद गा रहा थाः—

पद।

भज ले मन वार वार विश्वजीवना रे! भज० ॥ ध्रु० ॥
अपगत–मल अतुल कीर्ति, सच्चिद्घन रम्य मूर्ति,
योगिन की हृदय–स्फूर्ति, भक्तरंजना रे! भज० ॥ १ ॥
भीति धरे कान्ति खुले, कोटि चन्द्रहू न तुले,
रूपश्री हरि चपले, रोमहर्षणा रे! भज० ॥ २ ॥

यह अन्त की पंक्ति गाते समय महाराज की वृत्ति बिलकुल तन्मय हो गई। उनका शरीर सचमुच रोमांचित हो उठा। उनके नेत्र आनन्दाश्रुओं से भर आये। उनके मुख पर जो मन्दस्मित लहरें विलसती थीं उनसे स्पष्ट देख पड़ता था कि परमेश्वर का रूप देखकर उनके अन्तःकरण में आनन्द के कैसे उच्छ्वास उठ रहे थे। हां, कोटि चन्द्रों की प्रभा को भी लजानेवाले मनोहर दिव्य रूप का दर्शनसुख वे अवश्य ही अनुभव कर रहे होंगे। साक्षात्कार जिसे कहते हैं वह क्या यही है? यदि यही है तो मनुष्य को यह साध्य हुआ है उसकी भक्ति, उसकी श्रद्धा, अभ्यास और उसका तप भला कैसा भारी होना चाहिए!

गाना फिर प्रारम्भ हुआः—

मन में पूजहु सुचरण, मधुर रूप धरहु नयन,
होउ महानन्दपूर्ण, मेटि यातना रे! भज० ॥ ३ ॥

अहाहा! उनका वह मन्द और मनोहर स्मित फिर [illegible] लगा! देखो, उनका शरीर कितना निश्चल है! उनके नेत्र उन्मीलित हैं; दृष्टि बिलकुल शून्य है! जान पड़ता है, उन्हें किसी अद्भुत और दिव्य वस्तु का—इन्द्रियातीत वस्तु का—दर्शन हो रहा है और आनन्दसागर में वे तैर रहे हैं!

पद समाप्ति पर आया। नरेन्द्र अन्तिम पंक्ति गाने लगाः—

ध्यावहु सच्चिदानन्द, छोड़हु सब विषय मन्द
गावहु सुठि भक्तिछन्द, नित्य सज्जना रे! भज० ॥

* * * * * * * *

एम० विचारपूर्ण होते हुए घर को लौटने लगा। वह [illegible] का और ब्रह्मानन्द का चित्र उसके मन में बराबर फिर रहा था। उसने जो भक्तिरसपूर्ण सुन्दर पद सुना था उसके उच्छ्वास, [illegible] चलते हुए, आपही आप उसके हृदय से बाहर निकल रहे थेः

ध्यावहु सच्चिदानन्द, छोड़हु सब विषय मन्द,
गावहु सुठि भक्तिछन्द, नित्य सज्जना रे! भज० ॥ ४ ॥

सच्चा तत्वज्ञानी।

एक अजापालक नगरों से दूर जा बस[illegible] वन में।
मोह, कोह और क्लेश आदि का लेश न था उसके मन में ॥
वेश बुढ़ापे का था उसका श्वेत हुए थे सारे केश।
निज अशेष जीवन-अनुभव से उसे मिला था ज्ञान विशेष ॥१॥
गर्मी हो चाहे सर्दी हो निज कर्तव्य न तजना था।
मत्सर औ अभिमान छोड़ वह सदा राम को भजना था ॥
आलस लोभ दुर्गुणों की भी हवा उसे थी लगी नहीं।
सुख को छोड़ कभी चिन्ता तो उसके मन में जगी नहीं ॥ २ ॥
इन्हीं गुणों से देश देश में फैल गया था उसका नाम।
बड़े बड़े विद्वान् ढूँढ़ते आते थे उसका शुभ धाम ॥
एक बार उससे मिलने को आया एक तत्त्वज्ञानी।
नम्रभाव से अजापाल-प्रति बोला वह ऐसी बानी.—॥ ३ ॥
"बतलाइये दया कर मुझको पाया कहां ज्ञान-भाण्डार।
मनन किया है सदा आपने क्या भगवद्गीता का सार?
अथवा वेद-शास्त्रों का कुछ तुमने है अभ्यास किया?
तुलसी, केशव, सूर आदि के ग्रन्थों से या ज्ञान लिया?" ॥४॥
"कालिदास, भवभूति, माघ, भारवि के काव्यों का रस-सार।
मुझे जान पड़ता है तुमने सभी चखा है वारम्वार ॥
रीति-रिवाज तथा जन-परिचय पाने को क्या देश-विदेश—
तुमने भ्रमण किया है? मुझको बतलाओ सब हाल विशेष" ॥५॥
तत्त्वज्ञानी की बातों पर हुआ उसे आश्चर्य महान्।
अति विनीत हो उससे फिर यों बोला धनगर ज्ञान-निधानः—
"दयाशील सर्वज्ञ! अभी जो नाम आपने बतलाये,
जीवन भर में कभी नहीं वे मेरे सुनने में आये!" ॥ ६ ॥
"उन महान ग्रन्थों में जो जो भरा हुआ होगा विज्ञान,
इस अज्ञान दीन जन को वह कैसे मिलता कृपानिधान!
देश विदेश भ्रमण करने को नहीं गया मैं कभी कहीं,
यही अरण्य विश्व है मेरा, फिरता हूँ मैं सदा यहीं ॥ ७ ॥
"मानव-जाति स्वयं दूषित है उसके मन्द विचारों से;
प्रकृति सत्य गुण से भूषित है, जिसके सब अनुगामी हैं।
ज्ञान मुझे जो कुछ आता है, सभी सृष्टि से आता है,
प्यारे ईश्वर की आज्ञा पर मन मुसकाता जाता है ॥ ८ ॥
मधुमक्खी निशिदिन श्रम कर के मधु एकत्रित करती है,
आपस में हिल-मिल रहती है कभी न [illegible] करती है;
पर [illegible] का दुर्गुण है इसमें एक बड़ा भारी;
[illegible] जाने पर होता बड़ा [illegible] है दुखकारी ॥ ९ ॥
"[illegible] ने उनको [illegible] है;
[illegible]
[illegible]
[illegible] ॥ १० ॥

"कृतज्ञता का मार्ग मुझे मेरे कुत्ते ने बतलाया।
चतुराई से सोना भी उसने ही मुझको सिखलाया ॥
व्यर्थ वचन मेरी जिह्वा से भूल न कभी निकलता है।
बादल बहुत गरजता है जो, वह क्या कभी बरसता है?"॥
"अति परिचय हो जाने से फिर रहता नहीं प्रेम का तत्त्व
रोज उदय होने से देखो सूरज का है नहीं महत्त्व ॥
व्यर्थ यत्न करने से जग में मिलता है क्या कोई फल?
बीज पत्थरों पर बोने से फलता है क्या कोई फल?" ॥ १[illegible]
"थोड़ा थोड़ा करने पर है बड़ा कार्य भी सघ जाता;
बिन्दु बिन्दु जल के पड़ने पर सरवर भी है भर जाता ॥
सारस, चिड़की औ कपोत पक्षी का प्रेम सिखाते हैं।
क्षण भर उसको अलग न करना यह आदर्श दिखाते हैं?"
"मेरी भेड़ों निज बालों से करती हैं उपकार बड़ा,
सब को गरम पुनीत वसन दे हरती हैं अति शीत कड़ा ॥"
"अपने तनु को भी कष्टित कर करो सदा तुम पर-उपकार,
यह शिक्षा अपनी भेड़ों से पाता हूँ मैं बारम्बार" ॥ १४ ॥
"अजासमूह लगी मम कितना करता जगत्-भलाई है;
जीवित रहकर घृत, मट्ठा औ देता दूध मलाई है ॥
इतना ही क्यों, प्राणदान कर भरते हैं औरों का पेट,
अस्थि चर्म भी, भला जानकर करते हैं औरों को भेंट" ॥ १[illegible]
"इतने पर भी नर-समाज की [illegible] भारी निठुराई,
मेरा हृदय फटा जाता है, पर क्या मेरा वश भाई!
अजा-जाति से भी मैंने यह शिक्षा बहुत बड़ी पाई—
मर कर भी उपकार करो, पर मनुजजाति है अपकारी" ॥ १६
इतनी बातें सुन धनगर की बोल उठा तत्त्वज्ञानी—
"जैसा नाम सुना था मैंने तुम वैसे ही हो ज्ञानी।
मेरा [illegible] हुआ [illegible], इसमें कुछ सन्देह नहीं"
मेरे मन इस जग में [illegible] कहीं नहीं" ॥ १७ ॥
"[illegible],
[illegible]।
[illegible],
[illegible]" ॥ १८ ॥
"[illegible],
[illegible] ॥
[illegible],
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

थर इन्हें राजमहल और खजाने की रक्षा का काम करना पड़ता है। सम्राट् के सामने जलूस के आगे सब लोग ' महाराज की जय ' कह कर निकलते थे। इस मौके पर भी लोगों की विलक्षण भीड़ हुई थी। चुने हुए लोगों को एम्फी थियेटर में स्थान मिला था। पर मैदान में चारों तरफ और सम्राट् के आने जाने के मार्ग पर भी लोगों की भारी भीड़ लगी थी। घुड़दौड़ की जगह में, जहां से न जलूस ही दिखता था और न सम्राट् ही के दर्शन होते थे वहां भी, हजारों आदमियों का जमाव था। जलूस समाप्त होने पर, गवर्नमेन्ट-हाउस को लौटते हुए सम्राट् अपनी गाड़ी उसी ओर से ले गये जिस ओर के लोगों ने आपके दर्शन नहीं पाये थे और दर्शन के लिए बड़े उत्सुक थे। सम्राट् के पुलीस का कोई विशेष बन्दोबस्त नहीं रखने दिया था। उनके साथ थोड़े से खास खास लोग थे। नाना प्रकार की चेष्टाओं से लोगों ने आपका स्वागत-सत्कार किया। कहते हैं कि सम्राट् अपने सिंहासन के पास जिस भूमि से चले थे उस भूमि को पवित्र समझ कर कई लोगों ने इसका चुम्बन भी किया। रात को गवर्नर जनरल ने सम्राट् के सम्मानार्थ, गवर्नमेन्ट-हाउस में

जलूस की धूम देख कर सम्राट् प्रसन्नता प्रकट कर रहे हैं।

अँगरेजी नाच का उत्सव भी कराया था। उसमें सम्राट् भी सम्राज्ञी के साथ उपस्थित हुए थे। सम्राट् लेडी हार्डिंज के साथ और लार्ड हार्डिंज सम्राज्ञी के साथ नाचे।

छै जनवरी को महारानी साहब ' यंग वूमेन्स क्रिश्चियन एसोसियेशन ' नामक संस्था देखने गईं और उसके लिए खेल की जगह तैयार करने को ५०००) रु. का दान दिया। इसके बाद आपने और भी कई संस्थाएं देखीं। सम्राट् ने गवर्नमेन्ट हाउस में कलकत्ता-युनिवर्सिटी के डेप्युटेशन से भेट की। युनिवर्सिटी के वाइस चेन्सलर सर आशुतोष मुकर्जी ने मानपत्र पढ़ा, उसमें अँगरेजी राज में शिक्षा सम्बन्धी उन्नति का विवरण था। इस मानपत्र के उत्तर में

सम्राट् का महत्वपूर्ण भाषण

इस प्रकार हुआ:—" छै वर्ष पहले इस युनिवर्सिटी ने मुझे ' डाक्टर आफ ला ' की सम्मान पूर्ण

जलूस के आगे चलते हुए राजाओं के हाथी।

पदवी दी थी। उस मौके का स्मरण आकर मुझे इस समय बड़ा आनन्द हो रहा है; तथा इस समय जो मुझे यह अवसर मिला है कि मैं भारत वर्ष की उच्च शिक्षा के विषय में अपने अन्तःकरण की सहानुभूति प्रकट करूं उस पर भी मुझे बड़ा सन्तोष हो रहा है। यूरोपियन और भारतीय [illegible]

त्वाकांक्षा के ऐक्य पर ही भारत का कल्याण बहुत कुछ अवलम्बित मैं आशा रखता हूं कि उस काम में भारत वर्ष के वि.. [illegible] सहायता करेंगे। शिक्षा का क्षेत्र अधिक विस्तृत करके उसका [illegible] के लिए भारत के विश्वविद्यालयों ने जो उपाय समय समय पर [illegible] और सहानुभूति पूर्वक मेरा ध्यान था। परन्तु अभी बहुत कुछ विशेष महत्वपूर्ण [illegible] शा और [illegible] शिक्षा देने का प्रबन्ध न किया जायगा जो विद्यार्थियों को [illegible] न उपलब्ध कर [illegible] जिनसे वे नये नये [illegible] कर सके तब तक, [illegible] समझता कि ये कोई [illegible] टियाँ पूर्णता को प्राप्त [illegible] इसके सिवाय एक [illegible] भी है कि अपनी [illegible] विद्या की रक्षा कर [illegible] पाश्चात्य शास्त्रों की शि[illegible] करनी चाहिए और तु[illegible] ष्ट पवित्रता और [illegible] भी आवश्यकता है [illegible] इनके बिना विद्या की कीमत नहीं होगी। [illegible] अभी कहा ही है [illegible] अपने उपर की जव[illegible] पहचानते हैं। तुम्हें कार्य में तुरन्त सफलता [illegible] हो। तुम अपने उद्देश्य [illegible] रखो; और उनकी [illegible] लिए अखंड प्रयत्न भी [illegible] रहो, परमात्मा तुमको सफलता अवश्य देगा। छै वर्ष पहले मैंने इंग्लैंड में तुम्हारे पास [illegible] सन्देशा भेजा था; आज मैं तुम्हें आशा का उपदेश करता हूं। नवजीवन के और उसकी हलचल आज हमें चारों ओर देख पड़ रही है। शिक्षा ने लोगों में पहले ही [illegible] उत्पन्न कर दी है; [illegible] अधिक अच्छी और [illegible] शिक्षा से और [illegible] आशा उत्पन्न ह[illegible] हमारी इच्छा है [illegible] में सर्वत्र स्कूल [illegible] कालेजों का जाल [illegible] जाय और उनसे [illegible] भक्त तथा उपयोगी [illegible] रिक बाहर निकलें; [illegible] शिक्षाप्रचार से [illegible] भारतीय प्रजा के [illegible] अधिक प्रकाशमान [illegible] तथा उनके कष्ट भी [illegible] सुख मालूम होने [illegible] शिक्षा में मेरी इच्छा [illegible] पूर्ण होगी; और [illegible] की [illegible] सदा अपने हृदय में [illegible] गे। आपने जो [illegible] [illegible]

और मेरे पद पर आपकी श्रद्धा है, [illegible] और भारत की [illegible] [illegible] और [illegible] के नीचे [illegible] [illegible] है, इस पर मुझे बड़ा सन्तोष हुआ। आपने [illegible] और [illegible] मुझे दिया उसके लिए मैं आपको [illegible]

राजगंज गये और जूट-मिल्स देख आये। वहां एक मारवाड़ी की तरफ से महारानी को एक गुलदस्ता अर्पण किया गया। इसके ...ज जार्ज और महारानी मेरी

प्राचीन दृश्यों का जलूस

। सर प्रद्योतकुमार ठाकुर और नाटोर के जगदीन्द्र राय ने महा-

सम्राट् के स्पर्श करने पर वह द्रव्य लौटा लिया गया। इसके बाद बड़े लोगों ने सम्राट् से भेंट की, तत्पश्चात् प्राचीन काल के 'नवरोज़' और के जलूसे का दृश्य सम्राट् के सामने निकाला गया। नवरोज़ का जलूस बादशाह के ज़माने में निकलता था। इस जलूस का सारा प्रबन्ध मुर्शिदा- नवाब ने किया था। नौबत के घोड़े और ऊंट, सोने के हौदोंवाले

कलकत्ते में जलूस की तैयारी।

जलूस का दृश्य.

...र महारानी पर छत्र लगे थे, तथा मोरभंज के महाराज कुमार और ...र के [illegible] चंवर ढोरते थे। बंगाल के ले० गवर्नर, मुर्शि- ... [illegible] के [illegible], म० [illegible], महाराज दर-

बड़े हाथी और मोरछल झंडे, भालेवाले, फरसाधर, गदाधर, ढोल और नकीरी- वाले, सोने के सुन्दर रथ आदि बातों के कारण इस सवारी की शोभा अपूर्व थी। दशहरे का जलूस भी उसी धूमधाम से निकला। धार और किशनगढ़

का भाषण समाप्त होने के बाद युनिवर्सिटी के [illegible] ने

युनिवर्सिटी के लिए भेंट किया। [illegible] बहुत प्रभाव हुआ। [illegible]

रेड-रोड पर बड़े लाट के शरीररक्षक सम्राट् के स्वागत के लिए खड़े हैं।

फाटक बनाये गये थे और लोगों की भी बहुत भीड़ जमा हुई थी । किले में बड़े बड़े अँगरेज और 'दरबारी' लोग जमा हुए थे । देशी स्त्रियां भी बहुत सी थी । यहां कुछ लड़कियों ने सम्राट् को पुष्पगुच्छ अर्पण किये । किला देख लेने के बाद, सम्राट् किले तट पर मण्डप में आकर बैठ गये । यह योजना इस लिए की गई थी कि जिससे किले के नीचे मैदान में जमा हुए लोग आपके दर्शन कर सके । इसके बाद सम्राट् फिर स्टेशन पर आकर अपनी स्पेशल से बम्बई को चल दिये ।

१० जनवरी को सम्राट् की सवारी बम्बई पहुँच गई । इस बार फिर बम्बई नगरी ने रम्य रूप धारण किया था । स्टेशन से सम्राट् का जलूस बड़ी

हम आपके विशेष ऋणी हुए है । गत सुखमय सप्ताह में यह .. हमारे लिए खेदजनक हुई कि हम इससे अधिक दिन रहकर [illegible] प्रान्त और आदरशीलता से आमंत्रण देनेवाले उदार राजा लोगों में हम नहीं जा सके । विचारपूर्ण तत्परता और प्रेमपूर्ण [illegible] दायक किये हुए हमारे भारतीय अनुभवों की स्मृति हमें बहुत काल रहेगी । जगत् के अन्य भागों में रहनेवाली अपनी लक्षावधि प्रजा के कल्याण की जितनी हमे चिन्ता रहती है उतनी ही चिन्ता इस [illegible] लोगों के विषय में भी हमे रहेगी । सब जातियों और सब धर्मों हृदय से हमारा स्वागत करने मे जिस प्रकार एकजीव होगये उसी [illegible]

पारितोषिक बाँट कर, कौंटेस आफ शाफ्टसबरी के साथ, सम्राज्ञी का प्रयाण ।

कलकत्ते की आतिशबाजी ।

[illegible]

सम्राट् का भाषण

[illegible]

फाटक बनाये गये थे और लोगों की भी बहुत भीड़ जमा हुई थी । किले में बड़े बड़े अँगरेज और ' दरबारी ' लोग जमा हुए थे । देशी स्त्रियां भी बहुत सी थीं । यहां कुछ लड़कियों ने सम्राट् को पुष्पगुच्छ अर्पण किये । किला देख लेने के बाद, सम्राट् किले तट पर मण्डप में आकर बैठ गये । यह योजना इस लिए की गई थी कि जिससे किले के नीचे मैदान में जमा हुए लोग आपके दर्शन कर सकें । इसके बाद सम्राट् फिर स्टेशन पर आकर अपनी स्पेशल से बम्बई को चल दिये ।

१० जनवरी को सम्राट् की सवारी बम्बई पहुंच गई । इस बार फिर बम्बई नगरी ने रम्य रूप धारण किया था । स्टेशन से सम्राट् का जलूस बड़ी

हम आपके विशेष ऋणी हुए हैं । गत सुखमय सप्ताह में यह ५ हमारे लिए खेदजनक हुई कि हम इससे अधिक दिन रहकर प्रा- प्रान्त और आदरशीलता से आमंत्रण देनेवाले उदार राजा लोगों में हम नहीं जा सके । विचारपूर्ण तत्परता और प्रेमपूर्ण दायक किये हुए हमारे भारतीय अनुभवों की स्मृति हमें बहुत काल रहेगी । जगत् के अन्य भागों में रहनेवाली अपनी लक्षावधि प्रजा के कल्याण की जितनी हमें चिन्ता रहती है उतनी ही चिन्ता इस लोगों के विषय में भी हमें रहेगी । सब जातियों और सब धर्मों हृदय से हमारा स्वागत करने में जिस प्रकार एकजीव होगये उसी

पारितोषिक बाँट कर, काँटेस आफ शाफटसबरी के साथ, सम्राज्ञी का प्रयाण ।

बंगाल लेजिस्लेटिव कौंसिल की ओर से सम्राट् को मानपत्र देने का उत्सव।
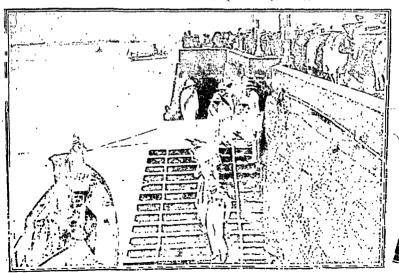
सम्राट् और सम्राज्ञी का अपोलो बन्दर से प्रयाण।

हुआ झंडा नीचे कर दिया गया। तोपों की सलामी हुई और राष्ट्रगीत ान सुनाई देने लगी। बड़े लाट, बम्बई के गवर्नर, आ. आगाखां, महा-ूंदी आदि कई बड़े लोग मदीना जहाज पर गये थे। वहां भोजन-समारंभ हुआ। सम्राट् ने कुछ लोगों को पदक आदि दिये। वहां से के लौट आने पर १०१ तोपों की सलामी के साथ सम्राट् का जहाज लिए रवाना हुआ।

दिल्ली का राजदरबार ।
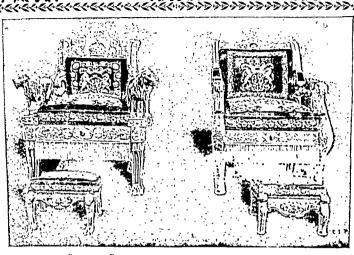
दरबार में सम्राट् का सिंहासन ।

दरबार में सम्राज्ञी का सिंहासन ।

दरबार के भव्य मण्डप में सम्राट् और सम्राज्ञी के बैठने का उच्च स्थल।

सम्राट् नवीन दिल्ली की नींव का पत्थर रख रहे हैं।

सम्राट् दिल्ली के किले में बैठकर यमुना के किनारे होते हुए खेल देख रहे हैं।

दिल्ली का किला।

दिल्ली में शाहजहां के राजमहल में मासुमन बुर्ज पर बैठ कर सम्राट् और सम्राज्ञी जनसमूह को दर्शन देकर सब का अभिनन्दन स्वीकार कर रहे हैं।

सम्राट् और सम्राज्ञी की स्पेशल गाड़ी।

सन् [illegible]

नेपाल में सम्राट् का शिकार खेलना।

बीचवाले हाथी पर सम्राट् बैठे रहे हैं। उनके बाएं ओर के हाथी पर नेपाल के मुख्य प्रधान राना चंद्र समशेर बैठे हैं। सब हाथी उत्तम प्रकार से शृंगार किये हुए हैं। इस शिकार में कुल ३१ बाघ, १८ गैंडे और ४ भालू मारे गये। इनमें से स्वयं सम्राट् ने २४ बाघ [illegible] एक बार में सम्राट् ने [illegible] बन्दूक से एक बाघ और एक भालू दोनों को एकदम मारा।)

नेपाल में सम्राट् का शिकार खेलना।

बीचवाले हाथी पर सम्राट् बैठे रहे हैं। उनके बाएं ओर के हाथी पर नेपाल के मुख्य प्रधान राना चंद्र समशेर बैठे हैं। सब हाथी उत्तम प्रकार से शृंगार किये हुए हैं। इस शिकार में कुल ३६ बाघ, १८ गैंडे और ४ भालू मारे गये। इनमें से स्वयं सम्राट् ने २४ बाघ और एक भालू मारा। एक बार तो सम्राट् ने एक दुबल् बन्दूक से एक बाघ और एक भालू दोनों को एकदम मारा।)

पाल के मुख्य प्रधान चन्द्र शमशेरजंग ने एक मास पहले से ही सम्राट् के लिए खेलने की अच्छी तैयारी कर रखी थी। १५ दिसम्बर को सम्राट् और लवाजमे को सुर्कीमार नामक मुकाम में ले जाने के लिए भिकनाथोरी में

कुल ४० मोटरगाड़ियाँ तैयार थीं। नेपाली लोग बाघ और गैंडा आदि शिकार करने में बहुत ही पटु हैं। बाघ और गैंडों की चहल से नेपाली चट जान लेते हैं कि जंगल में अमुक ओर वे जानवर हैं। जंगल में जिस त

बाघ और शेरों का हैरना वे अपने तर्क से जानते हैं, उस तरफ, शिकार के पहले वे भैंसे अथवा बैल बाँध रखते हैं। उन भैंसों या बैलों को यदि वे जानवर खा जाते हैं तो उन लोगों को निश्चय हो जाता है कि इसी तरफ आसपास कहीं न कहीं बाघ या गैंडे हैं। इसके बाद सैकड़ों हाथियों से जंगल के उस भाग में घेरा डाल देते हैं। इस कारण वे जानवर अवश्य ही हाथियों के इस घेरे में फँस जाते हैं। फिर जिस झाड़ी अथवा गुहा में उन जानवरों के फँसने का

जंगल में एक प्रकार का शिकार—हाथियों का घेरा।

भगिनी निवेदिता।

भला यह कौनसी वस्तु है जो हमारे इस मृत्युलोक में चिरस्थायी है! उत्पत्ति के पीछे लय, उदय के पीछे अस्त, जन्म के पीछे मृत्यु लगेही हुए हैं। इस नियम के अनुसार मृत्यु मनुष्य के सिर पर नित्यही नाच रहा है। लाखों मनुष्य रोज जन्मते हैं और लाखोंही नित्य काल के गाल में चले जाते हैं। पर कुछ मनुष्य—कुछ नहीं, संसार के अधिकांश मनुष्य—जहाँ एक बार मरे कि फिर सदा के लिए लुप्त हो जाते हैं, उनके पीछे किसीको उनकी याद भी नहीं आती, उनका कोई नाम तक नहीं लेता। इसके विरुद्ध इस नश्वर जगत में कुछ विभूतियां ऐसी होती है कि उनका यह पञ्चभौतिक देह चाहे भलेही मर जाय; पर वे स्वयं सदा के लिए नष्ट नहीं होते। वे अपने दिव्य चरित्र के अविनाशी स्मारक पहलेही से रच रखते हैं। इस कारण वे कीर्तिरूप से इस अशाश्वत संसार में भी अजर और अमर बने रहते हैं। हमारी चरितनायका भगिनी निवेदिता इसी श्रेणी में है।

परहित-साधन जिनका प्रधान व्रत है, जनसेवा ही जिनका धर्म है, अशिक्षितों को विद्यादान करने, दीन दुःखियों और अनाथों की सहायता करने में ही जो अपना जीवन सफल समझते हैं—नहीं, नहीं जो निरपेक्षता के साथ अपना जीवन इसी काम के लिए निवेदन कर देते हैं— ऐसे पुण्यश्लोक मनुष्यों में भगिनी निवेदिता अत्यन्त श्रेष्ठ थी। विलायत में जन्म लेकर और केवल आर्य धर्म की तेजस्विता से मोहित होकर इस परम साध्वी ने आमरण ब्रह्मचारिणी रहकर आर्यभूमि के दुःखी और आर्त जनों की जो सेवा की उस पर ध्यान जाते ही मन विस्मय और कौतुक से भर जाता है और सहसा, आपही आप यह आत्माधिकारोद्गार मुख से निकल पड़ता है कि हाय! हम आर्यभूमि को, केवल प्रसव-वेदना देनेही के लिए जन्मे और उसकी छाती पर भाररूप होकर खेल रहे हैं! हा! जिस आर्यमाता ने हमें अपने पेट से जन्म दिया है—जो आर्यमाता हमारा सब प्रकार से लालन पालन करती है उसके प्रति हमारी ऐसी अभव्य कृतघ्नता!!

भगिनी निवेदिता।

अस्तु। जब हम भगिनी निवेदिता के पिता के चरित्र पर विचार करते हैं तब हमें मालूम होता है कि एक साधु ने जो यह कहा है कि "शुद्ध बीज के पेट में रसाल और सुन्दर फल रहते हैं" सो बिलकुल ठीक है। इसी न्याय के अनुसार योग्य पिता से इस योग्य कन्या का निपजना स्वाभाविक ही है। भगिनी निवेदिता के पिता धर्मोपदेशक और सुवक्ता तथा सुविज्ञ थे। परन्तु अपनी भौतिक उन्नति की ओर बिल्कुल ध्यान न देते हुए उन्होंने मेंचेस्टर के दीन दुर्बल लोगों की सेवा करने के लिए अपना जीवन दे दिया था। ऐसे परोपकाररत पिता की यह परोपकारी कन्या २८ अक्टूबर सन १८६७ में उत्पन्न हुई। बाल्यपन में भगिनी निवेदिता का नाम मिस मार्गरेट ई नोबल था। शैशवावस्था से ही इनकी धर्म की ओर प्रवृत्ति थी। इनके पिता का एक मित्र हमारे भारतवर्ष में धर्मोपदेशक था। वह एक दिन उनके पिता से मिलने के लिए गया। कन्या मार्गरेट की धर्मलालसा देखकर वह बड़ा चकित हुआ। उसने उस होनहार कन्या को आशीर्वाद देकर कहा कि आगे कभी न कभी इस सुलक्षण कन्या पर भारतसम्बन्धी कर्तव्य की जवाबदारी आ पड़ेगी। और यह योगायोग तो देखिये कि सचमुच ही उसकी भविष्यवाणी सत्य निकली! मार्गरेट के पिता भी अपनी सद्गुणी कन्या के भावी जीवन की उज्ज्वलता पहले ही से समझ चुके थे। अतएव मृत्यु के समय उन्होंने अपनी पत्नी से कह रक्खा था कि, "यह कन्या कभी कोई बड़े महत्व का कार्य करने के लिए जायगी, उस समय तुम इसके कार्य में विघ्न न डालना।"

मार्गरेट की शिक्षा अच्छी तरह हुई थी। आगे चलकर शिक्षणशास्त्र ही उनका प्यारा विषय हो गया। उस समय लंडन शहर में उक्त विषय में उनकी बराबरी करनेवाले बहुत कम थे। यही नहीं, बल्कि लंडन की शिक्षा-विषयक हलचल थोड़े ही दिनों में इन्हीं पर आ रही। विशेषतः उन्होंने, छोटे छोटे बच्चों को सरल और मनोरंजक रीति से शिक्षा देने पर विचार किया और इस विषय का निश्चय करने में उन्होंने अपना अपूर्व बुद्धिसामर्थ्य दिखलाया; पर उनके उस उत्तम ज्ञान का फल लंडन शहर को नहीं मिलना था। उनके ज्ञानसूर्य के किरणों का प्रकाश लंडन शहर पर अच्छी तरह पड़ने न पाया था कि आर्यमाता की पुकार उनके कानों में पड़ी। सारे संसार की धर्मपरिषद होने के बाद अमेरिका में दो वर्ष तक आर्यधर्म का प्रचार करके श्रीमत् स्वामी विवेकानन्द सन् १८७५ ई० मे लंडन को पधारे। वेदान्तधर्म के समान महत्वपूर्ण और मनोरम विषय और विवेकानन्द के समान तेजस्वी, दिव्य और वक्तृत्वपूर्ण वाणी! फिर क्या कहना!! लंडन नगर में धूम मच गई। उस समय अनेक लोग स्वामीजी के शिष्य बन गये। उन्हींमें हमारी चरित्रनायिका मिस मार्गरेट भी थीं। आर्यभूमि और आर्यधर्म पर उनकी निरपेक्ष और निस्सीम भक्ति देखकर स्वामी विवेकानन्दजी ने भारतवर्षीय स्त्रियों की शिक्षा और अनाथसेवा का कार्य उन्हें सौंप दिया, और उन्होंने भी अपने गुरु की आज्ञा शिरोधार्य की। उनकी माता को कन्यावियोग से अत्यन्त दुःख हुआ, पर अपने पति की अन्तिम आज्ञा ध्यान में लाकर उसने भी अपनी कन्या को प्रेमपूर्वक लोकसेवा के लिए विदा किया। उस दिन से अपनी कन्या की भक्तिभाजन आर्यभूमि पर उसे भी प्रेम हो गया। विलायत गये हुए भारतीय जनों के लिए '[illegible]' का उसका घर बहुधा स्वगृह का सा अनुभव दे रहा था।

मिस मार्गरेट जनवरी सन् १८९८ में पहले पहल कलकत्ते आईं। पर उस समय उनके स्वीकृत कार्य का प्रबन्ध ठीक ठीक नहीं जमा। उसी वर्ष के मई महीने से लेकर अक्टूबर तक उन्होंने स्वामीजी के साथ वायव्य-प्रान्त, कमाऊं, काश्मीर, इत्यादि प्रदेशो में भ्रमण किया। इसके बाद जून १८९९ में वे गुरु के साथ स्वदेश लौट गईं। १९०२ तक वहीं रहीं। बाद को फिर अपना नियमित कार्य हाथ में लेने के लिए अपनी मानी हुई मातृभूमि में लौट आईं।

कलकत्ते आने पर आर्य स्त्रियों की दुर्दशा देखकर उनका चित्त बहुत व्याकुल हुआ। इसलिए उन स्त्रियों में शिक्षा का प्रचार करने का मन उन्होंने धारण किया। केवल वक्तृत्व के मीठे फौवारे छोड़कर, वादविवाद मचाकर, अथवा सिर्फ पत्रों में निबन्ध लिखकर ही वे चुप नहीं रहीं—किन्तु उन्होंने पहले यह निश्चय किया कि जिनके लिए हमें उद्योग करना है उन्हींके समान प्रथम हमें बनना चाहिए, उन्हींमें से एक होकर हमें प्रयत्न करना चाहिए। अपनी सुख-सम्पत्ति का त्याग करके आर्य ब्रह्मचारिणी का कठोर-संयम रमणी के लिए तो और भी कठोर— जीवनक्रम उन्होंने शुरू किया। उन्होंने कलकत्ते के उत्तर भाग में बागबाज़ार स्ट्रीट में एक मकान [illegible] भाड़े से लिया, और वहीं वे आर्य-स्त्रियों से मिलजुलकर रहने का प्रयत्न करने लगीं। पहले पहल उन्हें जो क्लेश हुआ उसका वर्णन नहीं किया जाता! उन्हें घर के काम करने के लिए कोई नौकरानी भी नहीं मिलती थी! पहले पहल कुछ दिनों तक उन्हें भोजन पकाने का मौका [illegible]-

नेपाल के मुख्य प्रधान चन्द्र समशेर बहादुर और सम्राट् की भेंट।

नेपाली जंगल का बाघ सम्राट् के हाथी पर आक्रमण करने को आ रहा है।

हाजी मुहम्मद इस्माइलखाँ, अलीगढ़। आपको दिल्ली दरबार के उपलक्ष में नवाब की पदवी दी गई।

नेपाल के महाराज ने सम्राट् को ये जानवर भेंट किये।
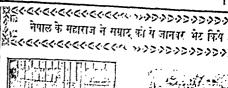
लड़नेवाले बकरों की जोड़ी (ये बकरे इतने बलवान हैं कि इनको पकड़ने के लिए पहलवान लगाये गये, तथापि वे उनसे नहीं पकड़े जा सके।)

अलबीमो चिनकारा (एक प्रकार की नेपाली गाय)।

शिकम प्रदेश का बारहसिंगा।

तिब्बत का मेस्टिक नामक कुत्ता।

हिमालय का झब्बू बैल।

भगिनी निवेदिता।

भला यह कौनसी वस्तु है जो हमारे इस मृत्युलोक में चिरस्थायी है ! उत्पत्ति के पीछे लय, उदय के पीछे अस्त, जन्म के पीछे मृत्यु लगेही हुए हैं। इस नियम के अनुसार मृत्यु मनुष्य के सिर पर नित्यही नाच रहा है। लाखों मनुष्य रोज जन्मते हैं और लाखोंही नित्य काल के गाल में चले जाते हैं। पर कुछ मनुष्य—कुछ नहीं, संसार के अधिकांश मनुष्य—जहाँ एक बार मरे कि फिर सदा के लिए लुप्त हो जाते हैं, उनके पीछे किसीको उनकी याद भी नहीं आती, उनका कोई नाम तक नहीं लेता। इसके विरुद्ध इस नश्वर जगत में कुछ विभूतिया ऐसी होती है कि उनका यह पञ्चभौतिक देह चाहे भलेही मर जाय; पर वे स्वयं सदा के लिए नष्ट नहीं होते। वे अपने दिव्य चारित्र के अविनाशी स्मारक पहलेही से रच रखते हैं। इस कारण वे कीर्तिरूप से इस अशाश्वत संसार में भी अजर और अमर बने रहते हैं। हमारी चरितनायका भगिनी निवेदिता इसी श्रेणी में है।

परहित साधन जिनका प्रधान व्रत है, जनसेवा ही जिनका धर्म है, अशिक्षितों को विद्यादान करने, दीन दुखियों और अनाथों की सहायता करने में ही जो अपना जीवन सफल समझते हैं—नहीं, नहीं जो निरपेक्षता के साथ अपना जीवन इसी काम के लिए निवेदन कर देते हैं— ऐसे पुण्यश्लोक मनुष्यों में भगिनी निवेदिता अत्यन्त श्रेष्ठ थी। विलायत में जन्म लेकर और केवल आर्य धर्म की तेजस्विता से मोहित होकर इस परम साध्वी ने आमरण ब्रह्मचारिणी रहकर आर्यभूमि के दुःखी और आर्त जनों की जो सेवा की उस पर ध्यान जाते ही मन विस्मय और कौतुक से भर जाता है और सहसा, आपही आप यह आत्माधिक्कारोद्गार मुख से निकल पड़ता है कि हाय ! हम आर्यभूमि को, केवल प्रसव-वेदना देनेही के लिए जन्मे और उसकी छाती पर भाररूप होकर खेल रहे हैं ! हा ! जिस आर्यमाता ने हमें अपने पेट से जन्म दिया है—जो आर्यमाता हमारा सब प्रकार से लालन पालन करती है उसके प्रति हमारी ऐसी अक्षम्य कृतघ्नता !!

अस्तु। जब हम भगिनी निवेदिता के पिता के चरित्र पर विचार करते हैं तब हमें मालूम होता है कि एक साधु ने जो यह कहा है कि "शुद्ध बीज के पेट में रसाल और सुन्दर फल रहते हैं" सो बिल्कुल ठीक है। इसी न्याय के अनुसार योग्य पिता से इस योग्य कन्या का निकलना स्वाभाविक ही है। भगिनी निवेदिता के पिता धर्मोपदेशक और सुवक्ता तथा सुशिक्षित थे। परन्तु अपनी मौलिक उन्नति की ओर बिल्कुल ध्यान न देते हुए उन्होंने [illegible] के दीन दुर्बल रोगियों की सेवा करने के लिए अपना जीवन दे दिया था। [illegible] की यह [illegible] कन्या २८ अक्टूबर सन १८६७ में उत्पन्न हुई। बचपन में भगिनी निवेदिता का नाम मिस मार्गरेट ई नोबल था। बचपन से ही इनकी धर्म की ओर प्रवृत्ति थी। इनके पिता का एक मित्र [illegible] में धर्मोपदेशक था। [illegible] एक दिन उनके पिता ने [illegible] के लिए गया। कन्या मार्गरेट की धर्मभावना देखकर वह बड़ा चकित हुआ। उसने उस होनहार कन्या को आशीर्वाद देकर कहा कि [illegible] और यह [illegible] ! मार्गरेट के पिता [illegible] अपनी [illegible] कन्या के [illegible] ही से [illegible] चुके थे। अपनी मृत्यु के समय उन्होंने अपनी पत्नी से कह रक्खा था कि, "यह कन्या कभी कोई बड़े महत्व का कार्य करने के लिए जायगी, उस समय तुम इसके कार्य में विघ्न न डालना।"

मार्गरेट की शिक्षा अच्छी तरह हुई थी। आगे चलकर शिक्षणशास्त्र ही उनका प्यारा विषय हो गया। उस समय लंडन शहर में उक्त विषय में उनकी बराबरी करनेवाले बहुत कम थे। यही नहीं, बल्कि लंडन की शिक्षा-विषयक हलचल थोड़े ही दिनों में इन्हीं पर आ रही। विशेषतः उन्होंने, छोटे छोटे बच्चों को सरल और मनोरंजक रीति से शिक्षा देने पर विचार किया और इस विषय का निश्चय करने में उन्होंने अपना अपूर्व बुद्धिसामर्थ्य दिखलाया; पर उनके उस उत्तम ज्ञान का फल लंडन शहर को नहीं मिलना था। उनके ज्ञानसूर्य के किरणों का प्रकाश लंडन शहर पर अच्छी तरह पड़ने न पाया था कि आर्यमाता की पुकार उनके कानों में पड़ी। सारे संसार की धर्मपरिषद होने के बाद अमेरिका में दो वर्ष तक आर्यधर्म का प्रचार करके श्रीमत् स्वामी विवेकानन्द सन् १८७५ ई० में लंडन को पधारे। वेदान्तधर्म के समान महत्वपूर्ण और मनोरम विषय और विवेकानन्द के समान तेजस्वी, दिव्य और वक्तृत्वपूर्ण वाणी ! फिर क्या कहना !! लंडन नगर में धूम मच गई। उस समय अनेक लोग स्वामीजी के शिष्य बन गये। उन्हींमें हमारी चरित्रनायका मिस मार्गरेट भी थी। आर्यभूमि और आर्यधर्म पर उनकी निरपेक्ष और निस्सीम भक्ति देखकर स्वामी विवेकानन्दजी ने भारतवर्षीय स्त्रियों की शिक्षा और अनाथसेवा का कार्य उन्हें सौंप दिया, और उन्होंने भी अपने गुरु की आज्ञा शिरोधार्य की। उनकी माता को कन्यावियोग से अत्यन्त दुःख हुआ, पर अपने पति की अन्तिम आज्ञा ध्यान में लाकर उसने भी अपनी कन्या को प्रेमपूर्वक लोकसेवा के लिए विदा किया। उस दिन से अपनी कन्या की भक्तिवाली आर्यभूमि पर उसे भी प्रेम हो गया। विलायत गये हुए भारतीय जनों के लिए 'सिमलहन' का उसका घर बहुधा स्वगृह का सा अनुभव दे रहा था।

भगिनी निवेदिता।

मिस मार्गरेट जनवरी सन् १८९८ में पहले पहल कलकत्ते आईं। पर उस समय उनके स्वीकृत कार्य का प्रबन्ध ठीक ठीक नहीं जमा। उसी वर्ष के मई महीने से लेकर अक्टूबर तक उन्होंने स्वामीजी के साथ [illegible], कमाऊं, काश्मीर, इत्यादि प्रदेशों में भ्रमण किया। इसके बाद जून १८९९ में वे गुरु के साथ स्वदेश लौट गईं। १९०२ तक वहीं रहीं। बाद को फिर अपना निर्वाचित कार्य हाथ में लेने के लिए अपनी मनी हुई मातृभूमि में लौट आईं।

कलकत्ते आने पर आर्य स्त्रियों की दुर्दशा देखकर उनका चित्त बहुत [illegible] हुआ। [illegible] इन स्त्रियों में [illegible] का प्रचार करने का [illegible] उन्होंने [illegible] किया। [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

नहीं मिला; फल मूल खाकर ही वे अपने कष्टमय दिन आनन्द से काटने लगीं। जिन लोगों से उन्होंने सहायता के लिए याचना की उन लोगों ने भी अपना सन्देह स्पष्ट रीति से व्यक्त किया। लोग उनसे मिलजुलकर चलने के लिए तैयार ही न थे! पर थोड़े ही दिनों में उनके सब बन्धुवर्गों को अपनी इस भगिनी—मार्गरेट—की भक्ति और कार्यनिष्ठा की दृढ़ता पर विश्वास हो गया। प्रेम का आकर्षण ही ऐसा है; सेवा का गुण ही ऐसा है, कि आबालवृद्ध सब स्त्रियां धीरे धीरे उनपर भक्ति करने लगीं। पहले पहल छोटे छोटे बच्चे उनके माया पाश में फँसे और जैसे वे अपनी माता से ढिठाई का बर्ताव करते थे वैसेही इस भगिनी से भी करने लगे। मिस मार्गरेट ने उन्हें अपने पास रखकर और अपने प्रेम की अपूर्व वस्तु देकर उन्हें पढ़ाने के लिए बालोद्यान-पद्धति (किंडरगार्टन सिस्टम) की एक पाठशाला खोली। इसके बाद स्वाभाविक ही उन बच्चों की माताएँ उनकी ओर आकर्षित हुईं। तब उन्होंने प्रौढ़ स्त्रियों के लिए भी एक वर्ग खोल दिया। अनाथ और विधवा स्त्रियां उनके पास शिक्षा पाने के लिए आने लगीं। उनके लिए धीरे धीरे उस पुण्यशील गली में उन्होंने 'भगिनी-आश्रम' स्थापित किया। अध्यापिकाएँ तैयार करना उनका हेतु था।

जिस गली में उन्होंने घर लिया था वह बहुत मैली-कुचैली और आरोग्य-विघातक थी। पर यह बात वहां के लोगों के ध्यान में भी कभी नहीं आती थी। पर मिस मार्गरेट को इस पर बहुत खेद हुआ; उन्होंने वहां रहनेवाले लोगों को स्वच्छता रखने के लिए बहुत उपदेश किया। परन्तु जब उन्होंने देखा कि हमारे उपदेश की ओर इनका कुछ भी ध्यान नहीं जाता तब उन्होंने स्वयं अपने हाथ में झाड़ू लेकर सफाई करना शुरू किया। इस पर लोग स्वयं लज्जित हुए और स्वच्छता की ओर वे ध्यान रखने लगे। उन्हीं दिनों कलकत्ते में प्लेग दैत्य का प्रादुर्भाव हुआ। लोग भय से व्याकुल हो उठे। अनेक गाड़ियों और नौकाओं पर से लोग अन्य गावों को जाने लगे। उस समय मिस मार्गरेट ने तरुण बंगाली स्वयंसेवकों का समूह एकत्र करके, उनकी सहायता से, कलकत्ते के उत्तर भाग में अच्छी स्वच्छता कर ली। शहर का यह भाग अत्यन्त गन्दा था। उन्होंने अनेकों प्लेगाक्रान्त रोगियों की सेवा की, कितने ही प्लेगपीड़ित बालकों की मातृप्रेम से शुश्रूषा की। उस समय की उनकी जनसेवा पर विचार करने से मन विस्मय और कौतुक से मुग्ध हो जाता है। जिनके स्पर्शही से स्वयं मृत्यु हो जाने का डर रहता है उनकी इस प्रकार सेवा करना कितने साहस का काम है! पर जिनका हृदय ईश्वरभक्ति से पूर्ण रहता है— जनसेवा ही जो अपना सच्चा धर्म समझते हैं, रोग भला उनका क्या कर सकता है! इस प्रकार मिस मार्गरेट ने जब आत्मनिवेदन कर दिया तब उन्हें लोग 'निवेदिता' कह कर पुकारने लगे।

जरासा भी दूसरे का दुःख देखकर भगिनी निवेदिता का हृदय पिघल उठता था। एक समय उन्होंने अपनी नौकरानी को शीत से कांपते हुए देखा। बस, उसी क्षण उन्होंने अपना गर्म कपड़ा निकालकर उसे पहना दिया और आप स्वयं शीत का क्लेश भोगने लगीं। भगिनी निवेदिता के जीवन में इसी प्रकार के सैकड़ों उदाहरण पाये जाते हैं।

इन सब प्रकार के श्रमों का परिणाम उनकी प्रकृति पर हुआ। दिन दिन उनका शारीरिक स्वास्थ्य बिगड़ने लगा। अन्त में वे बहुत ही बीमार हो गईं। उनके जीने की आशा भी न रही थी। पर आर्यभूमि के सौभाग्य से वे बच गईं। सब डाक्टरों ने उन्हें सलाह दी कि अब से ऐसा परिश्रम न करना चाहिए। पर उसका कोई उपयोग नहीं हुआ। थोड़े ही दिनों में यह बात हमारी इस भगिनी के कान में पड़ी कि बारीशाल प्रान्त में अकाल ने बड़ी धूम मचा रखी है। लोगों का दुःख सुनकर भला उन्हें चैन कैसे पड़ सकती थी! सैकड़ों लोग बड़े बड़े चन्दे इकट्ठे करने लगे। पर भगिनी निवेदिता ने इस ओर कभी ध्यान नहीं दिया। किन्तु बारीसाल की प्रत्यक्ष दशा देखकर स्वयं अपने हाथों से दुष्काल-पीड़ितों की सेवा करने के लिए वे वहां चली गईं। वे बरसात के दिन थे। सारे मार्ग पानी और कीचड़ से भरे हुए थे। पर उसी दशा में कितने ही दिनों नंगे पैरों गावँ गावँ घूमकर उन्होंने दीन-दुबलों की सेवा-चाकरी की। उन्होंने अपनी "पूर्व बंगाल का अकाल और बाढ़" नामक ग्रन्थ में इस प्रान्त की उस भयंकर अवस्था का बहुत अच्छा चित्र खींचा है। इस बार उन्होंने जो कष्ट सहकर दीनदुखियों की सेवा की उसका वर्णन पढ़कर भक्ति से आप ही आप उनके सामने सिर नवाना पड़ता है। घटपटादि शाब्दिक वेदान्त की चक्की पीसने बैठने में धन्यता माननेवालों को इस सच्ची वेदान्तिन रमणी का वृत्त विशेष मनन करने योग्य है। हम वेदान्त 'बोलना' छोड़कर जिस दिन उसका 'आचरण' करने लगेंगे उसीको सुदिन समझना चाहिए!

हमारे देश की विधवाओं की दशा बहुत ही शोचनीय है। वे अपनी . के दिन सिर्फ अपने पेट भरने के लिए किसीके घर का काम-काज करती हैं और कदाचित् पद पद पर क्लेश और अपमान सहती रहती सभी भरोसा, यदि लोकसेवा करने में अपना समय काटने का वे निश्चय किया करें तो देश के अनेक दुःखों के दूर करने का पुण्य उन्हें प्राप्त। इतना ही नहीं बल्कि उस पवित्र कार्य से उनके दुःखद जीवन को भी इ मिलेगी यह अवर्णनीय है।

अस्तु। भगिनी निवेदिता की 'अहं'-भावना बिल्कुल ही मिट गई थी। उनके उपर्युक्त लोकोत्तर कार्यों का परिमल यूरप और अमेरिका फैल गया। बड़े बड़े लोग उनके दर्शन के लिए उक्त देशों से आते थे भगिनी निवेदिता के दर्शन से और कार्य से तो उन्हें आनन्द होता ही किन्तु आर्यभूमि के प्रति भी उनकी पूज्यबुद्धि हो जाती थी।

इस भरतभूमि पर भगिनी निवेदिता का असाधारण प्रेम था। यह उन्हें अपना ही मालूम होता था। इस देश की आवश्यकताओं अथवा स्त्रियों के सम्बन्ध में वार्तालाप करते समय "भारतीय लोगों की . . अथवा "भारतीय स्त्रियां" आदि परकीयता के शब्दप्रयोग न करते हुए वे "हमारी आवश्यकताएँ" अथवा "हमारी स्त्रियां" कहा करती थीं। कल की जिस गली में वे रहती थीं वह गली तो उन्हें इतनी प्रिय हो गई थी उसे छोड़कर दूसरी जगह जाने में उन्हें बड़ा दुःख होता था। बरसात के सहकर बारीसाल के अकालग्रस्तों की सेवा करने के बाद कलकत्ते आकर बहुत बीमार हो गईं। उस समय उनके विलायत के और यहां के ने उस मैली गली को छोड़कर दूसरी जगह रहने के लिए बड़ा आग्रह पर उन्होंने एक नहीं सुनी और यही उत्तर दिया कि "मैं इसी गली की कन्या हूं; अतएव अपनी इस माता को छोड़कर अब मैं कहीं भी रहने जाऊंगी"।

इस बीमारी के अच्छे होने पर न्यूयार्क और लंडन की दो अन्य मंडलियों की प्रार्थना से उन्होंने भारत के विषय में दो बड़े बड़े ग्रन्थ लिखने प्रारम्भ किया। कई बार बीमार होने से उनका शरीर कुछ तो यों ही निर्बल गया था; तिस पर भी अध्यापन आदि कार्यों में वे परिश्रम करती ही रहती अब ग्रन्थलेखन का परिश्रम उसमें और भी बढ़ गया। इन कारणों से प्रकृति एकदम बिगड़ गई। तब अपने बन्धुवर्ग के आग्रह से हवा बदलने लिए वे दार्जिलिंग चली गईं। वहां जाने पर उनका स्वास्थ्य ठीक करने के लि कई अनुभविक और विद्वान् डाक्टरों ने तन मन से उपचार किया; पर को कुछ और ही मंजूर था; सब मानवी प्रयत्न विफल हुए; और निर्मल जीवात्मा १३ अक्टूबर १९११ को परमात्मा में विलीन हो गया दार्जिलिंग जाने के कुछ दिन पहले बौद्ध धर्मपुस्तकों से चुन चुनकर उन्होंने प्रार्थनापुस्तक प्रसिद्ध की थी। और संसार भर के अपने बन्धुवर्गों को भेट के तौर उसकी एक एक कापी भेज दी थी। कौन कह सकता है कि इस पुस्तक रूप से जगत् को उन्होंने अपना अन्तिम सन्देशा ही नहीं भेजा! रुग्ण-पर पड़े हुए उन्होंने बराबर उसका पारायण जारी रक्खा था; और ध्यान तथा अपने कान उसी पर लगा रक्खे थे। इससे सहज ही पाठकों को मालूम हो जायगा कि भगवत्प्रेम से उनका हृदय कैसा भर गया था।

हम ऊपर कह चुके हैं कि इस देश की स्त्रियों को शिक्षा प्रदान करके उनकी उन्नति करने के लिए ही उन्होंने अपना सब समय अर्पण कर था। स्त्रीशिक्षा के सम्बन्ध में विशेष कर भारतीय स्त्रियों की शिक्षा पर समाचारपत्रों और मासिकपत्रों में अनेक लेख भी लिखे हैं। वे लेख उन लोगों के पठन और मनन करने योग्य हैं जो लोग अपनी स्त्रियों को अँगरेजी पद्धति पर शिक्षा देने के पक्षपाती हैं। भगिनी निवेदिता जैसी लेखनपटु थीं वैसी ही व्याख्यान देने में भी अलौकिक थीं। हमारे देश की विद्यमान और भावी दशा के सम्बन्ध में जो लेख उन्होंने अनेक पत्रों में लिखे उन्हें जो कोई आंखें खोलकर पढ़ेगा उसको वे अवश्य ही अच्छे मार्गदर्शक होंगे।

सिस्टर निवेदिता स्वयं निर्धन ही थीं; इँगलैंड की एक मानी हुई माता—धर्ममाता-से उन्हें कुछ द्रव्य की सहायता मिलती थी, इसके सिवाय अपने लेखन व्यवसाय से वे कुछ प्राप्त करती थीं। इतनी प्राप्ति से वे स्वयं अपनी सादी चाल से रहकर अपनी स्थापित की हुई पाठशाला का भी खर्च चलाती थीं। इसके सिवाय अपने आवश्यक खर्च में भी कुछ कम करके वे भूखों को अन्न और उघड़ों को कपड़ा देती थीं। उन्होंने तीन चार सुन्दर पुस्तकें लिखी हैं। भगिनी निवेदिता की इच्छा से अब इन पुस्तकों का उत्पन्न उनकी स्थापित की हुई स्त्रीपाठशाला में खर्च हुआ करेगा। उनकी लिखी हुई पुस्तकें, जो प्रकाशित होनेवाली हैं, जान पड़ता है, बहुत ही लोकप्रिय होंगी।

इस अपने प्रिय देश के सम्बन्ध में उन्होंने सिर्फ दयामिश्रित शाब्दिक सहानुभूति के कर्ण-मधुर फौवारे कभी नहीं छोड़े; क्योंकि उनके मन में इस देश के विषय में परकीयता की गन्ध भी न थी। वे हममें से ही एक बन गई थीं— वे इस देश के लोगों में पूर्णतया मिल गई थीं— और इसी कारण इस देश में रहनेवाले अनेक अंगरेज लोग उनका उपहास करते; पर भगिनी निवेदिता ने कभी उसकी ओर ध्यान नहीं दिया। "पीछे लोग क्या कहते हैं"

(इ)सका विचार करने के लिए उन्होंने कभी अपने काम में विराम नहीं किया। (स्प)ष्ट ही है, कि विमलभाव के साथ स्वीकृत कार्य से जिनकी वृत्ति तादात्म्य पा (ग)ती है उसके मन में कुत्सित अतएव अज्ञान जनों की निंदा का भय कैसे (प्र)वेश कर सकता है !

स्त्री-शिक्षा-प्रचार के साथ साथ भारत में एकराष्ट्रीयता करने का पवित्र (व्र)त भी उन्होंने स्वीकार किया था। उनका मत था कि "देशहितैषिता ही धर्म है और बुद्धि की जिस दशा से अपने अज्ञान और दीन हीन भाइयों के हितार्थ आत्मत्याग करने की स्फूर्ति उत्पन्न होती है वही ज्ञान है।" वे अपनी स्फूर्तिदा-यक वाणी से अपने ये विचार तरुण बंगालियों के सामने सदा प्रकट करती थीं। अन्य प्रान्तों की अपेक्षा बंगाल में जो अधिक जागृति देख पड़ती है उसका बहुत सा श्रेय सिस्टर निवेदिता की वक्तृता को भी दिया जा सकता है।

यद्यपि वे रामकृष्ण मिशन का कार्य पूर्ण करने में लगी थीं; तथापि बौद्ध धर्म पर भी उनकी बड़ी भक्ति थी। वे बौद्ध धर्म को आर्य धर्म से भिन्न नहीं मानती थीं। उनका कथन है, "रामकृष्ण मिशन जिस प्रकार आर्य धर्म के अन्तर्गत है उसी प्रकार बौद्ध धर्म भी उसमें अन्तर्गत है। मैं अपने गुरु को जिस प्रकार सर्वश्रेष्ठ साधु मानती हूं उसी प्रकार बुद्ध के शिष्य उन्हें सर्व-श्रेष्ठ साधु मानते; और उनके उपदेशानुसार चलते थे। उस समय आर्य साधुओं में बुद्धदेव बहुत ही श्रेष्ठ थे। उनके अनुयायी आर्यसमाज, अर्थात् हिन्दु-समाज से कभी अलग नहीं हुए। उनका आचरण अन्य लोगों की अपेक्षा अधिक शुद्ध और पवित्र था।"

भारत की प्रत्येक पौराणिक वस्तु सिस्टर निवेदिता को बहुत ही पूज्य और प्रिय मालूम होती थीं। जब कि वे बुद्ध-गया में रहती थीं तब एक दिन सायंकाल को वे अपने साथियों से बोलीं, "आओ चलें हम सब लोग आज सुजाता के घर का स्थल देख आवें। अब वहां प्राचीन कुछ अवशिष्ट नहीं है, तथापि उस जगह की हरी घास भी पवित्र है। सुजाता सचमुच पुण्यवान् थी ! उसने योग्य समय में महाराज बुद्ध की सेवा की। बुद्ध जी जब क्षुधा से व्याकुल हुए तब उसने उन्हें अन्नदान किया।" एक बार जब वे खुदाबख्श की लाइब्रेरी देखने गईं तब वहां उन्हें शाहजहां के हस्ताक्षर दिखाए गए। उन हस्ताक्षरों के स्पर्श करने की उन्होंने अनुमति चाही। अनुमति मिलने पर उन अक्षरों पर भगिनी निवेदिता ने अपना हाथ रक्खा और क्षणभर के लिए नेत्र बन्द कर के वे ध्यानस्थ सी हो गईं। इसी तरह नालन्द की एक प्राचीन ईंट और सारनाथ के पुराने पत्थर का एक टुकड़ा भी वे अपने साथ ले आईं और उन दोनों वस्तुओं को उन्होंने बड़ी भक्ति से अपने वाचनमन्दिर में रक्खा।

यह देखकर कि भारतीय लोग प्रत्येक बात में परकीयों का अनुकरण करते हैं, वे बहुत दुःखित होती थीं।

शिक्षा विषय पर उन्होंने एक बार कहा:- "भारत के सामने आज जो सब से महत्व का प्रश्न विचार करने के लिए उपस्थित है वह शिक्षा ही है ! सच्ची शिक्षा-राष्ट्रीय शिक्षा-कैसे दी जाय ? युरोपियनों की निस्तेज प्रतिमाएँ न बनाकर तुम आर्यमाता के सच्चे सुपुत्र प्राचीन राजर्षियों और ब्रह्मर्षियों के समान तेजस्वी पुत्र- कैसे तैयार करोगे ? अन्तःकरण की शिक्षा, आध्यात्मिक शिक्षा, मस्तिष्क की शिक्षा, सारांश उच्च प्रकार की धार्मिक और नैतिक शिक्षा तुम्हें आवश्यक है। अर्वाचीन सभ्यता और प्राचीन भारतीय सभ्यता पर पूर्ण विचार कर के तुम्हें शिक्षा दी जानी चाहिए। आक्सफर्ड और केम्ब्रिज के शालाओं और कालेजों की सिर्फ नकल करने से तुम्हारे देश को कुछ भी लाभ नहीं होगा, प्रत्युत, इस देश की स्वाभाविक दशा ही कुछ ऐसी है कि, पश्चिमी देशों की नकल से उत्पन्न हुई युनिवर्सिटियों के चाकों में तुम्हारे बालकों की बुद्धि और आत्मप्रत्यय का ऐसा चकनाचूर उड़ जायगा कि फिर तुम्हारी जाति का पता भी नहीं चलेगा ! ऐसे छात्रालयों में उनकी बुद्धि का स्वाभाविक और पूर्ण विकाश कभी नहीं होगा।"

एक बार नवयुवकों को सम्बोधन कर के वे बोलीं:- प्यारे तरुण पुरुषो ! किसी बात में भी तुम परकीयों से पराजित मत हो। कोई भी उद्योग हो, जिसे तुमने हाथ में लिया है, उसमें सब से आगे बढ़ने का प्रयत्न करो। परकीयों से पीछे मत पड़ो और न उनका अनुकरण करो।"

हमारी स्त्रियों के सम्बन्ध में एक बार उन्होंने कहा:- तुम्हें अपनी स्त्रियों के सुगृहिणी, सुपाचिका और सुभार्या बन जाने ही पर सन्तुष्ट नहीं रहना चाहिए। ये सब गुण अच्छे हैं; पर यह उन्नति की पराकाष्ठा नहीं है। यदि तुम अपनी स्त्रियों को सच्ची सहधर्मचारिणी बनाना चाहते हो तो तुम उन्हें यह योग्यता प्रदान करो जिससे वे तुम्हें तुम्हारे प्रत्येक कार्य में सहायता दे सकें। भारतीय समाज में स्त्रियों पर पुरुषों का जो अनुचित प्रभुत्व और निठुरता हो रही है उसे सोच कर मैं स्तम्भित ही हो जाती हूं। यह अत्यन्त भयंकर है। इस शोचनीय दशा से स्त्रियों का बुद्धिसामर्थ्य नष्ट हुआ जाता है। बहुत बार मेरे मन में ऐसा आता है कि यदि भारतीय स्त्रियां मन की कुछ कम कोमल होतीं और कुछ कम अच्छी होतीं तो इससे भारतीय पुरुष जाति का सच्चा कल्याण हुआ होता।"

समाज सुधार के विषय में एक बार उन्होंने कहा:- "हमारे समान जब कोई मनुष्य तुमसे कहता है कि तुम्हारे देशसुधार और राष्ट्रोन्नति के ये मार्ग हैं और तुम इस मार्ग से जाओ तब तुम कहते हो कि यदि हम ऐसा करेंगे तो लोग हमसे रोटी-बेटी का व्यवहार न करेंगे। पर इस पर मेरा यह उत्तर है कि इस प्रकार के जिन लोगों को तुम डरते हो वे मानवी प्रगति के भारी शत्रु हैं; उन्हें तुम अशिक्षित, नीच और देशद्रोही समझो। अतएव ऐसे लोगों ही के साथ भोजन आदि का व्यवहार रखना तुम्हें लांछनास्पद मानना चाहिए। तुम्हें यह अच्छी तरह जानना चाहिए कि ऐसे लोगों में विवाह शादी करने से अपना भी रक्त दूषित होता है।"

भगिनी निवेदिता ने जब यह देखा कि हम जीजान तोड़ कर अपने इन सब भाइयों को सदुपदेश कर रही हैं और इनके मन पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता, चिकने घड़े पर पानी डालने के समान हाल होता है, तब उनका हृदय एक दिन बहुत व्याकुल हुआ। उस दिन रात भर उनके आंसू नहीं बन्द हुए। उस समय उन्होंने अपने मुख से जो दुःख के वचन निकाले उन्हें यहां उद्धृत करके हम यह लेख पूरा करते हैं:-"हमें सफलता नहीं हुई; हमारा यह देश अपनी कुम्भकर्णी निद्रा से कुछ जगा नहीं; इसमें फिर कुछ चेतना उत्पन्न नहीं हुई। सब लोग मेरा कहना भर तो सुन लेते हैं, पर अपने पूर्वक्रम में रत्ती भर भी फर्क करना मानो उन्हें शाप है ! हमारे हाथ से कुछ कार्य नहीं हुआ। आर्यभूमि का सच्चा तेज- जिसने किसी समय इसे सारे जगत् का भूषण और एशिया महाद्वीप का प्राण बना रक्खा था वह ज्वलन्त तेज- अभी तक फिर नहीं आया। जिस चेतनाशक्ति ने हमारे पूर्वजों का वैभव बढ़ाया, जिस शक्ति ने किसी समय मानवी सुधार और मानवी ज्ञान की वृद्धि के लिए हमारे पूर्वजों को प्रसिद्ध कर रक्खा वह शक्ति- वह चेतनाशक्ति-क्या अब कभी इस देश में उत्पन्न होगी ? वह तेज, वह चैतन्य, क्या फिर लौटेगा ?"

2203

स्वामी रामतीर्थ ।

(Great men are the living fountain which it is good and pleasant to be near; the light which enlightens, which has enlightened the darkness of the world; and this not as a kindled lamp merely, but rather as a natural luminary shining by the gift of the heaven, a flowing light fountain of native original insight and heroic nobleness in whose presence souls feel all is well with them.)

स्वामी रामतीर्थ ।

इसमें कुछ भी संशय नहीं कि सन्तों के चरित्रों में अमृतरस से भी अधिक मिठास रहता है। जितनाही उसका गान किया जाय उतना ही थोड़ा है। संतचरित्र गान करते हुए मन कभी तृप्त ही नहीं होता! ज्यों ज्यों अधिक चखते हैं त्यों त्यों अधिक मिठास मालूम होता है। अतएव आज हम एक ऐसे महात्मा का संक्षिप्त जीवन-चरित अपने प्यारे पाठकों को सुनाते हैं जिसने अपने तेज से, इसी देश को नहीं किन्तु, जापान और अमेरिका आदि स्वतन्त्र देशों को भी चकित किया है। ऐहिक वासनाओं के जाल से छूटकर सच्चे कर्तव्य का ज्ञान कैसे प्राप्त करना चाहिए? जीवन का सच्चा सार्थक किसमें है? मतमतान्तरों के झगड़े में न पड़कर, मन की समता कायम रखते हुए, अपना मार्ग अचूक रीति से किस प्रकार ढूँढ़ लेना चाहिए? आदि अनेक प्रश्नों का हल करना ही महात्मा लोगों के जीवन का मुख्य उद्देश्य होता है। यह उद्देश्य उपर्युक्त महात्मा ने बड़ी खूबी के साथ पूर्ण किया है।

जो वीरों की भूमि है, पुरुषार्थ का प्रदेश है, जो भूमि कुरुक्षेत्र के अस्तित्व से भारतभूमि का महत्व दिखलाती है, हिमालय के वृक्षों से, ऋषियों के उच्छ्वास से खेलती हुई पवित्र वायु जहां प्रथम संचार करती है उस पांचाल प्रदेश में गुजरानवाला जिले के मुरालीवाला नामक गांव में स्वामी रामतीर्थ का जन्म हुआ! कोई कोई इन्हें महात्मा तुलसीदास जी के ही वंश में उत्पन्न हुआ मानते हैं। वेदान्त की घटघट के संकट से दूर कर अध्यात्मिक कायदों की प्रस्थापना करनेवाला यह मनु, यह तत्वभास्कर, यह आर्यभूमि का पुत्र, सन् १८७३ के ८ अक्तूबर के दिन, कालित हुआ। यह आर्यभूमि का महाभाग्य ही समझना चाहिए! फिर इसकी उत्पत्ति की हम क्यों न करें! स्वामीजी का मूल नाम गोस्वामी तीर्थ राम था। कहते हैं कि "होनहार बिरवान के होत चीकने पात!" इसी के अनुसार इस बालक के अलौकिक गौरव का भान इन्हें बचपन ही से मिलने लगा था! प्रातःकाल ही का सूर्य क्यों न हो, पर उसका तेज थोड़े ही छिप सकता है! जब इनकी शिक्षा मुरालीवाला में पूर्ण हो चुकी तब इनके पिता हीरानन्दजी, आगे की शिक्षा पाने के लिए गुजरानवाले को भेज दिया! तीर्थजी की माता बालपन ही में मर गई थी; इस लिए उनके होने में माया के विषय विशेष आने की सम्भावना नहीं थी। वाला में आतेही उनके भावी जीवनक्रम की नींव जमने लगी। भौतिक शिक्षा प्राप्त करने के साथ ही साथ करने का भी उन्हें अच्छा मौका मिला! गुजरानवाला में उस धन्ना भगत नामक एक सत्पुरुष रहते थे। रामतीर्थजी अपने मुरालीवाला से आकर इन्हीं धन्ना गुरू के पास रहने लगे! तो रामतीर्थ स्वयं ही लोकोत्तर बुद्धि का, असामान्य पूर्ण पवित्र आचरण का, शुद्ध शील का और निस्स्वार्थ प्रेमी था; फिर उसमें भी उसे धन्ना गुरू के समान सन्त का मिल गया! फिर यह कुन्दन क्यों न सुन्दर देख पड़े? कोहनूर, यह पहले ही से था और फिर कुन्दन से जड़ा गया! का जीवन यहीं से परिवर्तित होने लगा! सन्तों का सहवास अरे, सन्तों का सहवास क्या नहीं कर सकता? नीच जीव सन्तों के सहवास से शुद्ध होते हैं—पतित लोग पावन होते हैं। स्वामीजी के समान अद्वितीय पुरुष का तेज यदि सारे संसार छा रहा है तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? रामतीर्थजी, अपना का अभ्यास करने के बाद जो समय मिलता उसमें धन्ना गुरू पास बैठकर उनके उपदेश सुना करते थे! इन्हीं उपदेशों से मन आध्यात्मिक मार्ग में तैयार हुआ! बाद को प्रवेशिका की परीक्षा उत्तीर्ण हो जाने पर धन्ना गुरूजी ने उन्हें कालेज में शामिल होने के लिए लाहौर भेज दिया। पिता की विशेष सम्मति न थी। पर परमेश्वर की इच्छा दूसरी थी! देखो कैसी विचित्रता है! जान पड़ता है कि ईश्वरी इच्छा से प्रेरित होकर धन्ना गुरुजी ने उन्हें इसी लिए लाहौर भेजा कि जिससे स्वामीजी अमेरिका को पावन उसे सच्चे धर्म का ज्ञान करा दें और जो लोग भौतिक सुख के मद में अंधे हो रहे हैं उन्हें आध्यात्मिक ज्ञान के प्रकाश से चकाचौंध में डाल दें! कालेज में जाने पर वे अपना अभ्यास तो ठीक ठीक करतेही थे; इसके सिवा वे धन्ना गुरू का उपदेश भी भूले न थे, पश्चिमी सुधार की भड़कीली सभ्यता का गर्व उन्हें जीत सका! वे यथाक्रम अपनी सब परीक्षाओं में उत्तीर्ण हुए और बी० ए० की परीक्षा में तो वे सारी पंजाब-युनिवर्सिटी में प्रथम रहे! बाद को एम० ए० की परीक्षा देकर फोरमैन क्रिश्चियन कालेज में अध्यापक की नौकरी कर ली! गणितशास्त्र उनका प्यारा विषय था और यही विषय लेकर वे एम० ए० में उत्तीर्ण हुए थे! कुछ दिन उत्तम शिक्षक बनकर उन्होंने नौकरी की; इसके बाद उनकी इच्छा हुई कि अब 'रेंगलर' हो आना चाहिए; पर ईश्वर की इच्छा ही थी—यह चाहता था कि अंकों की तोड़मोड़ करनेवाले रेंगलर रामतीर्थ को कहीं किसी कालेज में सड़ते रहने की अपेक्षा इसे वेदान्त का ऐसा रेंगलर बनानाही उत्तम होगा जो, एक युनिवर्सिटी में नहीं, किन्तु संसार की युनिवर्सिटी में, कुछ लोगों को नहीं, किन्तु सारे जगत् को सच्चे तत्व का ज्ञान करा दे! और ऐसाही हुआ। रेंगलर का परवाना उन्हें नहीं मिला! इस काम में उनकी अप्रदय हुई; पर निराशा में ही चित्त अन्तर्मुख होता है, अतएव, से आत्मसंशोधन की ओर उनका ध्यान और भी अधिक लगा। उनकी सम्मति थी कि हमारे लोग, दूसरों पर अवलम्बित रहकर उत्तम भोजन चाहे न करें; किन्तु अपने कष्ट से धन प्राप्त करें, सादगी के साथ रहकर, सूखी रूखी रोटी ही का भोजन करें! इसके अनुसार थोड़ासा धनसंग्रह करके उन्होंने अपना रास्ता साफ किया! सन् १८९९ के अन्त में वे नगराज, पिता हिमालय की ओर चलते हुए! इस समय उनकी अवस्था सिर्फ २६।२७ वर्ष ही की थी और उनके दो लड़के तथा एक लड़की थी! एक वर्ष की ही अवधि में हृषीकेश के पास, ब्रह्मपुरी के वन में, स्वामीजी को आत्म दर्शन हुआ! और जो लाहौर के प्रिय शिष्यों का गुरु, धन्ना गुरू का चेला, कालेज के प्रोफेसरों और प्रिन्सिपालों का प्यारा शिष्य इसके पहले प्रोफेसर रामतीर्थ एम० ए० के नाम से प्रसिद्ध था वह आगे चलकर, सिर्फ लाहौर ही में नहीं किन्तु सारे जगतीतल पर स्वामी रामतीर्थ एम० ए० के नाम से सब के सम्मुख उपस्थित हुआ! सब का गुरु बना! सबों ने—क्रिश्चियनों ने, मुसलमानों ने, जापानियों ने—उसे अपना कहा! जिस माता के गर्भ से यह हीरा उत्पन्न हुआ उसकी कुक्षि को धन्य है, धन्य है!

स्वामी होने पर स्वामी रामतीर्थ भारत में बहुत दिन नहीं रहे! सन् १९०२ के आरम्भ में वे सफर के लिए निकले और जाम

…इजिप्त, जापान और अमेरिका आदि देशों में घूमकर उन्होंने …न्त सूर्य के किरण प्रसूत किये ! लोगों में चैतन्य भर दिया ! …र पूज्यपाद स्वामी विवेकानन्द की ही तरह अलौकिक यश …पादन करके अपने नाम का जयजयकार सुनते हुए, सहस्त्रों लोगों … मस्तकों को अपने चरणकमलों की धूल से पावन करते हुए, …गस्त सन् १९०६ में, इस आर्यभूमि को लौट आये । इस प्रवास में …न्होंने ऐसा कुछ अप्रतिम कर्तव्य कर दिखाया कि जिसका वर्णन …रने के लिए एक अलग ग्रन्थ लिखना पड़ेगा ! भारतवर्ष की ओर …न्होंने सारे जगत् का ध्यान आकर्षित किया ! उन्होंने सम्पूर्ण …सार को यह सन्देशा सुना दिया कि:—" भौतिक सुख से तुम …ाहे जितना मतवाले हो जाओ; अहम्मन्यता तुम्हारी चाहे जितनी …ढ़ जाय; पर आर्यराष्ट्र मरा नहीं-और नहीं कभी मरेगा; वह …ीवित है; सारे जगत् को बाट देखता हुआ स्तब्ध है । ध्यान में …क्खो कि हर एक बात में सब से पहले हमीं आगे हैं ! " और …न्होंने पश्चिमी राष्ट्रों के मुख से इस प्रकार के पश्चात्तापपूर्ण वचन …कहला लिये कि " सत्य जगत् ज्ञान का मार्ग भूला हुआ है; क्यों …के इस ज्ञानवृद्धि में आज तक एक भी रामतीर्थ नहीं पैदा हुआ ! " …र, प्रभो ! तेरी महिमा भी अतर्क्य है ! स्वामीजी के स्वदेश में पधा…ने के बाद ही सितम्बर का महीना व्यतीत हुआ और अक्तूबर की पहली आई ! दिशाएं धुंधली देख पड़ने लगीं ! तारागण टूटने लगे ! बिजली कुसमय में चमकने लगी ! आकाश फटने लगा ! तमः संकुलता अधिक घिरने लगी ! घुघ्घुओं का घूत्कार दिन में सुनाई देने लगा ! पन्द्रह सोलह तारीख तक किसी न किसी तरह दिन कटे ! ! सत्रहवीं तारीख आई और देखते क्या हैं कि एक हाथ दूसरे पर रखा हुआ है, दोनों हाथ छाती पर हैं, आसन लगा हुआ है, प्रणव का उच्चार करते समय उनका मुखकमल जैसा सदा रहता था वैसाही इस समय भी है-इस प्रकार, स्वामी ' राम ' के निर्जीव कलेवर का अभद्र दृश्य आर्य-राष्ट्र को निज नेत्रों से देखना पड़ा ! ! पांचाल प्रदेश की भूमि-किंबहुना सम्पूर्ण आर्यमाता-फूट फूट कर रोने लगी ! कैलीफोर्निया चीखकर धरती पर गिर पड़ी ! सैन्फ्रांसिस्को को तार पढ़ते ही मूर्च्छा आगई ! हमोल्ट उद्-रहुड आँसू बहाने लगे ! अमेरिका के अकेडमी आफ सायन्स का भवन भयानक सा भासने लगा ! सारा संसार सिसक सिसककर रोने लगा ! ! इस प्रकार १७ अक्तूबर सन् १९०६ को स्वामी राम का पंचभौतिक शरीर जहां का तहां मिल गया; पर आपकी कीर्ति कौमुदी तब तक इस संसार में अक्षय बनी रहेगी जब तक वेदान्त का नाम ' अमर ' रहेगा !

दिल्ली का इतिहास ।

दिल्ली की स्थापनाः—सारे भारतवर्ष में किंबहुना सारे पृथ्वीतल पर दिल्ली ने जितनी राजकीय क्रान्तियां देखी हैं उतनी शायदही किसी शहर [illegible] …लि… …यंज, …के बाबिलोन, बुगदाद, पर्सेपोलिस, नानकिन, पेकिन, इत्यादि शहर राजकीय दृष्टि से महत्व के हैं । परन्तु इन सब शहरों ने उत्कर्ष और अपकर्ष के सुख-दुःख का अधिक से अधिक एक ही दो बार अनुभव किया है । परन्तु दिल्ली शहर ने ऐसे विपर्यन्तर कितनी बार देखे, इसका पूरा पूरा पता इतिहासकारों को भी नहीं लगता । भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास का जिस काल से लेकर विश्वसनीय ज्ञान उपलब्ध होता है उस काल से लेकर आज पर्यन्त किसी समय भी ऐसा नहीं हुआ कि दिल्ली नगर का वैभव पूर्ण लोप हो गया हो, अथवा आर्यावर्त को उसका पूर्ण विस्मरण हो गया हो । " नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण " के न्याय से भरतखण्ड की इस प्राचीन राजधानी की उन्नत-अवनत-अवस्था बराबर हो ही रही है । सारांश, जिस प्रकार आर्यधर्म आज तक अनेकों प्रकार के संकटों से पार पड़कर ' सनातन ' नाम धारण करके अटल हो रहा है उसी प्रकार यह कहने में भी कोई अतिशयोक्ति नहीं कि दिल्ली नगर भी भरतखण्ड की ' सनातन राजधानी ' है ।

दिल्ली को यह महत्व प्राप्त होने का कारण उसका विशिष्ट स्थल-माहात्म्य ही है । भारत के उत्तर में हिमालय के समान दुर्लंघ्य नगराज, और पूर्व, दक्षिण, तथा पश्चिम की ओर अपार सागर होनेके कारण इस देश पर स्थल-मार्ग से पर-चक्र का आक्रमण होने के लिए सिर्फ एक ही रास्ता है-और मलाबार के किनारे पर पश्चिमी व्यापारियों के जहाज आ लगने के पहले इस देश पर जितने शत्रुओं ने आक्रमण किया थे सभी वायव्य की ओर से खैबर घाटी होकर ही यहां आये । खैबर घाटी पार होकर और पंजाब की पांच नदियां लांघकर आने के बाद फिर यमुना नदी तक सब सपाट प्रदेश है । यहां यमुना के किनारे प्राचीन इन्द्रप्रस्थ अथवा अर्वाचीन दिल्ली नगर बसा है; अतएव उसके उत्तर की ओर पहाड़ी प्रदेश, पूर्व में यमुना नदी, दक्षिण में राजपूताने का बालुकामय प्रान्त है-और हां, पश्चिम की ओर रणभूमि के योग्य सपाट मैदान भी है । भारतरूपी भवन के सदन में प्रवेश करने के लिए पहला द्वार खैबर की घाटी है और लाहौर शहर उसका महाद्वार है । उसके आगे का सपाट प्रदेश राजांगण है, दिल्ली शहर दालान है और पीछे के, अर्थात् पूर्व ओर के, भाग क्रमशः मध्यगृह और भोजनगृह आदि हैं । इस कल्पना पर ध्यान रखने से यह प्रश्न सहज ही हल हो जाता है कि घर के स्वामी की बैठक दिल्ली ही में क्यों है और घर के स्वामित्व के लिए जो लड़ाइयां हुई वे कुरुक्षेत्र ही में क्यों हुईं । इस रीति से यह स्थान सब प्रकार से सभीता का देखकर हमारे प्राचीन आर्य भूपतियों ने इन्द्रप्रस्थ नगरी में ही अपने सिंहासन की स्थापना की ।

पांडवों के समय के पहले बहुत वर्षों तक हस्तिनापुर में राजधानी थी; परन्तु धर्मराज युधिष्ठिर ने जब से इन्द्रप्रस्थ को अपने मयासुर-निर्मित राजभवन और राजसूय यज्ञ की सुन्दरता तथा पवित्रता से पूर्ण किया तबसे हस्तिनापुर फीका पड़ गया । बाद को कुछ काल तक पांडव वनवास में रहे, इस कारण, यद्यपि इन्द्रप्रस्थ की शोभा क्षीण अवश्य हो गई, तथापि भारती युद्ध में दुर्योधन आदि कौरवों का निःपात करके धर्मराज के सिंहास- [illegible] हुआ होगा। [illegible] हस्तिनापुर [illegible] त के समय [illegible] ने अर्जुन ने [illegible] कर इन्द्रप्रस्थ नगरी में उसका राज्याभिषेक करके सौराष्ट्र का राज्य उसे सौंप दिया । इसके बाद इस नगर का स्वामित्व यादववंशियों के हाथ से निकलकर कुरुकुल के हाथ में कब से और किस कारण से गया, इसका पता नहीं लगता । तब से लेकर अर्वाचीन काल तक का इन्द्रप्रस्थ का इतिहास प्रायः लुप्तप्राय हो गया है ।

परन्तु इन्द्रप्रस्थ नगरी को पौराणिक काल में जो महत्व प्राप्त हुआ था वह केवल वहां के बाह्य सौन्दर्य पर से नहीं प्राप्त हुआ था । प्रत्येक आर्य को, ' इन्द्रप्रस्थ ' नाम कान में पड़ते ही, जो अभिमान मालूम होने लगता है उसका कारण यह नहीं है कि वहां मयसभा की अद्भुत कारीगरी का दृश्य था, अथवा इस अभिमान का कारण वहां के राजसूय यज्ञ आदि के समारम्भों का वर्णन भी नहीं है; किन्तु इसका कारण कुछ और ही है। इन्द्रप्रस्थ और उसके आसपास का प्रदेश, आर्यावर्त के अत्यन्त पूज्य युधिष्ठिर, आदि राजर्षियों का निवासस्थान था, और निमित्तमात्र से महायोगी श्रीकृष्ण, नारद-मुनि और भीष्माचार्य, इत्यादि ने यहां उन्हें कर्तव्योपदेश किया । इन्हीं कारणों से इन्द्रप्रस्थ नगरी अद्यापि सब का चित्त आकर्षण कर रही है । इसी स्थल में महायोगेश्वर श्रीकृष्ण-द्वारा प्रतिपादन की हुई गीता मनुष्यमात्र को अपना कर्तव्यकर्म करने के लिए अनंत रीति से प्रोत्साहित कर रही है-और करती रहेगी । नारदमुनि ने ' कच्चित् ' प्रकरण में धर्मराज को जो राजनीति का उपदेश किया है और भीष्मपितामह ने शरपंजर में पड़े हुए निर्याणकाल में जो राजधर्म का उपदेश किया है उसका विस्तारभय से हम यहां सिर्फ उल्लेख मात्र ही करते हैं । इन उपदेशों की योग्यता ऐसी शाश्वत है, कि कोई भी समय हो, राजनैतिक हलचल में पड़नेवाले प्रत्येक पुरुष को उन उपदेशों का पारायण कर लेना चाहिए । प्रजा के हितार्थ राजा का कर्तव्य क्या है, प्रजा का राजा से कैसा बर्ताव होना चाहिए, लक्ष्मी की स्थिरता और चंचलता के होने से कारण हैं, उनके लक्षण क्या हैं, इत्यादि अनेक महत्व के प्रश्नों पर उनमें मार्मिकता के साथ ऊहापोह किया गया है; अतएव राजधर्म का यह एक विमल आदर्श ही बन गया है । इस आदर्श के अनुसार बर्ताव करनेवाले अनेक राजा इसी इन्द्रप्रस्थ के आसपास आज तक हो गये, इसी लिए इस कुरु-क्षेत्र को इतना महत्व और पवित्रता प्राप्त हुई है । परन्तु भरतखण्ड के आज तक के इतिहास पर से स्पष्ट जान पड़ता है कि केवल सत् भूपतियों के निवास के कारण प्राप्त हुई पवित्रता एकदेशीय ही है, उसमें दुष्टों के शासन का मेल मिले बिना मानो वह सर्वांग पूर्ण नहीं होता-यही समझकर, जान पड़ता है कि, ईश्वर ने यह कुरुक्षेत्र-भूमि ' विनाशाय च दुष्कृतां ' बना रखी है । ऋग्वेद के प्रख्यात राजा सुदास ने इन्द्र और वरुण की कृपा से इसी कुरुक्षेत्र में दस बलाढ्य राजाओं को पूर्ण पराजित करके आर्यों का यशोनिरुद्धान निर्वेध किया । महाप्रबल राजा वेन को उसके पाप का प्रायश्चित यहीं मिला । सुन्दोपसुन्द-भाइयों में भुजबल-दर्पित

मराठे राजपूतों का चित्त आकर्षित हुआ; और उन्हें विश्वास हो गया कि दिल्ली-पद प्राप्त हुए बिना यह भी नहीं कहा जा सकता कि हमारी सत्ता की पूर्ण बाढ़ हुई-फिर उस सत्ता की शाश्वतता का तो नाम ही न लो। परन्तु इसके बाद करीब अर्ध शतक तक मराठे अपना रुख दिल्ली की तरफ नहीं झुका सके। औरंगजेब की मृत्यु के बाद दिल्ली में गड़बड़ मची और मराठों को वहां के राजकाज में हाथ डालने का मौका मिला और उन्होंने 'स्वराज्य,' 'चौथाई,' और सरदेशमुखी की 'सनदें' मार लीं। इसके बाद सन् १७३८ ई० में पहले बाजीराव ने, मुसल्मानी सत्ता के मूल पर ही घाव करने का जो मराठों का विचार था, उसका 'श्रीगणेश' कर दिया और उसीको आदर्श मानकर सन् १७६० ई० में सदाशिवराव भाऊ साहब ने दिल्ली का तख्त विध्वंस कर डाला। इसमें कोई शक नहीं कि भाऊ साहब के इस कृत्य का परिणाम बहुतही भयंकर हुआ और उसका प्रायश्चित्त सब महाराष्ट्र को और मराठों की सत्ता को मिला। तथापि मुसल्मानी सत्ता का अन्त करने के लिए राघोबादादा की बिजुली के समान क्षणिक चमकनेवाली विजयी दौड़ जितनी कारणीभूत हुई उसकी अपेक्षा भाऊ साहब का, प्रारम्भ में निष्फल ठहरा हुआ, यह घन ही अधिक कारणीभूत हुआ। क्योंकि राघोबा दादा के दो विजयी हमलों से मुसल्मानों के आधिराज्य की जो जादू तिलभर भी कम नहीं हुई थी वह, दिल्लीपति के सिंहासन पर भाऊ साहब का घन पड़ते ही, चकनाचूर हो गई। अस्तु। भाऊ साहब के पानीपत की लड़ाई में पराजित होने के कारण कुछ दिन तक दिल्ली का स्वामित्व मराठों के हाथ में लेने का काम शिथिल पड़ गया। परन्तु भाऊ साहब की इस चढ़ाई में सदा उनके साथ रहनेवाला एक मराठा वीर (महादजी सेंधिया) आगे बढ़ा और उसने शिवाजी महाराज के मन का विचार, सौ सवा सौ वर्ष बाद, पूर्ण किया। तथापि महादजी सेंधिया ने दिल्ली का जो बन्दोबस्त किया वह कुछ साफ न था, इस कारण नाना फड़नवीस के समान सुचतुर राजनीतिज्ञों को वह पसन्द नहीं आया। पर इस काम के लिए उन्हें महादजी के ही मुख की ओर ताकने के सिवाय और कोई चारा नहीं था, इस कारण अन्त में महादजी की उक्त व्यवस्था उन्हें मंजूर करनी पड़ी। नाना के कहने के अनुसार यह धुँधला सौभाग्य बहुत दिन टिकना असम्भव था; और अन्त में ऐसाही हुआ। सन् १८०३ में दिल्ली अँगरेजों के अधिकार में चली ही गयी।

दिल्ली राजधानी:—यहां तक इस सनातन राजधानी का जो वृत्तान्त दिया उससे हमारे पाठक समझ गये होंगे कि दिल्ली प्रान्त की वास्तुदेवता बहुत कीर्तिप्रिय है। दिल्ली पर अनादिकाल से जो अनर्थ आये और जो रक्त-स्राव हुए उनसे उक्त विचार कितने ही लोगों के मन में आता है। परन्तु यदि वास्तव में देखा जाय तो दिल्ली कुछ नरबलि लेनेवाली भूखी अनिष्ट डाकिनी नहीं है; किन्तु वह केवल मानिनी स्त्री है। संस्कृत-साहित्य-शास्त्र-कारों ने मानिनी स्त्रियों का जो स्वभाव वर्णन किया है वह इसके विषय में ठीक ठीक लगता है। मानी स्त्रियों की यह इच्छा रहती है कि हमारा पति सदैव पराक्रम करता हुआ हमारी दृष्टि पड़े। इस गुण के अभाव की जिन पर उन्हें शंका होती है उनकी वे भयंकर रीति से परीक्षा लेने में भी नहीं चूकतीं। राजपूत स्त्रियां रण में शत्रु को पीठ दिखलाकर लौटे हुए अपने पतियों का मुखावलोकन भी नहीं करती थीं-ऐसाही कुछ हाल इस नगरी का भी है। द्यूत में सर्वस्व खो देनेवाले और अपनी पत्नी की विडम्बना देखनेवाले धर्मराज का भी इसने चौदह वर्ष तक मुखावलोकन नहीं किया। परन्तु जब भारतीय युद्ध में शत्रु-पक्ष की अक्षौहिणियों का नाश करके पांडव घोर विजयी हुए तब इस नगरी ने उनका स्वागत किया। पृथ्वीराज पर पहले इसकी बड़ी प्रीति थी। पर विषयसुख में डूब जाने के कारण जब प्रजापालन में उनका ध्यान कम हो गया तब इसने पृथ्वीराज को भी अलग कर दिया। अफगान बादशाहों में से एक भी इसकी परीक्षा में पास नहीं हुआ, इसी कारण किसी घराने की सत्ता यहां स्थिर नहीं रही। तैमूरलंग ने उसके लड़के-बच्चों को कतल करके उसे भयभीत कर देने का प्रयत्न किया; पर इसने उसकी भी दाल नहीं गलने दी। अन्त में मुगल खान्दान के पराक्रमी पुरुष बाबर ने इसका पाणिग्रहण किया। उसने फतेहपुर सीकरी की लड़ाई में पराक्रम दिखलाया और यह शपथ की कि अब से मद्य का स्पर्श भी न करूंगा। इस प्रकार अपनी शूरता और आत्मसंयमन आदि गुण प्रकट करके उसका प्रेम सम्पादन किया। इसके बाद उसका दुर्बल लड़का हुमायूं कन्नौज की लड़ाई में शेरशाह से हार कर लौट आया। इस कारण दिल्ली-दुलहिन ने उसे निकाल दिया और पन्द्रह वर्ष तक उसका मुखावलोकन नहीं किया। हां, अकबर बादशाह के अनेक गुणों पर लुब्ध होकर उसने करीब आधे शतक तक, सुखसमाधान से उसका सहवास किया। जहांगीर की वृत्ति में आलस्य और सुखलोलुपता देख पड़ते ही उसने उसे अलग कर दिया। शाहजहां बादशाह अपने पूर्ववय में अपूर्व पराक्रमी था, इस लिए उस पर उसकी कृपा थी, और शाहजहां ने भी उसे अच्छी तरह अलंकारों से भूषित किया। परन्तु केवल दिखाऊ बाहरी तड़क-भड़क से उसका मन सन्तुष्ट नहीं हो सकता था, इस कारण शाहजहां को अपने वीर्यलोप का प्रायश्चित्त मिला। औरंगजेब में कुछ अच्छे गुण अवश्य थे, किन्तु राजपूतों से युद्ध में हार कर ज्यों ही वह लौटा त्यों ही दिल्ली-रमणी ने अपने स्वभाव के अनुसार, कठिन रीति से परीक्षा लेने के लिए उसे दक्षिण को रवाना कर दिया। वहां धनाजी और संताजी आदि मावलों ने ही औरंगजेब को खूब छकाया। यह देखते ही, उसका पुनर्दर्शन तो दूर ही रहा, किन्तु दिल्ली ने उसे नर्मदा पार होकर आर्यावर्त में (अपने घर के आंगन में) भी नहीं धँसने दिया। इस प्रकार मुसल्मानी बादशाहों की परीक्षा हो चुकने पर उसने मराठों की ओर दृष्टि फेरी। शूरवीर प्रथम बाजीराव यदि और कुछ दिन जीते रहते तो इस रमणी ने उनके गले में जयमाला डाल दी होती। परन्तु उनकी अकस्मात् मृत्यु के कारण यह योग ही नहीं आया। इसके बाद बाजीराव के भतीजे ने उसके साथ विवाह करने का प्रण किया। परन्तु पानीपत के घनघोर संग्राम में वह निखट्टू ठहरा। अन्त में महादजी सेंधिया के गले में उसने माला पहनाई। पर महादजी पेशवाओं के अधीन थे, और पेशवे सितारे के राजाओं के अधीन थे, इस कारण उसे ऐसा दूर का दासीपन पसन्द नहीं आया और उसने मराठों का नाम ही छोड़कर अन्त में अँगरेजों का आश्रय लिया। तथापि, अपने सदैव के प्रण के अनुसार, उसने निश्चय किया कि इन की भी परीक्षा लिये बिना स्वामित्व स्वीकार नहीं करूंगी। अफगानिस्तान से कच्ची खा जाने के कारण और रामनगर तथा चिलियानवाला की युद्ध-वार्ताओं से इनके पराक्रम के विषय में भी उसका मन सन्देहित हुआ, और इस लिए उसने स्वयं ही इनकी एक बार कठिन परीक्षा लेने का निश्चय किया। इस परीक्षा का जलसा ८ जून सन् १८५७ ई० से लेकर २० सितम्बर तक स्वयं दिल्ली ही के किले में हुआ। उसमें बृटिश सैन्य के उत्तीर्ण होते ही सब शंकाओं का निरसन हो गया और इस सनातन राजधानी ने अँगरेजों की प्रभुता स्वीकार की। पर इनका ध्यान दिल्ली को छोड़कर अन्य स्थानों ही की ओर अधिक रहा। सिर्फ कहने भर के लिए, किसी तड़क-भड़क-दार जलसे के समय में ही उन्हें इसकी याद आती रही। जान पड़ता है कि यह बात इसे पसन्द नहीं थी, इसी लिए अन्त में इस मानिनी ने महाराज जार्ज के द्वारा १२ दिसम्बर १९११ को अपने विषय का अनन्य प्रेम प्रकट करवाया।

दिल्ली के वैभव और यहां के पराक्रमी राजाओं की यह पूर्व परम्परा हमने पाठकों से निवेदन कर दी। यह बात सब विद्वज्जन मानते हैं कि इतिहास, पूर्वों के अनुभव से पिछलों को चातुर्य सिखाने का, उत्तम साधन है। इस लिए प्रत्येक बात की सिद्धि के लिए उसकी पूर्वपरम्परा का ज्ञान लेना आवश्यक है। अस्तु। यह दिल्ली [illegible] सब भारतवासियों का आनन्दित करता। अब, अन्त में, हम, उस परम पिता परमात्मा से यह प्रार्थना करते हैं, कि वह महाराज को ऐसा करने के लिए सुविचार दे और उन्हें सदा आरोग्य रखकर चिरायु करे।

महाराज श्री-श्रीनिवासप्रसादसिंह।

काशी और पटने के बीच एक महा प्रदेश "भोजपुर" है। यह प्रदेश बिहार में है। शाहाबाद ज़िले में बक्सर से चार कोस पूर्व भोजपुर नामके दो नगर हैं। एक "पुराना भोजपुर" दूसरा "नया भोजपुर"। इन दोनों में केवल आधे कोस का अन्तर है। यद्यपि इन दोनों की अवस्था अब अच्छी नहीं है और ये नगर कहलाने योग्य भी अब नहीं हैं तथापि यहाँके ऊंचे ऊंचे राज-भवनों के खंडहर उनकी प्राचीनता तथा महत्ताका परिचय आज भी दे रहे हैं। इन्हीं दोनों नगरों में क्रमशः भोजपुरेश महाराजों की राजधानी थी। इसी कारण इनका समस्त प्रान्त ही "भोजपुर" नाम से प्रसिद्ध हो गया। डेढ़ सौ वर्षों से उक्त महाराजों की राजधानी "डुमरांव" है। यह नगर भोजपुर से एक कोस दक्खिन है। यहां दो सुहावने वन, अगणित अत्युत्तम पुष्पवाटिकाएँ, अनेक देवमंदिर, बहुतसे जलाशय, एक पहाड़ी छोटी नदी, एक बहुत बड़ा हासपिताल, एक हाई इंग्लिश स्कूल, एक लाइब्रेरी, एक सदाव्रत, और दो धर्म शालाएं राजकीय हैं। नागरिक लोगों के भी उच्च भवन, पुष्पवाटिका, पाठशाला, देवमंदिर, जलाशय आदि अनेक वस्तुएँ देखने के योग्य हैं। डुमरांव नगर छोटा है पर बहुत सुहावना है।

यहां के महाराज विक्रमादित्य के वंशधर हैं और उज्जैन (उज्जयिनी) नगर से आये हैं इस लिए ये लोग 'उज्जैन' कहलाते हैं। उक्त वीर विक्रमादित्य परमार थे, ये लोग भी परमार (पम्मार) कहे जाते हैं। धारा नगरी के ऐतिहासिक प्रसिद्ध "भोजदेव" इनके पूर्व पुरुष थे। इन लोगों ने उनकी भक्ति से आल्हादित होकर उनके स्मारक, स्वरूप भोजपुर नगर बसाया। ये लोग "भोजराज" भी कहलाते हैं।

डुमरांव के अन्तिम राज्याधिकारी महाराज सर राधाप्रसादसिंह के. सी. आई. ई. थे। उनने बड़ी योग्यता के साथ प्रजा का पालन और गवर्नमेन्ट को प्रसन्न किया। महाराज की दो महारानियां थीं। पहली, महाराज बढ़हर (जिला मिर्ज़ापुर) की पुत्री, तथा दूसरी जिला बलिया बांसडीह ग्राम के परमप्रतिष्ठित रईसकी पुत्री थीं। पहली महारानी को कोई सन्तति न हुई। उनका देहान्त मध्यावस्था में हो गया। दूसरी महारानी श्री "बेणीप्रसाद कुमारी" जी की दो पुत्रियां थीं। प्रथम पुत्री का विवाह मांडा के महाराज श्री रामप्रतापसिंहजी के साथ हुआ। द्वितीय पुत्री का विवाह रीवां के वर्तमान महाराज बान्धवेश हिज़हाइनेस रामानुजप्रसादसिंहजी के साथ हुआ।

महाराज श्री श्रीनिवासप्रसादसिंहजी।

सन् १८९४ ई. में महाराज राधाप्रसादसिंह का देहान्त होगया महाराज के लिखे हुए "विल" के अनुसार डुमरांव की राजगद्दी, महाराज की द्वितीय धर्मपत्नी "बेणीप्रसाद कुमारी" जी को मिली महारानी ने बड़ी उत्तमता के साथ १४ वर्ष राज्य किया।

महाराज अपने "विल" में महारानी को "दत्तक पुत्र" लेने का अधिकार दे गये थे। विल में लिखा था—डुमरांव, भोजपुर और जगदीशपुर ये तीनों राजकुल अत्यन्त समीपीय, तथा आत्मीय हैं। इस कारण महारानी इन राजकुलों में जिसको सुयोग्य समझें "दत्तक पुत्र" बनाकर राज्य दे दें। विल के अनुसार सन् १९०७ ई० ता० दिसम्बर को महारानी ने जगदीशपुर परम प्रतिष्ठित रईस महाराज भागिरथीप्रसादसिंहजी के पौत्र, कुमार बाबू गयाप्रसादसिंहजी के और महाराज कुमार बाबू सिंह (दादूजी) जी के लघुभ्राता जीवी बाबू जंगबहादुर सिंह को, गवर्नमेन्ट की आज्ञा लेकर, गवर्नमेन्ट चारी—शाहाबाद के जज, बक्सर के स्ट्रेट, आरा के पुलिस सुपरिन्टेंडेंट, स्वकीय अनेक सम्बन्धी, म० कु० बाबू रघुवीरप्रसादसिंह आदि, एवं अपने प्रधान कर्मचारी बाबू शिवशरणलाल बी. ए. बी. एल. के सामने वेद विहित विधि से "दत्तक पुत्र" बनाया (गोद लिया)। और नवीन "श्रीनिवासप्रसादसिंह" रक्खा।

महारानी के स्वर्गवास होने के "कोर्टआफ वार्ड्स" के अधीन हो गया। वर्तमान महाराज के गार्डियन म० गयाप्रसादसिंहजी और स्वास्थ्य भूतपूर्व सिविल सर्जन, श्रीयुक्त बाबू बिहारी शुमजी नियत किये गये।

महाराज श्रीनिवासप्रसादसिंह जी आज कल सजधज के साथ रांची में विराज रहे हैं। आपकी अवस्था इस आठ वर्ष की है। इस छोटी अवस्था में भी आप कभी कभी ऐसी बातें कह देते हैं जिनसे पूर्व जन्म के शुभ संस्कार का अनुमान होता है। अभी आपकी हिन्दी और अंग्रेज़ी की प्रारम्भिक शिक्षा हो रही है। आशा है कि ब्रिटिशगवर्नमेन्ट के उत्तम निरीक्षण में वयस्क होने पर आदर्श महाराज होंगे। जगदीश्वर से मेरी प्रार्थना है कि उक्त महाराज चिरंजीवी होकर भोजपुर की प्रजाओं का पालन करें।

[illegible] मिश्र

. के शिखर पर पहुंचे हुए यूरपखंड के अत्यंत प्रसिद्ध और वैभवशाली इंग्लैण्ड . राजा (और हिंदुस्थान के बादशाह) पंचम जार्ज का दैनिक कार्यक्रम किस प्रकार का है—वे प्रति-दिन कौन कौन काम किया करते हैं, उनका निजी बर्ताव कैसा है और उनके निजी कामों का प्रबंध किस भांति होता है। इस विषय में स्वयं बादशाह की सम्मति से हाल ही में एक लेख प्रकाशित हुआ है, उसीके आधार से नीचे लिखी कुछ बातें हम प्रकाशित करते हैं।

लॉर्ड स्टैंफोर्डम।
(बादशाह के अत्यन्त विश्वासपात्र निजी कारबारी।)

पंचम जार्ज का 'कोर्ट'।

बादशाह पंचम जार्ज के कोर्ट के, सरकारी तौर पर, तीन विभाग किये गये हैं। इन विभागों का प्रबंध लार्ड स्टुअर्ड, लार्ड चेम्बर्लेन, और मास्टर आफ़ दि हार्स नाम के तीन अधिकारियों के हाथ में है। यथार्थ रीति से देखा जाय तो खुद बादशाह के निजी ... के प्रबंध का एक निराला ही . हो सकता है; परंतु सरकारी तौर पर .. नहीं किया जाता। इस चौथे विभाग . अधिकारी बादशाह के प्राइवेट सेक्रेटरी . । सम्प्रति अर्ल आफ़ चेस्टरफ़ील्ड . स्टुअर्ड' का काम करते हैं, अर्ल . 'लार्ड चेम्बर्लेन' का काम और अर्ल . . 'मास्टर आफ़ दि हार्स' का .म करते हैं। सर आर्थर बिग्गे को 'लार्ड .' कहते हैं—यही बादशाह के प्राइ.ट सेक्रेटरी हैं। बादशाह के 'कोर्ट' के . तीनों विभागों के अफ़सर सरकारी .र पर नियत किये जाते हैं। इन पदों . बड़े बड़े लोगों में से ही कोई पुरुष .यत किया जाता है। जब कभी बादशाह .ई सरकारी आज्ञा देना चाहते हैं तब . 'लार्ड चेम्बर्लेन' के हस्ताक्षर से प्रका.न की जाती है। कभी कभी ऐसे हुकम .अर्ल मार्शल आफ़ इंग्लैण्ड' (जो कोर्ट . कोई अफ़सर नहीं हैं) के हस्ताक्षर से भी . किये जाते हैं। जब कभी बादशाह . अपना संदेशा लोगों को भेजना चाहते . या जब कभी वे किसी मामले में निजी तौर पर कुछ उत्तर देना चाहते हैं, तब उसका मसौदा 'प्राइवेट सेक्रेटरी' द्वारा तैयार किया जाता है और बादशाह की सम्मति मिलने पर वह बाहर भेजा जाता है। उदाहरणार्थ दरबार, लेवी, बाल वगैरह जिसों के हुकम, लंदन के सेंट जेम्स नामक राजमहल से 'लार्ड चेम्बर्लेन' के आफ़िस से, जारी होते हैं; और निजी तौर पर चिट्ठियां लिखने, वहां भोजन .. के लिए . जाने, दिवान के अन्दर [illegible] आने जाने का निमंत्रण .. आदि का प्रबंध प्राइवेट सेक्रेटरी द्वारा किया जाता है। 'कोर्ट' संबंधी .. सब प्रबंध प्राइवेट सेक्रेटरी ही के द्वारा हुआ करता है।

अर्ल स्पेन्सर (लार्ड चेम्बर्लेन।)

बादशाह का आफ़िस।

यह आफ़िस लंडन में बकिंगहाम नामक राजमहल की पहली अटारी पर है। इसके सामने एक मनोहर बाग है। आफ़िस का कमरा बहुत बड़ा, हवादार, प्रकाशमय, स्वच्छ और सुंदर है। बादशाह के लिखने का टेबल यहां रखा रहता है। इसके दूसरी ओर के कमरे में लार्ड स्टैंफोर्डम के लिए एक डेस्क रखा रहता है। बादशाह के असिस्टन्ट सेक्रेटरी और इस विभाग के अन्य अफ़सर भी यहीं रहते हैं। काम पड़ने पर ये लोग बादशाह के पास बुला लिये जाते हैं।

बादशाह की डाक।

यह लिखने की आवश्यकता नहीं कि बादशाह की डाक बहुत बड़ी रहती है। निजी और सार्वजनिक चिट्ठियां, समाचारपत्र, पुस्तकें आदि, लंडन के पोस्ट आफ़िस से, एक निराली थैली करके वाला वाला बादशाह के पास . जाती हैं। जब बादशाह बकिंगहाम-म. रहते हैं तब उनके डाक की थैलियां, काल के भोजन के समय, वहां जा प. हैं। थैली खोलकर बादशाह स्वयं सब देख लेते हैं; किसी पत्र पर कुछ लि. देते हैं; अत्यंत महत्त्व के पत्रों का . उसी समय दिया जाता है; और जिन का उत्तर वे स्वयं कुछ विचार कर. बाद देना चाहते हैं उन्हें अपने बक्स . कर देते हैं। अन्य बचे हुए पत्र वे . सेक्रेटरी को दे देते हैं। बादशाह प्रात. बहुत जल्द उठते हैं। सबसे पहले वे . के उत्तर लिखते हैं। इसके बाद स. भोजन का समय होता है और इसी . बादशाह के डाक की दूसरी बड़ी थैली पहुंचती है। इस थैली को उनके प्रा. सेक्रेटरी खोलकर सब पत्र बाहर नि. और भिन्न भिन्न विषयों के पत्रों को . भिन्न थैलियों में बंद करते हैं। उदाहर. सार्वजनिक कार्य संबंधी निमंत्रण पत्र, . संस्था के लिये द्रव्य की सहायता मांगने . पत्र, निजी पत्र, हाउस आफ़ कामन्स . हाउस आफ़ लार्ड्स के सरकारी रिपोर्ट वगैरह सब अलग अलग छांटकर उनमेंसे जो अत्यंत महत्त्व के होते हैं वे अलग अलग थैली में बंद कर दिये जाते हैं। इसी तरह अन्यान्य देशों के राजाओं के पत्र, भिन्न भिन्न स्थानों के गवर्नरों के भेजे हुए रिपोर्ट, मंत्रियों के पत्र आदि सब छांटकर दूसरी संदूक में बंद किये जाते हैं। इस संदूक पर एक छेद है जिसमें बाहर से पत्र आदि डाल दिये जा सकते हैं, परंतु ताला खोले बिना संदूक के भीतर .. बाहर नहीं निकल सकते। इस संदूक की एक कुंजी स्वयं बादशाह .., दूसरी कुंजी लार्ड चेम्बर्लेन के पास और तीसरी कुंजी प्राइवेट सेक्रेटरी ..

मिस्टर आस्किथ—प्रधान मंत्री और उनके कुटुम्बी जन।
(खड़े होनेवालों की लाइन—दाहिनी ओर से बाईं तरफ़—१ मिसेस आस्किथ; २ मिस्टर आस्किथ, ३ मि. मॅकलासन।
बैठनेवालों की लाइन—बाईं ओर से दाहिनी ओर—१ मास्टर अन्थोनी आस्किथ कनिष्ठ पुत्र; २ मिसेस आस्किथ की बड़ी बहन।)

अर्ल आफ़ चेस्टरफ़ील्ड।
(बादशाह के बड़े कारबारी।)

अर्ल आफ़ मेनार्ड
(बादशाह के मुख्य अधिकारी।)

प्लॉरेंडम के पास है। चुने हुए ये सब पत्र और दिन भर बादशाह को जो करना है उसका संक्षिप्त ब्योरा एक कागज़ पर लिखकर बादशाह को सौंप दिया जाता है। बहुतेरे पत्रों के उत्तर बादशाह स्वयं अपने हाथ से लिखते हैं; कुछ पत्रों के उत्तर वे अपने मुख से कहते जाते हैं और कोई सेक्रेटरी उन्हें लिखता जाता है। बादशाह पंचम जार्ज पत्र लिखने या लिखवाने में कुछ धीमी चाल के मालूम होते हैं। अमुक शब्द लिखा जाय या न लिखा जाय, अमुक तौर पर लिखें या न लिखें, अमुक बात का उल्लेख करें या न करें—इन्हीं बातों का वे बहुत समय तक विचार करते रहते हैं। इस कारण पत्र व्यवहार में उनका बहुत समय व्यतीत हो जाता

सर डब्लू कैरिंगटन।
[बादशाह की निजी मिल्कियत के अफसर।]

। प्रत्येक शब्द के अर्थ पर और इसके [पढ़]नेवाले के मन पर होनेवाले परिणाम [पर] वे बहुत सोचा करते हैं। इस तरह [ख]ूब सोच समझकर शब्दों का उपयोग [क]रने की उनकी आदत है। जो लोग [इ]स बात पर ध्यान नहीं देते कि हमारे [शब्]दों का, सुननेवाले या पढ़नेवाले पर, [क्]या परिणाम होगा उन्हें हमारे बादशाह [क]ी इस आदत से कुछ शिक्षा ग्रहण [क]रना चाहिये। कहा भी है कि "बिना [वि]चारे जो करे (या कहे) सो पाछे [प]छताय।" अस्तु; बादशाह के लिखे [हु]ए पत्र या उनकी नकलें हिफ़ाज़त से [स]ंदूक में रख दी जाती हैं। कुछ दिनों [के] बाद ये पत्र विंडसर महल के निजी [आ]फ़िस में संग्रहार्थ भेज दिये जाते हैं। [प]त्र लिखने और लिखवाने का काम हो [ज]ाने पर बादशाह पहले दिन के

पार्लमेंट के कामों की रिपोर्ट।

पढ़ते हैं। जब वे किसी एक विषय के संबंध में कुछ विशेष हाल जानना चाहते हैं तब उसका पूरा ब्योरा तुरंत ही मंगवा लेते हैं, या जब कभी वे अपने प्रधान मंत्री या 'फ़ारेन मिनिस्टर' से किसी बात की सलाह करना चाहते हैं तब

बादशाह एक प्राचीन सुन्दर रथ में बैठकर जाया करते थे। इस रथ में घोड़े लगाए जाते थे। परंतु अब इस रथ का उपयोग बहुत कम होता है। वह सरकारी रथ गृह से हटाकर गाड़ियां दुरुस्त करने के कारखाने में रख दिया गया है। महारानी मेरी जब किसी उपवन में हवा खाने को जाती है या 'वेस्ट-एन्ड' की ओर कुछ सामान खरीदने जाती है तब उनकी गाड़ी में घोड़े ही लगाए जाते हैं। स्वयं बादशाह हर दिन घोड़े पर बैठकर हवा खाने जाया करते हैं। कुछ घोड़े अफ़सरों के लिए भी रखे गये हैं। बादशाह अपने

आयव्यय की जांच

बहुत सावधानी से किया करते हैं।

सर चार्लस फ्रेडरिक।
(घरेलू काम काज के अधिकारी।)

वे बादशाही कुटुंब के विवक्षित भाग के आयव्यय की जांच हर महीने एक बार अवश्य किया करते हैं। अपने कुटुंब की सारी बातों पर वे बहुत सूक्ष्म रीति से ध्यान दिया करते हैं। इस बात पर उनका विशेष कटाक्ष रहता है कि तरुण 'प्रिंस ऑफ़ वेल्स' बादशाही मिल्कियत और आयव्यय के संबंध में सारी बातों से परिचित हो जायँ।

मंत्री आदि लोगों से मिलना।

ऊपर लिख आए हैं कि बादशाह सबेरे बहुत जल्द उठते हैं। दो पहर होने के पहले ही वे अपना सब काम काज पूरा कर डालते हैं। दो पहर को वे अपने मंत्रियों से या विदेशी वकीलों से मिलते हैं। उस समय जो सेक्रेटरी उपस्थित रहता है वह मुलाक़ात की सब बातें लिख लेता है, यदि कोई सेक्रेटरी न हो तो स्वयं बादशाह अपने हाथ से संपूर्ण बात चीत का सारांश लिख रखते हैं। इसकी नकल बादशाह के निजी दफ़्तर में रख दी जाती है। वे इस बात पर सदा ध्यान दिया करते हैं कि इंग्लैंड के साथ विदेशों का संबंध किस तरह है।

बादशाह और उनका कुटुम्ब।

किंग जार्ज घोड़ेपर बैठकर हवा खाने जा रहे हैं।

तुरंत ही यह प्रबंध हो जाता है कि अमुक स्थान में अमुक समय पर वे लोग उपस्थित हों। इस काम में [illegible] लिखित उन्हें पसंद नहीं होती। जब दुनिया के किसी भाग में कुछ झगड़ा या लड़ाई होने की खबर मिलती है तब वे उस भाग का एक बड़ा नक्शा [illegible] ऐसे स्थान में रख देते हैं जहां वे उसे हरदम जब चाहें तब देख सकें। बादशाह को

घोड़ों का शौक

भी बहुत है। [illegible] में उनकी निजी घुड़साल है। [illegible] वे [illegible] एक [illegible] सवारी [illegible] करते हैं। घुड़साल के [illegible] [illegible] है। इसके [illegible] हुए [illegible] उनमें से बहुत से [illegible] भी [illegible] है। [illegible] देख [illegible] के

तीसरे पहर का भोजन करने के बाद वे कुछ समय तक आराम करते हैं और कुछ समय अपनी रानी, कन्या, पुत्र आदि के समागम में व्यतीत करते हैं। प्रति दिन [illegible] बजे तक तो वे अपने पुत्र और कन्या के साथ [illegible] करते हैं। उस समय वे [illegible] के बारे में [illegible] करते हैं। दो पहर के बाद [illegible] बादशाह [illegible] 'अरुश' [illegible] है— [illegible] तरह अपने [illegible] [illegible] करते हैं। [illegible] [illegible] है। [illegible]

विसकाउंट नोलिस।
(बादशाह के प्राइवेट सेक्रेटरी।)

कर्नल सर [illegible]।
([illegible])

ही रहते हैं। कभी कभी बादशाह उस कमरे में जाते जहां अनेक चित्र टंगे हुए हैं और अद्भुत पदार्थों का संग्रह किया गया है। यहां जाकर कुछ समय तक वे अपना मनरंजन करते हैं। जो लोग सरकारी तौर पर मिलने आते हैं उनसे बादशाह आफ़िस ही में मिलते हैं, परंतु जब उनके मित्र गण आते हैं तब वे अपने निजी कमरे में उनसे बातचीत करते बैठे रहते हैं। जार्ज बादशाह अपने पिता की नाईं चुरुट बहुत नहीं पीते। कहते हैं कि इसका कारण यह है कि महारानी को तंबाकू की बास नहीं सुहाती। बादशाह दोपहर को कभी चाय नहीं लेते। तीसरे पहर का भोजन हो जाने पर रात्रि के भोजन समय तक बीच में वे कुछ खाते भी नहीं। रात्रि का भोजन प्रायः आठ बजे हुआ करता है। जब कभी बादशाह नाटक का खेल देखने जाते हैं तब भोजन एक घंटे पहले ही हो जाता है। प्रिंस आफ़ वेल्स की अवस्था में वे पार्लिमेंट में नित्य जाते और वहां दिल लगाकर सब बातें सुनते थे। परंतु अब 'राजा' होने के कारण वे ऐसा नहीं कर सकते। अब सिर्फ पार्लिमेन्ट के रिपोर्ट और दैनिक समाचार पत्रों के लेख पढ़कर ही वे सब हाल जान लिया करते हैं। सायंकाल का एक घंटा अपने देश की दशा संबंधी बातें सुनने में व्यतीत किया जाता है। और फिर रात को उन बातों पर खूब विचार किया जाता है। रात्रि के सब काम पूरा करके वे मध्य रात्रि के पहले अपने शयन-गृह में जाते हैं।

पंचम जार्ज।

(इंग्लैन्ड में इनके बराबरी का निशानेबाज दूसरा नहीं है। आप फुरसत के समय हाथ में बंदूक लेकर जंगल में सदा घूमते रहते हैं।)

बादशाही मर्जी।

इंग्लैन्ड की बाकायदा राज्यपद्धति के अनुसार बादशाह सब काम काज किया करते हैं। अपने मंत्रियों की बातें ध्यानपूर्वक वे सुन लिया करते हैं। जब उन्हें कोई प्रस्ताव करना होता है तब वे उसकी सूचना अपने मंत्रियों को देते हैं और उस विषय पर उनके साथ चर्चा करते हैं। यदि उनके विचार मंत्रियों को पसंद नहीं होते तो वे कभी आग्रह नहीं करते। यद्यपि वे जानते थे कि ट्रिपोली में युद्ध क्यों और कैसे हुआ और यद्यपि उन्हें इस बात पर बहुत आश्चर्य मालूम हुआ कि इटली ने एकदम युद्ध आरंभ कर दिया; तो भी उन्होंने कहा कि 'यह हमारा निजी मत है—ऐसा न समझना चाहिये कि यह सरकारी मत है।' वे इस बात को बिल्कुल पसंद नहीं करते कि हर बात में "बादशाही मर्ज़ी" का दखल बना रहे। अपने निजी कारबार में वे दुराग्रही नहीं हैं। इस पर से यह न समझना चाहिये कि यदि कोई उनकी आज्ञा उल्लंघन करे तो वे चुप रह जाते हैं—कुछ करते नहीं। इन्हीं बात है कि बादशाह ने अपने एक अफ़सर से कुछ लिखने को कहा और जो बातें लिखने की थीं वे सब अच्छी तरह समझा दी गईं; परंतु उस आदमी ने समय बचाने . . . ही मन से उस लेख . . . कुछ 'सुधार' . . . दल-बदल कर लिया। . . . शाह ने देखा कि यह हमारी आज्ञा के . . . नहीं लिखा गया है . . . उन्होंने वह कागज़ . . . रद्दी की टोकरी में . . . दिया और बड़ी . . . से कहा "मिस्टर, . . . कोई हर्ज न हो तो . . . काम अब हमारी इच्छा अनुसार कर लिया जावे।" नियत समय पर . . . शीघ्रता से सब . . . करना बादशाह बहुत पसंद है। जब . . . आदमी अपने काम . . . ढीलापन, 'बेपरवाही' . . . टालमटोल करता है . . . उन्हें यह बात बिल्कुल अच्छी नहीं लगती।

(बादशाह को घुड़दौड़ का भी बहुत शौक है। आप न्यूबरी और वालेन्स की घुड़दौड़ देखने जा रहे हैं।)

बादशाह और विदेशी राज्य।

रशिया के ज़ार, जर्मनी के कैसर, इटली, स्पेन, ग्रीस और नार्वे के राजा तथा अन्य देशों के राजा लोगों के साथ बादशाह का पत्रव्यवहार बहुत है। उन्हें यह जानने की बहुत इच्छा होती है कि सुधरे हुए राज्य देशों में विशेषतः जिनका इंग्लैन्ड से संबंध है उन देशों में—क्या क्या हो रहा है। साम्राज्य के विषय में वे सदा ही कुछ न कुछ बातें अपने सेक्रेटरी से पूछा करते हैं। वे शीघ्र ही विदेश यात्रा के लिए जानेवाले हैं।

वर्ष २] माघ और फाल्गुन सम्वत् १९६८ विक्रमी—फरवरी और मार्च सन् १९१२ ईसवी । [अंक २—३

रामकृष्णवाक्सुधा ।

बिन्दु ७

दूसरे दिन छुट्टी थी, इस लिए एम् तीन बजे दर्शन करने आया। हाराज अपने कमरे में बैठे थे। जमीन पर बैठनेवालों के लिए टाई पड़ी थी। नरेन्द्र, भवनाथ और दो शिष्य वहां बैठे थे। वे ब तरुण, उन्नीस बीस वर्ष की आयु के थे। पहिले ही की तरह हाराज के मुख पर मंद हास्य देख पड़ रहा था। वे पलंग पर बैठ-र उन युवकों से कुछ बातें कर रहे थे। इतने ही में एम् ने कमरे ः भीतर प्रवेश किया। उसको देखते ही महाराज खूब खिलखिला-र हँसने लगे। हँसते हँसते ही उन्होंने जोर से कहा, 'देखो, ह फिर आया!' उनके साथ वे युवक भी हँस रहे थे।

एम् ने महाराज के चरणों पर दंडवत प्रणाम किया। इसके पहले ह, अंग्रेजी शिक्षा पाए हुए युवकों की पद्धति के अनुसार, सिर्फ हे खड़े दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार किया करता था। परंतु अब सको मालूम हो गया है कि महाराज के चरणों का वंदन किस रह करना चाहिये। नमस्कार करने के बाद वह एक ओर जाकर पने स्थान पर बैठ गया। महाराज, नरेन्द्रादि शिष्यों से, अपने सने का कारण बताने लगे। उन्होंने कहाः—

"एक समय की बात है कि, किसी आदमी ने एक मोर को ठीक ार बजे अफीम की गोली खाने को दी। इसका नतीजा यह हुआ क, दूसरे दिन ठीक चार बजे वह मोर फिर अफीम की गोली खाने को उस आदमी के पास आ पहुंचा!" (सब लोग हंसने लगे)।

यह सुनकर एम् अपने मन ही में कहने लगा— महाराज का कथन बहुत सत्य है। मैंने इनके समान लोकोत्तर पुरुष कोई देखा नहीं। जब मैं यहां से उठकर घर जाता हूं तब मेरा सारा मन इस दिव्य पुरुष के चरणों ही की ओर लगा रहता है। 'महाराज का दर्शन फिर कब होगा?'— यही एक विचार रात दिन मन में बना रहता है। जान पड़ता है कि मुझे यहां कोई जबरदस्ती से खींच-कर ले आता है। अब यह स्थान छोड़कर दूसरी जगह जाने की कल्पना तक मेरे मन में नहीं आती।

इस प्रकार मन में विचार करते करते एम् महाराज की ओर टकटकी लगाए देख रहा था। उधर महाराज तो उन युवकों के साथ हँसी दिल्लगी करने में लगे थे। हँसते हँसते सब लोग लोटपोट हो रहे थे! ऐसा मालूम होता था कि महाराज उन युवकों को सम-वयस्क साथी ही समझ रहे हैं। हँसी हँसी में अनेक प्रकार के विनोद की बातें भी हो रही थीं।

इस अद्भुत व्यक्ति को देखकर—महाराज का यह विलक्षण बर्ताव देखकर—एम् को बहुत आश्चर्य हुआ। उसके मन में ये विचार आने लगे—क्या ये वही पुरुष हैं, जो कल समाधिसुख में निमग्न थे और जिन्होंने अपूर्व भक्तिरस हम लोगों को चखाया था? क्या ये वही पुरुष हैं, जिन्होंने पहले दिन मेरे विचार करने पर टीका की थी? क्या ईश्वर को साकार और निराकार कहने-वाले यही महात्मा हैं? क्या ये वही पुरुष हैं जो कहा करते हैं कि केवल एक ईश्वर सत्य है, शेष सब असत्य—क्षणिक—हैं? 'जिस प्रकार दासी—नौकरानी—हमारा काम करती है, काम तो करती है सही पर उसका सब ध्यान लगा रहता है अपने घर की ओर, उसी प्रकार अनासक्त बुद्धि से निरंतर स्वगृह की ओर, अपनी माता, जगन्माता की ओर, सच्चिदानंद पद की ओर ध्यान लगाकर तुम सब काम करते रहो,'—यह उपदेश उस दिन जिसने किया, क्या यह वही पुरुष है?

ये सब बातें हो रही थीं और महाराज कभी कभी एम् की ओर देख लिया करते थे। एम् चुपचाप बैठा था, जैसे कोई पत्थर का पुतला हो! न तो मुख से शब्द निकलता था, और न शरीर में कोई हलचल देख पड़ती थी! उसकी आंखें भर महाराज के तेजस्वी और मोहक चेहरे की ओर लगी हुई थीं।

महाराज ने रामलाल से कहा, "यह आदमी (एम्) इन युवकों से उमर में कुछ बड़ा है, इस लिए वह इतना गंभीर देख पड़ता है। देखो न; ये सब लड़के हँस रहे हैं, दिल्लगी कर रहे हैं और मजा उड़ा रहे हैं, परंतु वह (एम्) कैसा चुप बैठा है!"

एम् सत्ताईस वर्ष का था।

त्याग।

इसके बाद रामायण के सुप्रसिद्ध भक्त हनुमानजी के विषय में महाराज बातें करने लगे। महाराज ने कहा, प्रभु रामचन्द्र की सेवा करने के लिए, अपने सर्वस्व—द्रव्य, मान, शरीरसुख आदि—का त्याग करनेवाला सेवक और भक्त हनुमानजी के समान और कोई नहीं।

महाराज गाने लगेः—

पद।

मधुर फल क्यों चहिये। मुझको॥ ध्रु०॥
हृदयनिहित-सुरतरुफल-मुक्ति, सफल करे मुझको॥ १॥
जो रामकल्पतरुतलवासी, कम है क्या उसको॥ २॥
संसृतिसंभवफलाभिकांक्षा, है नहिं कुछ मुझको॥ ३॥

हनुमानजी की अनुपम सेवा का वर्णन करते करते, त्याग और संसार-सुख के विषय में उपर्युक्त पद्य महाराज ने कहा। गाते गाते उन्हें देहभान का विस्मरण हो गया! वे समाधिस्थ हो गये! शरीर निश्चल हो गया और दृष्टि स्थिर हो गई। इस छाया-चित्र में जैसे वे दिखाई दे रहे हैं वैसी ही उनकी दशा हो गई।

एक क्षण ही भर पहले वहां बैठनेवाले सब युवक हँसी दिल्लगी कर रहे थे। परंतु अब महाराज की यह दशा देखते ही सब लोगों की मुद्रा अत्यंत शांत और गंभीर हो गई! उनकी दृष्टि महाराज के मुख की ओर निहारने में लग गई और वे विस्मय के कारण [illegible] हो गये! महाराज को समाधि-अवस्था में देखने का [illegible] दूसरा मौका है।

बहुत समय तक महाराज इसी समाधि-अवस्था में [illegible]। फिर उनके शरीर में कुछ ढीलापन देख पड़ने लगा। [illegible] उनकी ज्ञानेंद्रियां अपने अपने काम की ओर मुड़ने [illegible] लगीं। मंद हास्य की लहरें उनके मुख पर [illegible] मुखकमल प्रफुल्लित होने लगा। उनके नेत्र-[illegible] थे और जिव्हा रामनाम रट रही थी। यह [illegible] वृत्ति-परिवर्तन देखकर एम् अपने मन में [illegible] यही दिव्य पुरुष था जो थोड़े ही समय [illegible] छोटे बालक के समान हँसी दिल्लगी कर [illegible] के साथ

जब महाराज की वृत्ति देहमान पर [illegible] गई [illegible]

महाराज—मेरे विषय में तुम क्या कह सकते हो? मेरा मतलब यह जानने का है कि, सत्य ज्ञान का कितना अंश, कितने आने ज्ञान, मुझमें है?

एम्—"कितने आने ज्ञान" इसका कुछ अर्थ ही मेरी समझ में नहीं आया। परंतु, हां, इतना तो मैं निस्सन्देह कह सकता हूं कि, इस प्रकार के दिव्य ज्ञान, भक्ति, श्रद्धा, वैराग्य, ईश्वरतन्मयता, विश्वबंधुत्व आदि अनेक सात्विक गुण एकही व्यक्ति में एकत्रित देखने का सुअवसर आज तक मेरे भाग्य में न था। ऐसा मौका कभी आया ही नहीं।

महाराज थोडासा हँसे।

एम् ने महाराज के पवित्र चरणों पर मस्तक नवाकर दण्डवत् प्रणाम किया और घर जानेके लिये वहांसे बाहर निकला। उत्तर के दरवाजे तक वह गया और वहां उसे कुछ स्मरण आया, इसलिए फिर महाराज के पास कुछ पूछने के लिए लौट आया।

महाराज उस धुंधले प्रकाश ही में इधर उधर घूम रहे थे। उस समय वे इकेले—बिलकुल इकेले—ही थे, दूसरा कोई भी न था! मृगराज केसरी भी इसी तरह वन में इकेला ही घूमा करता है। उस भयानक स्थान में उसको स्वयं अपनी आंतरिक शक्ति के सिवाय और किसीका कुछ भी आधार नहीं रहता। इसी तरह महात्माओं को भी किसी बाह्य वस्तु के आधार की आवश्यकता नहीं होती। उन्हें केवल आत्मसहवास ही में आनंद होता है। सचमुच उस नर-सिंह को इस जगदारण्य में इकेला रहने में, केवल आत्माराम ही के सहवास में रहने में, बहुत आनंद होता था।

एम् विस्मित होकर महाराज की ओर देखता हुआ खडा ही रहा। उसके मुख से एक शब्द भी न निकला! वह मन में सोचने लगा—"ऐहिक सुखों का त्याग करके अनंत के साथ एकांत में रममाण होना—अनंत के साथ तादात्म्यवृत्ति से रहना—यही मनुष्यजन्म की इतिकर्तव्यता है! इस इतिकर्तव्यता की प्रत्यक्ष सिद्धि यहीं देख पड रही है!"

महाराज—अरे, तू वापस फिर क्यों आया?

एम्—महाराज, आपने जहां मुझे आने को कहा है वह किसी श्रीमान का घर होगा और वहां दरवाजे पर चौकीदार, पहरेवाले वगैरह लोग बहुत से होंगे। मुझे वहां भीतर कौन जाने देगा? इस लिए मेरी यह इच्छा है कि मैं वहां न जाऊं तो अच्छा होगा। मैं महाराज के दर्शन करने सदा यहीं आया करूंगा।

महाराज—क्यों भाई, इतना डर क्यों? वहां जाकर मेरा नाम लेना और यह कहना कि मुझसे मिलना है। बस, इतना कहने ही से कोई न कोई तुमको मेरे पास ले आयगा।

एम्—अच्छा, जैसी महाराज की इच्छा!

इतना कहकर, फिर एक बार प्रणाम करके, वह चल पडा।

अमेरिका में कृषि की शिक्षा देनेवाली रेलगाड़िया।

(Agricultural Instruction Trains अथवा Demonstration Trains.)

[लेखक—पी. खानखोजे, बी. एस् सी., पुलमन वाश. युनाइटेड स्टेट्स, अमेरिका।]

पश्चिमी देशों की उन्नतिः—भारतवर्ष का प्राचीन इतिहास पढ़कर सारी दुनिया के लोगों में आर्य जाति के संबंध मे आदर-भाव उत्पन्न होता है; परंतु वही दुनिया के सब लोग इस हतभागी देश की वर्तमान दशा देखकर हम लोगों से घृणा करते हैं। इसका कारण क्या है? "हमारी करनी" यही इस प्रश्न का उचित उत्तर हो सकता है। हम लोगों ने अपने देश में जैसा बीज लगाया वैसा ही उसका फल भी इस समय मिल रहा है! यदि हम आफ्रिका में जाते हैं तो वहांसे धक्के मारकर निकाल दिये जाते हैं, दक्षिण-अमेरिका में जाते हैं तो वहां हमारी दुर्दशा होती है, कानडा में हमें कोई रहने ही नहीं देता, अमेरिका के संयुक्त संस्थानों में मजदूरी करने के लायक भी हम समझे नहीं जाते, आस्ट्रेलिया में जाने की मनाई होगई है, और यदि हिंदुस्थान में रहते हैं तो वहां पेटभर अन्न तक नहीं मिलता! इस प्रकार परदेश में अनादर और दुर्दशा होती है, स्वदेश में दरिद्रता भोगना पड़ती है। इसका कारण क्या है? भारतवासियों की यह बुरी दशा क्यों हुई? इसका भी उत्तर यही है—"हमारी करनी!" देखिये, क्या हिंदुस्थान में हम सुख से रह सकते हैं? इस देश में इतनी बहुत उपजाऊ भूमि होने पर भी दुर्भिक्ष और अकाल हमारे पीछे सदा लगे ही रहते हैं! इसका क्या कारण है? हमारी अयोग्यता—और कुछ नहीं! हमारे पूर्वजों ने बहुत परिश्रम करके, केवल अपने ही बल पर, ज्ञान संपादन किया, धन प्राप्त किया और नाम कमाया। परन्तु हमने क्या किया? हम लोगों ने आलस्य, फूट और अज्ञान से सब बरबाद कर दिया और अब दरिद्री बन बैठे हैं! यद्यपि इस बात का निर्णय करना कठिन है कि भारत को गारत करने में आलस्य, फूट और अज्ञान में से किसने अधिक सहायता की, तथापि इसमें संदेह नहीं कि हमारी हीनावस्था का अज्ञान ही बहुत बड़ा कारण है! जब तक हम अपने अज्ञान का नाश करके ज्ञान प्राप्त न करेंगे तब तक हमारी ऐसी ही बुरी दशा बनी रहेगी। हमारे अनेक देशबंधु, अपने पूर्वजों की प्राचीन कीर्ति की प्रशंसा करके, वर्तमान शोकजनक स्थिति पर एक प्रकार का बाह्य आवरण डाल देने का यत्न किया करते हैं; परंतु इससे देश का कोई लाभ नहीं होता—हमारी यथार्थ उन्नति नहीं होती। कुछ दिन पहले चीन और जापान का भी यही हाल था; परंतु अब उनकी आंखें खुल गई हैं और वे लोग पश्चिमी ज्ञान के प्रकाश से अपना हित संपादन करने में लग गये हैं। यदि हम लोग भी पश्चिमी देशों की ओर इसी दृष्टि से देखें तो हमारा भी निस्सन्देह कल्याण होगा।

कृषि की शिक्षा देनेवाली रेल गाड़ी—(चित्र न. १)
(वाल्ला स्टेशन और वाशिंगटन कृषिमहाविद्यालय की कृषिशिक्षक रेलगाड़ी।)

उपर्युक्त विचार प्रगट करने के लिए जापान, अमेरिका आदि देशों में प्राप्त किया हुआ मेरा अनुभव ही मुख्य कारण है। श्रीसमर्थ रामदास स्वामी ने अपने "दासबोध" नामक ग्रंथ में लिखा है कि "यह एक पढ़त-मूर्ख है जो अपने पूर्वजों की कीर्ति ही सदा गाया करता है (अर्थात् इसके सिवाय और कुछ नहीं करता)।" इसी "पढ़त-मूर्ख" की श्रेणी में मैं पहले पहल कुछ समय तक था। हमारे पूर्वजों ने ही सब से पहले कपास की खेती की और कपड़ा बुनने की कला सारे संसार को सिखाई; संसार की सब असभ्य जातियों को और पश्चिम की वर्तमान सभ्य जातियों के पूर्वजों को सशास्त्र कृषि की शिक्षा हमारे पूर्वजों द्वारा ही मिली; उन लोगों ने गाय, भैंस आदि जानवर पालकर पशुविद्या (Animal Husbandry) में प्रवीणता प्राप्त की, इसी प्रकार के विचारों के अभिमान से अंध होकर मैं यही समझा और करता था कि,

परिचित हो गई तब उन्होंने एम् और नरेन्द्र से कहा—" हमारी यह इच्छा है कि हम, तुम दोनों को अंगरेज़ी में वार्तालाप करते और किसी विषय पर चर्चा करते हुए सुनें।" यह सुनकर एम् और नरेन्द्र दोनों हँस पड़े! वे आपस में कुछ बोलने लगे, परंतु अंगरेजी में नहीं। महाराज के सामने किसी प्रकार का वादविवाद करना एम् के लिए तो बिलकुल असंभव था। यह कहने में कोई हानि नहीं कि, वादविवाद को आवश्यक सामग्री मस्तिष्क के जिस भाग में रखी रहती है वह उसका भाग सदा के लिए बंद ही हो गया था! महाराज ने दुबारा वही बात एम् से कही; परंतु वह अंगरेजी में कुछ भी बोला नहीं!

शाम के पांच बजे। एम् और नरेन्द्र को छोड़कर सब लोग वहां से उठकर घर चले गये। नरेन्द्र की इच्छा आज रात को वहीं महाराज के समीप रहने की थी। वह हाथ, पैर, मुँह आदि धोने के लिए लोटा लेकर झाऊ और हंसपूकर की ओर गया। ये झाऊ (वृक्ष) और पूकर (पुष्कर-छोटा तालाब) दक्षिणेश्वर के मंदिर में उत्तर की ओर हैं। एम् वहीं बाग में इधर उधर घूम रहा था। पूर्व जन्म के पुण्य कर्म से जिस महात्मा (श्रीरामकृष्ण परमहंस) का उसे दर्शनलाभ हुआ उसीके संबंध में अनेक कल्याणकारक विचार उसके मन में आ रहे थे। कुठी को चक्कर लगाकर जब वह हंसपूकर की ओर आया तब वहां श्रीरामकृष्ण को नरेन्द्र के साथ बातें करते हुए देखकर उसको कुछ आश्चर्य हुआ। (कुठी= कोठी। यह इस मंदिर के अहाते में एक सुंदर मकान है। दक्षिणेश्वर का यह मंदिर रानी राशमणि नामक एक धनवान बंगाली स्त्री ने १८५५ में बनवाया था। जब कभी यह पुण्यशीला स्त्री उस मंदिर में आती तब वह इसी कुठी में ठहरती थी। रानी राशमणि के जीवनसमय में श्रीरामकृष्ण इसी कुठी के एक कमरे में रहते थे। यहां से गंगा नदी का दृश्य बहुत सुहावना और रमणीय देख पड़ता है)।

श्री रामकृष्ण परमहंस, कलकत्ता।

महाराज और नरेन्द्र दोनों पूकर के घाट पर खड़े खड़े बातें कर रहे थे। महाराज ने स्मितपूर्वक कहा— "हां, तुम यहां हाल ही में आने लगे हो। तुम इस समय नये हो। ऐसा मत करो कि, कभी तो यहां आओगे और कभी नहीं। प्रणय-योग का अभ्यास करते समय प्रणयी जन वारंवार आपसमें मिलते जुलते रहते हैं। क्या यह बात ठीक नहीं?" (नरेन्द्र और एम् हंसते हैं)।

महाराज फिर सस्मित होकर बोले— "अब क्या कहना है? तुम यहां वारवार आया करोगे न?"

नरेन्द्र ने प्रसन्नतापूर्वक उत्तर दिया— "हां महाराज, मैं यहां बारबार आनेका यत्न करूंगा।"

महाराज पीछे लौटकर अपने कमरे की ओर जाने लगे। नरेन्द्र और एम उनके दोनों तरफ़ साथ साथ जा रहे थे। कुठी के पास पहुंचकर उन्होंने एम से कहा— "क्या तुम जानते नहीं कि जब किसान अपनी खेती के लिए बैल मोल लेता है तब वह उनकी अच्छी तरह परीक्षा किया करता है? वाह! इस काम में तो वह बहुत निपुण होता है। वह बैलों की परीक्षा करके जान लेता है कि अमुक बैल अच्छा है या नहीं। कोई कोई किसान तो ऐसे चतुर होते हैं कि बैलों को देखते ही पहचान लेते हैं कि अमुक बैल कितना उपयोगी होगा। सिर्फ पूंछ ही को हाथ लगाने से कैसा विलक्षण परिणाम देख पड़ता है! जो बैल अशक्त होते हैं—बिलकुल रद्दी होते हैं—वे कुछ भी हलचल करते नहीं, जमीन पर ही मुर्दे के समान पड़े रहते हैं। वहांसे उठकर खड़े तक नहीं होते! चाहे कुछ भी करो, उनके साथ चाहे जैसा बर्ताव करो, वे उसीमें आनंद मनाया करते हैं!! ऐसे बैल निकम्मे होते हैं। परंतु जो बैल तेजस्वी और सशक्त होते हैं वे अपने शरीर पर किसीका स्पर्श या आघात बिलकुल सह नहीं सकते। स्पर्श होते ही वे एकदम अपने स्थान पर से उछलकर अलग खड़े हो जाते हैं, और लात फटकारने लगते हैं। ऐसे ही बैल किसानों के उपयोगी होते हैं। नरेन्द्र इसी प्रकार का बैल है! यह यथार्थ में पानीदार आदमी है!"

महाराज ने हँसते हँसते और कहा— "बहुतेरे आदमी ऐसे होते हैं कि जिनमें कोई जान ही नहीं—पूरे गोबरगनेस, मट्ठा दिल और नरम होते हैं! आंतरिक शक्ति के नाम से केवल शून्य! दीर्घ काल तक प्रयत्न करने का कुछ भी सामर्थ्य नहीं! बस, जिसमें कोई प्रबल इच्छा शक्ति ही नहीं वह करही क्या सकेगा?"

शाम हुई। महाराज अपने कमरे में चले गये और आसन पर बैठकर ईश्वर का ध्यान करने लगे!

कुछ समय के बाद महाराज ने एम से कहा, "देखो, नरेन्द्र उस बाग में कहीं रमता होगा। उसके पास जाकर उससे कुछ बातें करो और वह कैसा है सो हमसे कहो।"

संध्या समय होने के कारण मंदिर में भगवान की सायपूजा और आरती होने लगी। चांदनी के पश्चिम भाग में नदी के घाट पर एम और नरेन्द्र की भेट हुई। इस भेट में दोनों बहुत आनंदित हुए। वे दिल खोलकर बातें करने लगे। नरेन्द्र ने अपने विषय में कहा, "मैं साधारणब्रह्म समाज का अनुयायी हूं। इस समय कालेज में पढ़ता हूं। और ......' इतना कहकर वह चुप हो रहा। विलंब के भय से एम भी वहांसे निकल पड़ा।

एम अब देखने लगा कि महाराज का दर्शन कहां होगा। उनके गीतों से उसका मन मोहित हो गया था। वह महाराज के मुख से और भी कुछ गीत सुनना चाहता था। महाराज अपने कमरे में न थे, इसलिए वह नट-मंदिर की ओर गया। यह नट-मंदिर काली माता के सामने ही है। जब काली माता की पूजा का महोत्सव होता है तब इस नट-मंदिर में मेला लगता है।

महाराज उस मंदिर के दालान में इकेले घूम रहे थे। वहां एक छोटेसे दीपक का मंद प्रकाश देख पड़ता था। हां, मंदिर में जगन्माता की मूर्ति के पास दीपकों का अच्छा प्रकाश था। परंतु जिस स्थान में महाराज घूम रहे थे वहां प्रकाश बहुत धुंधला था। प्रकाश और अंधकार का कोमल मिश्रण होने के कारण यह स्थान ईश-चिंतन के लिए बहुत अनुकूल था।

उस विलक्षण स्थान में पहुचते ही एम ने महाराज को ज़ोर से कालीमाता का भजन गाते देखा। बस, फिर क्या था, जिस बात की चटक लगी थी वही प्राप्त हुई! वह हर्ष से फूला न समाया! जादू के मोहनमंत्र से जैसा कोई मूढ़ हो जाता है वैसा ही वह इस समय हो गया। उसकी अवस्था का वर्णन किया नहीं जा सकता।

कुछ काल के अनंतर वह महाराज के समीप गया और डरते डरते अत्यंत नम्रता से पूछने लगा "महाराज, आज रात को और भी कुछ भजन होगा?"

क्षणभर विचार करके महाराज ने उत्तर दिया "नहीं; अब आज भजन नहीं करेंगे। थोड़े ही समय में मैं कलकत्ते में बलराम के घर जाऊंगा। तुम वहां आओ। तब वहां हमारा भजन सुन लेना।"

एम— जैसी महाराज की इच्छा।

महाराज— तुमको वह घर तो मालूम है न? क्या तुम बलराम बोस को नहीं जानते?

एम—नहीं महाराज, मैं नहीं जानता।

महाराज—अरे, बोसपारा का वह बलराम बाबू—

एम—हां, अच्छा, महाराज। वहां जाकर तलाश कर लूंगा।

(श्रीरामकृष्ण एम के साथ वहीं दालान में इधर उधर घूमने लगे।)

महाराज—अच्छा, अब मैं एक प्रश्न पूछता हूं—मेरे विषय में तुम्हारी क्या राय है?

एम विचार में निमग्न होकर स्तब्ध होगया।

महाराज—मेरे विषय में तुम क्या कह सकते हो ? मेरा मतलब यह जानने का है कि, सत्य ज्ञान का कितना अंश, कितने आने ज्ञान, मुझमें है ?

एम्—" कितने आने ज्ञान " इसका कुछ अर्थ ही मेरी समझ में नहीं आया। परंतु, हां, इतना तो मैं निस्सन्देह कह सकता हूं कि, इस प्रकार के दिव्य ज्ञान, भक्ति, श्रद्धा, वैराग्य, ईश्वरैकतानता, विश्वबंधुत्व आदि अनेक सात्विक गुण एकही व्यक्ति में एकत्रित देखने का सुअवसर आज तक मेरे भाग्य में न था। ऐसा मौका कभी आया ही नहीं।

महाराज थोड़ासा हँसे।

एम ने महाराज के पवित्र चरणों पर मस्तक नवाकर दण्डवत् प्रणाम किया और घर जानेके लिये वहांसे बाहर निकला। उत्तर के दरवाजे तक वह गया और वहां उसे कुछ स्मरण आया, इसलिए फिर महाराज के पास कुछ पूछने के लिए लौट आया।

महाराज उस धुंधले प्रकाश ही में इधर उधर घूम रहे थे। उस समय वे इकेले—बिलकुल इकेले—ही थे, दूसरा कोई भी न था! मृगराज केसरी भी इसी तरह वन में इकेला ही घूमा करता है। उस भयानक स्थान में उसको स्वयं अपनी आंतरिक शक्ति के सिवाय और किसीका कुछ भी आधार नहीं रहता। इसी तरह महात्माओं को भी किसी बाह्य वस्तु के आधार की आवश्यकता नहीं होती। उन्हें केवल आत्मसहवास ही में आनंद होता है। सचमुच उस नर-सिंह को इस जगदारण्य में इकेला रहने में, केवल आत्माराम ही के सहवास में रहने में, बहुत आनंद होता था।

एम् विस्मित होकर महाराज की ओर देखता हुआ खड़ा ही रहा। उसके मुख से एक शब्द भी न निकला! वह मन में सोचने लगा—" ऐहिक सुखों का त्याग करके अनंत के साथ एकांत में रममाण होना—अनंत के साथ तादात्म्यवृत्ति से रहना—यही मनुष्यजन्म की इतिकर्तव्यता है! इस इतिकर्तव्यता की प्रत्यक्ष सिद्धि यहीं देख पड रही है!"

महाराज—अरे, तू वापस फिर क्यों आया ?

एम्—महाराज, आपने जहां मुझे आने को कहा है वह किसी श्रीमान का घर होगा और वहां दरवाजे पर चौकीदार, पहरेवाले वगैरह लोग बहुत से होंगे। मुझे वहां भीतर कौन जाने देगा? इस लिए मेरी यह इच्छा है कि मैं वहां न जाऊं तो अच्छा होगा। मैं महाराज के दर्शन करने सदा यहीं आया करूंगा।

महाराज—क्यों भाई, इतना डर क्यों? वहां जाकर मेरा नाम लेना और यह कहना कि मुझसे मिलना है। बस, इतना कहने ही से कोई न कोई तुमको मेरे पास ले आयगा।

एम्—अच्छा, जैसी महाराज की इच्छा!

इतना कहकर, फिर एक बार प्रणाम करके, वह चल पड़ा।

अमेरिका में कृषि की शिक्षा देनेवाली रेलगाड़ियां।

(Agricultural Instruction Trains अथवा Demonstration Trains.)

[लेखक—पी. खानखोजे, बी. एस्. सी., पुलमन वाश, युनाइटेड स्टेट्स, अमेरिका।]

पश्चिमी देशों की उन्नति:—भारतवर्ष का प्राचीन इतिहास पढ़कर सारी दुनिया के लोगों में आर्य जाति के संबंध में आदर-भाव उत्पन्न होता है; परंतु वही दुनिया के सब लोग इस हतभागी देश की वर्तमान दशा देखकर हम लोगों से घृणा करते हैं। इसका कारण क्या है ? " हमारी करनी " यही इस प्रश्न का उचित उत्तर हो सकता है। हम लोगों ने अपने देश में जैसा बीज लगाया वैसा ही उसका फल भी इस समय मिल रहा है! यदि हम आस्ट्रेलिया में जाते हैं तो वहांसे धक्के मारकर निकाल दिये जाते हैं, दक्षिण-अमेरिका में जाते हैं तो वहां हमारी दुर्दशा होती है, कानडा में हमें कोई रहने ही नहीं देता, अमेरिका के संयुक्त संस्थानों में मजदूरी करने के लायक भी हम समझे नहीं जाते, आस्ट्रेलिया में जाने की मनाई होगई है, और यदि हिंदुस्थान में रहते हैं तो वहां पेटभर अन्न तक नहीं मिलता! इस प्रकार परदेश में अनादर और दुर्दशा होती है, स्वदेश में दरिद्रता भोगना पड़ती है। इसका कारण क्या है? भारतवासियों की यह बुरी दशा क्यों हुई? इसका भी उत्तर यही है—" हमारी करनी !" देखिये, क्या हिंदुस्थान में हम सुख से रह सकते हैं? इस देश में इतनी बहुत उपजाऊ भूमि होने पर भी दुर्भिक्ष और अकाल हमारे पीछे सदा लगे ही रहते हैं! इसका क्या कारण है? हमारी अज्ञानता—और कुछ नहीं! हमारे पूर्वजों ने बहुत परिश्रम करके, केवल अपने ही बल पर, ज्ञान संपादन किया, धन प्राप्त किया और नाम कमाया। परन्तु हमने क्या किया! हम लोगों ने आलस्य, फूट और अज्ञान से सब बरबाद कर दिया और सब हाथों खो बैठे हैं; इसलिए इस बात का निर्णय करना कठिन है कि भारत को बरबाद करने में आलस्य, फूट और अज्ञान में से किसने अधिक सहायता की, तथापि इसमें संदेह नहीं कि हमारी हीनावस्था का अज्ञान ही बहुत बड़ा कारण है! जब तक हम अपने अज्ञान का नाश करके ज्ञान प्राप्त न करेंगे तब तक हमारी ऐसी ही बुरी दशा बनी रहेगी। हमारे अनेक देशबंधु, अपने पूर्वजों की प्राचीन कीर्ति की प्रशंसा करके, वर्तमान शोकजनक स्थिति पर एक प्रकार का बाह्य आवरण डाल देने का यत्न किया करते हैं, परंतु इससे देश का कोई लाभ नहीं होता—हमारी यथार्थ उन्नति नहीं होती। कुछ दिन पहले चीन और जापान का भी यही हाल था; परंतु अब उनकी आंखें खुल गई हैं और वे लोग पश्चिमी ज्ञान के प्रकाश से अपना हित संपादन करने में लग गये हैं। यदि हम लोग भी पश्चिमी देशों की ओर इसी दृष्टि से देखें तो हमारा भी निस्सन्देह कल्याण होगा।

उपर्युक्त विचार प्रगट करने के लिए जापान, अमेरिका आदि देशों में प्राप्त किया हुआ मेरा अनुभव ही मुख्य कारण है। श्रीमत्समर्थ रामदास स्वामी ने अपने "दासबोध" नामक ग्रंथ में लिखा है कि " वह एक पढ़त-मूर्ख है जो अपने पूर्वजों की कीर्ति ही सदा गाया करता है (वर्तमान स्थिति का विचार और कुछ नहीं करता)।" ऐसे " पढ़त-मूर्ख " की श्रेणी में [illegible] हमारे पूर्वजों ने [illegible] [illegible] (Agricultural [illegible]) [illegible]

कृषि की शिक्षा देनेवाली रेल गाड़ी—(चित्र नं १)

([illegible])

लिए आज मैं कृषिसंस्था (Farmer's Institute) की एक शाखा ही का अल्प वृत्तांत इस लेख में देता हूं। इसपर से हिन्दुस्थान के लोगों को मालूम हो जायगा कि अमेरिका में कृषिसंबंधी ज्ञान का प्रसार किस तरह किया जाता है। यदि इन बातों पर उचित ध्यान दिया जायगा तो मननशील और बुद्धिमान लोगों को, भारतवर्ष की कृषि की उन्नति करने के लिए, कुछ न कुछ नये विचार अवश्य सूझ पड़ेंगे।

नियों ने इस काम में सहायता करना, स्वार्थ की दृष्टि से, अपना कर्तव्य समझा। अमेरिकन सरकार ने रेलवे कंपनियों को पहले पहल बहुत सी जमीन मुफ्त ही में दे दी थी। कई कंपनियों के अधिकार में कृषि के योग्य उपजाऊ जमीन है। इस जमीन की कीमत भी बहुत बढ़ गई है। कंपनियों का यह इरादा है कि इस जमीन में खेती करके अल्प प्रयास से बहुत धन प्राप्त किया जाय। उनकी यह इच्छा सफल होने में कृषि शिक्षा की रेलगाड़ियां बहुत उपयोगी प्रतीत होने

कृ. शि. रेलगाड़ी (चित्र नं ४)
(यंत्र विभाग की गाड़ी में खड़े होकर प्रोफेसर थाम दुर्जल-कृषि (Dry farming) पर व्याख्यान दे रहे हैं।)

कृषिसंस्थाः—(Farmer's Institute)—यह संस्था उन सब लोगों की है जो कृषि की उन्नति में उत्तेजन देना चाहते हैं। कृषक लोगों में कृषिसंबंधी ज्ञान का प्रसार करना ही इस संस्था का मुख्य हेतु है। इस संस्था को अमेरिकन सरकार (Federal Government) संस्थानिक सरकार (State Government), रेलवे कंपनी, व्यापारी, किसान वगैरह सब लोग सहायता देते हैं। इस प्रकार की कृषि-संस्था अमेरिका के प्रत्येक संस्थान में है। स्थानिक कृषि-महाविद्यालय की ओर से उसको सहायता मिलती है। इस संस्था के डाइरेक्टर या सुपरिन्टेन्डेन्ट का आफिस बहुधा कृषि महाविद्यालय ही में रहता है। यही अफसर गांव गांव घूमकर व्याख्यान, प्रयोग, प्रदर्शन, चित्र और लेख द्वारा कृषि शिक्षा का प्रसार करता है। इस विषय का वर्णन फिर कभी दूसरे लेख में दिया जायगा। इस लेख के शीर्षक में जो "कृषि की शिक्षा देनेवाली रेल गाड़ियां" का नाम लिखा है उनका भी प्रबंध इसी संस्था से किया जाता है। अमेरिका में कृषि की शिक्षा देने के लिए रेल गाड़ियों का उपयोग अभी अभी हाल ही में किया जा रहा है। जब कोई नया सुधार किया जाता है तब उसमें अनेक विघ्न और बाधाएं हुआ ही करती हैं। इसी नियम के अनुसार अमेरिका में भी रेल गाड़ियों द्वारा कृषि की शिक्षा देने के यत्न में पहले पहल बहुत विघ्न उत्पन्न हुए; परंतु धैर्यपूर्वक क्लेश सहन करने ही से आज वह यत्न सफल जान पड़ता है। यदि रेलगाड़ियों से कृषिशिक्षा की चलती हुई शालाओं का काम लेना है तो रेलवे कंपनियों की पूर्ण सहानुभूति और सहायता चाहिये। पहले पहले रेलवे कंपनियों को न तो सहानुभूति थी और न सहायता। अमेरिका में रेलवे कंपनियों पर सरकार का कोई जोर नहीं चलता। इस लिए सरकार उनपर दबाव डाल न सकी कि रेल गाड़ियों का उपयोग कृषि शिक्षा के लिये किया जाय। परंतु धीरे धीरे रेलवे कंप-

लगीं। तब उन लोगों ने इस काम में सहायता देने का निश्चय किया। इसके सिवाय और भी एक कारण है। अमेरिका का लोकमत रेलवे कंपनियों के विरुद्ध है। प्रायः सब समाचारपत्र, सर्व साधारण लोग और राजनीतिज्ञ भी यही शिकायत करते हैं कि रेलवे कंपनियां लोगों से मनमाना धन लूटती हैं और देशसेवा कुछ भी करती नहीं। पाठक जानते हैं कि अमेरिका में जो लोकमत होता है वही सरकार का भी मत होता है। सरकार इन रेलवे कंपनियों को अच्छी दृष्टि से नहीं देखती। ऐसी प्रतिकूल अवस्था में रेलवे कंपनियों को अपना काम करना कुछ कठिन सा हो रहा है। इस लिए उन्होंने सोचा कि सरकार और लोगों को खुश करनेका यही अच्छा मौका है। कृषि की शिक्षा देनेवाली रेल गाड़ियों की योजना में सहायक होने से कंपनियों को आत्मस्तुति करने का अवसर मिलता है, कृषक-वर्ग का विरोध दूर करके उनके मत में अनुकूल परिवर्तन करने का साधन प्राप्त होता है, कृषिशिक्षा की गाड़ियों का सब प्रबंध कृषिमहाविद्यालय की ओर होने के कारण उस संस्था के साथ मिलना होती है, और इन गाड़ियों के द्वारा कृषि की उन्नति होने के कारण सरकार का कोप भी कुछ कम हो जायगा। बस यही सोच समझकर रेलवे कंपनियां इस नूतन कार्य में योग देने लगीं। कृषि संस्था और रेलवे कंपनियों के सुयोग से कृषिशिक्षा की गति बहुत बढ़ गई और कृषिसंबंधी ज्ञान का प्रसार सुलभ हो गया।

कृ. शि. रेलगाड़ी (चित्र नं. ५)
(इस चित्र में कलम लगाने (Grafting), और वृक्षछेदनक्रिया का दृश्य गाड़ी की ओर दबाकर देख पड़ेगा। फ़ल की सड़क का प्रेम नीचे है। गाय बांधने का स्टेहदड अन्त में है। इसके अतिरिक्त और दृश्य हैं।)

कृषिशिक्षा की रेलगाड़ियों की आवश्यकता और उनसे होनेवाला लाभः—युनाइटेड स्टेट्स आफ़ अमेरिका बहुत बड़ा देश है। सब संस्थान और प्रदेश मिलकर यह देश हिंदुस्थान से लगभग दूना बड़ा होगा। पश्चिम अमेरिका में एक एक तीन हजार एकड़ के भी खेत पाये जाते हैं। किसानों के मकान खेतों ही में होते

इत्यादि अनेक बातें गाय के विषय में बताई जाती हैं। इसी तरह घोड़ा, बकरी, भेड़, सूअर, मुर्गी आदि के विषय में भी व्यवसाय की दृष्टि से अनेक उपयुक्त और लाभदायक बातों की शिक्षा दी जाती है। इस काम में शिक्षक लोग जो आनंद और उत्साह प्रगट करते हैं वह अवर्णनीय है!

वनस्पति फल और तरकारियों का विभाग:- इस विभाग में प्रवेश करते ही निराला दृश्य देख पड़ता है। विविध भांति के फलों के प्रकार, फलों का चुनाव (Sorting), फलों को बिक्री के लिये संदूक में बंद करना (Packing), संदूक पर चिपकाने के लेबल वगैरह का दृश्य एक ओर देख पड़ता है। दूसरी ओर उत्तम बाग का नमूना (चित्ररूप से या नकली वृक्षों और पौधों के रूप से), वृक्षच्छेदन क्रिया (Pruning), फल तोड़ने की रीति, तोड़े हुए फलों को लाने लेजाने की थैली आदि का दृश्य नजर आता है। तीसरी ओर फलवृक्ष लगाने की रीति, पौधों की देखभाल और रक्षा, कलम लगाने का सामान, बालवृक्षसंगोपन आदि का सप्रयोग दृश्य दृग्गोचर होता है। चौथी ओर वृक्षों के रोग और कीटकों का प्रदर्शन, रोग पीड़ित वृक्ष, सूक्ष्म जीवन (Micro Organism) के चित्र, वृक्षरोग निवारण के उपाय, औषधि-सिंचन के यंत्र (Spraying Materials) आदि का दृश्य हमारे सामने प्रगट होता है। ये सारे दृश्य इस प्रकार से सजाए जाते हैं कि देखने वालों की समझ में सब बातें तुरंत आ जांय-दर्शन मात्र से शिक्षा का संस्कार उत्पन्न हो जाय। इसी विभाग में तरकारियों के अनेक प्रकार, लगाने की रीति, उनकी रक्षा और वृद्धि के उपाय, बाजार में बेचने की रीति इत्यादि कई बातों की प्रदर्शनी है। सब व्याख्याता, शिक्षक और व्यवस्थापक गण इस स्थान में लोकसेवा के लिए तत्पर रहते हैं।

कृ. शि. रेलगाड़ी (चित्र नं ७)

(कृषियंत्र विभाग की दो गाड़ियों का यह चित्र है। चक, हल वगैरह जिन यंत्रों का उल्लेख लेख में किया गया है वे सब एक गाड़ी में हैं और दूसरी गाड़ी में औषधि सिंचन के तथा अन्य यंत्र हैं। दोनों में व्याख्याता और अध्यापक खड़े हुए देख पड़ेंगे। वहं इंजन गाड़ियों से चलाकर दिखाए जाते हैं।)

भूमि, रसायनशास्त्र, जीवनशास्त्र, यंत्रविद्या आदि का विभाग:— भूमिविभाग की गाड़ी में भांति भांति की भूमि की प्रदर्शनी होती है। भूमि के भेद, गुण, उपयोग, भिन्न भिन्न फसल के योग्य भूमि की जाति, जोतना, बखरना, उपजाऊ और बंजर ज़मीन, बंजर ज़मीन को उपजाऊ बनाने का उपाय आदि भूमिविद्या की बहुतेरी सब महत्व की बातों का वर्णन पाया जाता है। अनाज विभाग में अनाज की भिन्न भिन्न जातियां, अच्छा और बुरा अनाज पहचानने की रीति, बीज का चुनना, अनाज बोने की रीति, नींदना आदि की सचित्र और सप्रयोग शिक्षा दी जाती है। कृषि रसायन विभाग में रसायन विद्या का व्यावहारिक परिचय किसानों को करा दिया जाता है। इसके सिवाय कृषि-उद्भिज्जाणुशास्त्र (Agricultural Bacteriology), भूमिजीवनशास्त्र (Soil Biology and Soil Fungi), आदि कई गहन विद्या के मूलतत्वों की शिक्षा भी दी जाती है। कृषियंत्र विभाग में अनेक यंत्रों के नमूने, लाभदायक और हानिकारक यंत्र, औषधि सिञ्चन (Spraying), अनाज में से दाना अलग करना (Harvesting and Thrashing), कृषि के इञ्जन, भाप के यंत्र आदि और इन यंत्रों को दुरुस्त करने की शिक्षा दी जाती है। गृहविद्या (Domestic Science) विभाग में भोजन बनाना, चटनी, मसाला, अचार, मुरब्बा आदि बनाना, फलरक्षा (Canning), चूल्हा बनाना, भोजन के पदार्थों के गुणदोष, पुष्टि शास्त्र (Science of Nutrition), गृहशुद्धता, स्वच्छता, बालसंगोपन, कपड़ा सीना, कपड़ा धोना आदि सैकड़ों उपयोगी विषयों की सप्रयोग शिक्षा स्त्रियों को दी जाती है। इन सब विषयों के अतिरिक्त और भी अनेक बातों की शिक्षा इन "चलती शालाओं" के द्वारा दी जाती है। उन सबका यहां वर्णन करना असंभव है। जो कुछ थोड़ासा लिखा गया है उसपर से अमेरिका देश की "चलती शालाओं"—कृषि की शिक्षा देनेवाली रेलगाड़ियों—के विषय में हमारे पाठकगण बहुत कुछ कल्पना कर सकते हैं।

कृषि की "चलती शालाओं" से बोध:— यह लेख पढ़कर कोई ऐसा न समझे कि अमेरिका में इन "चलती शालाओं" की शिक्षा से सब किसान लोग एकदम अपने कार्य में निपुण हो जाते हैं। जिन विषयों का ज्ञान बरसों तक अध्ययन करने पर भी समाप्त नहीं होता उनकी शिक्षा इन क्षणिक शालाओं से पूर्ण रूप में कैसे दी जा सकती है? हां, इन शालाओं के द्वारा किसान लोग यह बात भलीभांति जान सकते हैं कि संसार में कृषि के व्यवसाय में क्या क्या सुधार हो रहे हैं, कृषि की उत्तम और निकृष्ट पद्धति कैसी होती है, कृषिसंबंधी गहन बातें किस प्रकार और कहां से सीखना चाहिये, कृषि की शिक्षा से क्या लाभ होता है और कृषि की उन्नति के लिए किन किन बातों पर ध्यान देना चाहिये। ये बातें जान लेना भी कुछ कम नहीं है। इन्हीं सब कारणों से अमेरिका के कृषकों में एकता बहुत दृढ़ है। वे लोग सदा अपनी उन्नति में लगे रहते हैं। भारतवर्ष के कृषक अज्ञान के अंधकार में गोते खा रहे हैं और पश्चिमी देशों के कृषक व्यावहारिक ज्ञान से अपनी उन्नति कर रहे हैं—यह अपनी अपनी करनी का फल है। यदि हिंदुस्थान के कृषकों को कृषिविद्या की उचित शिक्षा दी जाय तो वे भी अपने पश्चिमी किसान भाइयों की बराबरी कर सकेंगे। हिंदुस्थान की आधे से अधिक मनुष्य-संख्या, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रीति से, खेती ही पर अवलंबित है। ऐसी अवस्था में कृषि की उन्नति होते ही सारे देश का कल्याण होगा। इस विषय में, हर्ष की बात है कि, सरकार और लोगों का एकमत है-दोनों के मतों में किसी प्रकार की भिन्नता या विरोध नहीं। जिस तरह कृषिविद्या की शिक्षा देना और कृषि की उन्नति करना सरकार अपना कर्तव्य समझती है, उसी तरह यह लोगों का भी पवित्र कर्तव्य है। कृषिविद्या संपादन करने का उद्देश यह नहीं है कि हमारे लोग इन्स्पेक्टर, सरवेयर या प्रोफेसर बनकर केवल अपनाही पेट भरने का उद्योग किया करें; परंतु इस शिक्षा का उद्देश यह होना चाहिये कि बहुत प्रयत्न करके अपने देश की कृषि सुधारें और उसमें तरक्की करें। यह काम वकीलों, बारिस्टरी, धर्मोपदेश, तत्वज्ञान, लाजिक आदि विषयों से अधिक श्रेष्ठ और महत्व का है; क्योंकि मनुष्यमात्र का जीवन-मुख्यतः भारतवासियों का जीवन—सिर्फ खेतीही पर अवलंबित है। आजतक जितना दुर्भिक्ष और अकाल हुआ वह अलम् है। इससे अधिक दरिद्रता और क्या हो सकती है? क्या अब भी हमारे देशवासी इस पवित्र कार्य में तन मन धन अर्पण करके अपने किसानों को शिक्षित करने का यत्न [illegible]

नकल ही की जाय। नहीं; सिर्फ नकल करने से कोई लाभ नहीं। अमेरिका का उदाहरण अपनी आंखों के सामने रखकर, देश की परिस्थिति के अनुसार, जो कुछ हम कर सकते हैं वह अवश्य करना चाहिये। मेरी तो यह राय है कि कृषि की उन्नति के लिये हिंदुस्थान में बहुत सा काम किया जा सकता है। अमेरिका की भांति, हिंदुस्थान के किसानों की बस्तियां बहुत दूर दूर नहीं हैं। यहां गांव गांव घूमकर सप्रयोग व्याख्यान, और चित्र आदि के द्वारा किसानों को कुछ उपयोगी शिक्षा दी जा सकती है। यात्रा,

जहाज़ पर बादशाह का कार्यक्रम ।

पाठकों को यह मालूम है, कि बादशाह पंचम जार्ज और महारानी मेरी 'मदीना' नाम के जहाज़ पर इंग्लैंड से यहां आये। जब बादशाह लंदन में रहते हैं तब वे अपना समय प्रति दिन किस प्रकार व्यतीत करते हैं, वहां उनके निजी कामों का प्रबंध किस प्रकार होता है, सो सब गत संख्या में लिखा ही जा चुका है। अब इस संख्या में यह वर्णन किया जाता है कि 'मदीना' जहाज़ पर रहते हुए वे अपना समय किस भांति व्यतीत करते थे।

'मदीना' जहाज़ बहुत ही सुभीते का, सुशोभित और सुखदायक है। इस जहाज़ के जिस भाग में बादशाह और महारानी का निवास था वह अत्यंत मूल्यवान वस्तुओं से सुशोभित किया गया था। भोजन करने, बैठने, उठने, निद्रा करने आदि के लिए पृथक पृथक स्थान नियत किये गये थे। यह जहाज़ इतना बड़ा था कि इसीमें बादशाह के खास खास अफसर, उनके निजी नौकर, सिपाही, वगैरह सब लोग आराम से रहते थे। इसमें संदेह नहीं कि 'मदीना' में प्रवास करते समय बादशाह और महारानी को सब प्रकार का सुख हुआ। बादशाह ने इस जल-प्रवास में प्रति दिन कुछ समय तक

राज्यप्रबंध का कार्य

किया करते थे। जहाज़ से लंडन तक और लंडन से जहाज़ तक बिना तार के विद्युत्संदेश भिजवाने का प्रबंध किया गया था। इससे लंदन की सब खबरें जहाज़ पर आती रहती थीं और जहाज़ पर की सब खबरें लंदन को पहुंच जाती थीं। मंत्री लोग अपने अपने कामकाज का सब हाल बादशाह को प्रतिदिन तारद्वारा निवेदन कर दिया करते थे और बादशाह भी उसका यथोचित उत्तर जहाज़ पर से भिजवा दिया करते थे। राजनैतिक गुप्त बातों के सिवाय अन्यान्य बातें प्रकाशित करने के लिए जहाज़ पर से एक समाचार-पत्र भी निकलता था। लंडन से आनेवाले राजनैतिक या निजी समाचार गुप्त और सांकेतिक भाषा में रहते। उनको सरल अंग्रेज़ी भाषा में लिखकर बादशाह के सामने पेश करने का काम प्राइवेट सेक्रेटरी लार्ड स्टॅंफोर्डम और मेजर क्लाइव विग्रम को सौंप दिया गया था। इनमेंसे अत्यंत महत्व के तारों का उत्तर स्वयं बादशाह ही अपने हाथ से लिख देते थे। जिस 'केबिन' (कमरे) में बैठकर बादशाह लिखने का काम करते उसीसे लगे हुए दूसरे कमरे में तारघर था। ज्योंही बादशाह तार लिखकर टेलिग्राफ़ आफ़िस में भेजते त्योंही वह लंदन को रवाना हो जाता था। बादशाह जहाज़ पर अपना कुछ समय

ग्रंथावलोकन

में व्यतीत करते थे। बादशाह कहते यह शिकायत रहती कि 'जब हम लंडन में रहते हैं तब ग्रंथावलोकन भलीभांति नहीं हो सकता, पढ़ने के लिए हमें बहुत समय ही नहीं मिलता।' परंतु इस बार 'मदीना' में जलप्रवास करते समय उन्होंने अपना बहुत सा समय अच्छे अच्छे ग्रंथ पढ़ने में व्यतीत किया। बहुत दिनों से जिन पुस्तकों को पढ़ने की उनकी इच्छा थी उन्हें वे अपने साथ जहाज़ पर ले आये थे। इनमेंसे बहुतेरी उत्तमोत्तम पुस्तकें आपने पढ़ डालीं। दोपहर के समय 'डेक' पर महारानी की कुर्सी के पास अपनी कुर्सी पर बैठकर कुछ समय तक वे पुस्तक पढ़ा करते थे। कभी कभी हुक्का पीने, या पुस्तक में पढ़ी हुई किसी बात का महारानी से ज़िक्र करने के समय उनका पढ़ना बंद हो जाता था; अन्यथा इस सब समय में वे पढ़ने ही में निमग्न रहा करते थे।

'मदीना' जहाज़ पर बादशाह के कपडे पहनने का स्थान।

महारानी मेरी का विश्रामस्थान।

पत्र लेखन।

बादशाह प्रति दिन पत्र लिखने में भी अपना कुछ समय व्यतीत करते थे। जर्मन बादशाह, रशियन जार, नार्वे के राजा, हेलिनिस के राजा जार्ज आदि लोगों को वे हमेशा पत्र लिखा करते थे। कहते हैं कि हिंदुस्थान से लौटते समय जहाज में बैठकर उन्होंने अनेक लोगों को पत्र लिखे होंगे और इस बात का उल्लेख किया होगा कि हिंदुस्थान में हमने अपना समय कैसे आनंद से व्यतीत किया, इस देश के निवासियों ने अपनी राजनिष्ठा किस प्रकार व्यक्त की और यहां हमने क्या क्या देखा इत्यादि। हिंदुस्थान में प्रवास करते समय जो कुछ देखा, सुना, पढ़ा या प्रत्यक्ष अनुभव किया सो सब बादशाह और महारानी ने अपनी

नोट-बुक

में लिख रखा है। जो बातें यहां संक्षेप में लिखी गई थीं उनका विस्तार जहाज पर किया गया होगा। इस नोट-बुक में बादशाह और महारानी के स्वयं अनुभव की, अतएव अत्यंत महत्व की, अनेक बातें लिखी गई हैं, परंतु संभव नहीं है कि यह अनुपम लाभदायक नोट-बुक दुनिया की नज़र में आवे। हां, इसमें संदेह नहीं कि इंग्लैंड के भावी राजाओं के उपयोग के लिये बादशाह की नोट-बुक बकिंगहाममहल के दफ्तर में बहुत सावधानी से रखी रहेगी। महारानी की नोट-बुक यथोचित समय पर प्रिन्सेस मेरी को दी जायगी। जहाज़ पर बादशाह के दिलबहलाव के लिये कई प्रकार के खेलों का प्रबंध किया गया था। बादशाह 'डेक' पर

क्रिकेट

खेला करते थे। एक बार क्रिकेट खेलते समय बादशाह की गेंद समुद्र में जा गिरी। बादशाह ने तुरत अपने प्रतिपक्षियों से कहा कि "खोई हुई गेंद के बदले छै दौड़ रखना चाहिये"। परंतु प्रतिपक्षियों ने कहा "गेंद तो समुद्र

और त्यौहार आदि मौकों पर बहुत से लोग एकत्र होते हैं। समय यदि एक मंडप में कृषिविषयक प्रदर्शनी खोलकर लोगों कु शिक्षा दी जाय तो उससे भी लाभ होगा। इसके सिवाय भी अन्य मार्गों से कृषिशिक्षा का पवित्र कार्य किया जा सकता से पहले कुछ लोगों को स्वार्थत्याग करना होगा और एक यत्न करना होगा। अंत में इसके मधुर फलों का स्वाद सब ही लोग पावेंगे। ऐसा कोई सार्वजनिक कार्य नहीं है जिसमें स्वार्थत्याग की बुद्धि से धैर्यपूर्वक यत्न करने पर सफलता प्राप्त न हो। यदि भारतवर्ष की उन्नति के लिए हमारे शिक्षित भाई तन मन धन अर्पण करके कुछ यत्न करेंगे तो, इसमें संदेह नहीं कि, ईश्वर की कृपा से उन्हें सफलता प्राप्त होगी। यह केवल मनोराज्य की आशा नहीं है। यह मेरा दृढ़ विश्वास है।

"संत तुकाराम" नाम का जहाज।

बंबई की "इन्डियन कोआपरेटिव नेविगेशन ऐण्ड ट्रेडिंग कम्पनी" के नए जहाज का यह चित्र है। इसका नाम "संत तुकाराम" है। में "तुकाराम" नाम के एक सुप्रसिद्ध साधु हो गये। इस पवित्र नाम के उच्चारण ही से इस देश में लाखों लोगों के अंतःकरणों में ते प्रकाशित हो जाती है! इस जहाज के बनाने का ठीका ग्लासगो शहर के "ब्लाक और ब्रंज साउथ" नामक सुप्रसिद्ध कंपनी को गया है। इसकी लंबाई १८० फुट, चौड़ाई १८ फुट और ड्राम १० फुट है। इसकी गति हर घंटे में १३ नाट है। इस पर कमसे कम ०० मुसाफिर बैठ सकेंगे। इसकी रचना सुंदर और सामान मजबूत है। इस कंपनी के पहले जहाज "सैन फ्रांसिस्को" से यह जहाज हुत अच्छा है।

ब्रह्मी नाच।

ब्रह्मी नाच का यह चित्र देखिये। इसमें नृत्य करनेवाली स्त्री नाचने के लिये खड़ी है और उसके साजिन्दे अपने अपने वाद्य लेकर तैयार हैं। चित्र में प्रेक्षकों की ओर एक आदमी कुछ ऊंची जगह पर बैठा है। उसके चहुं ओर जालीदार लकड़ी का एक घेरा है जिसमें, पहिले की अपेक्षा दूसरा छोटा ऐसे, २७ ढोल बंधे हैं। इनके बजाने में जो कुशलता यह प्रगट करता है वह देखते ही बनती है। इसी प्रकार दाहिनी ओर भी लकड़ी का एक छोटासा कठघरा है जिसमें बहुत सी झांझें (मंजीरे) लटकाई गई हैं। एक आदमी अपने दोनों हाथों में दो हथौड़े उन झांझों पर पटकता जाता है और बहुत ही सुरीली मनोहर आवाज निकालता है। यह वाद्यप्रकार अंग्रेजी बैंड के समान कुछ कुछ पड़ता है।

जहाज़ पर बादशाह का कार्यक्रम।

पाठकों को यह मालूम है, कि बादशाह पंचम जार्ज और महारानी मेरी 'मदीना' नाम के जहाज़ पर इंग्लैंड से यहा आये। जब बादशाह लंदन में रहते हैं तब वे अपना समय प्रति दिन किस प्रकार व्यतीत करते हैं, वहां उनके निजी कामो का प्रबंध किस प्रकार होता है, सो सब गत संख्या में लिखा जा चुका है। अब इस संख्या में यह वर्णन किया जाता है कि 'मदीना' जहाज़ पर रहते हुए वे अपना समय किस भांति व्यतीत करते थे।

'मदीना' जहाज़ बहुत ही सुभीते की, सुशोभित और सुखदायक है। इस जहाज़ के जिस भाग मे बादशाह और महारानी का निवास था वह अत्यंत मूल्यवान वस्तुओं से सुशोभित किया गया था। भोजन करने, बैठने, उठने, निद्रा करने आदि के लिए पृथक पृथक् स्थान नियत किये गये थे। यह जहाज़ इतनी बड़ी थी कि इसीमे बादशाह के खास खास अफ़सर, उनके निजी नौकर, सिपाही, वगैरह सब लोग आराम से रहते थे। इसमें संदेह नहीं कि 'मदीना' में प्रवास करते समय बादशाह और महारानी को सब प्रकार का सुख हुआ। बादशाह अपने इस जल-प्रवास मे प्रति दिन कुछ समय तक

राज्यप्रबंध का कार्य

किया करते थे। जहाज़ से लंडन तक और लंडन से जहाज़ तक बिना तार के विद्युत्संदेश भिजवाने का प्रबंध किया गया था। इससे लंदन की सब खबरें जहाज़ पर आती रहती थीं और जहाज़ पर की सब खबरें लंदन को पहुंच जाती थीं। मंत्री लोग अपने अपने काम काज का सब हाल बादशाह को प्रतिदिन तारद्वारा निवेदन कर दिया करते थे और बादशाह भी उसका यथोचित उत्तर जहाज पर से भिजवा दिया करते थे। राजनैतिक गुप्त बातों के सिवाय अन्यान्य बातें प्रकाशित करने के लिए जहाज पर से एक समाचार पत्र भी निकलता था। लंदन से आनेवाले राजनैतिक या निजी समाचार गुप्त और सांकेतिक भाषा में रहते। उनको [illegible] अंग्रेज़ी भाषा में लिखकर बादशाह के सन्मुख पेश करने का काम प्राइवेट सेक्रेटरी लार्ड [illegible] और मेजर [illegible] के सुपुर्द किया गया था। इनमेंसे [illegible] महत्व के [illegible] बादशाह ही अपने हाथ से लिख देते थे। जिस 'केबिन' (कमरे) में बैठकर बादशाह लिखने का काम करते [illegible] [illegible] बादशाह [illegible] [illegible]। बादशाह जहाज़ पर अपना कुछ समय

संगीतसेवन

में व्यतीत करते थे। बादशाह [illegible] [illegible]

'मदीना' जहाज़ पर बादशाह के कपडे पहनने का स्थान।

महारानी मेरी का विश्रामस्थान।

लंडन मे रहते हैं तब ग्रंथावलोकन भलीभांति नहीं हो सकता, पढ़ने के लिए हमें वहा समय ही नहीं मिलता।' परंतु इस बार 'मदीना' से जलप्रवास करते समय उन्होंने अपना बहुत सा समय अच्छे अच्छे ग्रंथ पढ़ने मे व्यतीत किया। बहुत दिनों से जिन पुस्तकों को पढ़ने की उनकी इच्छा थी उन्हे वे अपने साथ जहाज़ पर ले आये थे। इनमेसे बहुतेरी उत्तमोत्तम पुस्तकें आपने पढ़ डालीं। दोपहर के समय 'डेक' पर महारानी की कुर्सी के पास अपनी कुर्सी पर बैठकर कुछ समय तक वे पुस्तक पढ़ा करते थे। कभी कभी चुरुट पीने, या पुस्तक मे पढ़ी हुई किसी बात का महारानी से ज़िक्र करने के समय उनका पढ़ना बंद हो जाता था, अन्यथा इस सब समय में वे पढ़ने ही में निमग्न रहा करते थे।

पत्र लेखन।

बादशाह प्रति दिन पत्र लिखने मे भी अपना कुछ समय व्यतीत करते थे। जर्मन बादशाह, रशियन ज़ार, नार्वे के राजा, हेलिनिस के राजा जार्ज आदि लोगो को वे हमेशा पत्र लिखा करते थे। कहते हैं कि हिंदुस्थान से लौटते समय जहाज में बैठकर उन्होने अनेक लोगों को पत्र लिखे होंगे और इस बात का उल्लेख किया होगा कि हिंदुस्थान मे हमने अपना समय कैसे आनंद से व्यतीत किया, इस देश के निवासियों ने अपनी राजनिष्ठा किस प्रकार व्यक्त की और यहा हमने क्या क्या देखा इत्यादि। हिंदुस्थान मे प्रवास करते समय जो कुछ देखा, सुना, पढ़ा या प्रत्यक्ष अनुभव किया सो सब बादशाह और महारानी ने अपनी

नोट-बुक

मे लिख रखा है। जो बाते यहा संक्षेप मे लिखी गई थी उनका विस्तार जहाज़ पर किया गया होगा। इस नोट-बुक मे बादशाह और महारानी के स्वयं अनुभव की, अतएव अत्यंत महत्व की, अनेक बाते लिखी गई है, परंतु संभव नहीं है कि यह अनुपम [illegible] नोट-बुक दुनिया की नज़र मे आवे। हां, इसमें संदेह नहीं कि [illegible] [illegible] [illegible] के लिये बादशाह की नोट-बुक [illegible] [illegible] मे बहुत [illegible] [illegible] [illegible]। महारानी की नोट-बुक [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

जहाज़ पर बादशाह के [illegible] के लिए बड़े [illegible] [illegible] किया गया था। बादशाह 'डेक' पर

विनोद

[illegible] बादशाह [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

की लहरों पर खेल रहा है; ऐसी अवस्था में उसे खोई हुई गेंद कैसे कह सकते हैं! और हम उसके लिये क्यों दौड़ लगावें!" तब बादशाह ने कहा "अच्छा; गेंद लाने का काम तुम्हारा है। यदि गेंद खो नहीं गई है तो जाओ उसे उठा लाओ, तब फिर हम खेलेंगे।" यह सुनकर प्रतिपक्षी निरुत्तर हो गये और उन्हें छै बार चुपचाप दौड़ना पड़ा। बादशाह जहाज़ पर कुछ समय तक

ताश

भी खेलते थे। महारानी मेरी कभी ताश नहीं खेलतीं। उन्हें सीने पिरोने का काम करने का बड़ा शौक है। हाथ से सीने पिरोने का काम करती हुई वे कभी कभी दिलबहलाव के लिये इधर उधर की कुछ बातें भी किया करती थीं। उस समय बादशाह हुक्का पीने के कमरे में या अफसरों के कमरे में जाकर ताश का 'ब्रिज' या 'पेनि नैप' खेल खेला करते। इसके अतिरिक्त बादशाह के मनोरंजनार्थ, वहां

अन्य खेल

भी बहुतसे थे। 'एयर-गन' से निशाना लगाना, 'मुरगियों की लड़ाई,' 'टग ऑफ वार' इत्यादि अनेक बातें वहां हुआ करती थीं। इन खेलों में जो विजयी होता उसे पारितोषिक दिया जाता था, इस लिये खेल में स्फूर्ति और ईर्षा का बढ़िया मिश्रण होकर खूब रंग आता था। शाम को जहाज़ पर

गाना बजाना

होता था। महारानी मेरी स्वयं अनेक प्रकार के बाजे बजाना जानती हैं और गायन भी बहुत अच्छा होता है। और आर. शारदवासी भी संगीत में निपुण हैं। सायंकाल का भोजन हो जाने पर निद्रा के समय तक गाना बजाना होता था। जो कोई थोड़ा भी गाना जानता उसको भी गाना पड़ता था। इससे यहां खूब हँसी दिल्लगी हुआ करती। इसके सिवाय

गप-शप

में भी कुछ काल व्यतीत होता था। बादशाह को बहुतसी कहानियां याद हैं। कहानी कहने का उनका ढंग भी ऐसा विचित्र और चित्ताकर्षक है कि श्रोतागण हँसते हँसते लोटपोट हो जाते हैं। कहानी कहने में इत्यादि करके सब लोगों का आनंदित करने की कला बादशाह को भली भांति प्राप्त हो गई है।

'मदीना' जहाज़ पर प्रवास करते समय बादशाह के नित्य कार्यक्रम का संक्षिप्त वर्णन हो चुका। अब यह देखना चाहिये कि राजकुटुम्ब की गृहचर्या किस प्रकार की है—अर्थात् बादशाह के लड़के बच्चे और अन्य कुटुम्बीजन अपने घर में क्या किया करते हैं और कैसे रहते हैं। यह विषय बहुत मनोरंजक और शिक्षादायक भी है।

राजकुटुम्ब की गृहचर्या।

(इस विषय पर राजगृह के एक बड़े अधिकारी पुरुष ने, बादशाह पंचम जार्ज और महारानी मेरी की सम्मति से, एक लेख लिखा है जो अंग्रेजी के एक प्रसिद्ध मासिक पत्र में प्रकाशित हुआ है। उसी के आधार पर यह वृत्तान्त लिखा गया है।)

जिन लोगों का राजकुटुम्ब से किसी प्रकार का संबंध नहीं है वे इस बात की कल्पना कर नहीं सकते कि जब महारानी मेरी अपने लड़कों बच्चों को लंडन में छोड़कर इधर हिंदुस्थान में आईं तब उनका कोमल अंतःकरण पुत्रप्रेम से कितना दुःखित हुआ होगा। राजगृह से जिनका कुछ संबंध है वही लोग यह जानते हैं कि महारानी का अपने कुटुम्बीजनों पर कितना प्रेम है; और वही लोग इस बात की कल्पना भी कर सकते हैं कि महारानी को यह वियोग-दुःख कितना असह्य हुआ होगा। महारानी का सन्तान प्रेम अद्वितीय है। वे सदा कहा करती हैं कि हमारा समय अपने लड़कों बच्चों के सहवास में जैसे आनंद और सुख से व्यतीत होता है वैसा आनंद और सुख हमें और कहीं नहीं मिलता। वे अपने बच्चों के साथ प्रेम और आनंद से स्वतंत्रतापूर्वक खेला करती हैं। जब लड़के खेल खेल में कहते हैं कि हम ऐसा करेंगे, हम वैसा करेंगे, तब उनके महत्वाकांक्षा से भरे हुए इन उद्गारों की ओर महारानी का ध्यान कुतूहलता से रहा करता है। यह लिखने की आवश्यकता नहीं है कि पुत्र और कन्याओं का प्रेम भी अपनी माता पर वैसा ही अद्वितीय है।

प्रिन्स आफ वेल्स और उनके भाई प्रिन्स आलबर्ट 'गोल्फ' नामक खेल खेलने को जा रहे हैं।

जब युवराज का जन्म हुआ तब महारानी स्वयं उसके लालन पालन में अपना सारा समय व्यतीत करने लगीं। इसका परिणाम यह हुआ कि सार्वजनिक कामों की ओर ध्यान देने के लिये उन्हें कभी फुरसत ही मिलती न थी! परंतु महारानी के पद के अनुसार उन्हें किसी न किसी सार्वजनिक काम में शामिल होना ही पड़ता है; और जब ऐसा मौका आता है तब उन्हें अपने बच्चों की ओर का ध्यान कुछ कम करना पड़ता है। उस अवस्था में उन्हें बहुत दुःख होता है। वे बारबार कहा करती हैं कि "हमारा दर्जा इतना बड़ा न होता तो बहुत अच्छी बात होती। अपने पुत्रों के साथ रहने के लिये बहुत समय हमें मिलता।"

ज्यों ज्यों राजकुटुम्ब का विस्तार अधिक होने लगा त्यों त्यों जार्ज ... का निवासस्थान—यार्क कॉटेज—अंग्रेजी गृहस्थाश्रम का आदर्श होने लगा। महारानी अपने सन्तानों के लालन पालन के लिये हमेशा घरही में रहना पसंद करती हैं। वे किसी दरबार या सार्वजनिक उत्सव में बहुत कम शामिल होती हैं। उनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति ही ऐसी है कि, सामाजिक उत्सवों में शामिल होनेकी अपेक्षा वे घर में रहना अधिक पसंद करती हैं। उन्हें दरबार के दिखाऊ ठाटबाट का कुछ भी शौक नहीं है।

महारानी की इस स्वाभाविक प्रवृत्ति का एक उदाहरण एडवर्ड बादशाह की मृत्यु के थोड़ेही दिनोंके बाद, स्पष्ट रीति से देख पड़ा। उस समय राजकुटुम्ब के सब लोगों को अपने पूर्व निवासस्थान—मालबरो हाउस और यार्क काटेज—से निकल कर बकिंगहाम-महल और विंडसर-किले में रहना पड़ा था। महारानी इस बात की चिंता कर रही थीं कि हमारे लड़कों बच्चों के रहने और खेलने योग्य स्थान यहां कैसे मिलेगा। जब वे कहीं बाहर रहने जातीं तब वे स्वयं अपने कमरे के समीप ही अपने लड़कों के लिये भी एक स्वतंत्र कमरे का प्रबंध कर लेती हैं। लड़कों की देखभाल के लिये जो अफ़सर मुकर्रर हैं उनका ध्यान सदा इस बात पर दिलाया जाता है कि लड़कों के रहने और खेलने कूदने की जगह स्वच्छ और हवादार हो। यदि प्रसंगवशात् कभी ऐसा उत्तम स्थान नहीं मिलता तो वे लड़कों को स्वयं अपने शयनगृह में रखती हैं।

बड़े दिनों (क्रिसमस) में राजघराने के सब बालकों का खूब आनंद मनाने का समय रहता है। प्रथम दिन भोर होते ही महारानी सब बालकों को आनंददर्शक संदेसा भेजती हैं। इसके बाद महारानी स्वयं अपने हाथ से लड़कों को कुछ उत्तमोत्तम चीज़ें भेंट के तौर पर देती हैं। यह क्रम प्रति वर्ष का है। गत वर्ष के बड़े दिनों में महारानी मेरी हिंदुस्थान में थीं। इस लिये यद्यपि प्रेमसूचक संदेश यहां से भेजा गया तथापि भेंट की चीज़ें अपनी माता के हाथ से पाने का उत्साहजनक आनंद बालकों को नहीं हुआ। प्रतिवर्ष बादशाह और महारानी बड़े दिनों का त्योहार अपने निजी स्थान—यार्क काटेज—ही में मनाया करते हैं। यह रीति है कि, प्रथम दिन सबेरे जल्दी उठकर कुछ अल्प आहार करने के बाद, राजकन्या और राजपुत्र अपने आजा और आजी (एडवर्ड बादशाह और अलेकज़ांड्रा रानी) को आनंदसूचक सलाम करने और तब गिरजाघर में प्रार्थना करने जाते। गत वर्ष भी इसी रीति के अनुसार कार्य हुआ, क्योंकि अलेकज़ांड्रा रानी अपने सांड्रिंगहाम-महल ही में थीं। गिरजाघर से

ार्थना के बाद लौटते समय सब लड़के अपने आजा आजी के घर भोजन करने जाते हैं। भोजन हो जाने पर सायंकाल तक वहीं अनेक प्रकार के खेल खेलते हैं और फिर अपने घर लौट आते हैं। बड़े दिनों के त्योहार की आनंददायक बातें लड़के कभी भूलते नहीं—वर्षभर उन्हें उनका स्मरण रहता है। सब लड़के बड़ी उत्कंठा से बाट जोहते रहते हैं कि अब दूसरा दिन कब आयगा! क्योंकि, दूसरे दिन शाम को राजभवन के बाल रूम (नाचघर) में एक बहुत ऊंचा 'क्रिसमस ट्री' बनाया जाता है और उसमें बिजली के छोटे छोटे हजारों दीपकों का प्रकाश किया जाता है। यह तमाशा देखने के लिये राजपुत्रों के कुछ चुने हुए मित्र भी निमंत्रित किये जाते हैं। इस दिन केवल राजपुत्र और राजकन्या ही को नहीं, वरन राजभवन के छोटे बड़े सब नौकरों को भी भेट के तौर पर कुछ खिलौने और अन्य पदार्थ दिये जाते हैं। नौकरों को युवराज के हाथ से भेट दिलाई जाती है। गत वर्ष यह भेट राजकन्या मेरी के हाथ से दिलाई गई थी।

बादशाह एडवर्ड बच्चों का खूब प्यार करते थे—चाहे वह बच्चा किसी का हो। वे अपने नाती को बहुत चाहते थे। कई बार वे सबेरे उठते ही अपने महल से पैदल चलते और 'यार्क काटेज'

प्रिंस आफ वेल्स भी, अपने पिता की नाईं, जहाज पर काम करने के बड़े शौकीन हैं। इस चित्र में वे 'सबल बोट'—जहाजी नौका—को ठेल पाते हुए हैं।

में जाकर अपने नातियों से मिलते। वहां बाग में बैठकर चुट्टा पीते पीते वे अपने नातियों का खेलकूद कुतूहलपूर्वक देखा करते थे। आजा को देखकर नाती भी बहुत आनंदित हो जाते थे। जब एडवर्ड बादशाह ने सुना कि जार्ज साहब के पुत्र हुआ है तब उन्हें अत्यंत हर्ष हुआ। महारानी अलेक्झांड्रा ने एक बार हंसी हंसी में कह दिया था कि बादशाह एडवर्ड कोई बड़े आदमी नहीं हैं। वे अबतक बच्चे ही हैं!

नाती के जन्म का समाचार पाते ही बादशाह एडवर्ड इतने आनंदित हुए कि उन्होंने तुरंत अपनी माता (विक्टोरिया) से कहा कि "मेरे और मेरे भाइयों के छुटपन में जिस झूले का उपयोग किया गया था वह इस नूतन राजपुत्र के लिए भिजवा दीजिये।" इस झूले का भी इतिहास सुनने योग्य है; पहले पहल यह झूला महारानी विक्टोरिया ने अपने लड़कों के लिए बनवाया था। इस झूले पर एक चांदी की पट्टी लगी है जिस पर यह लेख है कि "यह झूला प्रथम राजकन्या विक्टोरिया (महारानी विक्टोरिया की कन्या और जर्मनी के वर्तमान बादशाह की माता) के लिए सन् १८४० ई० बनवाया गया। इ[illegible] बाद यही झूला महार[illegible] विक्टोरिया के सब [illegible] और कन्याओं के [illegible]

सब राजकुमार छोटे छोटे टट्टू पर सवार होकर हवा खाने जाते हैं।

इस चित्र के बाईं ओर से दाहिने ओर देखिये—[illegible]

उन्होंने प्रसन्न होकर बालकों की प्रशंसा की और उचित पुरस्कार भी दिया।

राजकन्या मेरी का स्वभाव बहुत करके अपनी माता जी के समान देख पड़ता है। महारानी के समान उनको भी स्थूल खेल कूद पसंद नहीं है। राजकन्या मेरी सुशीलता की साक्षात मूर्ति ही है। जब कभी टेनिस खेलने के समय सिर्फ तीन भाई ही रहते हैं, चौथा खेलनेवाला कोई मिलता नहीं, उस समय, या ऐसे ही और मौकों पर जब एक खिलाड़ी की कमी होती है तब, राजकन्या मेरी अपने भाइयों के संग खेलने को तयार हो जाती है। इसका कारण यह है कि अपने भाइयों का उत्साह भंग करके उन्हें निराश करना उसे अच्छा नहीं लगता। परंतु जब यह अकेली रहती है तब उसे पुस्तक पढ़ने या सीने पिरोने का काम करने में समय व्यतीत करना अच्छा मालूम होता है। उसने अपने भाइयों के साथ घोड़े पर बैठने का अभ्यास किया है; परंतु घोड़े की सवारी वह अपने दिल से पसंद नहीं करती। सब राजपुत्र घोड़े की सवारी में निपुण हैं। उन्हें इसका शौक ही है। इस समय युवराज यही देख रहे हैं कि घोड़े पर बैठ कर हम शिकार खेलने कब बाहर जायंगे। यह मौका भी शीघ्र ही आनेवाला है। उन्हें घोड़े की सवारी में बिलकुल भय नहीं लगता। इससे जान पड़ता है कि युवराज भी अपने पिता की नाईं घोड़े की सवारी में पूरे निष्णात होंगे।

राजकुटुम्ब में भोज।

राजपुत्रों ने विंडसर और सांड्रिंगहाम राजमहल के मैदान में अपनी माता को अनेक बार 'गोल्फ' खेलने को बुलाया; परंतु वे उनके साथ 'गोल्फ' खेलने को वहां कभी नहीं गईं। सच बात तो यह है कि महारानी ने अपनी आयु में 'गोल्फ' खेलने के डंडे को आज तक कभी छुआ तक नहीं!

जब महारानी और बादशाह घर में रहते हैं तब उनका यह नियम है कि एक बार अवश्य ही अपने लड़कों से मिलते हैं। चाहे काम कितना भी क्यों न हो—और चाहे जितने महत्व का काम क्यों न हो—थोड़ा बहुत समय निकाल कर अपने लड़कों के साथ प्रेम और विनोद की कुछ बातें किये बिना बादशाह को अच्छा नहीं लगता। कभी कभी बादशाह लड़कों के विद्याभ्यास के कमरे में जाते और कभी कभी प्रातःकाल के भोजन के समय जाते हैं और वहीं उनसे मिल लेते हैं। उन्होंने सख्त ताकीद दे दी है कि सरकारी काम करते समय कोई लड़के हमारे पास न रहें। दिन भर में और भी ऐसा समय नियत किया गया है कि जब लड़के उनके पास नहीं जाते। सरकारी काम खतम हो जाने पर जब बादशाह निजी दालान में बैठते हैं तब वहां कोई भी जा सकता है।

[illegible] घर आते हैं तब, अपनी माता के साथ भोजन करते हैं। गत वर्ष बड़े दिनों की छुट्टी में जब वे घर आये तब [illegible] गा। [illegible] स्मशान- [illegible] घोड़े पर [illegible] ा; परंतु [illegible] में बैठ [illegible] युवराज ने [illegible] ने मुझे [illegible] साथ में [illegible] है कि

राजकन्या मेरी बाइसिकल पर बैठती है।

युवराज को घोड़े पर बैठने का बहुत शौक है। उस दिन निराशाजनक [illegible] अवश्य हुआ होगा।

[illegible] यह है कि जो [illegible] और [illegible] तरह जानते हैं, वहां [illegible] है। [illegible] कि, वर्तमान राजभवन में जो सुख, समाधान और शांति देख पड़ रही, सर्वांश रूप से [illegible] और [illegible] है। बादशाह [illegible] और [illegible] की [illegible]—निष्ठा प्रगट है। [illegible] पर आरूढ होने के [illegible] एक दिन भोजन [illegible] बादशाह दिल्लगी [illegible] कुछ बातें कर रहे थे [illegible] में उनके एक मित्र ने "आपका सर्वोत्तम एक और सलाहकार मंत्री कौन है?" [illegible] ने फौरन जवाब [illegible] "मेरी स्त्री!" इस में बनावट का लेश भर भी न था। जो बात थी वही कही। अनेक कामों में महारानी ने [illegible] को बहुत अच्छी सलाह दी है। जब कोई विकट मा[मला] आ जाता और यह न सूझता कि "अब क्या करें?" तब महा[रानी] की गंभीर सलाह ने बादशाह की बहुत सहायता की है।

जब दिन भर का नियत काम खतम हो जाता है तब बाद[शाह] उस दिन आये हुए सब कागज पत्रों और रिपोर्टों का उचित [illegible] करने में लग जाते हैं। उसी समय महारानी भी उनके समीप आ बैठ जाती हैं और अपना काम करने लगती हैं। कागज पत्रों को सुव्यवस्थित करने में कभी कभी कई घंटे व्यतीत हो जाते हैं, [illegible] भी महारानी चुपचाप अपना काम क[रती] रहें, मुंह से एक शब्द भी न कहकर, बैठी रहती हैं। इस प्रकार को सम[य] दोनों को बहुत पसंद है। बादशाह ने [अने]कबार प्रगटरूप से कहा है कि जब म[हा]रानी हमारे समीप रहती हैं तब हम [illegible] काम और अच्छी तरह कर सकते [illegible]। राजभवन के अफसरों द्वारा मालूम हु[आ] है कि बादशाह का यह कथन सत्य [illegible]। बादशाह और महारानी का गृहस्था[श्रम] केवल ऐहिक लाभ के हेतु हिस्सेदारी [illegible] व्यवसाय नहीं है (जैसा कि विलायत [illegible] बहुतेरे विवाहित स्त्री पुरुषों का होता है) किंतु उनका विवाह-संबंध अन्योन्य [illegible] और अनुराग का उत्कर्ष करनेवाला [illegible]। इसमें संदेह नहीं कि बादशाह जार्ज औ[र] महारानी मेरी की जोडी ने, विलायत [illegible] अपनी लक्षावधि प्रजा को, दम्पति-प्रेम [illegible] एक अनुकरणीय आदर्श दिखा दिया है।

सार्वजनिक कामों में से बहुतेरे का[म] बादशाह महारानी की ओर लगा दि[illegible] करते हैं। इस बात का निर्णय महारा[नी] ही के द्वारा हुआ करता है कि राजदरबा[र] में किन किन लोगों को आने देना चाहि[ये] और किन लोगों को न आने देना चाहिये। इसका उदाहरण हाल ही में वहां देखा गया। राजदरबार में जिन लोगों को निमंत्रित करना था उनके नाम की एक फिहरिस्त लिखकर बादशाह को दिखाई गई और निमंत्रण पत्र भेजने की अनुमति [illegible] गई। जिस अफसर ने यह फिहरिस्त बादशाह के सामने पेश की उसने विनयपूर्वक कहा कि इस फिहरिस्त से अमुक स्त्री का [illegible] अलग कर दिया गया है; परंतु यह स्त्री समाज में बहुत प्रसिद्ध है इसलिये उसको निमंत्रण अवश्य भेजना चाहिये। यह [illegible] बादशाह ने उत्तर दिया कि "इस स्त्री का नाम महारानी ने अलग कर दिया है। मैं स्वतः उस स्त्री के संबंध में कुछ जानता नहीं।

महारानी ने उसके विषय में जो निर्णय किया है उसके विरुद्ध में कोई कार्रवाई कर नहीं सकता। अब वह स्त्री दरबार में उपस्थित हो नहीं सकती।"

जो लोग बादशाह को भेट के लिये अपने यहां बुलाते हैं उनकी भी फिहरिस्त महारानी ही जांचती और मंजूर करती हैं। महारानी यह सन्मान बहुत कम लोगों को देती हैं। इस विषय में महारानी ने, विक्टोरिया रानी से शिक्षा ग्रहण की है। इसके पहले जो बहुतसे लोग राजदरबार में देख पड़ते थे उनका अब लोप हो गया है। गतवर्ष के राजदरबार में अनेक ठकुरसुहाती करनेवाले बड़े आदमियों की निराशा हुई!

महारानी मेरी गृहकार्य में बहुत दक्ष हैं। वे अपने घर की छोटी मोटी प्रायः सब बातों पर ध्यान दिया करती हैं। राजभवन के लोग आश्चर्य करते हैं कि महारानी किसी काम को तुच्छ नहीं समझतीं। आयव्यय की जांच बहुत सावधानी से करती हैं। जब उन्हें कोई बात पसंद नहीं होती तो उसकी पूछपाछ करके ठीक ठीक हाल जान लेती हैं। उन्होंने अपनी माता डचेस आफ टेक से इस विषय की उत्तम शिक्षा प्राप्त की है। यह लिखने में कोई हर्ज नहीं कि वर्तमान समय में बादशाह का निजी गृहप्रबंध जिस उत्तम रीति से हो रहा है वैसा पहले कभी देखा नहीं गया। इसका श्रेय महारानी मेरी को है। महारानी की दृष्टि से कोई बात छिप नहीं सकती। जब वे देखती हैं कि किसी विभाग में फजूल खर्च किया गया है तो वे नाराज होती हैं। महारानी की नाराजगी सहन करना बहुत कठिन काम है।

प्रिन्स जान और उनकी खेलनेकी गाड़ी।

एकबार बादशाह एडवर्ड ने कहा था कि "यदि जार्ज और मे (मेरी) राजघराने में न होते, तो इन दोनों ने देहाती कुटुम्ब का एक अच्छा नमूना दिखा दिया होता।" यह कथन सत्य है। बादशाह और महारानी की सादगी देखकर ही यह कहा गया है। उन्हें दरबारी वैभव और बड़प्पन की बहुत चाह नहीं है। उन्हें शहर में रहना भी पसंद नहीं। देहात में देहातियों की नाईं रहना वे पसंद करते हैं। अपनी निजी जमींदारी का प्रबंध करने, अपनी देहाती रैयत की दशा सुधारने, देहात में घोड़े पर बैठकर हवा खाने, शिकार खेलने, पानी में बंसी डालकर मछलियां पकड़ने आदि सादे कामों में समय बिताना उन्हें बहुत ही अच्छा लगता है। इसी प्रकार महारानी का अपने गृहकार्य ही में लगे रहना, विशेषतः बालकों की शिक्षा पर ध्यान देना बहुत पसंद है। परंतु उच्च पद पर आरूढ़ होने के कारण अनेक सार्वजनिक कामों में उनका बहुत समय चला जाता है; इससे उन्हें जो काम स्वभावतः पसंद हैं उनकी ओर ध्यान देने की फुरसत नहीं मिलती। यह बात दोनों के हृदय में खटकती रहती है। तथापि, दोनों के अंतःकरण में अपने अपने राजकीय कर्तव्यों की जागृति पूरी है, इस लिये अपने निज की पसंदगी पर ध्यान न देते हुए वे अपने उच्च पद और परिस्थिति के उचित ही सब सर्वसाधारण कामों में अपना समय बिताया करते हैं।

इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध कवि टेनीसन ने जार्ज बादशाह के आजा के विषय में लिखा है कि "उन्होंने अपने लोगों का सदा के लिये कल्याण किया।" राजसिंहासन पर आरूढ़ होने के बाद बादशाह जार्ज ने अपने एक निजी अफसर से कहा था कि हमारी भी यही महत्वाकांक्षा है कि उक्त कवि का वचन हमारे जीवन में चरितार्थ हो। जिस दिन जार्ज बादशाह के मस्तक पर राज्यशासन की जवाबदारी आ पहुंची उस दिन उन्होंने प्रगटरूप से कहा कि राजा होने में बहुत बड़ी जवाबदारी का बोझा अपने सिरपर रखना पड़ता है। जब अफसर लोगों ने उनके पास जाकर कहा कि अब आप युवराज नहीं हैं, अब आप राजा हैं, और जब उन लोगों ने राजा के लिये अपनी निष्ठा प्रगट की, तब जार्ज बादशाह गद्गद स्वर से बोले "सभ्य महाशय, मैं आप लोगों को धन्यवाद देता हूं। मेरे मस्तक पर जो महत्कार्य का बोझा आ पड़ा है उसका मैं उचित रीति से निर्वाह करूं, इसलिये परमेश्वर की प्रार्थना करो।" इस बात का निर्णय अगली पीढ़ी के लोग करेंगे कि बादशाह ने अपने उद्देश के अनुसार कार्रवाई की या नहीं। इसमें कुछ सन्देह नहीं कि वे अपने कर्तव्य पालन में मिहनत करते हैं और किसी प्रकार की बेपरवाही नहीं करते। वेस्टमिनिस्टर एबी नामक गिरजाघर में उन्होंने जो शपथ ली है उसके अनुसार आचरण करने का वे सदा प्रयत्न करते हैं।

अपने नौकरों के साथ राजा और रानी का बर्ताव अत्यंत ममता और प्यार का है। जब कोई नौकर अच्छा काम करता है तब वे प्रसन्न मुख और कृपा दृष्टि से उसकी ओर देखते; प्यार की दो बातें कहते और कुछ पारितोषिक भी देते हैं। इस विषय के अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं; परंतु ऐसा करने से लेख बहुत बढ़ जायगा। इस लिये सिर्फ एकही उदाहरण यहां दिया जाता है। राज्याभिषेक के कुछ दिन बाद एक छोटा अफ़सर कुछ कागज़ पत्रों पर दस्तखत कराने के लिये बादशाह के समीप आया। दस्तखत करा के वह लौटकर जा ही रहा था कि इतने में बादशाह ने उसे पुकारकर कहा "मैंने सुना है कि इन दिनों तुम्हें बहुत अधिक काम करना पड़ता है।" उस अफ़सर ने कहा हां, बात सच है। तब राजा ने कहा "मैं तुम्हें धन्यवाद देता हूं। स्वीकार कीजिये। मैं यह बात कभी न भूलूंगा कि तुम्हें बहुत अधिक परिश्रम करना पड़ता है। यद्यपि इस काम के लिये तुमको अधिक वेतन मिलेगा तथापि यह न समझिये कि बस इतनाही सब कुछ है। जो लोग मेरा काम दिल लगा कर करते हैं वे जानते हैं कि मैं कृतघ्न स्वामी नहीं हूं।" बादशाह के ये उद्गार थोड़े ही दिनों में सत्य प्रतीत हुए। उस अफ़सर का वेतन बढ़गया, उसे एक बड़ी पदवी मिली और निजी अधिकारियों में बहुत बड़े ओहदे पर उसको नियत कर दिया।

एकबार राजभवन के किसी बड़े आदमी ने कहा था कि राजा और रानी का कुटुम्बिक सुख देख कर मनप्रसन्न होता है और चित्त को समाधान होता है। यह बात अक्षरशः सत्य है। राजा रानी में परस्पर अकृत्रिम प्रेम होने के कारण उनके अंतःकरण में अभागियों के

* * * * * * *

इकला रह गई। यह शोक जनक समाचार सुनते ही महारानी मेरी उस स्त्री से मिलने गई और उसके अंतःकरण को शांत करने का यत्न किया। महारानी ने उस स्त्री से कहा "मैं भी मल्लाह की स्त्री हूं। मैं तुम्हारी सहायता करना चाहती हूं। मेरी अल्प सहायता का स्वीकार कीजिये।" लिखने की आवश्यकता नहीं कि महारानी मेरी को इस बात का सात्विक अभिमान है कि हमारे पति ने मल्लाह का काम सीखा है। महारानी ने उस विधवा स्त्री की यथायोग्य सहायता की।

इस लेख के आरम्भ में लिखा गया है कि जिन लोगों का राजगृह से कुछ संबंध है वही इस बात को जान सकते हैं कि महारानी अपने कुटुम्बी जनों पर कितना प्रेम करती हैं। अब अन्त में यह लिखते हैं कि, "ईश्वर राजा रानी का भला करे"—इस वाक्य का रहस्य भी वही लोग जान सकते हैं जो राजभवन और राजकुटुम्ब से परिचित हैं।

उन्होंने प्रसन्न होकर बालकों की प्रशंसा की और [illegible] पुरस्कार भी दिया।

राजकन्या मेरी का स्वभाव बहुत करके अपनी माता ही के समान देख पड़ता है। महारानी के समान उसको भी [illegible] खेल पसंद नहीं है। राजकन्या मेरी [illegible] जब कभी टेनिस खेलने के समय सिर्फ तीन भाई ही [illegible] चौथा खेलनेवाला कोई मिलता नहीं, उस समय, या [illegible] और मौकों पर जब एक खिलाड़ी की कमी होती है तब, राजकन्या मेरी अपने भाइयों के संग खेलने को तत्पर हो जाती है। इसका कारण यह है कि अपने भाइयों का उत्साह भंग करके उन्हें निराश करना उसे अच्छा नहीं लगता। परंतु जब वह अकेली रहती है तब उसे पुस्तक पढ़ने या सीने पिरोने का काम करने में समय व्यतीत करना अच्छा मालूम होता है। उसने अपने भाइयों के साथ घोड़े पर बैठने का अभ्यास किया है, परंतु घोड़े की सवारी वह अपने दिल से पसंद नहीं करती। सब राजपुत्र घोड़े की सवारी में निपुण हैं। उन्हें इसका शौक ही है। इस समय युवराज यही देख रहे हैं कि घोड़े पर बैठ कर हम शिकार खेलने कब बाहर जायंगे। यह मौका भी शीघ्र ही आनेवाला है। उन्हें घोड़े की सवारी में बिलकुल भय नहीं लगता। इससे जान पड़ता है कि युवराज भी अपने पिता की नाईं घोड़े की सवारी में पूरे निष्णात होंगे।

राजकुटुम्ब में भोज।

राजपुत्रों ने विंडसर और सांडिंगहाम राजमहल के मैदान में अपनी माता को अनेक बार 'गोल्फ' खेलने को बुलाया, परंतु वे उनके साथ 'गोल्फ' खेलने को वहां कभी नहीं गईं। सच बात तो यह है कि महारानी ने अपनी आयु में 'गोल्फ' खेलने के डंडे को आज तक कभी छुआ तक नहीं!

जब महारानी और बादशाह घर में रहते हैं तब उनका यह नियम है कि एक बार अवश्य ही अपने लड़कों से मिलते हैं। चाहे काम कितना भी क्यों न हो—और चाहे जितने महत्व का काम क्यों न हो—थोड़ा बहुत समय निकाल कर अपने लड़कों के साथ प्रेम और विनोद की कुछ बातें किये बिना बादशाह को अच्छा नहीं लगता। कभी कभी बादशाह लड़कों के विद्याभ्यास के कमरे में जाते और कभी कभी प्रातःकाल के भोजन के समय जाते हैं और वहीं उनसे मिल लेते हैं। उन्होंने सख्त ताकीद दे दी है कि सरकारी काम करते समय कोई लड़के हमारे पास न रहें। दिन भर में और भी ऐसा समय नियत किया गया है कि जब लड़के उनके पास नहीं जाते। सरकारी काम खतम हो जाने पर जब बादशाह निजी दालान में बैठते हैं तब वहां कोई भी जा सकता है।

राजकन्या मेरी हमेशा अपनी माता के साथ भोजन करने बैठती है। युवराज और राजपुत्र आलबर्ट भी, छुट्टी के दिनों में जब घर आते हैं तब, अपनी माता के साथ भोजन करते हैं। गत वर्ष बड़े दिनों की छुट्टी में जब वे घर आये तब उन्हें अपनी माता की अनुपस्थिति से दुःख अवश्य हुआ होगा।

बादशाह एडवर्ड की मृत्यु के बाद उनके मृत शरीर को स्मशान-भूमि में ले जाने के समय जलूस निकला था। उस समय घोड़े पर बैठ कर जलूस में जाने का युवराज ने बहुत हठ किया, परंतु बादशाह की आज्ञा से उन्हें अपने भाइयों के साथ गाड़ी ही में बैठ कर जाना पड़ा। जब सब अंत्य संस्कार पूर्ण हो गये तब युवराज ने अपने छोटे भाई हेनरी से कहा "आज न जाने क्यों पिता ने मुझे घोड़े पर बैठने न दिया! इस जुलूस में और सब लोगों के साथ मैं भी घोड़े पर बैठता तो क्या हानि होती!" तात्पर्य यह है कि युवराज को घोड़े पर बैठने का बहुत शौक है। [illegible]

[illegible]

राजकन्या मेरी बाइसिकल पर बैठती है।

[illegible] शाह को बहुत अच्छी सलाह देती हैं। जब कोई [illegible] आ जाता और यह न सूझता कि "अब क्या करें!" [illegible] की गंभीर सलाह से बादशाह को बहुत सहायता होती है।

जब दिन भर का नियत काम खतम हो जाता है तब उस दिन आये हुए सब कागज पत्रों और चिट्ठियों का [illegible] करने में लग जाते हैं। उसी समय महारानी भी उनके पास बैठ जाती हैं और अपना काम करने लगती हैं। [illegible] सुव्यवस्थित करने में कभी कभी कई घंटे व्यतीत हो [illegible] भी महारानी चुपचाप [illegible] मुंह से एक शब्द भी न [illegible] घंटा रहता है। इस प्रकार [illegible] दोनों को बहुत पसंद है। [illegible] व्यवहार प्रगटरूप में कहा [illegible] रानी हमारे समीप रहती हैं [illegible] काम और अच्छी तरह [illegible] राजभवन के अफसरों [illegible] है कि बादशाह का यह [illegible] बादशाह और महारानी का [illegible] केवल ऐहिक लाभ के हेतु [illegible] व्यवसाय नहीं है (जैसा कि [illegible] बहुतेरे विवाहित स्त्री पुरुषों का [illegible]) किंतु उनका विवाह-संबंध [illegible] और अनुराग का उत्कर्ष [illegible] इसमें संदेह नहीं कि बादशाह [illegible] महारानी मेरी की जोड़ी ने, [illegible] अपनी लक्षावधि प्रजा को [illegible] एक अनुकरणीय आदर्श दिखा [illegible]

सार्वजनिक कामों में से [illegible] बादशाह महारानी की और [illegible] करते हैं। इस बात का निर्णय [illegible] ही के द्वारा हुआ करता है कि [illegible] में किन किन लोगों को आने देना [illegible] और किन लोगों को न आने देना चाहिये। इसका [illegible] हाल ही में यहां देखा गया। राजदरबार में [illegible] को निमंत्रित करना था उनके नाम की एक फिहरिस्त [illegible] बादशाह को दिखाई गई और निमंत्रण पत्र भेजने की अनुमति [illegible] गई। जिस अफसर ने यह फिहरिस्त बादशाह के सामने [illegible] उसने विनयपूर्वक कहा कि इस फिहरिस्त से अमुक स्त्री [illegible] अलग कर दिया गया है; परंतु यह स्त्री समाज में बहुत [illegible] इसलिये उसको निमंत्रण अवश्य भेजना चाहिये। यह [illegible] बादशाह ने उत्तर दिया कि "इस स्त्री का नाम महारानी ने [illegible] कर दिया है। मैं स्वतः उस स्त्री के संबंध में कुछ [illegible]

महारानी ने उसके विषय में जो निर्णय किया है उसके विरुद्ध मैं कोई कार्रवाई कर नहीं सकता। अब वह स्त्री दरबार में उपस्थित हो नहीं सकती।"

जो लोग बादशाह को भेट के लिये अपने यहां बुलाते हैं उनकी भी फिहरिस्त महारानी ही जांचती और मंजूर करती हैं। महारानी यह सन्मान बहुत कम लोगों को देती हैं। इस विषय में महारानी ने, विक्टोरिया रानी से शिक्षा ग्रहण की है। इसके पहले जो बहुतसे लोग राजदरबार में देख पड़ते थे उनका अब लोप हो गया है। गतवर्ष के राजदरबार में अनेक ठकुरसुहाती करनेवाले बड़े आदमियों को निराशा हुई!

महारानी मेरी गृहकार्य में बहुत दक्ष हैं। वे अपने घर की छोटी छोटी प्रायः सब बातों पर ध्यान दिया करती हैं। राजभवन के लोग आश्चर्य करते हैं कि महारानी किसी काम को तुच्छ नहीं समझतीं। आयव्यय की जांच बहुत सावधानी से करती हैं। जब उन्हें कोई बात पसंद नहीं होती तो उसकी पूछपाछ करके ठीक ठीक हाल जान लेती हैं। उन्होंने अपनी माता डचेस आफ टेक से इस विषय की उत्तम शिक्षा प्राप्त की है। यह लिखने में कोई हर्ज नहीं कि वर्तमान समय में बादशाह का निजी गृहप्रबंध जिस उत्तम रीति से हो रहा है वैसा पहले कभी देखा नहीं गया। इसका श्रेय महारानी मेरी को है। महारानी की दृष्टि से कोई बात छिप नहीं सकती। जब वे देखती हैं कि किसी विभाग में फजूल खर्च किया गया है तो वे नाराज होती हैं। महारानी की नाराजगी सहन करना बहुत कठिन काम है।

एकबार बादशाह एडवर्ड ने कहा था कि "यदि जार्ज और मे (मेरी) राज घराने में न होते, तो इन दोनों ने देहाती कुटुम्ब का एक अच्छा नमूना दिखा दिया होता।" यह कथन सत्य है। बादशाह और महारानी की सादगी देखकर ही यह कहा गया है। उन्हें दरबारी वैभव और बड़प्पन की बहुत चाह नहीं है। उन्हें शहर में रहना भी पसंद नहीं। देहात में देहातियों की नाईं रहना वे पसन्द करते हैं। अपनी निजी जमींदारी का प्रबंध करने, अपनी देहाती रैयत की दशा सुधारने, देहात में घोड़े पर बैठकर हवा खाने, शिकार खेलने, पानी में बंसी डालकर मछलियां पकड़ने आदि सादे कामों में समय बिताना उन्हें बहुत ही अच्छा लगता है। इसी प्रकार महारानी को अपने गृहकार्य ही में लगे रहना, विशेषतः बालकों की शिक्षा पर ध्यान देना बहुत पसन्द है। परंतु उच्च पद पर आरूढ़ होने के कारण अनेक सार्वजनिक कामों में उनका बहुत समय चला जाता है; इससे उन्हें जो काम स्वभावतः पसंद हैं उनकी ओर ध्यान देने की फुरसत नहीं मिलती। यह बात दोनों के हृदय में खटकती रहती है। तथापि, दोनों के अंतःकरण में अपने अपने राजकीय कर्तव्यों की जागृति पूरी है, इस लिये अपने निज की पसंदगी पर ध्यान न देते हुए वे अपने उच्च पद और परिस्थिति के उचित ही सब सर्वसाधारण कामों में अपना समय बिताया करते हैं।

इंग्लैन्ड के प्रसिद्ध कवि टेनीसन ने जार्ज बादशाह के आजा के विषय में लिखा है कि "उन्होंने अपने लोगों का सदा के लिये कल्याण किया।" राजसिंहासन पर आरूढ़ होने के बाद बादशाह जार्ज ने अपने एक निजी अफसर से कहा था कि हमारी भी यही महत्वाकांक्षा है कि उक्त कवि का वचन हमारे जीवन में चरितार्थ हो। जिस दिन जार्ज बादशाह के मस्तक पर राज्य शासन की जवाबदारी आ पहुंची उस दिन उन्होंने प्रगटरूप से कहा कि राजा होने में बहुत बड़ी जवाबदारी का बोझा अपने सिरपर रखना पड़ता है। जब अफसर लोगों ने उनके पास जाकर कहा कि अब आप युवराज नहीं हैं, अब आप राजा हैं, और जब उन लोगों ने राजा के लिये अपनी निष्ठा प्रगट की, तब जार्ज बादशाह गद्गद स्वर से बोले "सभ्य महाशय, मैं आप लोगों को धन्यवाद देता हूं। मेरे मस्तक पर जो महत्कार्य का बोझा आ पड़ा है उसका मैं उचित रीति से निर्वाह करूं, इसलिये परमेश्वर की प्रार्थना करो।" इस बात का निर्णय अगली पीढ़ी के लोग करेंगे कि बादशाह ने अपने उद्देश के अनुसार कार्रवाई की या नहीं। इसमें कुछ सन्देह नहीं कि वे अपने कर्तव्य पालन में मिहनत करते हैं और किसी प्रकार की बेपरवाही नहीं करते। वेस्टमिनिस्टर एबी नामक गिरजाघर में उन्होंने जो शपथ ली है उसके अनुसार आचरण करने का वे सदा प्रयत्न करते हैं।

अपने नौकरों के साथ राजा और रानी का बर्ताव अत्यंत ममता और प्यार का है। जब कोई नौकर अच्छा काम करता है तब वे प्रसन्न मुख और कृपा दृष्टि से उसकी ओर देखते; प्यार की दो बातें कहते और कुछ पारितोषिक भी देते हैं। इस विषय के अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं; परंतु ऐसा करने से लेख बहुत बढ़ जायगा। इस लिये सिर्फ एकही उदाहरण यहां दिया जाता है। राज्याभिषेक के कुछ दिन बाद एक छोटा अफ़सर कुछ कागज़ पत्रों पर दस्तखत कराने के लिये बादशाह के समीप आया। दस्तखत करा के वह लौटकर जा ही रहा था कि इतने में बादशाह ने उसे पुकारकर कहा "मैंने सुना है कि इन दिनों तुम्हें बहुत अधिक काम करना पड़ता है।" उस अफ़सर ने कहा हां, बात सच है। तब राजा ने कहा "मैं तुम्हें धन्यवाद देता हूं। स्वीकार कीजिये। मैं यह बात कभी न भूलूंगा कि तुम्हें बहुत अधिक परिश्रम करना पड़ता है। यद्यपि इस काम के लिये तुमको अधिक वेतन मिलेगा तथापि यह न समझिये कि बस इतनाही सब कुछ है। जो लोग मेरा काम दिल लगा कर करते हैं वे जानते हैं कि मैं कृतघ्न स्वामी नहीं हूं।" बादशाह के ये उद्गार थोड़े ही दिनों में सत्य प्रतीत हुए। उस अफ़सर का वेतन बढ़ गया, उसे एक बड़ी पदवी मिली और निजी अधिकारियों में बहुत बड़े ओहदे पर उसको नियत कर दिया।

प्रिन्स जान और उनकी खेलनेकी गाड़ी।

एकबार राजभवन के किसी बड़े आदमी ने कहा था कि राजा और रानी का कौटुम्बिक सुख देख कर मन प्रसन्न होता है और चित्त का समाधान होता है। यह बात अक्षरशः सत्य है। राजा रानी में परस्पर अकृत्रिम प्रेम होने के कारण उनके अंतःकरण में अभागियों के [illegible]

हूं। मैं तुम्हारी सहायता करना चाहती हूं। मेरी अल्प सहायता का [illegible]

यता की।

इस लेख के आरंभ में लिखा गया है कि जिन लोगों का राजगृह से कुछ संबंध है वही इस बात को जान सकते हैं कि महारानी अपने कुटुम्बी जनों पर कितना प्रेम करती हैं। अब अंत में यह लिखते हैं कि, "ईश्वर राजा रानी का भला करे"—इस वाक्य का रहस्य भी वही लोग जान सकते हैं जो राजभवन और राजकुटुम्ब से परिचित हैं।

रूस के वर्तमान ज़ार बड़े नामी फोटोग्राफर हैं। आपने युवराज के भिन्न भिन्न वेशों में स्वयं जो फोटो निकाले हैं उनके चि
प्रकाशित किये गये हैं। इन चित्रों से यह बात विदित होगी कि रूस के भावी ज़ार को राजपद के योग्य शिक्षा किस प्रकार दी जा र

नं० १ तेरहवीं ग्रेनेडीयर पलटन के प्रधान अफसर।
०२ कोसाक पलटन के प्रधान सेनानायक।
०३ घुड़सवारों के मुख्य नायक।
०४ नं. १ वाले चित्र के समान।

नं० ५ नं. २ वाले चित्र के समान।
नं० ६ फौज के साथ कूच।
नं० ७ घर की पोशाक में।
नं० ८ शिकारी के वेश में।

नं० ९ कर्मी-सरदार के वेश में।

राजमाता अलेक्ज़ेंड्रा महारानी।

स्वर्गवासी बादशाह सप्तम एडवर्ड की पत्नी और वर्तमान बादशाह पंचम जार्ज की माता महारानी अलेक्ज़ेंड्रा पश्चिमी देशों की सुंदर और रूपवती स्त्रियों में प्रसिद्ध हैं। आज हम उनका चित्र प्रकाशित करके यह दिखाना चाहते हैं कि इस समय वृद्धावस्था और वैधव्यावस्था में होने पर भी उन्होंने अपने स्वरूप की सुंदरता और मोहकता किस प्रकार कायम रखी है। पश्चिमी वैद्यों की राय है कि महारानी को इस अनुपम सुंदरता का मुख्य कारण उनका सादा भोजन ही है। निम्न लिखित बातों से उनके भोजन की सादगी लोगों को मालूम होजायगी।

राजमाता अलेक्ज़ेंड्रा महारानी।

महारानी ने बाल्यावस्था से ही सादे भोजन का नियम स्वीकार किया है। कहते हैं कि उनके भोजन की सादगी देखकर कभी कभी उनकी सास (महारानी विक्टोरिया) नाराज़ हो जाया करती थी और कहती थी कि इस तरह अल्प आहार और सादा भोजन करके तुम कैसे रह सकोगी? परंतु उन्होंने अपने भोजन के नियम में कभी किसी के कहने सुनने से परिवर्तन नहीं किया!

महारानी अलेक्ज़ेंड्रा एकबार ही खूब पेटभर खाती नहीं। हलका और अल्प आहार उन्हें बहुत पसंद है। जब कभी मिहनत का कोई काम करना पड़ता है, जिससे शरीर में बहुत थकावट आजाने का संभव हो, तब वे काम करने के पहले एक प्यालाभर दूध पी लेती हैं। इससे थकावट नहीं आती और उनकी शक्ति कायम रहती है।

पेय पदार्थों में दूध, नारंगी या संतरे का शरबत उन्हें बहुत पसंद है। वे कभी चाय, काफ़ी, चोकोलेट या मुसकरात्मक [illegible] मद्य (शराब) पीती नहीं। वे दही, मक्खन और Cheese बड़े प्रेम से खाती हैं।

महारानी अलेक्ज़ेंड्रा मांसाहार प्रायः कभी करती नहीं, यदि कभी इसका स्वीकार करती हैं तो थोड़ासा सफ़ेद मांस (White meat) ही खाती हैं। शाकाहार उन्हें बहुत पसंद है। बादाम, अखरोट, पिस्ता, किशमिश, अंजीर आदि अनेक प्रकार के फल ही उनके भोजन के मुख्य पदार्थ हैं। मसालेदार अहार को तो वे छूती तक नहीं!

सबेरे कुछ थोड़ेसे फल, अंडे और दूध या शरबत यही उनका भोजन है। दो पहर के समय साधारण पदार्थों के साथ शहद (मधु) उनका प्रिय पदार्थ है। दो पहर के बाद चाय के बदले गरम दूध ही लेती हैं। रात्रि के समय दो पहर के भोजन की अपेक्षा कुछ पदार्थ अधिक होते हैं

इस प्रकार का सादा भोजन करने से ही महारानी अलेक्ज़ेंड्रा इतनी सुंदर और आरोग्य हैं। सादे भोजन के साथ स्वच्छ और ताज़ी हवा तथा नियमित व्यायाम की भी आवश्यकता है। वे अपनी मानसिक शांति और प्रसन्नता का कदापि भंग होने नहीं देतीं। क्योंकि मानसिक शांति और आनंद का भंग होनेसे शरीर पर बुरा परिणाम होता है।

महाराष्ट्र-साहित्य-वीर विष्णुशास्त्री चिपळूणकर।

क्या हिन्दी साहित्य प्रेमियों में कोई ऐसा भी पुरुष है जो स्वर्गवासी विष्णुशास्त्री चिपलूनकर के नाम से अपरिचित न हो? पंडित गंगाप्रसाद अग्निहोत्रीजी ने "निबंधमालादर्श" नाम की पुस्तक लिखकर चिपलूनकर का नाम हिन्दी के संसार में अजरामर कर दिया है। चिपलूनकर की मृत्यु को तीस वर्ष हो गये। जिस दिन उनकी मृत्यु हुई वह दिन हर साल, उनके चरित्र और गुणों का स्मरण तथा जागृति करने के हेतु, सार्वजनिक रीति से अत्यन्त पवित्र समझा जाता है। प्रति वर्ष पूना में एक बहुत बड़ी सभा की जाती है और सब लोग मिलकर कुछ समय तक चिपलूनकर महाशय के अलौकिक गुणों का श्रवण और मनन करते हैं। इस वर्ष उनकी श्राद्धतिथि के निमित्त तारीख १६-३-१९१२ को वहां "जोशी-हाल" में एक सभा हुई थी। 'केसरी' और 'मराठा' पत्रों के सम्पादक श्रीयुत नरसिंह चिंतामण केलकर बी. ए. एल एल बी. ने सभापति का आसन सुशोभित किया था। उस समय श्रीयुत सदाशिव हरि भावे ने एक निबंध पढ़कर सुनाया जिस में चिपलूनकर महाशय के चरित्र का संक्षिप्त वर्णन और उनके लेखों का मार्मिक विवेचन किया गया था। यह निबंध बारबार पढ़ने और मनन करने योग्य है। इसमें यह बात स्पष्ट रीति से दिखा दी गई है कि चिपलूनकर ने अपने लेखों द्वारा महाराष्ट्र में कैसी नूतन जागृति की। इसमें सन्देह नहीं कि ऐसी राष्ट्रीय विभूतियों का श्रद्धापूर्वक स्मरण करना और उनके गुणों का अनुकरण करना देशहितचिंतकों का पवित्र धर्म है। अतएव उनके स्मरणार्थ आज हम अपने प्रिय पाठकों को चिपलूनकर महाशय का चित्र भेट में अर्पण करते हैं। इसीके साथ हम यह निवेदन भी करते हैं कि जिस प्रकार महाराष्ट्र निवासी सज्जन अपने कर्तव्य का पालन कर रहे हैं, उसी प्रकार हिन्दी-प्रेमी के निवासियों को स्वर्गवासी हिन्दी-साहित्य-वीरों की यथोचित पूजा और आदर करने में आनाकानी करना न चाहिये। साहित्य-वीर ही हमारे सच्चे मार्गदर्शक हैं। इन लोगों के विषय में अनास्था प्रगट करके यदि हम अपने कर्तव्य से पराङ्मुख हो जावेंगे तो भविष्यत् में हमारा कल्याण कदापि न होगा। इसलिये प्रार्थना है कि हमारे हिन्दी-साहित्य के प्रेमीगण इस राष्ट्रीय महत्व के विषयपर उचित ध्यान दें।

---

१ शिमले में राज्यारोहण का उत्सव। २ बादशाह का 'मदीना' नामक जहाज। ३ प्लेग का टीका लगाना। ४ वानवडी में महादजी सेंधिया की छत्री—(मराठे)।

[illegible]

मि० लियोनेल मांडर.

आपने राजकन्या प्रीतिवा से हाल ही में [विवा]ह किया है।

कूच बिहार की राजकन्या प्रीतिवा.

स्वर्गवासी सर पी. एन्. कृष्णमूर्ति, के. सी. आय. ई.

आप शनिवार ता. ३० दिसंबर को स्वर्गवा[सी] हुए। सर के. शेषाद्रि ऐयर के बाद आपही मैसूर के दीवान थे। आपका जन्म सन् १८४९ ई. में हुआ। विश्वविद्यालय की पढ़ाई हो जाने पर इन्हें मैसूर राज्य में एक बड़े पद पर नियत किया था। इन्होंने अपना काम ऐसी उत्तमता से किया कि जब सन् १८८१ ई. में महाराजा कृष्ण वाडियार को राज्य का अधिकार प्राप्त हुआ तब मद्रास-सरकार ने मैसूर के दीवान के पद के लिये इन्हीं की सिफारिश की थी, परंतु उस समय इनकी उमर छोटी होने के कारण यह अधिकार इन्हें नहीं मिला। अनंतर १९०१ में आप मैसूर के दीवान हुए और लगातार पांच वर्ष तक इसी पद पर बने रहे। आपने अपनी अमलदारी में मैसूर राज्य में अनेक उपयुक्त सुधार किये हैं जिनसे वर्तमान यह राज्य प्रथम वर्ग में गिना जाता है।

स्वर्गवासी महाराजाधिराज पृथ्वीवीर विक्रम शाहदेव जंगबहादुर राणा, नेपाल।

इनका जन्म सन् १८७५ ई. में अगस्त की ८ वीं तारीख को हुआ। नेपाल का राज्य-प्रबंध प्रायः दीवान ही के हाथ में रहता है, इस लिये महाराजा साहब को उस ओर ध्यान देने का कुछ कारण ही नहीं। आपकी यह प्रबल इच्छा थी कि अपने राज्य में शिक्षा का बहुत प्रसार हो। महाराजा स्वयं विद्यानुरागी थे। सब सभ्य देशों की उन्नतिकारक हलचल पर इनका विशेष ध्यान रहा करता था। इनका स्वभाव अत्यंत सरल और प्रेमी था। इनकी मृत्यु से नेपाल की प्रजा बहुत दुःखित हुई। अब इनके ज्येष्ठ पुत्र महाराजाधिराज त्रिभुवन विक्रम शाहदेव जंगबहादुर राणा गद्दी पर बैठे हैं।

सर हीरासिंह महाराज नाभा की गद्दी पर सन् १८७१ ई. में बैठे। इनका जन्म सन् १८४३ में हुआ, अर्थात् गद्दी पर बैठने के समय इनकी अवस्था २८ वर्ष की थी। दूसरे अफगान-युद्ध में इन्होंने अंगरेजी-सरकार की बहुत सहायता की थी। इस सेवा के बदले महारानी विक्टोरिया ने इन्हें जी. सी. एस. आई की पदवी प्रदान की थी इसके बाद माल्टा, इजिप्ट, मणिपुर, चित्राल और बोर युद्धों के समय भी नाभा के महाराज ने सरकार की बहुत सहायता की। स्वर्गवासी [...] [illegible] इन्हें १५ की सिक्ख [...] नियत किया था। इन्होंने ५० वर्ष राज्य किया और प्रजाहित के बड़े [...] प्रशंसनीय काम किये। इनकी मृत्यु से [...] राज्य की बहुत हानि हुई है।

स्वर्गवासी सर हीरासिंह महाराज, ना[भा]

मराठा राजा और सरदार।

१ श्रीछत्रपति शिवाजी २ राजा व्यंको[जी] तंजोर ३ संभाजी ४ ताराबाई ५ शाहू ६ श्री[मंत] पहले बाजीराव पेशवा ७ बालाजी बाजी[राव] उर्फ नानासाहेब ८ राघोबा दादा ९ ज्येष्ठ मा[ध]वराव पेशवा १० नरायणराव ११ सवाई मा[ध]वराव १२ यशोदाबाई (सवाई माधवराव [की] पत्नी) १३ नाना फडनवीस १४ महा[दजी] सेंधिया १५ जयाजीराव सेंधिया १६ अन्तिम [बा]जीराव १७ हरीपंत फड़के १८ मल्हारराव होल[कर] १९ बापू गोखले २० अहल्याबाई होलकर [२१] गंगाधर शास्त्री पटवर्धन, बड़ोदा २२ रणजीत[सिंह] २३ गुरुनानक २४ राना भीमसिंह, उदय[पुर] २५ नरायणराव पेशवा का खून।

मैनेजर चित्रशाला पून[ा]

गायत्री की तसवीर।

गायत्री के चित्र की एक आवृत्ति ख[तम] होगई; अब फिर दूसरी आवृत्ति निकाली है इससे सहज ही मालूम हो सकता है कि गायत्री का ध्यान कितना उत्तम निकला और वह भाविकजनों को कितना पसन्द आ[या] है। अब अधिक प्रशंसा करने की जरूरत नहीं मूल्य ४ आने। त्रिकाल संध्या की ती[न] तसवीरें और गायत्री की तसवीर-चारों ए[क] साथ लेने से मूल्य १२ आने। एक प्रति [से] चार प्रति तक डा. म. दो आने।

मैनेजर चित्रशाला पूना

सावन के रंग और सुगंधित अर्क

सावन के उपयोग में आनेवाले भिन्न भि[न्न] रंग और सुगन्धित अर्क हम, किफायत के साथ जर्मनी से मँगा दे सकते हैं।

मैनेजर—चित्रशाला पूर्ण.

चीन देश की राज्यक्रान्ति।

चाहे अज्ञानता से हो, या चाहे पक्षपातता से हो—किसी कारण से हो—पश्चिमी लेखकों ने चीन देश के विषय में अपनी राय निरुत्साही बना ली थी, परंतु हाल ही में वहां जो अपूर्व राज्यपरिवर्तन हुआ है उससे उन लोगों के 'निरुत्साही' मतों में भी निस्संदेह कुछ न कुछ बदल होगा। राजनैतिक व्यवहार के विषय में चीनी लोगों पर सामान्यतः तीन आक्षेप लगाये जाते हैं। प्रथम, चीनी लोग अपने राजा को ईश्वर का अवतार मानते हैं, दूसरे, उन लोगों में स्वराज्य की यथार्थ कल्पना न होने के कारण, उनपर कोई कितना ही जुल्म करे तो भी उसका प्रतिकार करने की उनमें इच्छा और शक्ति नहीं है, तीसरे, उन लोगों में प्रतिनिधि द्वारा राज्यशासन पद्धति नहीं है। पश्चिमी लेखकों के ये सब सिद्धान्त, चीन देश की वर्तमान राज्यक्रान्ति के कारण, मिट्टी में मिल गये और हवा में इधर उधर उड़ने लग गये हैं। ऐसे समय में इस राज्यक्रान्ति का इतिहास हमारे पाठकों को मनोरंजक और शिक्षादायक अवश्य प्रतीत होगा।

वर्तमान राज्यक्रान्ति के संबंध में बहुतेरे बिना विचारे यह आक्षेप किया करते हैं कि जिस चीन देश में राजा प्रत्यक्ष ईश्वर का अवतार या वंशज माना जाता है, जिस चीन देश के राजा का दर्शन ही साधारण लोगों के लिये दुर्लभ है (फिर उसके साथ संभाषण करने की बात तो दूर ही रही), जिस चीन देश के राजा की आज्ञा प्रजाजनों को केवल अनुल्लंघनीय जान पड़ती थी, उसी चीन देश के लोगों ने अपने राजा को पदच्युत किया और उसके स्थान में लोकनियुक्त अध्यक्ष को स्थापित किया—यह बात कैसे हो सकती है?—यह बात समझ में नहीं आती। परंतु सच बात यह है कि ये सब आक्षेप लोगों की अज्ञानता या अल्पज्ञता से आज तक समाज में ज्यों के त्यों बने आ रहे हैं। चीन देश के धर्मग्रंथों का अवलोकन करने से या उस देश की पूर्वपरम्परा का सूक्ष्म निरीक्षण करने से ज्ञात पड़ेगा कि इस प्रकार की मिथ्या और भ्रामक कल्पनाओं को कभी बिलकुल स्थान नहीं दिया गया है। इसमें संदेह नहीं कि चीन देश के प्रसिद्ध धर्मोपदेशक कन्फ्यूशियस ने यह लिखा है कि राजा ईश्वर का प्रतिनिधि है, इसलिये उसको ईश्वर के समान सम्मान देना चाहिये। तथापि यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिये कि राजा और प्रजा का उभय सम्बन्ध सापेक्ष है। अर्थात् यदि इनमें से कोई अपने कर्तव्य पालन में आनाकानी करे तो दूसरे पक्ष की आज्ञापालकता आप ही आप नष्ट हो जाती है। यह मत स्वयं कन्फ्यूशियस ही ने प्रगट किया है। इसके सौ वर्ष बाद मेनशियस नाम के धर्मोपदेशक ने तो इस विषय में अपना मत और भी अधिक स्पष्ट रीति से प्रगट किया है। देखिये, इनसाइक्लोपीडिया में क्या लिखा है:—" But there is a limit to his absolutism The duties are reciprocal, It is also incumbent on the subjects to resist his authority so soon as he ceases to be minister of God for good, The sacred right of rebellion was distinctly taught by Confucius and was emphasised by Mencius who went the length of asserting that a ruler who by practising injustice and oppression has forfeited his right to rule &c. &c." (Ency. Britanica Vol. V. page 667.) कितने ही लोग समझते हैं कि कन्फ्यूशियस और मेनशियस के मतों के अनुसार आज बीसवीं सदी में पहले ही पहल चीनी लोगों ने राज्यक्रान्ति का यत्न किया है। इस समझ में बहुत भूल है। चीन देश का प्राचीन इतिहास देखने से मालूम होता है कि इन मतों के अनुसार कई बार कार्रवाई की गई है। इस पर से यह स्पष्ट विदित होता है कि इस समय मंचू राजघराने पर चीनी प्रजा का जो प्रत्यक्ष कोप देख पड़ता है वह उनकी पूर्वपरम्परा के अनुकूल ही है।

यदि कहा जाय कि चीन के समान प्राचीन देश हिन्दुस्थान के सिवाय और दूसरा नहीं है तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। दन्तकथाओं की ओर ध्यान दिया जाय तो मालूम होता है कि चीन देश की पूर्वस्थिति अतीव प्राचीन समय तक चली गई है। इन दन्त-[कथाओं को] छोड़ दें और कुछ आधार इतिहास की ओर देखें तो [इन] राजाओं की परम्परा ईसाई सन के २३५६ वर्ष पहले [से] है! इन प्राचीन राजाओं में से कितनों ही ने बहुत [से काम] भी किये हैं। सुयोजिन राजा ने घर्षण से अग्नि उत्पन्न [करने की] युक्ति निकाली। शिनौंग राजा ने जमीन जोतने के लिये [हल की] युक्ति निकाली और भिन्न भिन्न प्रकार की दवाइयों की खोज की। सीलिंगची नामक रानी ने शहतूत के वृक्ष पर के कीड़ों से रेशम बनाने की कला ईजाद की। यूई नाम के राजा ने लोगों को लोहे का उपयोग सिखाया। इसके अनंतर, ई. स. के सन् १८१८ वर्ष पहले, की नाम का एक राजा हो गया। यह बड़ा ही विषयान्ध, अत्याचारी और जुल्मी था। प्रजा ने बलवा करके उसे पदच्युत कर दिया और शांग नाम के राजघराने की स्थापना की। यही चीन देश की पहली राज्यक्रान्ति है।

शांग घराने में वूवांग बादशाह बड़ा न्यायी था, इसलिये लोग उसको 'साधु' कहते थे। इसके बाद, ई. स. के १३३६ वर्ष पहले चूवांग घराने की सत्ता स्थापित हुई। इसी समय से, उत्तर की ओर से, तातार लोगों का उपद्रव आरंभ हुआ। ई. स. के ५५१ वर्ष पहले सुप्रसिद्ध चीनी धर्मशास्त्रकार कन्फ्यूशिअस का जन्म हुआ। उस समय, याओप्रभृति प्राचीन राजाओं के प्रचलित किये हुए धर्मसंबंधी नियम बिलकुल शिथिल हो गये थे। इसलिये कन्फ्यूशिअस ने सब प्राचीन धर्मतत्वों को एकत्र करके उनको व्यवस्थित रूप दिया और उनका फिर प्रचार किया। कन्फ्यूशिअस के मतों का प्रचार उसके शिष्यों ने, विशेषतः मेनशिअस ने, सारे देश में बड़ी जोर से किया। इस धर्म में लोकमत को ईश्वरी आज्ञा के समान महत्त्व दिया गया है। जैसा हिंदुस्थान में कहते हैं "पंचों के मुख से भगवान् बोलता है" या जैसा लैटिन भाषा में कहते हैं "Vox populi vox Dei" वैसे ही अर्थ का तत्व चीनी धर्म में भी प्रतिपादित किया गया है। शूकिंग लिखता है कि "जो बात लोगों को मान्य होती है वही ईश्वर को मान्य होती है; और जो बात जनसमूह को अमान्य होती है वह ईश्वर को भी अमान्य होती है। किसी कार्य की सफलता या निष्फलता लोकमत पर ही अवलम्बित रहती है।" इस लोकमत का आदर चीनी राजाओं के भी आचरण में पाया जाता है। वर्तमान राज्यक्रान्ति ही का उदाहरण लीजिये। मंचू राजघराने के बादशाह ने, राजपद का अपना अधिकार छोड़ते समय, मुख से जो उद्गार निकाले हैं उनमें स्पष्ट यही कहा है कि "यदि देश के सब लोगों की यही इच्छा है, तो सिर्फ राजघराने के एक व्यक्ति के मत के अनुसार चलना अच्छा नहीं; इसलिये लोकमत ही को ईश्वरी आज्ञा मान कर मैं अपने राजपद के सब अधिकार लोकसमूह को सौंप देता हूं।" इस पर से यह बात प्रगट होती है कि पूर्वीय देशों का धर्म, सुराज्य की कल्पना में, किसी प्रकार की बाधा डालनेवाला नहीं, किंतु उसका पोषक ही है।

कन्फ्यूशिअस के कुछ समय बाद 'लोओत्सी' ने 'टाव' धर्म का प्रचार किया। इसके अनंतर ईसाई सन के आरंभ में हिंदुस्थान से भिक्षु लोग चीन में गये और वहां उन लोगों ने बौद्ध धर्म की दीक्षा चीनियों को दी। वर्तमान समय में इन तीनों धर्मों का न्यूनाधिक मिश्रण चीन देश में प्रचलित है।

ईसाई सन् के २०५ वर्ष पहले त्सिन नाम का एक विक्षिप्त बादशाह गद्दी पर बैठा। उसके मन में यह पागलपन की कल्पना घुसी कि, सब लोग मुझे सृष्टि का उत्पन्न करनेवाला और धर्मसंस्थापक ईश्वरी अवतार मानें। इस विचार की सिद्धि के लिये उसने प्राचीन धार्मिक साहित्य, विशेषत कन्फ्यूशिअस के सब धर्मग्रन्थ, जला देने की आज्ञा दी। इस आज्ञा के अनुसार अनेक ग्रंथ अग्नि में भस्म कर दिये गये; परंतु इतने ही से उसका समाधान न हुआ। तब उसने यह आज्ञा दी कि जिन जिन उपदेशकों को कन्फ्यूशियस के ग्रंथ याद हों वे सब अग्नि में जला दिये जांय! शोक की बात है कि चार पांच सौ धर्मोपदेशक इस अधम राजा की आज्ञा से अग्निकुण्ड में स्वाहा हो गये! इतना भगीरथ प्रयत्न करने पर भी उसकी दुष्ट इच्छा सफल न हुई। लोगों ने गुप्त रीति से कन्फ्यूशियस के ग्रंथों की रक्षा की और उनका अध्ययन अध्यापन जारी ही रक्खा। त्सिन बादशाह की मृत्यु के बाद इन ग्रंथों का पुनः प्रचार होने लगा। इसमें कुछ भी संदेह नहीं कि "सत्यमेव जयते नानृतम्।" सत्य ही का जय होता है, मिथ्या का नहीं।

त्सिन घराने का अंत हो जाने पर हान घराने की सत्ता स्थापित हुई। इस घराने के बादशाह नीतिमान् और पराक्रमी होने के कारण उनके विषय में चीनी लोगों के मन में अब तक पूज्यभाव बना हुआ है। अनेक चीनी लोग अपने को हान राजाओं के वंशज मानते हैं।

इसके बाद सन् ६२० ई. से सन् ९०७ ई. तक टांग घराने की अमलदारी शुरू हुई। यह अमलदारी दो महत्व की बातों से चिरस्मरणीय हो गई है। पहली बात यह है कि फंगटाओ नाम के एक आदमी ने छापने की कला निकाली; और दूसरी बात यह है कि, सरकारी ओहदे पर अफसर नियत करने के लिए "सिविल सर्विस"

परीक्षा आरंभ की गई। यह परीक्षा पद्धति उस समय से वर्तमान समय तक, राज्य में सैकड़ों परिवर्तन होने पर भी, ज्यों की त्यों अबाधित चली आ रही है। जो लोग इस परीक्षा में उत्तीर्ण होते हैं उन्हीं को सरकारी नौकरी मिलती है। औरों को नहीं। स्पर्धा
नियत करने की यह
ने आरंभ की। यह
अब भी जारी है।
"मार्कोपोलो" नाम
था। उसी समय से
लगा। कुछ समय
स्त्री को। यह स्थान

मंचू घराने की स्थापना, सन १६६४ ई.

मिंग घराने का अंतिम बादशाह त्संगचिंग बड़ा अन्यायी और ज़ुल्मी था, इसलिये राज्य में बलवे होने लगे। लीज़ोचिंग और शांगकोइ नामके बलवाइयों के दो प्रसिद्ध अगुवा थे। इन दोनों ने राजा को गद्दी से उतार दिया और राज्य के दो भाग करके आपस में बाँट लिये। परन्तु देश में ऐसे भी कुछ सरदार लोग थे जो इन बलवाइयों के अमल को मानते न थे। इन सरदारों में से एक ने मंचूरिया के मंचू लोगों से सहायता माँगी। इस निमंत्रण का स्वीकार करके मंचू लोग चीन में आये। उन्होंने पेकिन शहर को घेर लिया और बलवाइयों के अगुवा लीज़ोचिंग को मार डाला। मंचू लोगों ने राज्य के सब अधिकार अपने हाथ में ले लेने की जल्दी न की। उन्होंने पहले राजघराने के ही एक राजकुमार को गद्दीपर बैठाया और उसीके नाम से राजकाज आरंभ किया। कुछ दिन बाद शगकोइ नाम के दूसरे बलवाई को भी उन्होंने पराजित किया। तब तो राजसत्ता आप ही आप उनके हाथ में आ गई।

यह मंचू घराना तातार-वंश से उत्पन्न हुआ है, इसलिये चीन देश के निवासियों को उनकी सत्ता पराई सी जान पड़ती थी। अपनी विदेशीयता छिपाने के लिये मंचू घराने ने अपनी एक नई वंशावलि बनाई और अपना संबंध प्राचीन 'किन' घराने से जोड़ दिया। किन वंश के राजाओं का अमल चीन में सन् ११२३ से सन् १२३४ ई. तक
करके अपनी
और पुरुष में
अज्ञातवास
शानलिंग पर्वत को एक टेकड़ी पर अपनी गिरी दशा पर विचार करती हुई बैठी थी कि इतने में आकाशमार्ग से भ्रमण करनेवाले एक पक्षी ने एक लाल फल उनके सामने ऊपर से गिरा दिया। उन कुमारिकाओं में जो सब से छोटी थी उसने इस फल को ईश्वरी प्रसाद समझ कर खा लिया और वह गर्भवती हुई। उसके जो पुत्र हुआ उसका नाम 'ऐसिन गोरो'—सुवर्णवंश—रक्खा। इस 'सुवर्णवंश' में जो पुरुष जन्मे थे ही मंचू राजघराने के पूर्वज हैं। इसी दंतकथा के आधारपर मंचू घराने के बादशाह अपने वंश को 'सुवर्णवंश' कहते चले आये हैं।

मंचू घराने की स्थापना सन् १६४४ ई. में हुई। अल्प काल ही में इस घराने की राजसत्ता देश में सर्वत्र जारी हो गई। प्रथम मंचू बादशाह सन् १६६१ ई. में स्वर्गवासी हुआ। उसके बाद उसका लड़का 'कांगहे' गद्दी पर बैठा। यह बड़ा शूर, पराक्रमी और विद्वान था। उसने तिब्बत देश जीत कर अपने राज्य में मिला लिया। इसके राज्य का विस्तार कोचीन-चीन से ले कर सैबेरिया तक, और चीनी समुद्र से लेकर तुर्किस्थान तक था। इसने चीनी भाषा का एक अच्छा कोश बनवाया। इसके पीछे कीनलंग नाम का राजा गद्दी पर बैठा। उसने चीनी-तुर्कस्थान और नेपाल देशों को जीतकर अपने राज्य में मिला लिया और तिब्बतपर अपना अधिकार दृढ़ कर लिया। अनंतर सन् १८४२ ई. में इंग्लैंड ने चीन देश से युद्ध किया और वहां अफ़ीम के व्यापार का अपना अड्डा कायम किया। इस युद्ध की बातें आधुनिक इतिहास पढ़नेवालों को मालूम ही हैं। इस युद्ध का एक परिणाम यह हुआ कि चीनी लोगों को अपनी दुर्बलता प्रत्यक्ष देख पड़ने लगी और उन लोगों के मन में, मंचू राजघराने के विषय में, द्वेष उत्पन्न हो गया। सन् १८५२ ई. से जो टेपिंग का बलवा शुरू हुआ यह इसी द्वेष का फल है। टेपिंग-पंथ के बलवाइयों का नायक हंगस्युत्सेन था। उसकी यह समझ थी कि धर्म-सुधार के लिये मुझे ईश्वरी प्रेरणा हुई है। उसका धर्मोपदेश ईसाई धर्म से बहुत कुछ मिलता जुलता था। इसलिये विदेशी ईसाई देशों की तरफ से पहले उसको बहुत सहायता मिली। सन् १८५३ ई. में हंगस्युत्सेन नानकिन शहर को हस्तगत करके वहां अपनी गद्दी
सर्वसाधारण लोगों में मंचू घराने के विषय में
था; अब इस बलवे के योग से वह द्वेष और
लगा। परिणाम यह हुआ कि यह
देश में फैल गई। परंतु टेपिंग पंथी
ईसाई धर्म के नमूने पर धार्मिक

इसलिये उन्हें यश नहीं मिला। टेपिंग पंथियों का बलवा शुरू हो जाने पर थोड़े ही दिनों में इंग्लैंड और फ्रांस से चीन की अनबन हो गई, इसलिये उन लोगों ने पेकिन शहर पर चढ़ाई की। चीन का बादशाह मंगोलिया में भग गया। अन्त में यह संधि हुई कि इन दोनों पश्चिमी देशों को व्यापार की सहूलियत दी जाय और चीन देश की चुंगी के काम का प्रबंध अंग्रेज अधिकारियों के द्वारा किया जाय। इस संधि से टेपिंग का बलवा बंद हो गया; क्योंकि चुंगी की आमदनी का प्रबंध अंग्रेजों के अधीन होने के कारण उन लोगों ने देश में सर्वत्र शांति रहने का उपाय किया जिससे व्यापार की वृद्धि में कोई बाधा न हो। अंग्रेजों ने अपने सरदार गार्डन को चीनियों की सहायता के लिये भेजा। गार्डन साहब के पराक्रम से सन् १८६४ ई. में टेपिंग-पंथियों के बलवे का अंत हो गया। सन् १८५२ से १८६४ ई. तक चीनी बादशाह की सत्ता हवा में अधर लटक रही थी। इसके बाद के दस वर्षों में यह सत्ता फिर प्रबल हुई। परंतु जिस तरह विदेशियों की सहायता से उपस्थित किया हुआ बलवा बहुत समय तक चल नहीं सकता, उसी तरह विदेशियों के बल पर अवलम्बित रहनेवाली राजसत्ता भी चिरस्थायी हो नहीं सकती। इस बात को ध्यान में लाकर ही अब राजपक्ष ने स्वयं अपने बल पर अपनी सत्ता को दृढ़ करने का निश्चय किया।

सन १८७५ ई. में टंगची बादशाह की मृत्यु के अनंतर राजमाता त्सुआन और त्सुसी ने सब राजसत्ता अपने हाथों में ले ली और क्वांगसू नाम के बालक को गद्दी पर बैठाया। इन दोनों राजमाताओं में से त्सुसी बड़ी चतुर, दक्ष और महत्वाकांक्षी थी। लगभग तीस वर्षतक राज्यप्रबंध के सब सूत्र इसी के अधीन थे। इस वृद्ध राजमाता ने ली-हंगचंग की सहायता से राज में उत्तम व्यवस्था की और अपनी सत्ता दृढ़ता से स्थापित की। इतना होने पर भी जब जब विदेशियों का कोई संबंध होता था तब तब चीनी लोगों की अंतस्थ दुर्बलता प्रगट होती ही थी। अब चीनी सरकार को विश्वास हो गया कि तार, रेलगाड़ी, जहाज आदि नूतन यंत्र और शस्त्र की सहायता बिना परदेशियों का सामना करना कठिन ही नहीं, किंतु असंभव है। तब सन् १८८१ ई. में शंघाई से टीनस्टीन तक तार-यंत्र लगाया गया और जहाज़ आदि बनवाने के लिये एडमिरल लँग को नियत किया। सन् १८८४ ई. में फ्रांसने कुछ बहाना करके चीन से लड़ाई ठान दी। यद्यपि लड़ाई में फ्रांस की जीत हुई तथापि संधि के समय उसे कुछ विशेष लाभ न हुआ। आजतक चीन देशने विदेशियों के साथ जितनी संधियां की हैं उनकी समालोचना करने से यही जान पड़ता है कि, युद्ध में पराजित होने पर भी प्रत्येक सुलहनामे में चीन ही के लाभ की अधिक शर्तें मंजूर की गई हैं। सुलह की बात निकलते ही चीनी मंत्रियों की चाणाक्ष नीति को अच्छा अवसर मिल जाता है और अंत में उन्हीं की जीत होती है। सुलह संबंधी बातचीत बहुत दिनोंतक मुलतवी रखने की चीनी लोगों की चाल विदेशियों को पसंद नहीं; अतएव चीनियों की चालाकी से किसी तरह अपना पिंड छुड़ाने के लिये वे अपनी मांग कम करके सुलह कर लेते हैं। बाक्सर युद्ध के अनंतर इंग्लंड, जर्मनी, जापान, फ्रांस, रशिया, इटली और अमेरिका देशों के एकत्रित वकीलों को चीनी राजनीतिज्ञों ने कैसे छकाया सो आगे वर्णन किया जायगा। अस्तु। फ्रांस के साथ उक्त संधि हो जाने पर चीन सरकार ने एडमिरल लँग को नौकरी से अलग कर दिया। इसका बुरा परिणाम चीन को भोगना पड़ा। सन् १८९४ ई. में कोरिया के संबंध में जापान से युद्ध आरंभ हुआ। इसमें चीन की, जलसेना की दुर्बलता के कारण, हार हुई और कोरिया प्रांत तथा पोर्ट आर्थर बंदर उसके अधिकार से निकल गये। यह बात भिन्न है कि रशिया, फ्रांस और जर्मनी ने एकत्र होकर, कोरिया और पोर्ट आर्थर के विषय में, जापान से छेड़छाड़ शुरू की जिससे रूस जापान का भयानक युद्ध उत्पन्न हुआ। जापान के साथ संधि करते समय ली हंग चंग को यह बात मालूम थी कि कोरिया का जो प्रांत जापान को दिया गया है वह रूस उसके पास रहने न देगा। तात्पर्य यह है कि जैसे लोग अनाज के दाने डालकर मुर्गों की लड़ाई कराते हैं वैसे ही इस चीनी राजनीतिज्ञ ने इस मामले में कार्रवाई की। इसका परिणाम यह हुआ कि जापान ने रूस के दांत खट्टे किये और चीन की उत्तरी सरहद रूस राष्ट्र के भय से सदा के लिये सुरक्षित हो गई।

जापान से सुलह करने के बाद चीनी सरकार ने राज्य शासन के सुधार की ओर विशेष ध्यान दिया। एक पक्ष का कथन था कि पश्चिमी
विदेशियों की सहायता से राज्य में सुधार
था कि
सी सब पश्चिमी
की जाय—
सुधार किये
राज्यप्रबंध की
न का नायक
कर दिया।
समाचार गाड़ियां
नये व्यापारियों के

आय विद्यालयों में स्थान करने की आज्ञा हुई। देवमंदिर के स्थान पर विद्यामंदिर बन गये। पाश्चिमी वैज्ञानिक और अन्य उपयोगी ग्रन्थों के चीनी भाषा में अनुवाद प्रकाशित किये गये। "सिविल सर्विस" परीक्षा में आधुनिक विज्ञान और कला संबंधी विषयों का समावेश किया गया। मंचू घराने के राजपुत्रों के शिक्षाक्रम में विदेशी भाषाओं का अभ्यास और विदेशयात्रा आवश्यक ठहराई गई। और यह भी [illegible] । कराने वाली शीति- [illegible] सुधार होने लगेंगे

तो, जैसे जापान की तीस वर्ष में काया पलट हो गई वैसे ही चीन की काया-पलट हो जायगी। परंतु स्मरण रहे कि ये सब सुधार सरकारी आज्ञा के जोर पर किये जा रहे थे। इस काम में सर्व साधारण लोगों की सहानुभूति न थी। यह नियम है कि जब सर्व साधारण लोग किसी सुधार को लाभदायक समझते हैं और उसका स्वीकार करते हैं तब वह सुधार स्वाभाविक होकर देश के लिये हितकारक होता है। परंतु जब कोई सुधार राजसत्ता के अधिकार से जबरदस्ती लोगों पर लादा जाता है तब वह कृत्रिम होकर देश को हानि पहुंचाता है, क्योंकि लोग अच्छी बातों से भी नफरत करने लग जाते हैं। बादशाही हुक्म से आरंभ किये हुए उपर्युक्त सुधारों की यही दशा हुई। सेना के अधिकारियों ने सोचा कि अब इस देश की सारी फौज पर विदेशियों का अधिकार हो जायगा। प्रांतों के सूबेदारों के मन में यह भय उत्पन्न हुआ कि इन नूतन सुधारों से हमारी सुव्यवस्थित सत्ता घट जायगी और हमारी चलती न रहेगी। धार्मिक लोगों के मन में यह चिंता लगी कि अब हमारे देवालयों की क्या दशा होगी। सारांश यह है कि साधारण जनसमूह और प्राचीन अधिकारी-वर्ग में असंतोष की ज्वाला प्रगट होने लगी। जब वृद्ध राजमाता त्सुसी ने देखा कि कांगस् की सुधारपद्धति से प्रजा में हलचल और असंतोष हो रहा है तब उसने राज्य का सारा प्रबंध अपने हाथ में लेनेका निश्चय किया। सन् १८९८ ई० के सितंबर महीने की २० वीं तारीख को सेना की सहायता से उसने बादशाह को कैद कर लिया और इश्तहार जारी किया कि अब राज्य का प्रबंध हमारे हाथ में है। पहले जो जो सुधार करने के हुक्म निकले थे वे सब रद कर दिये गये।

प्राचीन पद्धति का चीनी सिपाही।

यह परिवर्तन होते ही विदेशियों के सम्बन्ध में चीनी लोगों के अंतःकरण की द्वेषाग्नि फिर प्रदीप्त होने लगी और सन् १९०० ई० के आरंभ में बाक्सर लोगों का दंगा शुरू हुआ। इस दंगे को 'बलवा' कहते हैं, परंतु यह भूल है। बाक्सर लोगों का मंचू राजघराने के विरुद्ध कोई बर्ताव करने का इरादा न था; इतना ही नहीं, कहा जाता है कि राजमाता त्सुसी से बाक्सर लोगों को प्रोत्साहन भी मिलता था। यह कुछ भी हो; इसमें सन्देह नहीं कि अपने देश के राज्यप्रबंध में विदेशियों का प्रवेश, उनके अधिकार की वृद्धि और पादरियों का उपदेश देखकर जिन लोगों के मन असंतुष्ट हो गये थे उन्हीं लोगों ने विदेशी सत्ता के विरुद्ध यह दंगा खड़ा किया था। इस समय मंचू-घराने की सत्ता मंचू-अधिकारियों की प्रमुखता से दृढ़ होती हुई देख पड़ने लगी। ली-हंग-चंग के सिवा और कोई प्रमुख चीनी राजनीतिज्ञ किसी महत्व के पद पर नियत न था। ली-हंग-चंग भी मंचू राजघराने का पूर्ण पक्षपाती और सहायक था। इस प्रकार मंचू राजघराने की सत्ता अधिक दृढ़ करके और विदेशियों को कुछ भयभीत करके यह बाक्सर लोगों का दंगा शांत

मंचू जाति की स्त्री—जड़काले का पहराव।

हो गया। इस गड़बड़ में जिन जिन देशों की प्रजा का [illegible] था उन उन देशों ने बदला लेने के लिये अपनी सेना चीन [illegible] रवाना की। जर्मनी, रूस, फ्रान्स, अमेरिका, हिंदुस्थान और [illegible] देशों की फौजें कई दिनों तक पेकिन शहर के पास [illegible] डालकर पड़ी हुई थीं। उस समय प्रत्येक राष्ट्र की सेना को अपने गुणदोषों की तुलना करने का मौका मिला। जापान ने [illegible] सेना की शक्ति का अंदाज करके मन में निश्चय कर लिया [illegible] जो भिन्न भिन्न देशों की सेनाएं एकत्र हुई हैं उनमें से प्रथम [illegible] किसी एक पश्चिमी देश की सेना का सामना करने का यदि [illegible] आयगा तो हमारी सेना कदापि [illegible] न हारेगी। रूस, जर्मनी और [illegible] के सैनिक वामनरूपधारी (ठि[illegible] जापानी सिपाहियों को देख देख [illegible] खूब हंसते और ठिठोली करते थे—[illegible] तक कि तुच्छता दर्शक रीति से उन[illegible] ओर देखकर थूकते भी थे! [illegible] पश्चिमी सिपाहियों का यह घृणा[illegible] मान रूस-जापान-युद्ध में बिल[illegible] ठंडा हो गया।

जिन जिन देशों ने बाक्सर लो[illegible] के दंगे का बदला लेनेका निश्चय कर[illegible] चीन पर चढ़ाई की थी उनको अ[illegible] सदा की चाल से चकित करने [illegible] चीनी राजनीतिज्ञों ने खूब कमाल क[illegible] विदेशी अधिकारी कहते थे कि जि[illegible] जिन लोगों ने इस बलवे में सहायता [illegible] और उत्तेजन दिया है उन लोगों [illegible] दण्ड दिया जाना चाहिये, परंतु तह[illegible] कीकात करने से किसी बड़े चीनी अफ़सर पर अपराध साबित न हुआ। हां, दो तीन छोटे छोटे अफ़सरों को फांसी की सज़ा दी गई और कुछ लोगों को देशनिकाले की आज्ञा दी गई। दूसरी बात विदेशियों ने यह निश्चित की थी कि चीन ४५ करोड़ टेल्स (लगभग दो अरब रुपये) जुर्माने के तौर पर दे। यह सब रकम एकदम देना असंभव था। इस लिये यह ठहराया गया कि सालियाना किश्त के हिसाब से ४० साल में सब रकम अदा हो जाय। सुलह में इस बात का उल्लेख न था कि यह रकम किस सिक्के में दी जाय, इस लिये चीनी सरकार ने सूचना दी कि यह रकम हम अपने चांदी के सिक्के में देंगे। इसका परिणाम यह हुआ कि सोने के सिक्के के हिसाब से जुर्माने की रकम आधी ही रह गई! अमेरिका में तो उस समय चांदी का भाव बहुत ही घट गया था, इस लिये अमेरिकन सरकार ने अपनी रकम माफ़ी में छोड़ दी। चीनी सरकार ने अमेरिका की उदारता के लिये धन्यवाद दिया और माफ़ी में जो रकम मिली थी उसका एक शिक्षा-फंड स्थापित किया। जो चीनी विद्यार्थी अमेरिका में शिक्षा पाने के लिये जाते थे उन्हें इस फंड से सहायता दी जाने लगी। तात्पर्य यह है कि, अंतिम फल की ओर ध्यान देने से यही कहना पड़ता है कि बाक्सर-युद्ध के संबंध में विदेशियों से जो संधि की गई उसमें चीन ही का लाभ हुआ।

बाक्सर का बलवा शांत हो जाने पर एक ही मास में वृद्ध चीनी राजनीतिज्ञ ली-हंग-चंग परलोक सिधारा। उसकी मृत्यु से मंचू राजघराने का एक आधारस्तंभ जाता रहा। यद्यपि ली-हंग-चंग कोई अद्वितीय राजनैतिक पुरुष न था, तथापि वह अनुभवी होने के कारण उसकी कारवाई पर वृद्ध राजमाता, सुधार-प्रिय चीनी युवक और विदेशी वकील इन सब लोगों का पूरा विश्वास था। उसकी चतुरता से ही बाक्सर-बलवे की आग देश में अधिक फैलने न पाई थी। यदि उसके अनुभविक उपदेश की सहायता न होती तो इस बलवे की आग में, चीन के टुकड़े टुकड़े करके उसको निगल जाने की ताक लगाए हुए विदेशी कौए, सुधार-प्रिय और उतावले चीनी

युवक, और चीन की स्वतंत्रता तथा मंचू घराने की सत्ता इन तीनों में से किसी न किसी को अवश्य भस्म होना पड़ता।

इस बलवे के समय जब विदेशी फौजें चीन देश पर चढ़ आईं तब राजघराने के लोगों को पेकिन शहर से भगना पड़ा। इस अपमान-रूप अञ्जन से चीन अपनी कुंभकरण की नींद से जाग उठा और सुधार तथा उन्नति के मार्ग में लग गया। जापान-युद्ध के अनंतर उसने सेना-सुधार का काम आरंभ कर ही दिया था। परंतु राजमाता त्सुसी सब प्रकार के पश्चिमी सुधारों के विरुद्ध होने के कारण देश की उन्नति में बहुत बाधा होती थी। अब १९०१ से, अर्थात् बीसवीं सदी के आरंभ से, पहले की सब बातें बदल गईं। पश्चिमी विद्या का महत्त्व मालूम होते ही चीनी लोगों के, विदेशियों के साथ, बर्ताव में परिवर्तन होने लगा। पहले इन लोगों को विदेशियों की छाया तक पसंद न थी; परंतु अब विदेशियों का द्वेष करना, उनका अनादर करना या अनुचित निंदा करना बुरा समझा जाने लगा। यह हानिकारक प्रवृत्ति अब बहुत कम देख पड़ती है। इस समय चीन के अठारहों सूबों में बड़े बड़े पद पर ऐसे लोग नियत किये गये हैं जिन्हें पश्चिमी शिक्षा का थोड़ा बहुत संस्कार हुआ है। अब विदेशियों को चीन के किसी भाग में प्रवास करने या रहने का भय नहीं मालूम होता। यद्यपि विदेशियों के साथ बर्ताव करने की रीति में यह परिवर्तन हुआ है तथापि विदेशियों से अपने देश की रक्षा करने की आवश्यकता चीनी लोगों को अधिकाधिक मालूम होने लगी है। अब इन लोगों में स्वाभिमान जागृत हुआ है। इस लिये, यद्यपि अज्ञानी और जंगली लोगों की तरह परदेशियों या परधर्मियों को पीड़ित करने की प्रवृत्ति घट गई है, तथापि चीनी लोगों के साथ

आवश्यक है कि साधारण तौर पर इस राष्ट्रीय महत्कार्य में यश के भागी कौन कौन हैं और वे कितने अंश के भागी हैं। अतएव अब इस बात का विचार किया जायगा कि इस कुंभकर्ण-रूप चीन देश को अपनी शतकों की नींद से जागृत करने में किन किन लोगों के [illegible] जब वहां के लोगों के [illegible] होती है। जहां अंतः- [illegible] निष्फल हो जाते हैं। [illegible] किया जाय तो कहना पड़ेगा कि चीन देश के सुधार में विदेश, प्रत्यक्ष रीति से, यश के भागी हो नहीं सकते। परंतु कभी कभी ऐसा होता है कि हम किसी एक विशेष हेतु से कोई काम करने लगते हैं और उसका परिणाम अकल्पित अथवा अनिच्छित रीति से कुछ और ही हो जाता है। इस आकस्मिक परिणाम के लिये यद्यपि मूल कार्य सहेतुक कारण कहा नहीं जा सकता, तथापि अप्रत्यक्ष रीति से उसमें कार्यकारण-भाव रहता ही है। यही हाल चीन देश में विदेशियों की कार्रवाई का हुआ। हमारे माल को कोई ग्राहक मिलना चाहिये, हमारे धर्म का प्रचार होना चाहिये, व्यापार में पूंजी लगाने के लिये कोई अच्छा स्थान मिलना चाहिये और यदि चीन के टुकड़े करने का मौका आयगा तो हमको सब से अधिक भाग मिलना चाहिये—ऐसे अनेक उद्देशों से प्रेरित होकर इंगलैंड, रूस, जर्मनी और फ्रांस देशों ने चीन में अपना अड्डा जमाया था और वहां किसी ने रेलगाड़ी चलाने, किसी ने खान खोदने और किसी ने बैंक खोलने की चीनी सरकार की इजाजत ले ली थी। चीन देश पर विदेशियों

चीन देश के विद्यार्थि विद्याध्ययन के लिये इंग्लैंड को जा रहे हैं।

परदेशों में जैसा बर्ताव किया जाता है वैसा ही वे (चीनी लोग) उनके (विदेशियों) साथ करने लगे हैं। पहले पहल चीनियों के इस स्वाभिमान का अनुभव अमेरिका के लोगों को हुआ। सन् १९०४ ई॰ में अमेरिका में नया कानून बना जिससे चीनियों को दुःख और अपमान होने लगा। यह देखते ही चीन देश ने बहिष्कार का उपयोग किया और अमेरिका से आनेवाले सब माल को एकदम बहिष्कृत कर दिया। इस रामबाण मात्रा का फल भी तुरंत ही लाभदायक हुआ। अमेरिकन सरकार ने चीनियों के संबंध का पहला कानून रद्द कर दिया।

सन् १९०१ से १९११ ई. के अंत तक ग्यारह वर्ष में चीन देश की दशा में जो परिवर्तन हुआ उसके दो भाग हो सकते हैं। प्रथम भाग १९०१ से १९०४ के अंत तक अर्थात् रूस जापान-युद्ध के अंत तक और दूसरा भाग १९०५ से १९११ के अक्तूबर महीने तक अर्थात् प्रचंड राज्यक्रांति के आरंभ तक। इन प्रत्येक भागों के क्रमशः तीन और विभाग किये जा सकते हैं। पहले विभाग में चीन देश के सुधार के लिये चीनी सरकार का यत्न, दूसरे विभाग में विदेशियों के यत्न, और तीसरे विभाग में क्रांतिकारक पक्ष का उद्योग का समावेश होता है। चीन देश के सुधार की मीमांसा करते समय यद्यपि इस बात का ठीक ठीक निर्णय करना कठिन है कि इन तीनों दलों का संबंध और महत्त्व कितना है, तथापि यह जानना

का जो माल था वह खड़ा करने के लिये अंग्रेजों ने चीनी सरकार के महसूल की आय का प्रबंध अपने हाथ में लिया था। इस काम पर सर राबर्ट हार्ट नाम का एक अंग्रेज अफसर मुकर्रर किया गया था। तीस पैंतीस वर्ष तक उसने यह काम बहुत उत्तम रीति से किया। इससे महसूल की आय बहुत बढ़ गई। जब से यांग्सी प्रांत में रेलगाड़ी चलाने और खान खोदने की इजाजत अंग्रेजी कंपनी को मिली तब से उस प्रांत के व्यापार की बहुत वृद्धि होने लगी। इन्हीं सब कारणों से, अर्थात् विदेशियों के सहवास से चीन को बहुत लाभ हुआ तथापि, इन लोगों के मन में यह [illegible] न थी कि चीन देश स्वतंत्र और बलवान हो जाय। इस लिये चीन देश की वर्तमान जागृति का श्रेय इन लोगों को दिया नहीं जा सकता। जापान का संबंध [illegible] विदेशों के समान न था। जापान पौर्वात्य देश होने के कारण [illegible] सरकार और [illegible] के [illegible] देश के साथ [illegible] का संबंध जुड़ गया था। [illegible]

लीम से चीनी चेले अच्छे तैयार हो गये। १९०६ से इन दोनों में कुछ अनबन हो गई। इसका प्रधान कारण यही है कि जापान ने कोरिया प्रांत चीन से ले लिया था। इसके सिवाय और भी अन्य कारण हैं। अब चीन देश में स्वाभिमान की स्वतंत्र हवा बहने लगी थी, इसलिये उसको किसी एक देश का बहुत दिनों तक चेला बना रहना पसंद न था। इसके अतिरिक्त चीनियों ने यह भी सोचा कि जब तक संपादित की हुई शिक्षा के साथ कुछ अनुभव भी प्राप्त न होगा तब तक उस शिक्षा की योग्यता नहीं हो सकती, इसलिये अब हम अपनी शिक्षा का व्यावहारिक उपयोग करेंगे और यह देखेंगे कि हम किस योग्य हैं। इसमें यदि हम सफल न हुए और कुछ हानि हुई तो भी स्वावलंबन और आत्मपरीक्षा की दृष्टि से यह कार्य हितकारक ही होगा। बस, इस प्रकार का आत्मविश्वास होते ही उन लोगों ने धीरे धीरे सब जापानियों को छुट्टी दे दी। सन् १९०६ ई. में चीन देश के भिन्न भिन्न शासन विभागों में एक हज़ार से अधिक अफ़सर नौकर थे। घटते घटते यह संख्या अब चार सौ से भी कम हो गई है। तात्पर्य यह है कि, चीन देश के सुधार में, प्रत्यक्ष रीति से, विदेशियों का संबंध बहुत कम देख पड़ता है।

अब इस बात का विचार करेंगे कि, इस जागृति के हेतु चीनी सरकार ने क्या किया। सन् १८७३ ई. में टंगची बादशाह ने राज्यशासन का काम अपने हाथ में लिया। यह बादशाह लोकप्रिय और सुधार का पुरस्कर्ता था। थोड़े ही दिनों की अपनी अमलदारी में उसने विद्या की बहुत वृद्धि की। चीन के दुर्भाग्य से दो ही वर्ष में (सन् १८७५ में) आकस्मिक रीति से उसकी मृत्यु हो गई और राजमाता त्सुसी ने क्वांगसू नाम के चार वर्ष के एक बालक को गद्दी पर बैठा कर राज्यप्रबंध के सब अधिकार स्वयं हस्तगत कर लिये। यदि सुधार के मार्ग में यह बाधा न हुई होती तो चीन देश का सुधार जापान के समकालीन हो जाता। अस्तु।

मंचू-स्त्री (गर्मी के दिनों का पहराव)

जब क्वांगसू बादशाह वयस्क हुआ और सन् १८९८ में वह राज्यशासन करने लगा तब उसने पश्चिमी शिक्षा, विद्या, कला कुशलता आदि का प्रसार करके चीन देश को पश्चिमी देशों के समकक्ष बनाने का यत्न आरंभ किया। परंतु अल्प काल ही में उसको राजमाता त्सुसी का कैदी होना पड़ा और सुधार की गति रुक कर पीछे की ओर हटने लगी। सारांश यह है कि, सन् १९०१ तक चीनी बादशाह या बड़े अधिकारियों की ओर से देशोन्नति का कोई कार्य हो नहीं सका। सिर्फ़ इतना ही नहीं; परंतु चीनी सरकार ने जानबूझकर ऐसे अनेक कार्य किये जो सुधार के प्रतिरोधी हैं। स्वदेश में शिक्षा का कोई उचित प्रबंध न था और विदेश में जाने के लिये किसी प्रकार का उत्तेजन न था। राजनीतिक विषयों की चर्चा करनेवाली पुस्तकें तक प्रकाशित न हो पाती थीं। कुछ विशिष्ट दर्जे के लोगों के सिवाय अन्य जनों को चीन देश का भूगोल पढ़ने की मनाई कर दी गई थी! ऐसी अवस्था में और देशों के भूगोल को कौन पूछता है! मंचू घराने की राज्यपद्धति के कानून पढ़ने की लोगों को मनाई हो गई थी। इसी तरह चीन की सेनासंबंधी पुस्तकें भी कायदे से बंद कर दी गई थीं। इस आज्ञा का उल्लंघन करनेवाले 'बदमाश' को मृत्यु की सज़ा दी जाती थी!

चीनियों में नूतन विचारों का प्रवेश न होने पावे, इसलिये यद्यपि मंचू सरकार ने बहुत यत्न किया तथापि, उसमें सफलता हुई नहीं; नदी का प्रवाह रोकना कठिन बात है। जैसे हो, इस कार्य में चीनी सरकार को यशलाभ नहीं हुआ। क्योंकि आत्मरक्षा के हेतु चीनी अधिकारियों ही को अनेक नई बातों का स्वीकार करना पड़ा। इन

चीनी तोपखाना।

बातों का परिणाम सर्व साधारण लोगों पर हुए बिना कैसे रह सकता है? उदाहरणार्थ, जापान से युद्ध होने के बाद चीनी सरकार को इस बात की आवश्यकता प्रतीत होने लगी कि अपनी फ़ौज को नई कवायत सिखाई जाय। तब यू आन शि-काई की देखभाल में नई फ़ौज तैयार करने का प्रबंध किया गया। फ़ौज के साथ साथ जल सेना का भी सुधार होने लगा। तार और रेलगाड़ी तो पहले ही से आरंभ हो चुकी थीं। अब उनका विस्तार होने लगा। फ़ौज के आने जाने के लिये नई सड़कें बनानी पड़ीं। कुछ वर्ष पहले चीन देश की सड़कें बहुत खराब थीं; यहां तक कि सर राबर्ट हार्ट के कथनानुसार राजधानी के शहर ही में आम सड़क पर एक आदमी कीचड़ में फँस कर मर गया! ऐसी सड़कें सेना के आने जाने के लिये बिलकुल निरुपयोगी हैं। इस लिये सड़कों पर गिट्टी और कंकर डालकर मज़बूती की गई। जलसेना तथा स्थलसेना के उपयोगार्थ विमान और बिना तार के विद्युत्संदेशयंत्र प्रचलित किये गये। सिविल सार्विस की परीक्षा में उचित परिवर्तन करके उसको आधुनिक रूप दिया गया और विदेश में जाकर विद्या संपादन करने वाले लोग सरकारी पदों पर नियत किये जाने लगे। यद्यपि समाचारपत्रों पर कायदे की जो कड़ाई थी वह कम नहीं हुई तथापि कायदे की परवाह न करते हुए समाचारपत्रों की संख्या बढ़ती ही गई और उनका प्रचार भी अधिकाधिक होने लगा। अंतिम और सबसे अधिक महत्त्व का सुधार यह हुआ कि अफ़ीम के व्यसन से शारीरिक, मानसिक तथा सांपत्तिक हानि देखकर चीनी सरकार ने अफ़ीम की खेती और आमद बंद करने का निश्चय किया। अब अमेरिकन कालेजों में विद्या संपादन करके अनेक चीनी-युवक स्वदेश में लौट कर आने लगे और समाज में उन लोगों का अच्छा प्रभाव पड़ने लगा।

ये सब बातें चाहे अच्छे हेतु से की गई हों या बुरे हेतु से की गई हों; इसमें संदेह नहीं कि चीनी सरकार ने अपने भिन्न भिन्न शासन-विभागों में जो अनेक नूतन सुधार किये उनका परिणाम यह हुआ कि चीनियों में नूतन चैतन्य की जागृति हो गई। इसका श्रेय न तो चीनी अधिकारियों को है और न चीन की रानी को है। यह जागृति केवल तत्कालीन परिस्थिति का एक स्वाभाविक फल है। यही बात सर्व साधारण लोगों की दृष्टि में भी आ गई। इस लिये अब देशोन्नति की ओर सरकार का दुर्लक्ष देखकर मंचू घराने के विषय में असंतोष उत्पन्न होने लगा। इसी समय राजमाता त्सुसी की मृत्यु हो गई और राज्यघराने में अंधेर नगरी शुरू हो गई। एक छोटासा बालक गद्दी पर बैठाया गया और अधिकारी लोगों की एक मंडली स्थापित की गई। यह लिखने की आवश्यकता नहीं कि इस अधिकारी मंडली में उस बालक की माता ही प्रमुख थी।

इस प्रकार राज्यघराने में परिवर्तन होने के कारण लोगों की हलचल ज़ोर से बढ़ने लगी और अब चीनी सरकार ने देखा कि लोकमत के अनुसार राज्यप्रबंध में कुछ सुधार करना अत्यंत आवश्यक है तब राजदरबार से एक कमीशन नियत किया गया। इस कमीशन के अधिकारियों ने यूरप और अमेरिका के मुख्य देशों में प्रवास किया और उनकी राज्यपद्धति, कायदे बनाने की रीति, शिक्षा, व्यापार आदि अनेक उपयोगी बातों की जांच की और इस बात का निश्चय किया कि इनमें से कौन कौन सुधार अपने देश में जारी करना लाभदायक होगा। इस कमीशन की रिपोर्ट सन् १९०६ ई० में प्रकाशित हुई। इस रिपोर्ट में यह प्रस्ताव किया गया था कि सार्वजनिक हित के कामों में लोकमत जानने के लिये हर ज़िले में एक ज़िला मंडली और हर प्रांत में एक प्रांतीय मंडली स्थापित की जाय।

छप्पनवें पृष्ठ के बाद यह पृष्ठ पढ़िये।

हुआ। उस समय चीनी राजदरबार को यह विश्वास हुआ होगा कि लोकमत से अपना पिंड छुड़ाने के लिये जो कुछ हमको करना चाहिये था वह सब हमने किया। परंतु यह उन लोगों का भ्रम था। लोकप्रतिनिधि सभा ने अपनी पहली ही बैठक में यह निश्चय किया कि कार्यकारी प्रधान मंडली को लोकसभा के अधीन रहना चाहिये-उस मंडली पर बाला बाला बादशाह की हुकूमत न रहे। अधिकारी लोग इस निश्चय का अर्थ समझ गये-अब उन लोगों को अपनी स्वतंत्र सत्ता को तिलांजलि देनी पड़ेगी; परंतु यह स्वार्थत्याग उन लोगों को पसंद न था। बस, दोनों पक्षों में झगड़ा बखेड़ा शुरु हुआ और लोकसभा का अंत हो गया!

चीनी सरकार ने समझा कि जहां तक शक्य था वहां तक राज्य-शासन के सब अधिकार हमने लोगों को दिये; परंतु इससे जन-समूह की तृप्ति नहीं हुई। केवल दिखाऊ कौंसिल और पार्लिमेंट से उनका समाधान न हुआ। जिस कौंसिल या पार्लिमेंट में लोगों के प्रतिनिधियों की राय सुनी नहीं जाती और अधिकारियों के बर्ताव पर लोकमत का कोई प्रभाव नहीं रहता, उससे देश का कल्याण ही क्या होगा! लोगों का कथन यह था कि चीनी राज्यप्रबंध में लोगों की दृष्टि से जो बड़े बड़े दोष थे वे जब तक दूर न किये जायँगे तब तक प्रजा का हित कभी न होगा। उन लोगों की दृष्टि में ये दोष थे:—१ मंचू लोग विदेशी हैं और उनकी संख्या भी कम है, तिसपर भी उन्हीं लोगों ने ऊंचे दर्जे के सब सरकारी पद ले लिये थे। २ प्रांतों के अधिकारी और सूबेदारों के हाथ में अनियंत्रित सत्ता बहुत थी, उनपर किसी की देखभाल न होने के कारण उनके जुल्मों को रोकने का कोई साधन न था। अधिकारियों का वेतन उनके दर्जे और खर्च के हिसाब से बहुत कम था, इसलिये वे लोग प्रजा पर जुल्म करते और रिश्वत खाते थे और इस अन्याय की सुनाई भी कहीं होती न थी। ४ भाषण और लेखनस्वातंत्र्य के अभाव से प्रजा को अपनी गुहार पुकार सुनाने का कोई साधन ही न था। और शिक्षा के अभाव से लोग यही जानते न थे कि हमारे हक क्या हैं और अधिकारी लोग अपनी सत्ता का दुरुपयोग कैसे करते हैं। ५ अधिकारियों के विरुद्ध यदि शिकायत की जाय तो न्याय नहीं होता और शिकायत करनेवाले के जान और माल की रक्षा नहीं होती। ६ चीनी दरबार ने विदेशियों को रेलगाड़ी चलाने और खान खोदने की इजाजत दी है, इससे देश की सारी संपत्ति [illegible] धीरे धीरे [illegible] के हाथ में जा रही है और उनके विरुद्ध में सारे अधिकारियों के विरुद्ध में असन्तोष फैल गया है।

इस प्रकार अनेक कारणों से चीनी प्रजा दुःखित हो रही थी। इसके लिये मंचू सरकार में और विदेशियों में जो जो [illegible] किये [illegible] हुए। यह [illegible] सच है कि मनुष्य जब निराश हो [illegible] [illegible] पुकार का [illegible] मुंह [illegible] है। कि "[illegible] नहीं [illegible]।" इस लिये [illegible] [illegible] कि और [illegible] की [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] के [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] के लिये सरकार से [illegible]

युआनशीकाई, चीनी लोकसत्तात्मक राज्य के प्रथम अध्यक्ष, चीनी वेष में।

([illegible] पुराने [illegible] पद्धति पर [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] है।)

करने के पहले उन लोगों को अज्ञानरूप शत्रु से लड़ाई करनी पड़ी। इसके पहले चीनी लोगों को यह मालूम न था कि दुनिया में क्या हलचल हो रही है। इतना ही नहीं, किंतु वे लोग यह भी जानते न थे कि अपने ही देश में किधर क्या बातें हो रही हैं। चीनियों के इस प्रकार के अज्ञान नेत्रों में सन् १८९४ के जापान युद्ध ने अच्छा अंजन डाल दिया। इधर जापानी सैनिक पेकिन राजधानी पर चढ़ धाये, परंतु और प्रांतों के लोगों को इस बात की खबर तक नहीं मिली! अपने देश के इस घोर अज्ञान को दूर करने के लिये 'तरुण चीन' नामक एक मंडली स्थापित हुई। सन् १८९४ में डाक्टर सुन-यत सेन उस मंडली में शामिल हुआ और एक ही वर्ष के बाद उसने कैंटन शहर में एक शाखा खोल दी। उसी समय से उसका नाम पुलिस ने अपने रजिस्टर में दर्ज कर लिया। अनंतर कैंटन में कुछ लोगों ने दंगा फसाद किया और उनके अगुवा पकड़े गये। डाक्टर सुन्यत्सेन को भी पकड़ने का [illegible] हुआ था; पर उसको बात पहले ही मालूम हो गई थी, इसलिये भेष बदलकर वह जापान चला गया। वहां से अमेरिका में जा कर [illegible] दिन रहा और अंत में १८९६ में वह इंग्लैन्ड जाकर रहने लगा। [illegible] 'तरुण चीनी मंडली' [illegible] अनेक शाखाएं शहर [illegible] शहर में स्थापित हो [illegible] और वे सब लोग [illegible] सुन्यत्सेन से पत्रव्यवहार करने लगे। सुन्यत्सेन की यह राय थी कि चीनी विद्यार्थी परदेश में जाकर विद्याभ्यास करें और विशेष करके फौजी शिक्षा प्राप्त करें। इसके अनुसार अनेक चीनी युवक परदेश गमन के लिये उत्सुकता से तैयार हो गये। परंतु द्रव्यभाव से बहुतेरे जा न सके। तब यह निश्चय हुआ कि जो लोग विदेश से शिक्षा प्राप्त करके लौटे थे चीन में अपने देशबंधुओं की शिक्षा का प्रबंध करें। चीन में फौजी शिक्षा प्राप्त करना तो एक ही ओर रहा; वहां पहले फौजी विषयों की पुस्तकें ही पढ़ने की मनाई थी। परंतु वह समय अब बदल गया। अपनी राजधानी की रक्षा करने के लिये नई पद्धति की कवायत सीखी हुई फौज की आवश्यकता जानकर खुद बादशाह ने यु-आन शि-काई को नई फौज तैयार करने की आज्ञा दी। यु आनशि-काई की शिक्षा में करीब करीब एक लाख नूतन सैनिक तैयार हुए। यह फौजी शिक्षण जापान और जर्मनी की पद्धति के अनुसार दिया गया था। फौजी अफसरों में जापानियों की ही अधिकता थी। ये जापानी अफसर एक तंत्री राज्य पद्धति के जुल्मों के कट्टर शत्रु थे। यु आनशि-काई भी, जो सारी सेना का मुख्य अधिकारी था, सुधारक पक्ष में था और वह डाक्टर सुन्यत्सेन को बहुत चाहता था। इसलिये फौज के प्रायः सब अधिकारी स्वभाव ही से क्रांतिकारक मंडली के अनुकूल थे। नूतन सैनिकों में आधे से अधिक लोग क्रांतिकारक पक्ष के साथ सहानुभूति रखनेवाले थे। जापान-युद्ध के पहले चीन में सिपाही का धंधा नीचे दर्जे का माना जाता था, इसलिये उस समय फौज में नीच जाति के और अशिक्षित लोग ही भरती किये जाते थे। ये लोग जानते न थे कि 'स्वदेश' और 'स्वकर्तव्य' किस चिड़िया का नाम है! इसलिये ये लोग जुल्मी अधिकारियों के आधीन होकर प्रजा पर जुल्म करने के लिये यंत्र के समान काम आते थे। परंतु अब वह समय न रहा। अब कुलीन घराने के और शिक्षित लोग फौज में भरती होने लगे। ये लोग अपने देश की दशा भली भांति जानते थे। इस लिये स्व-कर्तव्य संबंधी उनके विचार बहुत ऊंचे दर्जे के थे। इस प्रकार राज्यक्रांति के एक प्रधान अंग—सेना—की अनुकूलता आप ही आप सिद्ध हो गई।

राज्यक्रांति के दूसरे अंग—जहाजी सेना—की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया गया। क्योंकि चीन की जहाजी सेना में कुछ जान ही न थी। क्रांतिकारक पक्ष को उसके नाश के बदले शांत होने का ही अधिक भरोसा था। इसलिये इन लोगों ने जहाजी सेना को अपने में मिला लेने का कोई यत्न नहीं किया। तथापि, जिन क्रांति-कारक विचारों का प्रचार देश भर में जारी हो गया था उनके प्रभाव से जहाजी सेना के अधिकारी अलग रह कैसे सकते हैं? क्रांति-कारक पक्ष के नेताओं का विश्वास था कि जब मौका आवेगा तब जहाजी सेना की भी सहायता अवश्य ही मिल जावेगी। [illegible]

चलकर उन लोगों को यह बात अनुभव से मालूम हो गई कि उक्त विश्वास मिथ्या न था।

इस बात का दृढ़ विश्वास हो जाने पर कि फौज और जहाज की सहायता अवश्य मिलेगी, क्रांतिकारक पक्ष ने साधारण जनसमूह [illegible]

संगृहित धन इस सत्कार्य के लिये अर्पण कर दिया। फिलाडेल्फिया के एक चीनी धोबी ने बीस वर्ष तक मिहनत करके जो द्रव्य संग्रह किया था वह सब उसने डा. सन्यत्सेन को दे डाला! यूरप के बड़े बड़े सेठ साहूकारों ने भी निरपेक्ष बुद्धि से डॉ. सुन्यत्सेन को द्रव्य की सहायता दी।

तब वह इंग्लैंड में था। डॉ सुन्यत्सेन को जो पकड़कर लायगा उसको बहुत बड़ा पारितोषिक देने का इश्तिहार सरकार ने प्रकाशित किया था। इसलिये उसको बहुत सावधानी से रहना पड़ता था-न जाने कब, कहां और कौन पारितोषक के लोभ में विश्वासघात कर बैठेगा। ऐसी अवस्था में जब उसको उक्त संदेसा मिला तब उसके मन में सहज ही यह शंका उत्पन्न हुई कि मुझे पकड़ने के लिये यह जाल फैलाया गया है। उसने यह उत्तर भेजा कि " पंद्रह वर्षों के अनुभव ने मुझे होशियार कर दिया है। मैं ऐसे संदेसों के जाल में फँस जाने वाला कच्चे गुरू का चेला नहीं हूं। जो उतावला सो बावला-उसका काम कभी सफल नहीं होता। मैं अपना मौका ताक रहा हूं। जबतक उचित समय नहीं आता तबतक बाट जोहने का मुझे धैर्य है! " इस प्रकार के संदेसे भेजने में ही वह समय निकल गया। जब डॉ. सुन्यत्सेन को यथार्थ बातें मालूम हुई तब वह पछताने लगा कि मैंने अपने मित्र पर वृथा अविश्वास करके एक वर्ष योंही व्यतीत कर दिया। परंतु इस सावधानता से कोई कार्य-हानि नहीं हुई, इस लिये उसके विषय में खेद करने का कारण ही न रहा।

चीनी सेनापति फौज को यह सिखा रहे हैं कि लड़ाई के समय किस तरह वर्तन करना चाहिये।

द्रव्य की सहायता से भी अधिक मूल्यवान् सहायता उसको आकस्मिक रीति से प्राप्त हुई। अमेरिका के संयुक्त संस्थान में ' होमर ली ' नामका एक फौजी अफ़सर था। उसने डॉ. सुन्यत्सेन से मिलकर यह प्रतिज्ञा की कि मैं चीनी फौज को युद्ध की शिक्षा दूंगा। डॉ.सुन्यत्सेन ने आश्चर्यचकित होकर कहा कि " तुम्हारी इस प्रतिज्ञा के लिये मैं तुमको धन्यवाद देता हूं; परंतु जब मैं चीन देश का प्रेसिडेन्ट (अध्यक्ष) होऊंगा तब मैं तुम्हें फौज का सेनापति बनाऊंगा! " कर्नल ली ने हँसकर जवाब दिया " मेरी युद्धकला की आवश्यकता तुमको प्रेसिडेन्ट होने के पहले ही होगी। सेना की सहायता बिना तुम प्रेसिडेन्ट कैसे होगे? इसीलिये अध्यक्ष बनने की राह न देखकर अभी से मेरी युद्धकला का उपयोग करलो। इससे तुम्हारा कार्य सहज सफल हो जयगा! " कहने की आवश्यकता नहीं है कि डॉ सुन्यत्सेन ने इस सहायता को आनंदपूर्वक और कृतज्ञता से स्वीकार किया।

इस प्रकार मंचू घराने के विषय में द्वेष और स्वराज्य की चाह सब लोगों के अंतःकरणों में प्रदीप्त हो गई और सारा चीन देश लाक्षागृह के समान हो गया-एक चिनगारी पड़ते ही वह भभकने लगेगा। धूमधाम और हलचल के ये सब लक्षण देखकर ही बादशाह ने चीनी पार्लिमेन्ट की योजना की थी, परंतु जब पार्लिमेन्ट ने यह प्रस्ताव किया कि अधिकारी मंडल हमारे अधीन रहे तब उसको बंद करना पड़ा। इससे यह भय उत्पन्न हुआ कि कहीं द्वेष की आग गुप्त रीति से भीतर ही भीतर सुलगने न लगे। पार्लिमेंट सभा का अंत होने के कुछ दिन पहले चीनी दरबार ने एक और बड़ी भारी भूल की थी। इस बात का उल्लेख किया ही गया है कि यु-आन शि-काई जैसे सुप्रसिद्ध राजनीतिज्ञ और योद्धा की देख-भाल में चीन की नई सेना तैयार की गई थी। यद्यपि यु-आन शि-काई सुधार पक्ष के अनुकूल था तथापि मंचू घराने के विषय में उसकी राजनिष्ठा अटल बनी थी। परंतु देश में चारों ओर असंतोष के चिन्ह देखकर चीनी सरकार घबड़ा गई और यु-आन शि-काई की राजनिष्ठा के विषय में संदेह करने लगी। इसी घबड़ाहट और संदेह में पड़कर सरकार ने उसको अधिकार के पद से अलग कर दिया। सब सैनिक लोग उसको बहुत चाहते थे। सच पूछो तो उसी समय बलवा शुरू हो जाता। परंतु यु-आन शि-काई की अटल राजनिष्ठा ही से वह मौका टल गया। उसने तुरंत डॉ सुन्यत्सेन को संदेसा भेजा कि ' मौका आ गया है; तुम तुरंत इधर चले आओ और अपना कार्य आरंभ करो, जब यह संदेसा डॉ सुन्यत्सेन को मिला

यांगत्सी प्रांत में अकाल और यांगत्सी नदी की बाढ़ से प्रजा बहुत पीड़ित हुई। वहां के लोगों ने पुकार मचाई। ऐसी अवस्था में भी उस प्रांत में रेल चलाने वाली और खान खोदने वाली विदेशी कंपनियां मनमाना धन कमा रही थीं, क्योंकि उनको चीनी सरकार ने व्यापार संबंधी खास रियायतें दी थीं। यह बात वूचांग के लोगों को पसंद न थी। उन लोगों ने गवर्नर से प्रार्थना की कि इन कंप-नियों को दी हुई शर्तें रद्द कर दी जांय। अधिकारियों ने इस प्रार्थना पर कुछ ध्यान न दिया। तब लोगों ने दंगा करना शुरू किया। इस दंगे में एक बार बम का गोला भी चलाया गया था। इसकी तहकीकात की गई और मालूम हुआ कि यहां बम बनाने का कार-खाना और शस्त्रों का संग्रह है। तब इन बलवाइयों को पकड़ने का हुक्म हुआ। बस, फिर क्या था, जैसे बारूद की कोठरी में एक चिनगारी गिरते ही ज्वाला भभकने लगती है वैसे ही यह बल-वाई आग सारे देश में फैल गई। आगे चलकर इस राज्यक्रांति का स्वरूप बहुत ही भयानक होने लगा। राज्यक्रांति के इस तूफान से सारा चीन देश कैसे व्याप्त हो गया, मंचू राजघराना कैसे पदच्युत किया गया और अंत में लोकसत्तात्मक० राज्यपद्धति कैसे स्थापित की गई सो सब समाचारपत्रों द्वारा लोगों को मालूम ही है। इस लेख में उस वर्णन की पुनरुक्ति करने की आवश्यकता नहीं है। इस में संक्षिप्त रीति से इस बात का उल्लेख किया जाता है। कि राज्यक्रांति की सफलता के मुख्य मुख्य कारण क्या हैं।

१. सन् १६४४ में मंचू घराने की स्थापना होने पर कुछ समय तक राज्य का प्रबंध अच्छा था; परंतु समष्टिरूप से यही कहना पड़ता है कि मंचू राजघराने के प्रायः सब लोग अयोग्य और निरुपयोगी थे। अठारहवीं सदी के अंत तक उनकी शूरता का कुछ अंश किसी प्रकार देख पड़ता था; परंतु उन्नीसवीं सदी के आरंभ से इन लोगों की दुर्बलता के कारण चीन देश को अनेक बार अपमानित होना पड़ा। इसका परिणाम यह हुआ कि मंचू राजघराने के विषय में लोगों का पूज्यभाव नष्ट हो गया और उसके बदले द्वेष और घृणा पैदा हो गई। प्रत्येक चीनी निवासी का यह विश्वास दृढ़ हो गया कि, इंग्लैंड, फ्रांस, जापान आदि विदेशों से युद्ध करते समय हमारे देश को बार बार हारना, सिर नीचे झुकाना पड़ा उसका कारण यह नहीं है कि हम लोगों में शूरता कम है, परंतु उसका कारण यही है कि हम लोगों को मंचू घराने के दुर्बल राजाओं के अधीन रहना पड़ता है। इस प्रकार के मानभंग का बदला लेने के लिये राज्यक्रांति के सिवाय अन्य उपाय ही न था; अब तक राजसत्ता

शृंगेरी मठ के श्रीशंकराचार्य।

पाठक, जिस महानुभाव विभूति का चित्र आप यहां देख रहे हैं उनके चरित्र के संबंध में कुछ बातें लिखने के पहले आप को सुप्रसिद्ध विद्वान और बुद्धिमान त्र्यंबकशास्त्री का कुछ परिचय देना चाहिये। आप न्यायशास्त्र और वेदांतशास्त्र में अत्यंत प्रवीण थे। आपके विषय में एक आख्यायिका प्रसिद्ध है कि आप जब छोटे थे तभी शास्त्र की परीक्षा देने गये। आपके उत्तर सुनकर परीक्षकों को संदेह हुआ कि ये विद्यार्थी नहीं हैं, किंतु परीक्षक ही हैं। अस्तु।

व्याकरण, तर्क, मीमांसा आदि शास्त्रों का अध्ययन करके त्र्यंबकशास्त्री श्रीशंकराचार्य की प्रस्थानत्रयी का अध्ययन करने के लिये गुरु की खोज में निकले। परंतु उनकी अलौकिक विद्वत्ता के सामने उनको आचार्य का भाष्य पढ़ाने योग्य कोई गुरु नहीं मिला। अंत में साक्षात् शंकराचार्य ने प्रगट होकर उनको प्रस्थानत्रयी की शिक्षा दी।

त्र्यंबकशास्त्री का [illegible] रामशास्त्री नाम का एक मुख्य शिष्य था। दक्षिणभारत में रामशास्त्री का नाम तर्कशास्त्र में प्रवीणता के लिये प्रसिद्ध है। आपने 'शतकोटि' नाम का एक उत्तम ग्रंथ लिखा है। यही रामशास्त्री प्रस्तुत चरित नायक के पिता थे। आपने पहले ही भविष्यकथन किया था कि हमारा पुत्र सन्यासाश्रम ग्रहण करेगा।

सन् १८५८ ई. में हमारे चरित नायक का जन्म मैसूर में हुआ। आप का नाम शिव रखा गया। लड़कपन ही से आपकी बुद्धिमत्ता और शील का प्रभाव लोगों पर पड़ने लगा। जब आप तीन वर्ष के थे तभी आपके पिता रामशास्त्री परलोक सिधारे। आपके बड़े भाई लक्ष्मीनृसिंह शास्त्री ने आपका लालन पालन यथायोग्य किया। इसका यज्ञोपवीत संस्कार आठवें वर्ष में हुआ। दस वर्ष बाद शृंगेरीमठ के श्रीशंकराचार्य को श्रीशारदा देवी का स्वप्नसाक्षात्कार हुआ और शंकराचार्य ने मैसूर के राजा तीसरे कृष्णराज वाडियार के मार्फत लक्ष्मीनृसिंहशास्त्री के छोटे भाई को अपना शिष्य बनाने के लिये मांगा। यह मांग स्वीकृत हुई और शंकराचार्य ने अपने इस शिष्य का नाम 'सच्चिदानंद शिवाभिनवनृसिंह भारती' रखा। बारह वर्ष तक शंकराचार्य ने आपको शिक्षा दी। इक्कीसवें वर्ष की आयु में आप अपने गुरु की गद्दी पर बैठे और श्रीमज्जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य का काम करने लगे। यह बात सब लोगों को विदित है कि आपने श्रीशंकराचार्य, श्रीसुरेश्वराचार्य, श्रीविद्यारण्य आदि महात्माओं की गद्दी का काम कैसी उत्तमता से किया है।

सच्चिदानंद शिवाभिनवनृसिंह भारती स्वामी ने कुछ दिन पहले त्रावनकोर राज्य में कालटी नामक स्थान में (जहां आदिशंकराचार्य का जन्म हुआ था) दो भव्य मंदिर बनवाए हैं। एक श्रीशंकराचार्य का और दूसरा श्रीशारदाम्बा का है। बहुत प्राचीन समय से मलाबारप्रांत के निवासियों में यह भविष्यकथा प्रचलित थी कि ३३ वीं पीढ़ी में श्रीशंकराचार्य स्वयं अवतार लेकर अपनी जन्मभूमि में मंदिर बनवाएंगे और मलाबार प्रांत को कलंकमुक्त करेंगे। कहने में कोई हर्ज नहीं कि यह भविष्यकथा सत्य निकली, क्योंकि ये स्वामी जगद्गुरु की गद्दी पर ३३ वें पुरुष हैं। देवालयों की स्थापना का महोत्सव देखने के लिये कालटी में सब जाति और सब पंथ के दो लाख से अधिक लोग एकत्र हुए थे।

गत वर्ष स्वामीजी ने संस्कृत विद्या के पुनरुज्जीवनार्थ बंगलोर में एक बृहत् विद्यालय स्थापित किया। इस विद्यालय की नींव सन् १९०७ ई में खोदी गयी थी। तब से स्वामीजी इसके लिये अनंत परिश्रम कर रहे थे। अंत में यह कार्य उनकी जीवितावस्था ही में सफल हुआ। शृंगेरी में भी आपने श्रीशारदा और श्रीचंद्रमौलीश्वर के मंदिर बनवाने का कार्य आरंभ किया था। ये मंदिर उनके पश्चात् अब बनकर तैयार हो गये हैं।

इधर कुछ दिनों से स्वामीजी की शारीरिक प्रकृति अस्वस्थ होने लगी थी। तौभी आपने अपने नित्य के उपदेशक्रम में कभी बाधा होने न दी। अंत में गत चैत्र शुक्ला द्वितीया के दिन आप इस कर्मभूमि का त्याग करके ब्रह्मस्वरूप में लीन हो गये। मृत्यु के समय आपकी आंतरिक वृत्ति अत्यंत शांत, गंभीर और आनंदमय देख पड़ती थी। अंतिम श्वासोच्छ्वास लेने के पहले आपने सीता राम, ईश्वर और अम्बिका के पवित्र नाम का मुख से उच्चारण किया और फिर देहत्याग किया। मृत्यु के एक मास पहले किसी को इस बात की कल्पना तक न थी कि स्वामीजी अब सब लोगों को छोड़कर शीघ्र ही चल बसेंगे।

यद्यपि स्वामीजी का शारीरिक स्वास्थ्य अच्छा न था, तथापि उनकी नाड़ी की गति यथायत् बनी थी। मृत्यु के समय पर्यंत उनकी नाड़ी की गति निरोगी मनुष्य की नाईं बहुत ठीक मालूम होती थी—उसमें किसी प्रकार का विकार देख नहीं पड़ता था। यह उनके योगबल का ही परिणाम है। और्ध्वदेहिक क्रिया करने में लगभग ६ सात घंटे लग गये। तब तक स्वामीजी के मुख पर तेज और स्मित दोनों उपस्थित थे। प्रेक्षकों को यही बोध होता था कि स्वामीजी सदा की नाईं समाधि अवस्था ही में निमग्न हैं।

स्वामीजी ३३ वर्ष तक इस गद्दी पर विराजमान थे। आपने अपनी अगाध विद्वत्ता—अपना सर्वस्व—मानवजाति की सेवा के लिये अर्पण कर दिया था। आप सब लोगों के साथ हिल मिलकर स्वतंत्रतापूर्वक बातें करते थे। आपकी गुरुभक्ति, विद्वत्ता, प्रेम, दयार्द्रता आदि सद्गुणों का वर्णन करना कठिन काम है। जब आपकी सवारी देश में धर्म का निरीक्षण करने के लिये बाहर निकलती थी तब धार्मिक और श्रद्धावान् जन आपको सहस्रों रुपये अर्पण करते थे। आपको [illegible] सवारी में १३ लाख रुपये मिले थे। यह सब धन आपने सत्कार्य में व्यय कर दिया है। [illegible] करते समय स्वामीजी धर्मभेद या जातिभेद या पक्षभेद पर बिलकुल ध्यान न देते थे। एक बार एक मुसलमान बालक उनकी शरण में आया था। आपने तुरंत ही उसकी शिक्षा का प्रबंध कर दिया। यह लड़का मैसूर में शिक्षा समाप्त कर रहा है।

स्वामीजी के उपदेश और आचरण में कर्म, भक्ति और ज्ञान इन तीनों मार्गों का बहुत ही उत्तम सम्मेलन देख पड़ता था। वर्तमान समय में आपके समान धर्माधिकारी पुरुष और कोई सुनने में नहीं आता। प्रार्थना यही है कि श्रीशारदाम्बा देवी और श्रीमच्छंकराचार्य की कृपा से ऐसे ही महानुभाव सत्पुरुष इस उज्ज्वल धर्मपीठ को सदा सुशोभित करते रहें।

हसुसी के हाथ में अधिकार था तब तक उसके प्रभाव से लोगों का असंतोष और बलवा दबा हुआ था। उसकी मृत्यु होते ही राजपक्ष और प्रजापक्ष में लड़ाई झगड़ा खुल्लमखुल्ला आरंभ हो गया और अंत में प्रजापक्ष की जीत हुई।

२. मंचू घराने का जुल्म इतना असह्य हो गया था और कर के बोझे से लोग इतने दुःखित हो गये थे कि उस घराने के विषय में किसीके भी मन में रत्ती भर पूज्यभाव या प्रेम न था। ज्योंही बलवे का आरंभ हुआ त्योंही सब लोग सशस्त्र होकर उसमें शामिल हो गये। केवल पुरुष ही नहीं, किंतु चीन देश की स्त्रियां भी शस्त्र लेकर युद्ध के लिये तैयार हो गईं। जो बात किसी देश के छोटे बड़े, सब स्त्री-पुरुषों के मन में पूरी तरह बिंबित हो जाती है उसकी सिद्धि के लिये सब लोग मिलकर जी जान से यत्न करने लग जाते हैं और अंत में उनको सफलता भी प्राप्त होती ही है।

३. टेपिंग-पंथियों के और बाक्सर लोगों के बलवे के समय राज्यक्रांति का बहुत बड़ा यत्न किया गया था, परंतु उन लोगों के आधार-तत्व ही में दोष था इसलिये वे सफल नहीं हुए। टेपिंग-पंथ के बलवाई लोग स्वजनों की अपेक्षा विदेशियों ही पर अधिक अवलंबित थे; और बादशाह ने भी उस बलवे को विदेशियों ही की सहायता से शांत किया। बाक्सर-युद्ध के समय वृद्ध राजमाता त्सुसी की राजनीतिज्ञता, दक्षता और चतुरता ने, मंचू-सबंधी लोगों के द्वेष को, और ही दिशा में प्रवृत्त कर दिया, इसका परिणाम यह हुआ कि मंचू घराना सुरक्षित रहा और विदेशियों पर हमला किया गया। जब पश्चिमी देशों के सब लोग स्वहितसंरक्षणार्थ चीन में एकत्र हुए तब उन लोगों से युद्ध करने का सामर्थ्य बलवाइयों में न था, इसलिये शस्त्र छोड़ कर उन्हें शरणागत होना पड़ा! सारांश, उपर्युक्त दोनों बलवों के समय बड़ी भारी भूल की गई। उस प्रकार की भूल और उस प्रकार का दोष वर्तमान राज्यक्रांति के समय न होने देने का निश्चय प्रत्येक नेता ने कर लिया है। अब विदेशी लोगों का इस राज्यक्रांति से कोई संबंध नहीं है।

४. सब से अधिक महत्त्व की बात तो यह है कि वर्तमान समय में राज्यक्रांतिकारक पक्ष को सेना की सहायता मिल गई है। राज्यकर्ता कितने ही जुल्मी और दुर्बल क्यों न हों, प्रजा में कितना ही असंतोष क्यों न हो और प्रजापक्ष के नेतागण कितने ही कार्यक्षम क्यों न हों; परंतु यथार्थ बात यह है कि जिस पक्ष को सेना की सहायता मिलती है वही अंत में विजयी होता है—अन्य लोगों के यत्न निष्फल हो जाते हैं। फ्रांस, स्पेन, नेदर्लेंड, पोर्चुगाल, इंग्लेंड आदि देशों के इतिहासों में भी यही सिद्धान्त देख पड़ता है। व्याख्यान देनेवाले और राजनीतिज्ञ लोग अपनी वक्तृत्वशक्ति और संघटनाचातुर्य की भले ही प्रशंसा किया करें, परंतु जब तक उनको शस्त्रास्त्रों की सहायता नहीं मिलती तब तक उनकी सारी कार्रवाई निष्फल ही रहती है। इंग्लेंड के राजा द्वितीय जेम्स ने आत्मसंरक्षण के लिये जो सेना आयर्लेंड से लाकर लंडन के समीप खड़ी की थी वह यदि विरुद्ध पक्ष में शामिल हो न जाती तो अंग्रेजों को भी यह आत्मस्तुति करने का अवसर न मिलता कि 'खून खराबी किये बिना ही हमने राज्यक्रांति की।' जब नेपोलियन एल्बा टापू के कारागृह से भग गया तब यदि फ्रेंच सेना उसको न मिलती तो वाटरलू की लड़ाई का कोई कारण ही न रहता। शिवाजी की मृत्यु के बाद राजाराम को गद्दी पर बैठाने का यत्न करनेवाले राजनीतिज्ञों को यदि सेना की सहायता होती तो संभाजी गद्दी पर कभी बैठ ही न पाता। मुगलों की कैद से शाहू की जब मुक्तता हुई तब यदि उसको धनाजी जाधव की सहायता न मिलती तो वह सितारे के गद्दी पर कभी बैठ ही न सकता। हाल ही में पोर्चुगाल देश में जो राज्यक्रांति हुई वह भी सेना और जहाजी बेड़ों के ही बल पर हुई। तात्पर्य यह है कि चीनी क्रांतिकारक पक्ष की सफलता का मुख्य कारण यही है कि उसको सेना की सहायता थी।

५ अंतिम और प्रधान सहाय का कारण यह है कि क्रांतिकारक पक्ष के नेतागण यथार्थ देशभक्ति और स्वार्थत्याग से प्रेरित होकर एकचित्ततापूर्वक काम करते थे। यद्यपि डॉ. सुन्यतसेन को पकड़ कर सरकार के सिपुर्द करनेवाले को लाखों रुपयों के इनाम का लालच दिखाया गया था तथापि एक भी मनुष्य ने यह विश्वासघात का यत्न नहीं किया। यद्यपि डॉ. सुन्यतसेन ने राज्यक्रांति के लिये अपने प्राणों की परवा न करते हुए उद्योग किया, तथापि उसने अध्यक्ष का पद स्वयं स्वीकार नहीं किया—उस पर आरूढ होने के लिये यु-आन शि-काई को ही उसने अपने से अधिक योग्य समझा। स्वार्थत्याग का इससे अधिक उज्ज्वल उदाहरण और कहां देख पड़ेगा!

अब क्रांतिकारक पक्ष के साहस और बादशाही फौज की मूर्खता के विषय में एक बात लिख कर यह लेख समाप्त किया जायगा। वूचांग में जब बलवे का झंडा खड़ा किया गया तब प्रथम हांको शहर पर हमला करने को बलवाइयों का इरादा था; परंतु उनके पास युद्ध की सामग्री यथोचित न थी। वहां से कुछ दूर हेनयांग नामक किले में युद्ध की बहुत सामग्री थी, परंतु उस पर हमला करना सहज काम न था। इसलिये क्रांतिकारक पक्ष की फौज के सौ सिपाहियों ने अपूर्व साहस करने का निश्चय किया। उन लोगों ने भगने का बहाना किया और उनके अन्य साथी उनको पकड़ने के लिये उनके पीछे दौड़ने लगे। इस प्रकार भगते भगते जब वे हेनयांग किले के समीप पहुंचे तब पहरेवालों के पैर पकड़कर उन्होंने कहा कि 'हम बादशाह की राजनिष्ठ प्रजा हैं और ये (उनके पीछे दौड़नेवाले) बलवाई लोग हम को व्यर्थ पकड़कर ले जाने के लिये हमारे पीछे दौड़ते हुए चले आ रहे हैं। यदि तुम हम को किले में रहने दोगे तो हमारी जान बच जायगी, नहीं तो हम अपने बादशाह के लिये लड़ते लड़ते यहीं प्राण त्याग कर देंगे, हम जीते जी बलवाइयों के अधीन होना नहीं चाहते! बहानेबाजी की इन बातों से किले के पहरेवाले चक्कर में आ गये। उन लोगों ने, यह समझकर कि इनका कथन सत्य है, किले के दरवाजे खोल दिये और उन्हें भीतर जाने दिया। थोड़ी देर के बाद जब बलवाइयों की फौज दौड़ती हुई किले के पास आई तब किले के भीतर घुसे हुए सिपाहियों ने सब दरवाजे खोल दिये। तुरंत ही बलवाई किले के भीतर घुस पड़े और उन लोगों ने युद्ध की सामग्री हस्तगत कर ली। इस स्थान में उन्हें ४८ बड़ी तोपें, सैकड़ों छोटी छोटी पहाड़ी तोपें, २३ हजार बंदूकें और ३० लाख कारतूस—इतनी सामग्री मिली। इसी सामग्री की सहायता से उन लोगों ने राज्यक्रांति सफल की।

क्रांतिकारक पक्ष का विजय होते ही बादशाह अपने सब अधिकार और सत्ता प्रजा को सौंप कर भग गया। यु आन शि-काई अध्यक्ष पद पर नियत किया गया और लोकसत्तात्मक राज्य की स्थापना हुई। चीनी लोकसत्तात्मक राज्यप्रबंध के विषय में जापान, अमेरिका और फ्रांस ने अपनी अनुकूल सम्मति प्रगट की है। यह आशा की जाती है कि इंग्लेंड, रूस आदि पश्चिमी देश भी इस नूतन स्थापित लोकसत्तात्मक राज्य को सम्मानित करेंगे और उन लोगों का यह दुराग्रह नष्ट हो जायगा कि पूर्वीय देश लोकसत्तात्मक राज्यप्रबंध करने के योग्य नहीं हैं।

शृंगेरी मठ के श्रीशंकराचार्य।

पाठक, जिस महानुभाव विभूति का चित्र आप यहाँ देख रहे हैं उनके चरित के संबंध में कुछ बातें लिखने के पहले आप को सुप्रसिद्ध विद्वान और बुद्धिमान त्र्यंबकशास्त्री का कुछ परिचय देना [illegible] ... [illegible] में अत्यन्त प्रवीण थे। [illegible] ... आप जब छोटे थे [illegible] ... सुनकर परीक्षकों को संदेह हुआ कि ये विद्यार्थी नहीं हैं, किंतु परीक्षक ही हैं। अस्तु।

व्याकरण, तर्क, मीमांसा आदि शास्त्रों का अध्ययन करके त्र्यंबकशास्त्री श्रीशंकराचार्य को प्रस्थानत्रयी का अध्ययन करने के लिये गुरु की खोज में निकले। परंतु उनकी अलौकिक विद्वत्ता के सामने उनको आचार्य का भाष्य पढ़ाने योग्य कोई गुरु नहीं मिला। अंत में साक्षात् शंकराचार्य ने प्रगट होकर उनको प्रस्थानत्रयी की शिक्षा दी!

त्र्यंबकशास्त्री का कुनीगल रामशास्त्री नाम का एक मुख्य शिष्य था। दक्षिणभारत में रामशास्त्री का नाम तर्कशास्त्र में प्रवीणता के लिये प्रसिद्ध है। आपने 'शतकोटि' नाम का एक उत्तम ग्रंथ लिखा है। यही रामशास्त्री प्रस्तुत चरित नायक के पिता हैं। आपने पहले ही भविष्यकथन किया था कि हमारा पुत्र सन्यासाश्रम ग्रहण करेगा।

सन् १८५८ ई. में हमारे चरित-नायक का जन्म मैसूर में हुआ। आप का नाम शिव रक्खा गया। लड़कपन ही से आपकी बुद्धिमत्ता और शील का प्रभाव लोगों पर पड़ने लगा। जब आप तीन वर्ष के थे तभी आपके पिता रामशास्त्री परलोक सिधारे। आपके बड़े भाई लक्ष्मीनरसिंह शास्त्री ने आपका लालन पालन यथायोग्य किया। इनका यज्ञोपवीत संस्कार आठवें वर्ष में हुआ। एक वर्ष बाद शृंगेरीमठ के श्रीशंकराचार्य को श्रीशारदा देवी का स्वप्नसाक्षात्कार हुआ और शंकराचार्य ने मैसूर के राजा चामराज कृष्णराज वोडियार के मार्फत लक्ष्मीनरसिंहशास्त्री के छोटे भाई को अपना शिष्य बनाने के लिये मांगा। यह मांग स्वीकृत हुई और शंकराचार्य ने अपने इस शिष्य का नाम 'सच्चिदानंद शिवाभिनवनृसिंह भारती' रखा। बारह वर्ष तक शंकराचार्य ने आपको शिक्षा दी। इक्कीसवीं वर्ष की आयु में आप अपने गुरु की गद्दी पर बैठे और श्रीमज्जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य का काम करने लगे। यह बात सब लोगों को विदित है कि आपने श्रीशंकराचार्य, श्रीसुरेश्वराचार्य, श्रीविद्यारण्य आदि महात्माओं की गद्दी का काम कैसी उत्तमता से किया है।

सच्चिदानंद शिवाभिनवनृसिंह भारती स्वामी ने कुछ दिन पहले त्रावनकोर राज्य में कालटी नामक स्थान में (जहां आदिशंकराचार्य का जन्म हुआ था) दो भव्य मंदिर बनवाए हैं। एक श्रीशंकराचार्य का और दूसरा श्रीशारदाम्बा का है। बहुत प्राचीन समय से मलाबारप्रांत के निवासियों में यह भविष्यकथा प्रचलित थी कि ३३ वीं पीढ़ी में श्रीशंकराचार्य स्वयं अवतार लेकर अपनी जन्मभूमि में मंदिर बनवाएंगे और मलाबार प्रांत को कलंकमुक्त करेंगे। कहने में कोई हर्ज नहीं कि यह भविष्यकथा सच निकली, क्योंकि ये स्वामी जगद्गुरु की गद्दी पर ३३ वें पुरुष हैं। देवालयों की स्थापना का महोत्सव देखने के लिये कालटी में सब जाति और सब पंथ के दो लाख से अधिक लोग एकत्र हुए थे।

गत वर्ष स्वामीजी ने संस्कृत विद्या के पुनरुज्जीवनार्थ बंगलोर में एक बृहत् विद्यालय स्थापित किया। इस विद्यालय की नींव सन् १९०७ ई में खोदी गयी थी। तब से स्वामीजी इसके लिये अनंत परिश्रम कर रहे थे। अंत में यह कार्य उनकी जीवितावस्था ही में सफल हुआ। शृंगेरी में भी आपने श्रीशारदा और श्रीचंद्रमौलीश्वर के मंदिर बनवाने का कार्य आरंभ किया था। ये मंदिर उनके पश्चात् अब बनकर तैयार हो गये हैं।

इधर कुछ दिनों से स्वामीजी की शारीरिक प्रकृति अस्वस्थ होने लगी थी। तौभी आपने अपने नित्य के उपदेश क्रम में कभी बाधा होने न दी। अंत में गत चैत्र शुक्ला द्वितीया के दिन आप इस कर्मभूमि का त्याग करके ब्रह्मस्वरूप में लीन हो गये। मृत्यु के समय आपकी आंतरिक वृत्ति अत्यंत शांत, गंभीर और आनंदमय देख पड़ती थी। अंतिम श्वासोच्छ्वास लेने के पहले आपने सीता राम, ईश्वर और अम्बिका के पवित्र नाम का मुख से उच्चारण किया और फिर देहत्याग किया। मृत्यु के एक मास पहले किसी को इस बात की कल्पना तक न थी कि स्वामीजी अब सब लोगों को छोड़कर शीघ्र ही चल बसेंगे।

यद्यपि स्वामीजी का शारीरिक स्वास्थ्य अच्छा न था, तथापि उनकी नाड़ी की गति यथावत् बनी थी। मृत्यु के समय पर्यंत उनकी नाड़ी की गति निरोगी मनुष्य की नाईं बहुत ठीक मालम होती थी—उसमें किसी प्रकार का विकार देख नहीं पड़ता था। यह उनके योगबल का ही परिणाम है। और्ध्वदेहिक क्रिया करने में लगभग छै सात घंटे लग गये। तब तक स्वामीजी के मुख पर तेज और स्मित दोनों उपस्थित थे। प्रेक्षकों को यही बोध होता था कि स्वामी जी सदा की नाईं समाधि अवस्था ही में निमग्न हैं।

स्वामीजी ३३ वर्ष तक इस गद्दी पर विराजमान थे। आपने अपनी अगाध विद्वत्ता—अपना सर्वस्व—मानवजाति की सेवा के लिये अर्पण कर दिया था। आप सब लोगों के साथ दिल खोलकर स्वतंत्रतापूर्वक बातें करते थे। आपकी गुरुभक्ति, विद्वत्ता, प्रेम, दयार्द्रता आदि सद्गुणों का वर्णन करना कठिन काम है। जब आपकी सवारी देश में धर्म का निरीक्षण करने के लिये बाहर निकलती थी तब धार्मिक और श्रद्धालु जन आपको लाखों रुपये अर्पण करते थे। आपकी पिछली सवारी में १७१ लाख रुपये मिले थे। यह सब धन आपने सत्कार्य में व्यय कर दिया है। सत्कार्य में द्रव्यदान करते समय स्वामीजी धर्मभेद या जातिभेद या पंथभेद पर बिलकुल ध्यान न देते थे। एक बार एक मुसलमान बालक उनकी शरण में आया था। आपने तुरंत ही उसकी शिक्षा का उचित प्रबंध कर दिया। वह लड़का मैसूर में शिक्षा सम्पादन कर रहा है।

स्वामीजी के उपदेश और आचरण में कर्म, भक्ति और ज्ञान इन तीनों मार्गों का बहुत ही उत्तम सम्मेलन देख पड़ता था। वर्तमान समय में आपके समान धर्माधिकारी पुरुष और कोई सुनने में नहीं आया। प्रार्थना यही है कि श्रीशारदाम्बा देवी और श्रीमच्छंकराचार्य की कृपा से ऐसे ही महानुभाव सत्पुरुष इस प्राचीन धर्मपीठ को सदा सुशोभित करते रहें।

कोल्हापुर के दृश्य।

नं० १ अम्बादेवी के देवालय का अगला दृश्य।

न० २ देवालय का पिछला दृश्य।

कोल्हापुर शहर में कुल २५० मन्दिर हैं; उन सब में मुख्य और बड़ा सुन्दर श्रीमहालक्ष्मी का मन्दिर शहर के मध्यभाग में है। मन्दिर का मुख्य भाग दुमंजिला है और सारा मन्दिर काले पत्थर का बना हुआ है। पहले पहले यह मन्दिर जैन लोगों ने बनाया, परन्तु पीछे से ऊपर का शिखर और कुछ भाग संकेश्वर मठ के श्रीमत् शंकराचार्य ने एक लाख रुपये खर्च कर के बनवाया और इस में श्री महालक्ष्मी की स्थापना की। बीच में चौदहवीं और पन्द्रहवीं शताब्दी में मुसल्मानों के त्रास से श्री महालक्ष्मी की मूर्ति मन्दिर से निकाल कर दूसरी जगह छिपा रखी गई और सन् १७२२ में कोल्हापुर के संभाजी महाराज ने फिर उसकी स्थापना की। देवालय पश्चिमाभिमुख है और उसमें जाने के लिये चार द्वार हैं। सामने दरवाज़े पर नगारखाना है। पूर्व के द्वार पर एक बड़ा घंटा लगा है और वह दिन में पांच दफ़े आरती के समय बजाया जाता है। मुख्य देवालय में श्री गणपति, श्री महालक्ष्मी और श्री [illegible] के छोटे छोटे मन्दिर हैं। देवालय के शिखर में यह दन्तकथा है कि इसमें जितना पत्थर लगा है उतने ही वज़न का इसके बनाने में सोना खर्च किया गया है। सन् १८३८–१८४२ में, मुख्य प्रधान राजी पंडित के ज़माने में, देवालय से मिला हुआ एक बड़ा मण्डप बनाया गया है। मुख्य देवालय के चारों तरफ़ पत्थर की बड़ी दीवाल है और उसके भीतर अनेक छोटे छोटे मन्दिर हैं। श्री महालक्ष्मी की पूजा करने के लिये कुल लगभग ३० पुजारी हैं।

नं० ३ देवालय की उत्तर ओर का दृश्य।

प्रत्येक शुक्रवार को श्री महालक्ष्मी की पीतलवाली मूर्ति पालकी में रख कर मन्दिर के चारों तरफ फिराते हैं और फिर तोप छुड़ाई जाती है। वर्ष भर में श्री महालक्ष्मी के तीन बड़े दिन होते हैं। पहला चैत्र शुक्ल १५; इस दिन श्री महालक्ष्मी की मूर्ति एक बड़े रथ में रख कर शहर में घुमाते हैं। दूसरा आश्विन शुक्ल ५; इस दिन पालकी पर से देवी की मूर्ति कोल्हापुर से तीन मील पर श्रीत्र्यम्बुली के मन्दिर में ले जाते हैं और तीसरा दिन आश्विन शुक्ल १५; इस दिन बड़ी धूमधाम के साथ ब्रह्मभोज होता है और रात को देवालय के शिखर तथा उसके अन्य भागों में दीपोत्सव होता है।

नं० ४ के चित्र में जो पानी का हौज़ दिखलाया है उसके विषय में यह इतिहास प्रसिद्ध है कि अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक कोल्हापुर में पानी का अच्छा सुभीता न था। तब पूना के श्रीमान् रईस बाबूराव के [illegible] ठाकुर एक बार कोल्हापुर की यात्रा में आये। उनसे [illegible] अन्य यात्रियों ने प्रार्थना की कि "कात्यायनी के पहाड़ से श्री महालक्ष्मी के देवालय के लिये पानी लाने का प्रबन्ध होना चाहिये।" बाबूराव ने कोल्हापुर महाराज से इस बात की इजाज़त माँगी। परन्तु महाराज ने यह समझ कर कि दूसरे मनुष्य को पानी लाने देना अच्छा नहीं, इजाज़त नहीं दी। तब श्री महालक्ष्मी ने महाराज को स्वप्न में आज्ञा दी कि "बाबूराव की विनती मानना चाहिये।" तब सन् [illegible] ई० में बाबूराव ने तीन लाख रुपये खर्च करके नल के द्वारा पानी ला कर हौज़ में [illegible] करवाया। इसके सिवाय

२० हजार रुपये उन्होंने नल तथा हौज की मरम्मत के लिये भी कोल्हापुर के एक जमींदार के पास जमा कर दिये। कुछ दिन बाद यहां पानी कोल्हापुर के महाराज अपने महलों में और शहर में ले गये।

नं ४ देवालय में जाने का मुख्य मार्ग।
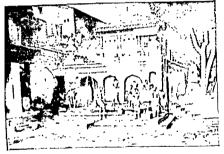
नं. ५ देवालय के हाते में पानी का हौज।

सूक्ष्मदर्शक यंत्र के नीचे परीक्षा किये हुए अश्रु।

ऊपर जो चित्र दिये जाते हैं वे आधुनिक काल में एक वैज्ञानिक के किये हुए एक चमत्कारिक प्रयोग के फल हैं। यह तो सभी जानते हैं कि मनुष्य के शरीर में बहुत सा नमक है, अतएव मनुष्य के आंसुओं के साथ भी नमक बाहर निकलता है। यह बात सब लोग जान सकते हैं। आंसुओं में शरीर के क्षार अधिकांश में रहते हैं। और जिन मनोविकारों से आंसू पैदा होते हैं उनके अनुसार वे क्षार भिन्न भिन्न प्रकार की आकृति में देखे जाते हैं। (क्रिस्टलाइज होते हैं) ऊपर से देखने में तो यह बात अविश्वसनीय मालूम होती है; परन्तु विज्ञान ने यह बात सिद्ध कर दी है

उपर्युक्त वैज्ञानिक ने एक कांच का टुकड़ा लेकर उस पर एक दुःखित पुरुष के आंसू का बुन्द रखा। कुछ देर बाद वह बुन्द सूख गया और उस पर सिर्फ क्षारों की आकृतियां रह गई। फिर जब वह कांच सूक्ष्मदर्शक यंत्र के नीचे रखकर देखा गया तब उसमें ऊपर दिया हुआ दुःखाश्रुओं का चिन्ह देख पड़ा। इसके बाद और भी दो दुःखित लोगों के आंसुओं की परीक्षा की गई उनमें भी वैसेही चित्र निकले।

इसके बाद क्रोध और निराशा से उत्पन्न हुए आंसुओं की परीक्षा की गई; और उनके चित्र जब अन्य अन्य आकृतियों के देख पड़े तब उस वैज्ञानिक को बड़ा आश्चर्य हुआ। प्रत्येक मनोविकार से उत्पन्न होनेवाले अश्रुओं के क्षारों की आकृतियां भिन्न और स्वतंत्र देख पड़ने लगीं। अनेक बार ऐसेही प्रयोग किये गये, परन्तु परिणाम एकही देख पड़ा। अब पश्चिमी विज्ञानवेत्ता इस बात का कारण ढूंढ निकालने में लगे हुए हैं कि ज्ञानतन्तुओं की भिन्न भिन्न क्रियाओं से शरीर के क्षारों की आकृतियां भिन्न भिन्न क्यों दिखाई देती हैं।

जिन प्रयोगों से उपरोक्त चित्र उत्पन्न हुए हैं वे प्रयोग बिलकुल साधारण हैं। सूक्ष्मदर्शक यंत्र रखनेवाला प्रत्येक पुरुष ये प्रयोग कर के देख सकता है।

ब्रह्मचर्य का अभाव।

[१]

"रस बिना कविता वृथा है" ठीक है यह बात,
पर किसे भीषण कथा रस पूर्ण होगी ज्ञात?
ब्रह्मचर्य्य व्रत बिना है जो हमारा हाल,
मित्र! उसका चित्र दर्शन है बड़ा विकराल॥

[२]

बढ़ रहे अब क्यों निरन्तर नित्य नूतन रोग?
क्यों न होते पूर्व के से शक्तिशाली लोग?
सर्वथा स्वल्पायु होकर घट रहे क्यों आर्य्य?
पूर्वजों के तुल्य क्यों होते न हम से कार्य्य?

[३]

एक उत्तर है यहां पर—'ब्रह्मचर्य्याभाव,'
कर रहा घुस कर यहां घर घर भयंकर घाव।
वीर्य्य बल का मूल है संसार में जो सार,
ब्रह्मचर्य्याश्रम बिना उसका कहां आधार?

[४]

ब्रह्मचर्य्याभाव है जब वीर्य्य का क्या काम
वीर्य्य जब तनु में नहीं बल का कहां फिर नाम?
बल नहीं जब देह में हो क्यों न नाना रोग,
रोग युक्त शरीर के दिन भोग सकता भोग?

[५]

वीर्य्य दैहिक शक्ति का ही है यहां आगार,
मानसिक बल-बुद्धि का भी है यही आधार।
कुछ विचार किया अहो ब्रह्मचर्य विचार?
इस दशा में किस तरह हो [illegible]

[६]

एक वे हैं जब रहे जो ब्रह्मचारि [illegible],
एक हम हैं, [illegible], मूर्खता का हार!
वीर्य-बल सम्पन्न थे वे हम [illegible],
और हम में और उन में है [illegible]।

[७]

वीर्य्य से ही धीरता को धार सकते धीर,
वीर्य्य से ही वीरता को प्राप्त होते वीर।
वीर्य्य से ही भीष्म में थी आत्म-शक्ति असीम,
वीर्य से ही हाथियों को फेंकते थे भीम॥

[८]

पुत्र ने मा का अभी छोड़ा नहीं पय-पान,
पौत्र-दर्शन की हमें इच्छा हुई बलवान!
स्वल्प वय में ही तनय का कर दिया बस ब्याह,
आह! इस वात्सल्य की भी है भला कुछ थाह!!!

[९]

वीर्य्य-रक्षा का जिन्हें मिलता न अवसर हाय!
क्यों न वे अल्पायु होकर नष्ट हों निरुपाय?
प्राण से प्यारे सुतों का भूल कर परिणाम—
कर रहे माता पिता ही शत्रुओं का काम!

[१०]

वीर्य्य की परिपुष्टता से हैं स्वयं जो हीन—
क्यों न हो सन्तान उनकी क्षीण और मलीन?
कर कभी सकते न अङ्कुर बीज-गुण-विच्छेद,
ईश नियमों में कभी होता न विनिमय भेद॥

[११]

हाय! मेधा-शक्ति अब देती नहीं है साथ,
मक्खियाँ कैसे उड़ें, उठते नहीं हैं हाथ।
पूर्ण यौवन काल ही में हो गया कृश गात,
ब्रह्मचर्य्याभाव के हैं ये सभी उत्पात॥

[१२]

पूर्वजों के बुद्धि-बल की बात कहते आज—
हाय! क्यों गिरती न हम पर लाजरूपी गाज?
आज भी जिन के अलौकिक कार्य्य हैं अविलीन,
क्या वहीं पूर्वज हमारे थे हमीं-से हीन?

[१३]

ब्रह्मचर्य्य व्रत सहित कर शास्त्र-शीलन शुद्ध,
था प्रथम होता कहो तो पुष्ट और प्रबुद्ध।
हा! कहीं अब जन्म से ही ये विषय के साज,
पतित होगा क्या हमारा और अधिक समाज?

[१४]

मनुज में मनुजत्व का है चिन्ह केवल शील,
ब्रह्मचर्य्य विना हुई उस शील में भी ढील।
आत्मसंयम-हेतु है बस ब्रह्मचर्य्य प्रधान,
ब्रह्मचर्य्य मनोदमन का है प्रथम सोपान॥

[१५]

वीर्य्य-रक्षा के विना होते न अवयव पुष्ट,
वृद्धि कैसे हो हमारी, क्यों न हों रुज रुष्ट?
रोक सकती औषधें क्या यह अपार अनर्थ?
नष्ट मूल-महीरुहों को सींचना है व्यर्थ॥

[१६]

नियम के प्रतिकूल जो करते गये हैं काम,
हो गया है नाश उनका मिट गया है नाम।
यदि न चेतेंगे हमें भी क्यों न होगा दण्ड,
प्रकृति-शासन में दया का है अभाव अखण्ड॥

[१७]

भाग्य पर करते वृथा हम रोष या सन्तोष,
समय के सिर थोपते हैं व्यर्थ ही सब दोष।
कर्म्म-फल के भोग का गाता न कोई गीत,
समय क्या विपरीत है बस हैं हमीं विपरीत॥

[१८]

हो उठे यदि फिर यहाँ पर ब्रह्मचर्य्य-स्फूर्ति,
तो हमारी हीनता की हो सहज ही पूर्ति।
प्राप्त हो फिर से हमें वह बुद्धि और विवेक,
जन्म लें घर घर यहाँ पर राममूर्ति अनेक॥

[१९]

वीर्य्य रक्षण जो हमें होगा न अब भी इष्ट,
तो हमारा नाम ही रह जायगा अवशिष्ट।
शीघ्रतर सर्वत्र है बलवान ही की चाह,
लोक में निर्बल जनों का है नहीं निर्वाह॥

[२०]

हा हरे! हा दीनबन्धो! हा विभो! विश्वेश!
कौन हर सकता हमारा तुम बिना यह क्लेश?
दीजिए दृढ़ मति दयामय, कीजिए मद-मुक्त,
हो सकें जिसमें पुन हम पूर्व-गौरव-युक्त॥

श्रीमैथिलीशरण गुप्त।

इनके समान प्राज्ञ पुरुष इन प्रान्तों में शायदही कोई हो। सार्वजनिक हलचल में भी आपकी बहुतसी अवस्था व्यतीत हुई है। एक योगी का साक्षात्कार होने के कारण, सब लोगों के आग्रह और मोहपाश की परवा न करते हुए, अब आपने सन्यासदीक्षा धारण की है। अब इनका जीवनक्रम उपनिषद आदि के पठन मनन में सुख से व्यतीत हो रहा है। परमात्मा करे आप दीर्घायु हो कर संसार का चिरकाल तक उपकार करते रहें।

श्रीमत्सुब्रह्मण्यानन्द तीर्थ।

[illegible]

श्रीमत्सुब्रह्मण्यानन्द तीर्थ।

[illegible]

* ओ३म् *

गुरुकुल वृन्दावन की सहायता कीजिये !

क्योंकि

सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते। मनुः॥

[ऋ]षि सन्तानो !

वेदों के उद्धारार्थ, ऋषि, मुनियों के गौरवार्थ, प्राचीन प्रणाली के प्रचारार्थ, भारतवर्ष के [उ]पकारार्थ, संसार भरके लाभार्थ तथा ब्रह्मदानके महत्वके द्योतनार्थ श्रीमती आर्य्यप्रतिनिधि[स]भा संयुक्तप्रान्त आगरा व अवधने सात वर्ष हुए कि यह गुरुकुल खोला था जिसमें इस [स]मय ८० से अधिक छात्र केवल भोजनादि व्यय देकर विना किसी फीसके शिक्षा ग्रहण [क]रते हैं और ३० विद्यार्थी तो जिसमें ऐसे हैं कि जिनसे भोजनादि व्यय भी नहीं लिया जाता। [इ]न छात्रोंमें प्रतिष्ठित से प्रतिष्ठित और साधारणसे साधारण पुरुषों तकके बालक सम्मिलित [हो]ते हुए भी सबका रहन, सहन, भोजनाच्छादन और शिक्षण आदि एक ही प्रकारसे होता [है] और सब छोटे बड़ोंके साथ समान बर्ताव किया जाता है। इन छात्रोंके संरक्षकोंने प्रतिज्ञा [क]ी है कि यह छात्र २५ वर्षकी आयु तक ब्रह्मचर्यव्रत के नियमोंका पालन करते हुए शिक्षा लाभ [क]रेंगे जिससे जहां एक ओर विद्या द्वारा आत्मिकोन्नति होगी तो दूसरी ओर ब्रह्मचर्यद्वार[श]रीर भी पुष्ट होगा। इन छात्रोंको संस्कृत तथा अंग्रेजीकी शिक्षा दी जाती है। यह गुरुकुल [सा]त वर्ष तक फर्रुखाबाद में था परन्तु श्रीमती सभा ने इसका स्थिर स्थान मथुरा निश्चित कर [दि]या है और वृन्दावनके प्रसिद्ध दानी श्री० कु० महेन्द्रप्रतापसिंह साहिबने वृन्दावन के [नि]कट अपना तथा वृन्दावन स्टेशनके सामने यमुना तटपर बाग तथा उससे मिली हुई अन्य [भू]मि जिसके मूल्य का अनुमान १५००) किया गया था, गुरुकुलके निमित्त प्रदान करके भारत[वा]सियोंको बतला दिया कि सच्चा दान इस प्रकार किया जाता है। उसी बागमें गुरुकुलकी [स्व]त्वाधिकारिणी सभाने १००००) से अधिक व्यय करके ब्रह्मचारी आश्रम तथा अन्य कुछ [आ]वश्यकीय स्थान निर्माण कर लिये हैं और कुछ अब तक बनने बाकी हैं। गत दिसम्बर मासमें गुरुकुलोत्सवके समय ५०० से अधिक यात्रियोंने गुरुकुलभूमि में निवास किया और गुरुकुलके लिये उचित और उपयोगी स्थान मिला समझ कर गुरुकुलकी सहायतार्थ चौदही हजार रुपया चन्दा देकर सिद्ध कर दिया कि वह तन, मन और धन सभी तरहसे सहायता करनेके लिये सन्नद्ध हैं, परन्तु तो भी इतनी सहायता पर्य्याप्त नहीं है। अभी तो यहां गुरुकुल का कार्य्यारंभ ही हुआ है। अभी विद्यालय, पुस्तकालय आदि सभी इमारतें बननी बाकी हैं, गुरुकुलोन्नतिके लिये योग्य और धर्मात्मा अध्यापक बढ़ाने हैं, साइंस (पदार्थविद्या) की शिक्षाके लिये अनेक प्रकारके यन्त्र मंगाने हैं, और अध्यापकों तथा संरक्षकोंके रहनेके मकानात यज्ञशाला तथा यात्रियोंके ठहरनेके लिये धर्मशाला आदि स्थान निर्माण करने हैं जिसमें बहुत बड़ी सहायता की आवश्यकता है। वेदों के प्रेमियोंको, ऋषि, मुनियोंके सन्तानों को प्राचीन प्रणालीके प्रचारकोंको, और समस्त भारतवासियोंको तन, मन, धनसे गुरुकुलकी सहायता करनी चाहिये। ५००) अथवा इससे अधिक सहायता देने वालोंके नामके पत्थर खुदवाकर यहां इमारतोंमें लगाए जावेंगे। मथुरा तथा वृन्दावन आने वालोंको एक बार इस अपूर्व विद्यालय (गुरुकुल) का अवश्य दर्शन करना चाहिये।

निवेदयिता

तुलसीराम स्वामी	नारायणप्रसाद
प्रधान आर्यप्रतिनिधिसभा	मुख्याधिष्ठाता
संयुक्त-प्रान्त	गुरुकुल वृन्दावन।

१७ वर्षकी परीक्षित

गवर्नमेन्ट से रजिस्ट्र की हुई

धातु वर्धक और पौष्टिक अपूर्व महौषधि

हर प्रकार के प्रमेह और उससे पैदा हुए दोषों से वक्त पर पछ-ताना थोड़ा चलने फिरने से थकावट आना, भूक न लगना, बदन रहना, सिर घूमना, जलन तथा हाथ पैरों में हड़कल होना, सब बदन मलीन, चेहरा शुष्क और तेजहीन रहना, आदि धातु क्षीण के दोषों को फौरन नष्ट कर दुर्बल और कमजोर मनुष्यों को हट्टा, कट्टा, पट्ठा बनाकर शरीरका पौरुष बढ़ाने वाली "पुष्पराज वटिका" एक मात्र दवाई मूल्य ४० खुराकका फी बक्स २॥) रु० ६० खुराकका बक्स ३॥) रुपया और ८० खुराक का फी बक्स ४॥) रुपया वी. पी. खर्च ।) आना

छपगई ! छपगई !! सचित्र

नाटक रामायण

सातों कांड

गोस्वामी तुलसीकृत रामायणके आधार पर नाटकी धुनके हर तरहके दिल चस्प गजल,ठुमरी,दादरा,कजरी, कव्वाली, आदि नये २ गानोंमें भाव पूर्ण गानेकी २२६ सफे की नवीन पुस्तक मूल्य २॥) रु० वी.पी.।) आ.

पता—सुन्दर शृंगार महौषधालय मथुरा ।

बिक्री को तैयार !] [बिक्री को तैयार!

छोटे बच्चों के लिए

सचित्र अक्षरबोध ।

इसमें 'अ' से 'ज्ञ' तक सब स्वर और व्यंजन और वस्तु दिये गये हैं जिनके नाम के प्रथमाक्षर तथा चित्र अलग अलग भड़कदार रंगों में दिये गये हैं। १ से १० तक अंक भी उपरि-निर्दिष्ट पद्धति ही से बतलाये गये हैं। पुस्तक का आकार क्राउन चतुर्थांश ७×६रक्खा गया है, इस लिए चित्र और अक्षर उत्तमोत्तम, और आकार में बड़े हैं। अंगरेजी में ए. बी. सी. काम में जिस तरह की पुस्तक जाता है उसी तर्ज पर इस पुस्तक की रचना की गयी है। इस लिए छोटे बच्चे इस पुस्तक को बहुत पसन्द करते हैं और इस पर से अपना प्रथम पाठ बिना आयास सी-खते हैं ।

मैनेजर—चित्रशाला, पूना

संस्कृत-प्रवोध ।

यदि आप हिन्दी-भाषा में संस्कृत व्याकरण का रहस्य जानना चाहते हैं, तो संस्कृत-प्रवोध के चारों भागों को देख जाइये। यह आपको अनायास संस्कृत में प्रवेश करा देगा। मूल्य चारों भागों का ।।।=)

पता—बदरीदत्त शर्मा ।

आर्यसमाज, ठंडी सड़क, कानपुर ।

छापने के कागज़ ।

मारवाड़ डेमी, रायल, क्राउन, ... डेमी १७॥×२२॥ ... पौंड, कीमत ... रिम की २ रु. ... १२ आने ।

सफेद ग्लेज़ डेमी १७॥×२२॥, वज़न ... पौंड, की. २ रु. सफेद ग्लेज़ रायल २७×... पौंड ४०, की. २ रु. । ... २७॥×२६॥. पौंड ५४, की. ५। रु. ।... न्यूज पेपर, आकार २०×३०, वज़न ३० ... ६ रुपये। आर्ट डेमी १७॥×२२॥ पौंड ... की. २ रु. २ आने । आर्ट क्राउन ... २०×३०, वजन ५० पौंड, की. १४ ... रायल रफ २७×४०, पौंड २४, दर ... रिम २ रु. १२ आने, एकदम १० रिम ... प्रति रिम २ रु. ११ आने ।

अमेरिकन छापने की स्याही

सैनफ्रान्सिस्को की कैलीफोर्निया कंप... सब प्रकार के माल की एजन्सी हमारे ... नीचे लिखे अनुसार उसकी सब प्र... स्याही बिक्री के लिये तैयार है। आज ... के इंगलैंड, जर्मनी आदि देशों में से ... यहां आती है उनकी अपेक्षा इस स्या... बहुत सुभीते का है और गुण में भी ... अच्छी है। जिन्हों ने एक बार हमारी ... का उपयोग किया है उन्हें अब दू... पसन्द ही नहीं आती। छापखा... चाहिये कि एक बार इसका भी अनुभ...

स्याही की किस्म—समाचारपत्र ... (News ink) फुटकर प्रति पौंड ... आने, इकट्ठे २५ पौंड के उपर लेनेवा... प्रति पौंड पौने चार आने। पुस्तक ... अच्छे कामों के लिए उपयोगी स्याही ... Black) फुटकर प्रति पौंड के लिए ... इकट्ठे १० पौंड से ऊपर के खरीद... प्रति पौंड छै आने। लिथो के काम ... (Litho Black) फुटकर प्रति ... बारह आने; १० पौंड से अधिक ... लिए प्रति पौंड ग्यारह आने। ... आदि उत्तम प्रकार के काम की ... प्रति पौंड कीमत २ रुपये, इकट्ठे ... ऊपर लेनेवालों के लिए प्रति पौं... दो रुपये। इसके सिवाय ... हमारे पास कम-अधिक दरवाली ...

मैनेजर, चित्र...

... ने 'चित्रशाला' प्रेस, पूना से छापकर प्रकाशित किया ।

[illegible]
मोटे और चिकने कागज़ (आर्टपेपर) की प्रति—साढ़े पांच रुपये।
एक प्रति का मूल्य आठ आने।

वर्ष २ अंक ४—५.

चैत्र और वैशाख, सम्वत् १९६९ विक्रमी—एप्रिल और मई सन् १९१२ ई०

यह मासिकपत्र वासुदेव गणेश चित्रशाला प्रेस, पूना से छापकर प्रकाशित किया।

वर्ष २] चैत्र और वैशाख सम्वत् १९६९ विक्रमी-एप्रिल और मई सन् १९१२ ईसवी। [अंक ४-५

परम पिता की प्रार्थना।

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव। यद्भद्रन्तन्न आसुव ॥ १ ॥ यजु० अ० ३०, म० ३ ॥

हे सकल जगत् के उत्पत्तिकर्त्ता, समग्र ऐश्वर्ययुक्त, शुद्ध स्वरूप, सब सुखों के दाता, परमेश्वर! आप कृपा करके हमारे सम्पूर्ण दुर्गुण दुर्व्यसन और दुःखों को दूर कीजिये, और जो कल्याणकारक गुण-कर्म-स्वभाव और पदार्थ हैं वे सब हम को दीजिये।

रामकृष्ण-वाक्सुधा।

बिन्दु ८

श्रीरामकृष्ण पंडित विद्यासागर की भेंट को जाते हैं।

एकत्रित लोगः—विद्यासागर, भवनाथ, एम्, हज्रा और अन्य बहुत से लोग।

पंडित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर से मिलने की महाराज की बड़ी इच्छा थी। इस लिये एक दिन सायंकाल के समय महाराज अपनी गाड़ी में बैठ कर, शिष्यों के साथ, पंडित जी के घर जाने के लिये चले। कलकत्ते के बादुरबागान नामक भाग में पंडित जी का घर था, यह जगह दक्षिणेश्वर से ६ मील दूर थी।

वह शनिवार का दिन था। उस दिन श्रावण कृष्ण सप्तमी थी; और अंगरेज़ी तारीख ५ अगस्त सन् १८८२ थी। संध्याकाल के करीब पांच बजे महाराज अपने स्थान से चले।

अन्त में गाड़ी पंडित जी के घर के सामने आ खड़ी हुई। महाराज एम् का हाथ पकड़ कर नीचे उतरे। दीवानखाने—यहीं पंडित जी का पुस्तकालय भी था—के जीने की ओर घूमने के पहले महाराज एम् से बोलेः—"क्यों रे, तुझे कैसा मालूम होता है? मुझे क्या अपने कोट के बटन लगाने चाहिये?"

एम् ने उत्तर दिया—"महाराज, इस ओर आप कुछ भी ध्यान न दें। ऐसी बातों से आपका कोई सम्बन्ध नहीं है।

उस समय ऐसा जान पड़ा कि किसी छोटे बच्चे के समान तुरन्त ही महाराज उस बात को समझ गये। क्योंकि यह बात फिर उन्होंने छोड़ ही दी। यह बात सुनते समय किसी पाँच वर्ष के बच्चे के समान उनकी दशा देख पड़ी!

इसके बाद ये लोग जीने से मिली हुई एक कोठरी में पहुँचे; कोठरी का दरवाजा दक्षिणाभिमुख था। कोठरी में पंडित जी दक्षिण की ओर मुँह किये हुए कुर्सी पर बैठे थे। सदा की तरह, अंगरेज़ी चाल के अनुसार, उनके सामने टेबल रक्खा था, जिस पर कागज पत्र और पुस्तकें आदि पड़ी थीं।

एम् ने महाराज के आने की खबर दी और पंडित जी से उनकी पहचान करा दी; और पंडित जी ने भी उठ कर उनका स्वागत किया। एक हाथ टेबल पर रख कर और पश्चिम की ओर मुड़ करके महाराज खड़े हो गये। चुपके पंडित जी की ओर वे देखते थे, परन्तु उनके उस मधुर, किसी बालक के समान भोले और तेजस्वी चेहरे पर मुसकराहट की मृदु लहरें खेल रही थीं।

यहां जो लोग बैठे थे उनमें एक विद्यार्थी भी था जो पंडित जी के पास कुछ प्रार्थना करने आया था।

यहां खड़े खड़े पंडित जी की ओर देखते हुए ही सदा की तरह महाराज का देहभान जाता रहा। उनकी समाधि लग गई। थोड़ी देर बाद नीचे बैठ कर वे अपनी सदा की टेव के अनुसार बोले, "मुझे थोड़ा सा पानी पीने के लिये चाहिये।"

महाराज की समाधि लगती है।

इस पर पंडित जी ने एम् से पूछा, "अभी बर्दवान से मिठाई आई है, उसमें से क्या महाराज थोड़ी सी ग्रहण करेंगे?" जब मालूम हुआ कि "हां ग्रहण करेंगे" तब पंडित जी भीतरवाली कोठरी में गये और पानी तथा मिठाई लेकर तुरन्त ही लौट आये और वह महाराज के सामने रख दी। शिष्यमंडली ने भी उस प्रसाद का स्वीकार किया।

वहां के एक शिष्य को जब महाराज मिठाई देने लगे तब पंडित जी बोलेः—"ऊंः! यह घर का ही लड़का है। उसे आप दें चाहे न दें।" इस पर महाराज ने कहा, "है! यह अच्छा लड़का है। इसकी दशा फल्गू नदी के समान है। बाहर से तो उसका पाट कोरा ही होता है; पर उसके नीचे अदृश्य प्रवाह बड़ी तीव्रता से बहता रहता है। इसका अन्तःकरण सत्व से भरा हुआ है—इसमें अन्तस्सार बहुत है।"

महाराज (विद्यासागर से)—आज सौभाग्य से मुझे सागर का दर्शन एक बार हो ही गया। आज तक मैंने बहुत से बावड़ें, नहरें, नाले, नदी किंबहुना नद भी देखे (हँसी)। (चतुर वाचक यह समझ ही लेंगे कि यहां पर महाराज ने विद्यासागर नाम के अर्थ पर विचार किया)।

विनोद।

विद्यासागरः—तो फिर महाराज, अपने उस सागर से कुछ खारा पानी खुशी से आप घर ले जाइये। (हँसी)।

महाराजः—नहीं पंडितजी, आप खारे समुद्र कभी नहीं हो सकते। आप अविद्यासागर नहीं हैं, आप क्षीरसागर हैं, विद्यासागर हैं (हँसी)।

विद्यासागरः—आप चाहे जैसा कहिये (हँसी)।

महाराज—आप का स्वभाव सतोगुणप्रधान है, और सतोगुण सत्य ज्ञान की ओर ले जानेवाला है। हां, इतना अवश्य है कि आप में जो रजोगुण का स्वरूप है वह आप को स्वस्थ बैठने नहीं देता, सदा उद्योग में रखता है, और उसीके योग से आप सत्कर्मों में लगे रहते हैं। दान और दया आदि गुणों का आचरण यदि निष्काम

निष्काम कर्म।

सूची।

चित्रमयजगत् के नियम।

ग्राहकों के लिये।

१. प्रति मास इस पत्र के दो संस्करण निकलते हैं। एक साधारण मोटे और चिकने कागज पर और दूसरा बहुत मोटे और चिकने कागज (आर्टपेपर) पर। साधारण कागजवाले का अग्रिम वार्षिक मूल्य डाकव्यय सहित ३।) रु० और एक संख्या का मूल्य ।)॥ तथा आर्टपेपरवाले संस्करण का वार्षिक मूल्य ४॥) और एक संख्या का मूल्य ॥) है।

२. ग्राहकों को अपना नाम और पता स्पष्ट देवनागरी अक्षरों में लिखना चाहिये। दो एक मास के लिए पता बदलवाने का डाकघर से प्रबन्ध कर लेना चाहिये और यदि अधिक समय के लिये पता बदलवाना हो तो सूचना देनी चाहिये। ग्राहक-नम्बर अवश्य लिखना चाहिये।

लेखकों के लिए।

१. इस पत्र में बहुधा छोटे छोटे शिक्षाप्रद, मनोरंजक और सचित्र ही लेख प्रकाशित होते हैं। इस लिए लेखकों को चाहिए कि उक्त गुणों से विहीन लेख भेजने का कष्ट न उठावें। किसी लेखक का कोई लेख किस अङ्क में प्रकाशित होगा-इसका कोई निश्चय नहीं।

२. लेखों के घटाने-बढ़ाने, लौटाने अथवा न लौटाने, और प्रकाशित करने या न करने का सब अधिकार सम्पादक को है। जो लेखक अपने लेख वापस चाहें उन्हें डाकव्यय भेज के वास्ते भेजना चाहिए। पत्र का उत्तर टिकट या जवाबी कार्ड मिलने पर दिया जाता है, अन्यथा नहीं।

विज्ञापनदाताओं के लिए।

१. एक मास	चार पंक्ति	१) रु०
तीन "	"	२॥) "
छै "	"	४) "
बारह "	"	६) "
एक वर्ष एक कालम	[illegible]	"
छै मास	"	[illegible] "
तीन "	"	[illegible] "

२. [illegible]

मैनेजर-चित्रमयजगत्, पूना सिटी।

अँगरेजी राज्यकर्ता, गवर्नर जनरल और योरोपियन सरदार।

१ फ्रेंच गवर्नर डूप्ले २ लार्ड क्लाइव ३ वारन हेस्टिंग्स ४ लार्ड कार्नवालिस ५ मार्किस वेल्सली ६ नेपोलियन बोनापार्ट ७ लार्ड हेस्टिंग्स ८ लार्ड विलियम बेन्टिक ९ सर चार्लस मेटकाफ १० लार्ड आक्लेंड ११ लार्ड एडिनबरो १२ सर चार्लस नेपियर १३ लार्ड हार्डिंज १४ लार्ड डलहौसी १५ लार्ड केनिंग १६ जनरल हावेलाक १७ सर जेम्स आउट्रेम १८ लार्ड लारेन्स १९ लार्ड मेयो २० लार्ड नार्थब्रुक २१ लार्ड लिटन २२ लार्ड रिपन २३ लार्ड डफरिन २४ लार्ड लेन्सडोन २५ लार्ड एल्जिन २६ लार्ड कर्जन २७ महारानी विक्टोरिया २८ महाराज सप्तम एडवर्ड २९ महारानी अलेक्जेंड्रा ३० सप्तम एडवर्ड युवराज-सहित। पांचवें जार्ज और महारानी मेरी।

मैनेजर--चित्रशाला प्रेस, पूना।

सचित्र पोस्टकार्ड।

(एक रंग में)

दाम प्रति ग्रोस २) रु०,३० कार्ड के दाम ३ प्रति कार्ड दो पैसे।

१ सौभद्र नाटक के पांचवें अंक का सीन। २ घटोत्कच और सुभद्रा। ३ श्रीकृष्ण और बलराम सुभद्रा से मिलने आये हैं। ४ पेशावर के ओर की स्त्री। ५ रायगढ़ पर गंगासागर तीर्थ। ६ महारानी चिमनाबाई साहब गायकवाड़, बड़ोदा। ७ शराब पिया हुआ=अशोक वन की सीता। ८ विश्वामित्र-मेनका। १० विचार तरंग। ११ डरा हुआ। १२ बाग में गो स्त्री १३ गरुड और विष्णु। १४ गोवा की तरफवाली स्त्री। १५ गोवा की तरफवाली स्त्री नं० २। १६ हँसने का एक प्रकार। १७ शकुन्तला-पत्र-लेखन। १८ श्रीनरसिंह सरस्वती स्वामी, आलन्दी। १९ श्री द्वारकानाथ, मथुरा। २० श्रीहनुमानजी। २१ सिंहगढ में राजाराम महाराज की समाधि। २२ रायगढ़ किला। २३ सरस्वती। २४ सुख-शयन। २५ गौहरजान। २६ मदरासी सुन्दर स्त्री। २७ आफीलिय (हैम्लेट) २८ फतेहपुर सीकरी का किला। २९ शेषशायी। ३० त्र्यम्बकेश्वर।

मैनेजर—चित्र शाला, पूना

वर्ष २] चैत्र और वैशाख सम्वत् १९६९ विक्रमी—एप्रिल और मई सन् १९१२ ईसवी। [अंक ४–५

परम पिता की प्रार्थना।

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव। यद्भद्रन्तन्न आसुव॥ १॥ यजु० अ० ३०, म० ३॥

हे सकल जगत् के उत्पत्तिकर्त्ता, समग्र ऐश्वर्ययुक्त, शुद्ध स्वरूप, सब सुखों के दाता, परमेश्वर! आप कृपा करके हमारे सम्पूर्ण दुर्गुण दुर्व्यसन और दुःखों को दूर कीजिये, और जो कल्याणकारक गुण-कर्म-स्वभाव और पदार्थ हैं वे सब हम को दीजिये।

रामकृष्ण-वाक्सुधा।

बिन्दु ८

श्रीरामकृष्ण पंडित विद्यासागर की भेट को जाते हैं।

एकत्रित लोगः—विद्यासागर, भवनाथ, एम्, हज्रा और अन्य बहुत से लोग।

पंडित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर से मिलने की महाराज की बड़ी इच्छा थी। इस लिये एक दिन सायंकाल के समय महाराज अपनी गाड़ी में बैठ कर, शिष्यों के साथ, पंडित जी के घर जाने के लिये चले। कलकत्ते के बादुड़बागान नामक भाग में पंडित जी का घर था, यह जगह दक्षिणेश्वर से छः मील दूर थी।

यह शनिवार का दिन था। उस दिन श्रावण कृष्ण सप्तमी थी, और अंगरेजी तारीख ५ अगस्त सन् १८८२ थी। संध्याकाल के करीब पांच बजे महाराज अपने स्थान से चले।

अन्त में गाड़ी पंडित जी के घर के सामने आ खड़ी हुई। महाराज एम् का हाथ पकड़ कर नीचे उतरे। दीवानखाने—यहां पंडित जी का पुस्तकालय भी था—के जीने की ओर घूमने के पहले महाराज एम् से बोलेः—"क्यों रे, मुझे कैसा मालूम होता है? मुझे क्या अपने कोट के बटन लगाने चाहिये?"

एम् ने उत्तर दिया—"महाराज, इस ओर आप कुछ भी ध्यान न दें। ऐसी बातों से आपका कोई सम्बन्ध नहीं है।

उस समय ऐसा जान पड़ा कि किसी छोटे बच्चे के समान तुरन्त ही महाराज उस बात को समझ गये; क्योंकि यह बात फिर उन्होंने छोड़ ही दी। यह बात सुनते समय किसी पांच वर्ष के बच्चे के समान उनकी दशा देख पड़ी!

इसके बाद ये लोग जीने से मिली हुई एक कोठरी में पहुंचे, कोठरी का दरवाजा दक्षिणाभिमुख था। कोठरी में पंडित जी दक्षिण की ओर मुंह किये हुए कुर्सी पर बैठे थे। सदा की तरह, अंगरेजी चाल के अनुसार, उनके सामने टेबल रक्खा था, जिस पर कागज पत्र और पुस्तकें आदि पड़ी थीं।

एम् ने महाराज के आने की खबर दी और पंडित जी से उनकी पहचान करा दी। और पंडित जी ने भी उठ कर उनका स्वागत किया। एक हाथ टेबल पर रख कर और पश्चिम की ओर मुंह करके महाराज खड़े हो गये। मुख से पंडित जी की ओर वे देखते थे, परन्तु उनके उस मधुर, किसी बालक के समान भोले और तेजस्वी चेहरे पर मुसकराहट की मृदु लहरें खेल रही थीं।

वहां जो लोग बैठे थे उनमें एक विद्यार्थी भी था जो पंडित जी के पास कुछ सहायता करके आया था।

वहां खड़े खड़े पंडित जी की ओर देखते हुए ही सदा की तरह महाराज का देहभान जाता रहा। उनकी समाधि लग गई। थोड़ी देर बाद नीचे बैठ कर वे अपनी सदा की टेव के अनुसार बोले, "मुझे थोड़ा सा पानी पीने के लिये चाहिये।"

महाराज की समाधि लगती है।

इस पर पंडित जी ने एम् से पूछा, "अभी बर्दवान से मिठाई आई है, उसमें से क्या महाराज थोड़ी सी ग्रहण करेंगे?" जब मालूम हुआ कि "हां ग्रहण करेंगे" तब पंडित जी भीतरवाली कोठरी में गये और पानी तथा मिठाई लेकर तुरन्त ही लौट आये और वह महाराज के सामने रख दी। शिष्यमंडली ने भी उस प्रसाद का स्वीकार किया।

वहां के एक शिष्य को जब महाराज मिठाई देने लगे तब पंडित जी बोलेः—"उः! वह घर का ही लड़का है। उसे आप दें चाहें न दें।" इस पर महाराज ने कहा, "है! यह अच्छा लड़का है। इसकी दशा फल्गु नदी के समान है। बाहर से तो उसका पाट कोरा ही होता है, पर उसके नीचे अखण्ड प्रवाह बड़ी तीव्रता से बहता रहता है। इसका अन्तःकरण रस से भरा हुआ है—इसमें अन्तःस्सार बहुत है।"

महाराज (विद्यासागर से)—आज सौभाग्य से मुझे सागर का दर्शन एक बार हो ही गया। आज तक मैंने बहुत से बन्दे, नहरें, नाले, नदी विशेषतः सब भी देखे (हंसी)। (चतुर पाठक यह समझ ही लेंगे कि यहां पर महाराज ने विद्यासागर नाम के अर्थ पर विचार किया)।

विनोद।

विद्यासागर—तो फिर महाराज, अपने उस सागर से कुछ खारा पानी खुशी से आप घर ले जाइये। (हंसी)।

महाराज—नहीं पंडितजी, आप खारे समुद्र कभी नहीं हो सकते। आप अविद्यासागर नहीं हैं, आप ज्ञानसागर हैं, विद्यासागर हैं (हंसी)।

विद्यासागर—आप चाहें जैसा कहिये (हंसी)।

महाराज—[illegible] का स्वभाव [illegible] है, और [illegible] सत्व गुण की ओर ले जानेवाला है। हां, इसका [illegible] है कि [illegible] में जो [illegible] का [illegible] है वह [illegible] बैठने नहीं देता, [illegible] में लगता है, और [illegible] से [illegible] में लग रहते हैं। हाथ और इतर [illegible] दुःखों का [illegible] [illegible]

[illegible] स्वभाव।

सूची।

चित्रमयजगत् के नियम।

ग्राहकों के लिये।

१. प्रति मास इस पत्र के दो संस्करण निकलते हैं। एक साधारण मोटे और चिकने कागज पर और दूसरा बहुत मोटे और चिकने कागज (आर्टपेपर) पर। साधारण कागजवाले का अग्रिम वार्षिक मूल्य डाकव्यय सहित ३।) रु० और एक संख्या का मूल्य ।)॥ तथा आर्टपेपरवाले संस्करण का वार्षिक मूल्य ५॥) और एक संख्या का मूल्य ॥) है।

२. ग्राहकों को अपना नाम और पता स्पष्ट देवनागरी अक्षरों में लिखना चाहिये। दो एक मास के लिए पता बदलवाने को डाकघर से प्रबन्ध कर लेना चाहिये और यदि अधिक समय के लिये पता बदलवाना हो तो सूचना देनी चाहिये। ग्राहक-नम्बर अवश्य लिखना चाहिये।

लेखकों के लिए।

१. इस पत्र में बहुधा छोटे छोटे शिक्षाप्रद, मनोरंजक और सचित्र ही लेख प्रकाशित होते हैं। इस लिए लेखकों को चाहिए कि उक्त गुणों से विहीन लेख भेजने का कष्ट न उठावें। किसी लेखक का कोई लेख किस अंक में प्रकाशित होगा-इसका कोई निश्चय नहीं।

२. लेखों के घटाने-बढ़ाने, लौटाने अथवा न लौटाने, और प्रकाशित करने या न करने का सब अधिकार सम्पादक को है। जो लेखक अपने लेख वापस चाहें उन्हें डाकव्यय लेख के साथही भेजना चाहिए। पत्र का उत्तर टिकट या जवाबी कार्ड मिलने पर दिया जाता है, अन्यथा नहीं।

विज्ञापनदाताओं के लिए।

१. एक मास	चार पंक्ति	१) रु०
तीन ,,	,,	२॥) ,,
छै ,,	,,	४) ,,
बारह ,,	,,	६) ,,
एक वर्ष एक कालम=१२×३(इंच१००)		,,
छै मास	,,	६०) ,,
तीन ,,	,,	३५) ,,

२. विज्ञापन छपाई का रुपया अग्रिम लिया जाता है। अधिक जानने के लिए पत्रव्यवहार कीजिए।

मैनेजर-हिन्दी-चित्रमयजगत्, पूना सिटी।

[वर्ष २] चैत्र और वैशाख सम्वत् १९६९ विक्रमी-एप्रिल और मई सन् १९१२ ईसवी। [अंक ४-५

परम पिता की प्रार्थना।

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव। यद्भद्रन्तन्न आसुव॥ १॥ यजु० अ० ३०, मं० ३॥

हे सकल जगत् के उत्पत्तिकर्त्ता, समग्र ऐश्वर्ययुक्त, शुद्ध स्वरूप, सब सुखों के दाता, परमेश्वर! आप कृपा करके हमारे सम्पूर्ण दुर्गुण व्यसन और दुःखों को दूर कीजिये, और जो कल्याणकारक गुण-कर्म-स्वभाव और पदार्थ हैं वे सब हम को दीजिये।

रामकृष्ण-वाक्सुधा।

बिन्दु ८

श्रीरामकृष्ण पंडित विद्यासागर की भेंट को जाते हैं।

एकत्रित लोगः—विद्यासागर, भवनाथ, एम्, हज़ा और अन्य बहुत से लोग।

पंडित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर से मिलने की महाराज की बड़ी इच्छा थी। इस लिये एक दिन सायंकाल के समय महाराज अपनी गाड़ी में बैठ कर, शिष्यों के साथ, पंडित जी के घर जाने के लिये चले। कलकत्ते के बादुड़बागान नामक भाग में पंडित जी का घर था, यह जगह दक्षिणेश्वर से ६ मील दूर थी।

यह शनिवार का दिन था। उस दिन श्रावण कृष्ण सप्तमी थी, और अंगरेजी तारीख ५ अगस्त सन् १८८२ थी। सन्ध्याकाल के करीब पांच बजे महाराज अपने स्थान से चले।

अन्त में गाड़ी पंडित जी के घर के सामने आ खड़ी हुई। महाराज एम् का हाथ पकड़ कर नीचे उतरे। दीवानखाने—यहीं पंडित जी का पुस्तकालय भी था—के जीने की ओर घूमने के पहले महाराज एम् से बोलेः—"क्यों रे, तुझे कैसा मालूम होता है? मुझे क्या अपने कोट के बटन लगाने चाहिये?"

एम् ने उत्तर दिया —"महाराज, इस ओर आप कुछ भी ध्यान न दें। ऐसी बातों से आपका कोई सम्बन्ध नहीं है।

उस समय ऐसा जान पड़ा कि किसी छोटे बच्चे के समान तुरन्त ही महाराज उस बात को समझ गये। क्योंकि वह बात फिर उन्होंने छोड़ ही दी। यह बात सुनते समय किसी पांच वर्ष के बच्चे के समान उनकी दशा देख पड़ी!

इसके बाद वे लोग जीने से मिली हुई एक कोठरी में पहुंचे; कोठरी का दरवाजा दक्षिणाभिमुख था। कोठरी में पंडित जी दक्षिण की ओर मुंह किये हुए कुर्सी पर बैठे थे। सदा की तरह, अंगरेजी चाल के अनुसार, उनके सामने टेबल रक्खा था, जिस पर कागज पत्र और पुस्तकें आदि पड़ी थीं।

एम् ने महाराज के आने की खबर दी और पंडित जी से उनकी पहचान करा दी। और पंडित जी ने भी उठ कर उनका स्वागत किया। एक हाथ टेबल पर रख कर और पश्चिम की ओर मुंह करके महाराज खड़े हो गये। पुनः पंडित जी की ओर वे देखने लगे, परन्तु उनके उस समय, किसी बालक के समान आंखें और तेजस्वी चेहरे पर मुसकराहट की मृदु लहरें खेल रही थीं।

वहां जो लोग बैठे थे उनमें एक विद्यार्थी भी था जो पंडित जी के पास कुछ सहायता करके खाता था।

वहां खड़े खड़े पंडित जी की ओर देखते हुए ही सदा की तरह महाराज का देहभान जाता रहा। उनकी समाधि लग गई। थोड़ी देर बाद नीचे बैठ कर वे अपनी सदा की टेव के अनुसार बोले, "मुझे थोड़ा सा पानी पीने के लिये चाहिये।"

महाराज की समाधि लगती है।

इस पर पंडित जी ने एम् से पूछा, "अभी बर्दवान से मिठाई आई है, उसमें से क्या महाराज थोड़ी सी ग्रहण करेंगे?" जब मालूम हुआ कि "हां ग्रहण करेंगे" तब पंडित जी भीतरवाली कोठरी में गये और पानी तथा मिठाई लेकर तुरन्त ही लौट आये और वह महाराज के सामने रख दी। शिष्यमंडली ने भी उस प्रसाद का स्वीकार किया।

वहां के एक शिष्य को जब महाराज मिठाई देने लगे तब पंडित जी बोले—"ऊंः! वह घर का ही लड़का है। उसे आप दें चाहें न दें।" इस पर महाराज ने कहा, "हैं! यह अच्छा लड़का है। इसकी दशा फल्गु नदी के समान है। बाहर से तो उसका पाट कोरा ही होता है, पर उसके नीचे अदृश्य प्रवाह बड़ी तीव्रता से बहता रहता है। इसका अन्तःकरण सत्य से भरा हुआ है—इसमें अन्तस्सार बहुत है।"

महाराज (विद्यासागर से)—आज सौभाग्य से मुझे सागर का दर्शन एक बार हो ही गया। आज तक मैंने बहुत से खाड़े, नहरें, नाले, नदी किंबहुना नद भी देखे (हंसी)। (चतुर पाठक यह समझ ही लेंगे कि यहां पर महाराज ने विद्यासागर नाम के अर्थ पर विनोद किया)।

विनोद।

विद्यासागरः—तो फिर महाराज, अपने उस सागर से कुछ खारा पानी खुशी से आप घर ले जाइये। (हंसी)।

महाराजः—नहीं पंडितजी, आप खारे समुद्र कभी नहीं हो सकते। आप क्षारसमुद्र नहीं हैं, आप क्षीरसागर हैं, विद्यासागर हैं (हंसी)।

विद्यासागर—आप चाहे जैसा कहिये (हंसी)।

महाराज—[illegible] का स्वभाव सत्त्वगुण प्रधान है, और आप [illegible] ज्ञान की ओर से प्रवृत्त करता है। हां, इसमें सन्देह है कि आप में जो सत्त्वगुण का प्रवाह है वह आप को [illegible] [illegible] उद्योग में रखता है, और इसीलिये दया से आप सत्कर्मों में लग रहे हैं। इस और इस प्रकार के गुणों का [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible]

द्धि से होता है तो फिर उसकी उत्तमता के लिये कहना ही क्या । इस आचरण में यदि कहीं भक्ति की पुष्टि मिल गई तो फिर ईश्वरप्राप्ति के लिये और क्या चाहिये? जहां दया, क्षमा, शान्ति आदि सद्गुण हैं वहीं ईश्वर का वास है।

और मैं यह भी कहता हूं कि आप को सिद्ध पुरुष ही समझना चाहिये; क्योंकि आपकी दयाशीलता से आपका अन्त करण बिलकुल ही मृदु और कोमल बन गया है। देखिये न, आलू और दूसरी शाकभाजी जब तक सिद्ध (तैयार) नहीं हो जाती तब तक मृदु नहीं होती (हँसी)

सिद्ध।

(सिद्ध शब्द के दो अर्थ हैं:—१ पूर्णता को पहुँचा हुआ मनुष्य, और २ पक्क, अच्छा पका हुआ। इन दो अर्थों पर महाराज का विचार।)

विद्यासागर— परन्तु कलैची (?) दाल सिद्ध होने पर घोंटने से कठिन हो जाती है, बिलकुल ही मृदु नहीं रहती। क्या यह सच है? (हँसी)

महाराज (हँसकर)—परन्तु पंडितजी, आपका वह हाल नहीं है। मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि आप कोरे पंडित नहीं हैं।

देखिये, हम लोगों के पंचांग में लिखा रहता है कि अमुक अमुक दिन इतनी इतनी जलवृष्टि होगी। परन्तु पंचांग यदि निचोड़ा जाय तो क्या एक बून्द भी उससे हमें मिल सकता है? हम लोगों में से पंडित कहलानेवाले मनुष्य बड़ी बड़ी बातें मारते हैं। ब्रह्म, माया, मीमांसा, ज्ञानयोग, तत्वज्ञान, [illegible] हुए वे [illegible] नुभव के [illegible] र लिपटा [illegible]

केवल पुस्तकी ज्ञान के विषय में महाराज का मत।

[illegible] पराविद्या है। बाकी सब-मीमांसा, तर्क, न्याय, व्याकरण, आदि आदि-केवल बुद्धि के लिए भार मात्र हैं। इनके योग से बुद्धि गड़बड़ में पड़ कर भूल जाती है। ये सब यदि पराविद्या की प्राप्ति में सहायता करें तो उनका उपयोग ठीक है।

एक दृष्टि से देखा जाय तो सारे भगवद्गीता का पारायण करने से कोई लाभ नहीं। "गीता" "गीता" सिर्फ दस बार कहो, बस हो गया। दस बार "गीता" "गीता" कहने से "त्यागी" "त्यागी" शब्द निकलने लगता है। अच्छा त्यागी किसे कहते हैं—जिसने परमेश्वर के लिए अपनी गृहस्थी को—सम्पत्ति, मान, सकाम कर्म, इन्द्रिय-सुख, इत्यादि को तिलांजलि दे दी है।

भगवद्गीता का सार।

सारांश यही कि गीता कहती है कि "त्याग करो"। सच्चा सन्यासी सिर्फ सिर का ही मुंडन नहीं करता है; किन्तु उसी प्रकार मन का भी मुंडन करता है। वह जिस प्रकार सब सांसारिक कर्म छोड़ देता है उसी प्रकार कर्मफल का भी त्याग करता है।

सच्चा गृहस्थ मन मात्र से संसार का त्याग करता है-अर्थात् ईश्वरभक्ति के लिए सब कर्मों का फल छोड़ने के लिए वह तैयार रहता है।

अतएव गीता का सार यह निकला कि:—हे मनुष्य, सिर्फ ईश्वर में तू अपनी भक्ति रख। ईश्वर के लिए सर्वस्व का त्याग कर।

एक मनुष्य के पास एक हस्तलिखित पुस्तक थी। उससे किसी ने पूछा कि भाई यह कौन सी पोथी है? उस मनुष्य ने वह पुस्तक उसके सामने खोल कर रख दी। उस समय जब उसने देखा कि उस पुस्तक में प्रत्येक पृष्ठ पर 'ॐ राम' यही सिर्फ ईश्वर के नाम लिखे हैं तब उसे महान् आश्चर्य हुआ।

एक बार चैतन्यदेव दक्षिण की ओर यात्रा कर रहे थे। वहां एक भगवद्भक्त से उनकी भेंट हुई। वहीं एक जगह एक पंडित भगवद्गीता पढ़ रहा था, जिसे सुनते हुए उस भक्त के नेत्रों से अश्रुधारा बह रही थी। अच्छा, इस भक्त के पास विद्या की गन्ध भी न थी। गीता का एक अक्षर भी वह न समझता था। उससे पूछा गया कि तेरे नेत्रों से अश्रु क्यों बह रहे हैं? उसने उत्तर दिया कि, "इसमें कोई सन्देह नहीं कि गीता का एक शब्द भी मैं नहीं समझता। परन्तु गीता का पठन होते हुए मेरे नेत्रों के सामने यह [illegible] दृश्य खड़ा हो रहा है कि कुरुक्षेत्र की रणभूमि में अर्जुन के सामने श्रीकृष्ण परमात्मा [illegible] मूर्ति बैठी हुई है और वे अर्जुन को गीता का उपदेश कर रहे हैं। यही चित्र देखकर मेरी आंखें भक्ति और आनन्द के आंसुओं से भर जाती हैं"।

यह [illegible] सच्चा [illegible] था। [illegible] इसके ईश्वर [illegible] शुद्ध भक्ति थी और [illegible] की मूर्ति उसके हृदय में बसी थी।

[illegible] करना और [illegible] का [illegible]:—

महाराजः—अच्छा, मैं अभी विद्यादि के विषय में तो [illegible] था? परन्तु ब्रह्म, विद्या और अविद्या दोनों से [illegible] है। ब्रह्मगिरि पर जाने के लिए जो परम्परा लगी है उसकी, विद्या बिलकुल [illegible] की-अन्त की-सिड्ढी है। ब्रह्म को शिखर [illegible] झिये। माया-अर्थात् यह सब भासमान जगत्-विद्या और [illegible] का मिश्रण है। अर्थात् वह माया से परे-माया के उस तरफ-है।

वेदान्त का शुद्ध बुद्ध और नित्य ब्रह्म।

ब्रह्म पाप और पुण्य-सुख और दुःख-से अलिप्त है, इनका [illegible] केवल साक्षी है। वह दीपक के समान है। [illegible] पक के प्रकाश में हम श्रीमद्भागवत के सम[illegible] पवित्र ग्रन्थ पढ़ सकते हैं। उसी तरह उसी [illegible] पक के प्रकाश में दुष्ट हेतु रख कर, [illegible] दस्तावेज भी बना सकते हैं। अथवा कहि[illegible] कि ब्रह्म सर्प के समान है। सांप के दांत में विष भरा रहता है उस विष से उसे उपाधि नहीं होती। उस विष की बाधा उसे न[illegible] व्यापती और नहीं उससे उसकी मृत्यु होती है। वह सचमुच वि[illegible] ही है। पर स्वयं सर्प के लिए वह निर्विषही है। जिसे वह [illegible] करेगा उस प्राणी के लिए वह विषही है।

ब्रह्म बिलकुल अलिप्त है। पापपुण्यका सुख दुःख-का खुलासा।

संसार की कोई भी विपत्ति, कोई भी पाप, कोई भी दुःख [illegible] न लीजिए—वह विपत्ति, वह पाप, वह दुःख सिर्फ अपने ही लि[illegible] सच्चा है। परमेश्वर को ब्रह्म को-उसका लेप भी नहीं है। ब्रह्म उस[illegible] परे-उस से दूर है। जिस प्रकार सांप के दांत का विष सांप के लि[illegible] विष नहीं है उसी प्रकार संसार का दुःख परब्रह्म के लिये दुःख [illegible] नहीं है। ब्रह्म पाप पुण्यातीत-सुखदुःखातीत-है।

हां, ब्रह्म सब से अलिप्त है। उस ब्रह्म की परीक्षा, मानवी सुख[illegible] दुःखों की कसौटी पर, नहीं करना है-मानवी सुख दुःखों के च[illegible] से ब्रह्म की ओर देखना उपयोगी नहीं है। उसका सूर्य सुख-दुःख[illegible] पर बराबर ही प्रकाशित रहता है।

उच्छिष्ट अन्न जैसे भ्रष्ट है वैसेही सब कुछ-अधिक क्यों, अपौरु[illegible] वेद, पुराण, तंत्र और सब धर्मग्रन्थ, मानवी मुख का स्पर्श हो जाने के कारण-मानवी वाणी से उनका उच्चार होने के कारण-मानो भ्रष्ट ही हो गये हैं। इस नियम के लिए अपवादात्मक के[illegible] वल एकही वस्तु है और वह वस्तु ब्रह्म है। क्योंकि जब हम वे[illegible] अथवा अन्य धर्मग्रन्थ पढ़ते हैं तब वागिन्द्रिय का उपयोग हमें करना पड़ता है; और इस प्रकार उन्हें (धर्म ग्रन्थों को) हम अपने मुख का स्पर्श कराते हैं, इसमें कुछ भी शंका नहीं। अतएव यदि यह कहा जाय कि उच्छिष्ट अन्न की तरह वे सब भ्रष्ट हो गये हैं तो इसमें को[illegible] अतिशयोक्ति नहीं। परन्तु आज तक सृष्टि का कोई भी प्राणी ब्रह्म का यथार्थ वर्णन नहीं कर सका। अतएव वह अनिर्वचनीय, अचिन्[illegible] नीय, अकल्पनीय है।

ब्रह्म अव्यपदेश्य किंवा अनिर्वचनीय है।

विद्यासागरः—मुझे स्वीकार करना चाहिए कि सचमुच बि[illegible] कुल नवीन कोई न कोई बात आज मुझे मालूम हुई। अर्थात ब्रह्म ही एक ऐसी वस्तु है जो आज तक मुख से भ्रष्ट नहीं हुई है।

महाराजः—हां, यह ठीक है। वह किसीसे भी-काल देश निमित्त आदि से-मर्यादित नहीं हुआ। फिर भला शब्द-द्वारा-अर्थात् मुख से-कोई उसका यथार्थ वर्णन कैसे कर सकता है?

अच्छा, ब्रह्म अगाध समुद्र के समान है। वह निरुपाधिक [illegible] षड्विकारातीत और मर्यादातीत है। इस कारण उसका कोई [illegible] लक्षण बतलाया नहीं जा सकता। स्वयं वेदों को भी उसका वर्णन करते हुए हार मानी पड़ी है; उसका वर्णन करते करते अन्त में वे थक गये और उसे केवल "आनन्द" बतला कर उन्हें मौन व्रत धारण करना पड़ा।

तुम से यदि कोई कहे कि महासागर का यथार्थ वर्णन करो तो तुम बड़ी गड़बड़ी में पड़ जाओगे। कदाचित् तुम्हारे मुख से लड़खड़ाते हुए यही शब्द निकलेंगे कि "अरे रे! इस विस्तार का भी कहीं ठिकाना है! लहरें भी कितनी उठ रही हैं! यह [illegible] गर्जना हो रही है!" बस।

गुरुदेव आदि बड़े बड़े श्रेष्ठ लोग महान् प्रयत्न करके जो कुछ सिद्ध कर सके वह इतनाही कि इस अथाह सागर का उन्हें दर्शन हो गया और उसके जल का स्पर्शानुभव और थोड़ासा आस्वाद भी वे पा सके! उन्होंने यदि इस सागर में पैर डाला होता तो उसी में सदा के लिए निमग्न हो गये होते और फिर इस जगत में वे दिखाई भी न पड़े होते!

एक बार कुछ चींटियां एक शक्कर के पर्वत पर आईं। तात्पर्य है उन्हें इस बात की कल्पना भी न थी कि वह पर्वत [illegible] है। शक्कर के कुछ कण खाने से उनका पेट भर गया। इसके बाद एक एक कण मुख में ले कर वे चल दीं। जाते जाते उन्होंने सोचा कि अगली बार सारा पर्वत ही अपने बिल में ले जा सकेंगी!

[illegible]

अरे रे! मनुष्य की भी यही दशा है! उसे भी ऐसाही भ्रम होता है! सच पूछिये तो ब्रह्म-साक्षात्कार होना- अपरोक्षानुभव आना-बहुत थोड़े मनुष्यों के भाग में आता है। परन्तु दुर्भाग्य से बहुत लोग यह निश्चयपूर्वक समझ लेते हैं कि ब्रह्म का असली पता [illegible] ब्रह्मानन्द की अनु-

. . . . ंत अपने
. . . . ने से उसे
. . . . , जो अप-
. . . . र ज्ञान से

कारते रहते हैं, अपने टुटपुंजिये ज्ञान से वे सन्तुष्ट रहते हैं। व उन्हें ब्रह्म का आकलन होता है!-अर्थात् उन्हें इस बात का ज्ञान होता है कि ब्रह्म कैसा है और कैसा नहीं है!!!

यह समझ कर कि, हमें अनन्त, शुद्ध, बुद्ध, नित्य और मुक्त ब्रह्म का स्वरूप पूर्णतया मालूम हो गया है, लोग वाक्पांडित्य दिखलाते रहते हैं!

बहुत हुआ तो शुकदेव आदि महान् महान् ऋषि चींटे समझे जा सकते हैं। यदि हम यह कहें कि आठ दश शक्कर के कण खाने का उनमें सामर्थ्य था तो कहा जा सकता है कि उनके विषय में यह हमने उचित ही कहा।

यह कहना कि शक्कर का सारा पर्वत खाने के लिए कुछ चीटियां उसे अपने बिल में ले गई, जितना पागलपन है उतना ही यह कहना भी पागलपन है कि हमें ब्रह्म का पूर्ण ज्ञान होगया।

डा० सुन्यत्सेन का आत्मवृत्तकथन।

चीन में अपूर्व---इतनी बडी जैसी आज तक कभी नहीं हुई-यक्रान्ति करके जिन्होंने लोकसत्तात्मक राज्यपद्धति की स्थापना उन महाशय डा० सुन्यत्सेन का संक्षिप्त चरित्र हम अपने कों को पिछले किसी अंक में भेंट कर चुके हैं। उस समय डा० हब के चरित्र की अपेक्षा उनकी हलचल का ही वृत्तान्त विशेष लब्ध हुआ था और इस बात की आवश्यकता थी कि उनकी रेत्रविषयक और कुछ बातें भी प्रसिद्ध हों। इतने ही में विलायत एक मासिकपत्र में "मेरी स्मरणवही" शीर्षक एक लेख प्रसिद्ध ा। यह अपना वृत्तान्त स्वयं डा० सुन्यत्सेन ने प्रकट किया है र उसके नीचे उनके हस्ताक्षर भी हैं। अतएव यह कहने की वश्यकता नहीं कि यह वृत्तान्त विशेष विश्वसनीय है। डा० हब के इस आत्मचरित्र से उनकी बुद्धिमत्ता और कर्तृत्वशक्ति तो ट होती ही है; परन्तु इसके सिवाय इस बात का भी पूरा पूरा ा चलता है कि सच्ची सद्बुद्धि से प्रारम्भ किये हुए न्याय-यं के लिये परमात्मा कैसे नाना प्रकार सहायता करता है-और अन्तःकरण राशा से व्याप्त होने पर एकाएक उस ार्य के लिये अनपेक्षित सहायता कैसे ल जाती है।

अच्छा; अब डा० साहब की कथा डा० ाहब के ही मुख से सुनिये:—"मेरी १८ र्व तक की-अर्थात् सन् १८८५ तक की-प्र सर्वसाधारण चीनी लड़कों की आयु समान ही व्यतीत हुई। फर्क केवल तना ही कि मेरे पिता क्रिश्चियन होकर लडन मिशनरी सोसायटी' के नौकर हो ये थे, और इसी कारण कैंटन के अंगरेज ीर अमेरिकन मिशनरियों से बहुधा मेरा सम्बन्ध रहता था। एक अंगरेज स्त्री मुझे हुत प्यार करती थी; उन्होंने मुझे अंगरेजी ालना सिखाया, और डा० कर नामक मेशनरी ने मेरी नौकरी लगा दी और [illegible] की कृपा से वैद्यक पढ़ने का मौका मुझे मला। वैद्यशास्त्र मुझे बहुत प्रिय था, और मैं समझता था कि वैद्य हो कर मैं अपने देशबान्धवों का बड़ा उपकार कर सकूँगा। इतने ही में मैंने सुना कि हांगकांग में वैद्यक की एक पाठशाला खुलनेवाली है। उस समय मैं तुरन्त ही डा० जॉन जेम्स के हमीं के पास जा कर उपस्थित हुआ और मेरा नाम हाजिरी के रजिस्टर में लिख लिया गया। हांगकांग में सन् १८९२ तक जो पांच वर्ष मैंने व्यतीत किये थे मेरी आयु के [illegible] हुए थे दिन थे। सन १८९२ में मुझे वैद्यकी के व्यवसाय की सनद मिली, और मैंने निश्चय किया कि कैंटन नहीं तो और पर मैकाओ नामक पोर्तगीज नगर में रहके वैद्यकी का व्यवसाय करना चाहिये। मैं नहीं कह सकता कि इस समय तक मैंने राजनैतिक विषयों में विशेष ध्यान दिया था; परन्तु अब मेरा ध्यान राजनैतिक विषयों की ओर आकर्षित होने लगा। पोर्तगीज डाक्टरों की [illegible] के कारण मैकाओ में मेरा व्यवसाय [illegible] कठिन हो गया। मैं अपना व्यवसाय जमाने का प्रयत्न करता था,

इतने ही मे एक दिन रात को मेरी ही उम्र का एक तरुण व्यापारी मेरे पास आया और उसने मुझ से पूछा कि "तुमने क्या सुना है कि जापानी लोगों के आने की खबर पेकिंग की तरफ से आई है?" इस पर मैंने उत्तर दिया कि "अंगरेज लोगों से जो कुछ मुझे मालूम होगा वही होगा; और दूसरे किसीसे मुझे कुछ नहीं मालूम हुआ। बडे खेद की बात है कि इस विषय में, कि जगत में क्या हो रहा है, हम सब अज्ञानावस्था में रखे जाते हैं। इस बात की बडी आवश्यकता है कि राजा अपनी प्रजा पर इससे अधिक विश्वास रखे।" तरुण व्यापारी बोला --"ईश्वरदत्त कहलानेवाला यह हक निरन्तर नहीं टिकता।" मैंने उत्तर दिया, "सच कहते हो। शून के कथनानुसार सर्वसाधारण लोगों के कानों से सुनी हुई बात ईश्वर के पास स्वीकार की जाती है।" इसी दिन सायंकाल को 'तरुण चीनियों' के पक्ष में मैंने अपना नाम दाखिल किया।

"अब संसार को यह बात मालूम हो गई है कि हमारा देश किस प्रकार की विपत्ति में था; पर सब से बडी आपत्ति हम पर 'अज्ञान' थी। राज-काज में तो हमें कोई कभी पूछता भी न था-उसके विषय का तो ज्ञान ही जाने दो, परन्तु हम चीनी लोगों को यह भी जानने का सुभीता न था कि देश में क्या हो रहा है। यूरोपियन लोगों में रहने के कारण मुझे उनकी स्वतन्त्रता-विषयक अभिरुचि लग गई थी, अतएव अपने देश की उक्त स्थिति मुझे सहज ही दुःसह हो गई। इतने ही में, जब मुझे मैकाओ में अच्छी तरह व्यवसाय चलने की आशा न रही तब मुझे अपने नाम का साइनबोर्ड निकाल कर कैंटन जाना पड़ा। इसके बाद सन् १८९४ में जापान ने चीन का पराभव करके उसे नीचा दिखाया। उन्हीं दिनों मैंने कैंटन में क्रान्तिकारक संस्था की एक शाखा स्थापित की, और उसका काम प्रारम्भ किया। मेरे उपदेश से शीघ्र ही मेरे मत के कितने ही लोग मेरे आस पास जमा हो गये।

"उन्हीं दिनों में मुझे यह खबर मिली कि राजा कुआंग स्यू अपना शासन छोड़ कर हमारे मांगे हुए सुधार अमल में लाने वाले हैं; और यह भी मालूम हुआ कि पेकिंग तक मेरे नाम का शोर मच गया है, और अधिकारी लोग मुझ पर दांत पीस रहे हैं। तब मैंने एक ऐसी युक्ति की, जिसके कारण उस समय भर के लिये मैं बच गया। एक दरख्वास्त राजा के पास भेजने के लिये मैंने तैयार किया। इस पर सैकड़ों लोगों के हस्ताक्षर करवाये और फिर उसे पेकिन को भेज दिया। बहुत देर तक मैं इस बात का अनुमान नहीं कर सका कि इस दरख्वास्त द्वारा हमारे अवस्था का क्या होगा, पर शीघ्र ही मालूम हुआ कि राजदरबार का ध्यान [illegible] ... [illegible] के बदले हमारे कुलटुम्ब के [illegible]। इसके सिवा केवल

डॉ० सन्यात्सेन यूरोपियन भेष में।

ो पुलीस में असन्तोष फैला और उसके सिपाहियों को समय पर वेतन न मिलने के कारण उन्होंने शहर लूटना प्रारम्भ किया। इस पर नगर-निवासियों की एक सभा हुई और पाँच सौ से अधिक मनुष्यों का एक डेप्यूटेशन गवर्नर साहब से मिलने गया। डेप्यूटेशन को देखते ही गवर्नर साहब बोले, "यह तो बलवा है!" इतना कह कर ही वे चुप नहीं हुए; किन्तु 'डेप्यूटेशन' के लोगों को एकदम पकड़ने के लिये उन्होंने हुक्म दे दिया। मैं सिर्फ उनमें निकल गया। कुछ दिन में जब मुझे यह मालूम होने लगा कि अब मुझे अधिकारियों का डर नहीं है तब अपने कैदी देशबान्धवों को छुड़ाने के लिये हमने एक उपाय किया। उस उपाय की योजना यद्यपि पहले ही की गई थी तथापि समय की प्रतिकूलता से वह अमल में नहीं लाया गया था। हम लोगों ने निश्चय किया कि कैंटन शहर पर एकदम अधिकार कर लिया जाय और जब तक उस प्रार्थनापत्र का फैसला होकर अधिकारियों का जुल्म बन्द न हो जाय तब तक शहर का अधिकार न छोड़ा जाय। इस कार्य में हमें स्वाटो प्रान्त के लोगों की सहायता चाहिये थी। ये लोग भी असन्तुष्ट ही थे। हम सुधारवादी लोगों की सभाएं रोज होने लगीं; और हथियार तथा गोला बारूद भी जमा होने लगा। धीरे धीरे सब प्रबन्ध हो गया। स्वाटो प्रान्त के सिपाहियों को डेढ़ सौ से भी अधिक मील का अन्तर पार करके आना था और हांगकांग के लोग भी आकर उनसे मिलनेवाले थे। नियत किया हुआ समय आ गया; मैं अपने एक मित्र के साथ एक घर में बैठा था। घर के आस पास ही हथियारबन्द सिपाही खड़े किये थे; और कैंटन के सारे भागों में यह इशारा पहुँचाने के लिये, कि दूसरे दिन सुबह सब लोग तैयार रहें, तीस चालीस विश्वासू पुरुष भी तैयार कर रखे थे। जान पड़ता था कि सब प्रबन्ध ठीक ठीक जम गया है। इतने ही में एक बम्ब का गोला फूट गया; और इससे बड़ी गड़बड़ मच गई। स्वाटो प्रान्त-वासी फौज के अधिकारी का तार आया कि "सरकारी फौज सावधान है; अतएव आगे नहीं जा सकते।" हमारा सारा दारमदार उसी फौज पर था; इस लिये अब हमारे सामने यह बड़ा भारी सवाल आ गया कि अब क्या किया जाय। जल्दी जल्दी से अपने गुप्तचर लौटा लेने का हमने प्रयत्न किया; हांगकांग को तार भेजा; पर उससे कोई लाभ नहीं हुआ। चार सौ लोग रिवालवरों की दस सन्दूकें लेकर जहाज़ से चले थे। इस लिये षड्यंत्रवाले घबड़ा कर भागने लगे। हमारे सारे कागजपत्र जला दिये गये और हथियार तथा गोला बारूद गाड़ दिया गया। मैं स्वयं बहुत दिनों तक कांगटन नदी के किनारे किनारे गुप्त छिपाये फिरता था; और बहुत दिन बाद मैं अपने एक पहचानवाले मनुष्य की नौका में बैठ कर भाग चला। ज्योंही मैं मेकाओ में जा पहुँचा त्योंही मुझे मालूम हुआ कि मेरे पकड़ने के लिये विज्ञापन निकला है और पकड़नेवाले के लिये दस हजार टेल का इनाम नियत हुआ है। मैंने यह भी सुना कि हांगकांग के जहाज पर वाले सब लोग पकड़ लिये गये। इस प्रकार १८९५ के षड्यन्त्र का अन्त हुआ।

'कुछ यह भी बात न थी कि मैं मेकाओ की अपेक्षा हांगकांग में अधिक सुरक्षित रहा होता, अतएव डा० कैन्टली के कहने से मैंने एक वकील की सलाह ली। इस वकील ने मुझ से कहा कि, 'तुम अभी के यहाँ भाग गये हो, यही तुम्हारी रक्षा का सर्वोत्तम मार्ग है।' सौभाग्य से इस समय मेरे मित्रों से मुझे द्रव्य की सहायता भी मिल गई और यहाँ पर यह प्रकट कर देना भी आवश्यक है कि जिस कार्य को सफल करने के लिये मैंने इतने यत्न प्रयत्न किया उस कार्य में कितने ही लोग [illegible] मुझे छोड़ गये। मेरे इन मित्रों ने मेरे साथ कभी दगा धोखे का बर्ताव नहीं किया। मेरी आवश्यकताएँ बहुत ही थोड़ी थीं। इस समय मैंने [illegible] [illegible] प्रकार किया; और कितने ही दिन मुझे [illegible] [illegible] पर ही रहना पड़ा। मेरी [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। हांगकांग [illegible] [illegible]। वहाँ मैंने [illegible] चीनी [illegible] [illegible] [illegible]। बहुत दिन [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। इसके बाद [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] कि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

कुछ काला था। यहाँ मैं यह भी प्रकट किये देता हूं कि मैं असल चीनी मा बाप का लड़का हूं और मेरा जन्म होनोलोलू हुआ। अस्तु।

जापान ने युद्ध में यश प्राप्त किया था, इस लिये जापानी लोगों का सब जगह बड़ा मान था; इस बात का फायदा मुझे भी मिला और इसीसे मैं कितने ही विकट प्रसंगों से बचा। मैं बिलकुल जापानी मनुष्य के समान देख पड़ता था। स्वयं जापानी मनुष्य भी नहीं पहचान सके कि मैं चीनी हूं। एक बार एक सार्वजनिक जगह में याकोहामा के दो पुरुष मुझे जापानी पुरुष समझ कर मेरे साथ जापानी भाषा में बात चीत करने लगे; और मुझे तो जापानी का गंध भी न था; तथापि मैंने ऐसा ढोंग किया कि जैसे मुझे जापानी आती ही हो। ढोंग करने का कारण यह था कि जिससे मेरे साथ रहनेवाले गुप्तचरों को मेरे विषय में संशय न हो। इसके बाद मैं छै मास होनोलोलू में रहा। यहाँ मेरे [illegible] ने बड़े प्रेम से मेरा स्वागत किया। आज तक मैंने जो जो कुछ किया था वह सब उन्हें मालूम था, इसके सिवा उन्हें यह भी मालूम था कि मेरे पकड़नेवाले को इनाम मिलेगी; तथापि किसीने विश्वासघात नहीं किया। होनोलोलू में प्रति दिन कितने ही सज्जन मुझ से आकर मिलते थे और नवीन पक्ष के लोगों की ओर से मेरे पास पत्र और रिपोर्ट बराबर आते रहते थे। यहाँ से मैं सानफ्रांसिसको गया और अमेरिका में बहुत दिन तक घूमता रहा। मुझे मालूम हुआ कि वाशिंग्टन के चीनी वकील मुझे पकड़ कर चीन भेजने का बड़ा प्रयत्न कर रहे हैं; पर उन्हें कोई सफलता नहीं हुई। यदि उन्हें इस काम में सफलता होती तो वे मेरी जो दशा करते उसे मैं भली प्रकार जानता था। चीनी अधिकारियों ने पहले मुझे फाड़ डाला होता और फिर हथौड़े से मेरे हाथ पैर तोड़ डाले होते, मेरी बिन्नियाँ काट डाली होतीं और अन्त में मेरे शरीर के टुकड़े टुकड़े कर डाले होते, जिससे कि कोई मेरे शव को पहचान कर माँग न ले जाय।

"सन् १८९६ के सितम्बर मास में मैं इंग्लैंड गया और ११ अक्टूबर को लंडन के चीनी वकील की आज्ञा से 'पोर्टलैंड प्लेस' में मैं अचानक पकड़ लिया गया। यह वृत्तान्त सभी जानते हैं। उस बार मुझे बारह दिन एक कोठरी में सख्त पहरे में रखा था; और पागल चीनी कह कर वे मुझे चीन को भेजना चाहते थे। उस समय यदि डा० कैंटली लंडन में न होते तो मैं इस संकट से नहीं बच सकता था। इस बार की कैद में मैंने बहुत से प्रयत्न किये; पर सफलता नहीं हुई। परन्तु अन्त में डा० कैंटली को जेल से सन्देशा भेजने में मैं सफल हुआ। डा० कैंटली ने समाचारपत्रों के सम्पादकों को, पुलीस को और लार्ड सालिसबरी को मेरा सब वृत्तान्त बतलाया; और अन्त में लार्ड सालिसबरी ने मुझे छोड़ देने का हुक्म दे दिया। इस प्रकार इस संकट से मेरा छुटकारा हुआ।

"लंडन, पेरिस आदि स्थानों में प्रवास कर के अनेक विषयों का अभ्यास करने में कुछ दिन व्यतीत करने पर मैंने समझा कि अब चीन में लौट जाने का समय आ गया। मैंने समझा कि अब मेरे देश को मेरी सेवा की अपेक्षा है, अतएव मैं चीन को लौट आया। यहाँ आकर क्या देखता हूं कि सारे चीन में हलचल मच रही है। [illegible] लोगों की धमधाम का वृत्तान्त सब को मालूम ही है। उन दिनों मैं व्याख्यान देकर और लेख लिख कर लोगों को अपने पक्ष में मिलाता था। दिन दिन मुझे इस बात पर अधिकाधिक विश्वास होता जाता था कि अब क्रान्ति प्रकट होगी और यह किसी प्रकार रुक नहीं सकती। पर इसमें कोई सन्देह नहीं कि इन दिनों मैं अपना सिर हथेली पर रखे हुए प्रति दिन घर के बाहर निकलता था, क्योंकि अब [illegible] मेरे शत्रु पैदा हो गये थे। [illegible] लोगों और [illegible] सुधारों का ढंग चाहनेवाले और [illegible] को [illegible] समझ कर [illegible] [illegible] [illegible] देने की इच्छा रखनेवाले कुछ लोग [illegible] मेरा द्वेष करने लगे थे।

इसी बीच में एक मज़ेदार सी बात हो गई। एक दिन मैं [illegible] [illegible] के साथ एक जगह बैठा [illegible] था। वहाँ [illegible] [illegible] मुझे [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] था, मेरी ही [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।" मैं [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। मेरी इच्छा है कि मैं [illegible] [illegible] [illegible]

डॉ० सुन्यातसेन—चीनी भेष में।

डॉ० [illegible] के पिता।

विश्वास होता है कि आप की हलचल अवश्य सफल होगी।'
उसके बोलने से मैं ने जाना कि कदाचित् यह कोई अमेरिकन पुरुष है। उसका बढ़ाया हुआ हाथ मैंने अपने हाथ में ले लिया और एक ओर यह आश्चर्य करते हुए कि यह पुरुष कौन है, दूसरी ओर मैंने उसका धन्यवाद किया। मैं ने अनुमान किया था कि यह मिशनरी होगा या कोई विद्यार्थी होगा। और मेरा यह अनुमान सच ठहरा। यह पुरुष और कोई नहीं—कर्नल होमर ली है। आप अर्वाचीन युद्धकला में निष्णात हैं और अब जनरल होगये हैं। दूसरे दिन मैं उनसे मिला, और बात चीत करते हुए मैंने उनसे कहा, "मुझे यदि अपने कार्य में सफलता होगी और मेरे देशबान्धव मेरे हाथ में सत्ता रक्खेंगे तो मैं आप को अपना मुख्य सैनिक मंत्री नियत करूंगा।" इस पर वे बोले, "आप जब तक रास्ता न देखें। चीन के अध्यक्ष न हो जायं तब तक उसके पहले ही आप को मेरी मदद की अवश्यकता होना सम्भव है। चाहे जिस सरकार का अस्तित्व हो, अथवा चाहे उसे कायम रखना हो, सेना की आवश्यकता रहती ही है। सैन्य के बिना कुछ नहीं होता। योग्य रीति से शिक्षा देने पर चीनी लोगों की उत्कृष्ट सेना तैयार हो जायगी। उनकी योग्यता के विषय में मेरा बहुत अच्छा मत है।"

यूरोपियन युद्ध प्रणाली की शिक्षा पाये हुए नवीन चीनी सैन्य में देशभक्त और उदार मतवादी लोगों की अधिक भरती थी; परन्तु जब तक हैनियंग का गोलाबारूद वे अपने अधिकार में न कर ले

जनरल होमर ली, डॉ० सुन्यात्सेन के सैनिक मंत्री।

तब तक उनके पास गोलाबारूद बिलकुल ही न था; क्योंकि चीन की सत्ताधारी सरकार उन्हें सिर्फ सादे कारतूस देती थी।

मेरे कुछ मित्रों को बड़ी चिन्ता थी। कि मैं सुरक्षित कैसे रहूँगा; परन्तु—चाहे इसे आप चीनी दैववाद का रहा हुआ अनुवंशिक संस्कार ही कहिये मेरा मन इस बात से कभी नहीं घबड़ाया। मेरा काल जब आना होगा तभी आवेगा। उसकी क्या परवा? एक बार नानकिंग में मैं एक नाव पर था। वहां प्रातःकाल को मेरी कोठरी में एक आदमी घुस आया; और मुझ से बोला, "मैं गरीब मनुष्य हूं; और मेरे बाल बच्चे हैं।" कहा, "समझ गया, मेरा पता लगा देने के लिए आप को किसीने सौ डालर देने कहे हैं न?" वह बोला, "इससे भी अधिक।" मैं ने कहा, "तो फिर कितने? हजार?" उसने कहा, "पांच हजार।" इसके बाद वह बोला कि "ये रुपये यदि आपही मुझे दे दें तो अच्छा होगा। इससे मैं और मेरे लड़के बच्चे सुखी होंगे।" मैं ने उससे कहा, "आप कहते बहुत ठीक हैं; पर मुझे अपने प्राणों की कुछ भी कीमत नहीं है। हां, आप को अवश्य ही उनकी कीमत है। क्योंकि आप यदि मेरा नाम प्रकट कर देंगे तो 'मांडरिन' लोग आप का सब धन छीन लेंगे। यही नहीं, किन्तु आप के लड़के बच्चे और उनके वंशज तथा अन्य लाखों लड़केवाले हजारों वर्ष तक दारिद्रता ही में रहेंगे। मेरे कहने की तरफ ध्यान दीजिए। मैं आप का हूं और यह मेरा शिर आप का है। अपना शिर देने के लिए आप क्या ५००० डालर लेने के लिए तैयार होंगे? तथापि यदि आप की इच्छा हो तो आप जाइये और अपने मुख्य अधिकारी को खुशी से यह खबर दीजिए कि मैं यहां हूं। मैं यहां से नहीं हिलूंगा।" मेरा यह कहना सुन कर वह मेरे पैरों पर लेट गया; और मुझ से क्षमा मांगने लगा। दूसरे दिन मुझे मालूम हुआ कि इस आदमी ने आत्महत्या करली। वह कहता था कि, "सुन्यत्सेन को मैं शत्रु के सिपुर्द करना चाहता हूं; इस बात से मुझे जो कलंक लगा वह अब मैं सहन नहीं कर सकता। वह अपने मन में अत्यन्त लज्जित हुआ और इसी कारण उसने आत्महत्या कर ली! मेरा शिर ला देने के लिए जो इनामें लगाई गई थीं उनके विषय में अनेक बातें बतलाई जा सकती हैं; पर, यह कहने की आवश्यकता नहीं सब मनुष्य इसी मनुष्य के समान न थे। बहुत से तो ऐसे ही थे कि यदि सम्भव होता तो वे मुझे मार कर अवश्य इनाम प्राप्त कर लेते। परन्तु ऐसे लोगों से मेरे मित्रों ने मेरी रक्षा की। एक बार मैं एक जगह छै आठवाड़े तक एकही कोठरी में रखा गया, और इतने दिन बराबर मुझे कोठरी से बाहर नहीं निकलने दिया। एक बार मैं एक जहाज पर एक मछुवाहे के साथ रहा। एक बार मुझे खबर मिली कि दो सिपाही दूर से गोली चला कर मुझे मारने वाले हैं; इस लिए मैं घर से बाहर नहीं निकलता; और फिर पीछे से खबर लगी कि उन दोनों सिपाहियों को ही किसीने मार डाला!

"कैंटन में दो फौजी अफसर मुझे पकड़ने आये थे। उस मौके की बात भी बहुत ही विलक्षण है। रात का समय था, मैं अपनी कोठरी में बैठा था। मेरे शरीर में सिर्फ एक कमीज थी। कुछ कागज पत्र लौटाता पौटाता हुआ मैं पढ़ रहा था। वे दोनों पुरुष मेरी कोठरी

डॉ० साहब को पकड़ने के लिए चीनी अफसरों का अचानक आगमन।

का दरवाजा खोल कर भीतर आगये। उनके साथ आये हुए बारह सिपाही बाहर खड़े थे। जब भीतर आये हुए दोनों सिपाहियों को मैंने देखा तब मैंने शान्ति के साथ एक धर्मग्रन्थ हाथ में लिया और उसका कुछ भाग जोर जोर से पढ़ने लगा। वे कुछ देर तक मेरा पढ़ना सुनते हुए खड़े ही रहे और इसके बाद उनमें से एक ने मुझसे कुछ प्रश्न किया। मैंने उसके प्रश्न का उत्तर दिया। इसके बाद

हम आये वह यह नहीं है, यह तो कोई दूसरा सज्जन पुरुष है। रोगियों को आराम करने में यह अपनी आयु बिता रहा है" किसी समय मेरा शिर लाने के लिए ७००००० टेल, अर्थात् १००००० पौंड तक रकम बढ़ाई गई थी। उस समय लोग मुझ से पूछते थे कि इतने पर भी तुम अपने प्राणों के लिए बहुत खबरदार क्यों नहीं रहते और लंडन में निश्चिन्त क्यों घूमते रहते हो? इसका उत्तर मैं यही देता था कि मेरे प्राणों की अब कुछ बहुत कीमत नहीं है क्योंकि अब यदि मैं मर भी गया तो मेरी जगह पूरी करने के लिए अनेकों मनुष्य तैयार हैं; परन्तु दस वर्ष पहले ऐसी दशा नहीं थी। उस

समय यदि मेरा शिरच्छेद हुआ होता अथवा यदि मेरे प्राण लेने के लिये मुझे चीन को ले गये होते तो मेरे कार्य की हानि हुई होती।'

" बाक्सरों का बलवाशान्त होने पर मैं अमेरिका को गया। सेना और शस्त्र से भी अधिक मुझे एक वस्तु की आवश्यकता थी, और वह वस्तु धन है। मैं जानता था कि बिना धन के फौज या शस्त्र एकत्र नहीं हो सकते। अतएव मैंने राजकीय कार्य के लिए चन्दा इकट्ठा करना शुरू किया। इस काम के लिए मैं अमेरिका के प्रत्येक शहर में घूमा और यूरप के सब बड़े बड़े कोठीवालों से मिला। मेरे आदमियों ने सर्वत्र संचार किया। मेरे लिए और मेरे नाम से काम करनेवाले कुछ लोगोंने विश्वासघात का बर्ताव किया; पर इनके विषय में कुछ न कहना ही अच्छा है। देश कार्य के लिए एकत्र की हुई एक बड़ी रकम खा जाने के कारण एक मनुष्य का इस समय चारों ओर खुल्लमखुल्ला धिक्कार हो रहा है, उसके कर्मों का उसे अवश्य योग्य फल मिलेगा। अस्तु। सारे संसार में-खास कर अमेरिका में-ऐसी एक दन्तकथा फैली है कि चीनी लोग स्वार्थी और सिर्फ धन का मुहँ ताकनेवाले हैं; पर किसी समाज के लिए इतना बड़ा मिथ्या विधान आज तक किसी ने न किया होगा। मेरा अनुभव इसके बिलकुल विरुद्ध है। चीन में कितने ही महाशयों ने अपनी सारी सम्पत्ति मेरे हवाले कर दी। एक बार मैं एक सभा से लौट कर आया था कि इतने ही में मेरे होटल में फिलेडेलफिया का, धोबी का व्यवसाय करनेवाला एक पुरुष आया और चुपके से एक थैली मेरे हाथ में देकर वह तुरन्त ही चला गया। उसने मुझसे कुछ बात चीत भी न की! उस थैली में उसकी बीस वर्ष की जमा की हुई पूरी पूँजी थी। इस समय मैं यद्यपि अमेरिका में था; तथापि चीन और चीन में होनेवाली घटनाओं की ही ओर मेरा ध्यान था।

चीन के राजा की माता का जब देहान्त हो गया तब मैंने समझ लिया कि अब कुछ काल तक चीन का भाग्य युआन-शि-काई के हाथ में रहेगा। इसके साथ ही मैं यह भी जानता था कि मेरी सहायता [illegible] बिना वे कुछ भी नहीं कर सकेंगे। चीनी लोग परकीय राष्ट्रों से [illegible] रहना चाहते हैं और योरोपियन लोगों ने समझ लिया है कि [illegible] बन्दरों से परदेशी व्यापार हो सकता है तो सिर्फ अपनी [illegible] के बल से ही। पर वास्तव में ऐसी बात नहीं है। चीन [illegible] लोग नहीं आये थे तब चीन अपने आस पास के राष्ट्रों [illegible] प्रेम का व्यवहार करता था। उसने परकीय व्यापारियों [illegible] के विषय में द्वेष कभी नहीं प्रकट किया। यही नहीं [illegible] देशी व्यापारी प्रसन्नतापूर्वक सारे चीनी साम्राज्य में घूम [illegible] घराने के राजत्वकाल में भी चीनी लोगों ने परकीयों से [illegible] को ता[illegible]; इसके लिए इतिहास में बहुत से प्रमाण मिलते हैं, परन्तु [illegible] लोगों के आने से नयी नीति शुरू हुई, परदेशी व्यापारियों को चीन में व्यापार करने के लिये मनाई की गई, मिशनरी लोग चीन से निकाल दिये गये और जो चीनी लोग क्रिश्चियन हो गये थे वे कतल कर दिये गये। एक यह भी हुकम निकाला गया कि चीनी लोग दूसरे देशों में रहने के लिये न जायँ, और यह हुकम न माननेवालों को देहान्त दण्ड दिया जाने लगा। मांचू राजकर्त्ताओं ने समझा कि परदेशी लोगों के सहवास से चीनी लोग जागृत होकर अपनी राष्ट्रीयता पहचानने लगेंगे; इसी लिये उन्होंने परदेशी लोगों को दूर किया और उनकी यह भी इच्छा थी कि चीनी लोग भी परकीयों का द्वेष करें। सन् १६०० में बक्सर-बलवे का प्रारम्भ हुआ, तब परकीयों के विषय का द्वेष पराकाष्ठा को पहुँच गया। तातार लोगों के २६० वर्ष के शासन काल में चीनी लोगों को अनेक दुःख और अन्याय सहन करने पड़े हैं। मंचूरियन तातार लोग प्रजा के हित की अपेक्षा अपनी जाति के हित को और ध्यान रख कर राजकाज करते हैं; वे चीनी लोगों के बुद्धि-विषयक तथा सम्पत्ति विषयक सुधार के प्रतिकूल रहते हैं; चीनी लोगों को जीत समझ कर वे उनके साथ नीच बर्ताव करते हैं, तथा उन्हें अपने बराबर के हक तथा सुभीते नहीं देते; हमारे जीवन-स्वातंत्र्य-विषयक तथा सम्पत्ति-विषयक अधिकारों को वे खराब करते हैं; सरकारी हाकिमों की घूस खाने की, तथा जुल्म और अन्याय करने की प्रवृति को वे उत्तेजना देते हैं; वे भाषण-स्वातंत्र्य को नष्ट करना चाहते हैं; हमारी सम्मति के बिना वे हम पर अन्यायपूर्ण करों का अनुचित बोझा लादते हैं; अत्यन्त जंगलीपन के साथ कष्ट देने की रीति-राक्षसी नीति-का वे स्वीकार करते हैं; वे अन्याय से हमारे वंशपरम्परा के हक छीन लेते हैं; और अपनी प्रजा की जान और माल की रक्षा का अपना कर्तव्य वे नहीं करते। यद्यपि मांचू लोगों का द्वेष करने के लिये पूरे कारण मौजूद थे; तथापि हमने उनके साथ शांति से रहने का प्रयत्न किया, पर वह निष्फल हुआ। इस लिये अन्त में हम चीनी लोगों ने निश्चय किया कि अब यथाशक्य

माल, दाम, और आवश्यक जो हो सब अत्याचार के उठाने की योजना करनी चाहिये, जिससे हमारे साथ न्याय का बर्ताव [illegible] जाय और चीन, जापान आदि देशों में तथा सम्पूर्ण जगत में [illegible] बनी रहे। अब हमने जिस बात को एक बार आरम्भ कर दिया उसे पूर्ण करने का हमारा विचार है-फिर उसके लिये चाहे [illegible] रक्त-पात करना पड़े, कोई परवा नहीं। हमें चीन में [illegible] सभ्य-और उन्नति प्रिय सरकार की आवश्यकता है। ऐसी [illegible] सरकार के हाथ में सत्ता जाने से चीन स्वयं तो [illegible] से मुक्त हो ही गा, परन्तु, यह भी सम्भव है, कि वह अ[illegible] सत्ता और अपने स्वत्व की रक्षा करने की जवाबदारी से [illegible] कितने ही राष्ट्रों को भी मुक्त करेगा। ऐसे लोग चीन में [illegible] जो नवीन सरकार बनाने की योजना रचते हैं। बहुत दिनों बड़े विचार के साथ अनेक ऐसे उपाय निश्चित कर रखे गये हैं जिनसे चीन की प्राचीन राजसत्ता बदल जायगी और [illegible]त्मक राज्यप्रणाली स्थिर हो जायगी; और बहुजनसमा[illegible] परिवर्तन को अवश्य चाहता है। चीन के लोग इस स[illegible] चिन्ता में हैं। इन मांचू राजकर्त्ताओं को भगा देने के लिये बिलकुल तैयार हैं। ज्योंही दक्षिण चीन में क्रान्तिकारकों [illegible] आई त्योंही समझ लो कि लोग मदद को दौड़ ही पड़ेंगे। [illegible]शि-काई का पद घटा देने के कारण फौज की राजभक्ति घ[illegible] और विश्वास है कि वे मांचू लोगों की तरफ से युद्ध [illegible] इसी तरह सैनिक के कितने ही अधिकारी और सला[illegible] क्रान्तिकारक पक्ष में हैं, उनका बन्दोबस्त होने के लिये [illegible] ही की जरूरत है। चीन के बड़े बड़े योद्धा लोग क्रा[illegible] पक्ष में हैं।

" अब तक सब बातें मेरे भविष्य के अनुसार होती [illegible] अन्तिम मौका कुछ अधिक शीघ्रता के साथ और विलम्ब [illegible] आया। मैं समझता था कि युआन-शि-काई अधिक टि[illegible] और इसी कारण मैंने उनपर नहीं रखा; यद्यपि उनका आ[illegible] बार मुझे बुलाने के लिये मेरे पास आया था। पर पी[illegible] मालूम हुआ कि मुझ से सचमुच ही मिलना चाहते थे और [illegible] इच्छा थी कि मेरे प्राणों के विरुद्ध जो इश्तिहार निकला है [illegible] कर के खुल्लमखुल्ला मेरी सम्मति से काम किया जाय। ज[illegible] शि-काई का आसूस मेरे पास आया तब मैंने उससे यह कहा कि, " अपने मालिक के पास लौट जाओ और उन[illegible] कि मैं आज पन्द्रह वर्ष से जो परिश्रम कर रहा हूं-जो संकट सह रहा हूं सो कुछ ऐसी मामूली बातों में फँस[illegible] लिये नहीं। उनसे जाकर कह दो कि अभी मेरा धैर्य नष्ट [illegible] है।" मैं यदि उस समय युआन-शि-काई पर विश्वास [illegible] उनसे मिलने गया होता तो क्रान्ति इससे भी जल्दि हो [illegible] और आज मैं पेकिंग में होता। क्योंकि मेरे लाखों अनु[illegible] विश्वासी हैं और उन्होंने आज तक मेरे उपदेश के अनुसा[illegible] रण किया है और मरने तक वे मेरा कहना मानेंगे; इस[illegible] पूरा विश्वास है।

" राजमाता ने चीनी राजाओं की स्वतंत्रता नियंत्रित कर [illegible] और इसके पहले राजाओं की कृपा के कारण हम लोग क्रान्ति [illegible] हलचल बहुत ही आगे बढ़ आई। इस अवधि में हजार[illegible] नव युवकों ने चीन के बाहर जाकर संसार भर में संचार [illegible] आज्ञा प्राप्त की और योरोपियन रीतिरिवाज सीख कर [illegible] योरोपियन संस्थाओं के विषय में ज्ञान भी प्राप्त किया। [illegible] हुए नब्बे की सदी चीनी लोगों के सिर में राज्यक्रान्ति [illegible] विचार भर गया। मैं जहाँ कहीं जाता वहीं मुझे इस वि[illegible] अनेकों लोग मिलते। उन्हें मेरा नाम और मेरा चारित्रक्र[illegible] था और मुझ से बातचीत करने की उन्हें बड़ी इच्छा हो[illegible] ये लोग जब चीन को लौट जाते तब चीनी बहुजन सम[illegible] अपने नवीन विचारों का, धीरे धीरे, बराबर प्रचार करते [illegible]

" मैं सम्पूर्ण चीन का नामधारी अधिपति बनाया जा[illegible] मुझे युआन-शि-काई के साथ काम करना पड़ेगा—इन बा[illegible] चाहे जो कुछ हो—मुझे इसका कुछ भी महत्व नहीं जान [illegible] मैंने अपना काम किया है। सुधार और प्रगति की जो लह[illegible] है उसे अब कोई रोक नहीं सकता और चीन बहुत जल्द [illegible] किये हुए और स्वातंत्र्यप्रिय राष्ट्रों में गिना जायगा; क्यों[illegible] के लोग उद्यमप्रिय और सीधे स्वभाव के हैं। चीन देश, लो[illegible] त्मक राज्यप्रणाली के लिये, संसार के और देशों की अपेक्षा [illegible] प्रकार से योग्य है।

हूड-रिवर।

(लेखक-प्रो० खानखोजे, बी० एस्० सी०; पुलमन वाश, यू० स्टे० अमरीका।)

भारतवर्ष में बहुत थोड़े लोगों ने हूड-रिवर का नाम सुना होगा। अनेक कारणों से भारतवर्ष पीछे पड़ा हुआ है, अतएव जगत् के प्रसिद्ध औद्योगिक स्थलों का ज्ञान रखने में भी वह पीछे ही है; इसी लिए आज हम अपने देशबन्धुओं को उपर्युक्त प्रसिद्ध स्थल का वर्णन सुनाना चाहते हैं। जापान और अमेरिका आदि देशों में मैं सिर्फ कृषि [illegible] लिए आया [illegible] में अपना पाँ [illegible] विद्यालय ([illegible] की प्रशंसा बारम्बार सुना करता था, और इसी कारण इस स्थान के देखने का मैंने निश्चय कर लिया था। इस देश की तीन बड़ी रियासतों (States) में मैंने पिछली गर्मियों में प्रवास किया। ये तीन रियासतें ओरेगान, वाशिंग्टन और आयडोहा हैं। ये तीन रियासतें मिल कर 'पासिफिक नार्थ वेस्ट' कहलाती हैं। इन रियासतों के कुछ भाग बहुत ही थोड़ी वर्षा में भी खेती करने के लिए प्रसिद्ध हैं। इस प्रदेश में समुद्र के समान विस्तृत, गेहूं के बड़े बड़े खेत देख पड़ते हैं। मैंने इस विचार से यह प्रवास प्रारम्भ किया था कि उस प्रदेश को देख कर कृषि का बहुत सा प्रत्यक्ष अनुभव मिलेगा। मैंने बहुत से खेतों में स्वयं अपने हाथ से काम करके अनुभव प्राप्त किया, उसका विस्तृत वर्णन इस लेख की मर्यादा से बाहर है। मैंने इस प्रवास में पहले पहल यही हूड-रिवर की प्रसिद्ध भूमि देखी, अतएव प्रथम इसी प्रदेश का वर्णन दिया जाता है।

हूड-रिवर ओरेगन रियासत की एक प्रसिद्ध काउन्टी (जिला) है। इस रियासत के लोग हूड-रिवर को "सेव फल की कृषि का विश्वविद्यालय (The University of apple Eu'ture)" कहते रहते हैं, और सचमुच यह नाम यथार्थ भी है। सारा जगत् हूड-रिवर के सेवों के लिए भूखा सा जान पड़ता है। यहां के सेव न्यू यार्क से लेकर हैम्बर्ग (जर्मनी) तक और सैन्फ्रान्सिस्को से लेकर जापान-चीन तक प्रसिद्ध हैं। इंगलैंड, जर्मनी, फ्रान्स, आदि यूरप के प्रसिद्ध देशों में यहां के फलों की बहुत ही मांग है। अब इस बात के जानने की स्वाभाविक ही इच्छा होती है कि जिस स्थल के फल इतने प्रसिद्ध हैं वह स्थल कैसा होगा। अहा! ऐसा कौन पुरुष है कि जिसको परमात्मा की इस अद्भुत सृष्टि के इस विचित्र स्थल को देख कर आश्चर्य और आनन्द न होता हो। ओरेगन रियासत में हूड-रिवर सब से छोटा जिला है। इसकी चौड़ाई ९-१० मील और लम्बाई २४-३० मील है। संसार में शायद ही कोई इतना छोटा प्रान्त इतना प्रसिद्ध हो।

"हूड-रिवर" इस अँगरेज़ी नाम से एक नदी के नाम का बोध होता है और यह ठीक भी है। "हूड-रिवर" नदी के नाम से ही जिले का नाम और उसके मुख्य शहर का नाम भी हूड-रिवर पड गया है। भारतवर्ष में भी वर्धा, सतना आदि जिलों और शहरों के नाम नदियों के ही नाम से पड गये हैं। इस जिले के लोगों को 'हूड' यह छोटा सा सुन्दर शब्द बहुत ही प्रिय हो गया है। यह नाम जिले भर में सभी जगह पाया जाता है। रेलगाडी का नाम 'हूड,' भोजनालयों (Hotels Restamants) का नाम 'हूड,' बर्फ (Ice cream) का नाम 'हूड,' मिठाई का नाम 'हूड,' तम्बू का नाम 'हूड,' रास्ते का नाम 'हूड,' अधिक क्या कहें, मन्दिर का नाम 'हूड'; जल, स्थल, काष्ठ पाषाण, सब जगह 'हूड;' भरा हुआ है, तथापि इन लोगों का हूडहूडाना बन्द नहीं हुआ है। नाम की तरह इस प्रान्त के लोग भी उद्योग में हूड ही हैं।

सृष्टिसौन्दर्य और जलवायु:—पोर्टलैंड शहर से पूर्व की ओर ६६ मील पर कासकेड पर्वत के पूर्वी सिरे पर यह, सुन्दर हूडरिवर स्थान कोलम्बिया नदी के और बर्फाच्छादित हूड पर्वत के मध्य-भाग में बसा हुआ है। हूड पर्वत से निकलने वाली हूड नदी के गंगाजलवत् निर्मल और शीतल पानी से इस उपवन के सेव फलों में अमृत का सा स्वाद आता है। यह सारा प्रदेश पहाड़ी है। परन्तु सेव के बगीचे समान जगह (Level) पर हैं। कोलम्बिया नदी के तट पर इस प्रदेश की ऊँचाई ३०० फीट है; पर यह ऊँचाई बढ़ते बढ़ते ३००० फीट तक हो गई है। आडाम शिखर और हूड शिखर सर्वदा हिमाच्छादित रहते हैं, इस कारण ऐसा भास होता है कि मानो इस प्रसिद्ध स्थान के लिए परमेश्वर ने ये दो शुभ्र विजय-स्तम्भ ही बना रखे हैं। पश्चिम की ओर कासकेड पर्वत की अत्यन्त ऊंची शाखाओं से ऐसा जान पड़ता है कि मानो उस परम पिता विश्वकर्मा ने इस छोटे से, परन्तु सुन्दर, उपवन की संरक्षा के लिए एक भयंकर और दृढ किला ही बना रखा है। हूड शिखर के बीच ७,००० फीट ऊंचे मस्तक पर एक सुन्दर विश्राम-गृह बना हुआ है। यह सारा प्रदेश बर्फमय है और यहां शीत अधिक पड़ता है। तथापि हजारों लोग प्रति वर्ष इस पर्वत शिखर पर चढ़ते हैं। इस विश्राम-गृह तक आटोमोबिल—(मोटरकार) से प्रवास किया जा सकता है। रास्ता भी अच्छा है। विश्रामगृह से फिर शिखर पर पैदल चढ़ना पड़ता है। विश्रामगृह से ऊपर चढ़ने के लिए मार्गदर्शक आदमी मिलता है। मैं इस प्रदेश में पैदल प्रवास करता हुआ इस पर्वत के मैदान तक आ पहुंचा था। मैं इतना धनवान न था कि मोटर गाड़ी से ऊपर चढ़ता। इस लिए पैदल ही सिर्फ गिरिरम-पहाड़ पर चढ़ना—

वृक्षों का सौन्दर्य।

वृक्ष-छेदन और संशोधन।

उन्हें उपर्युक्त बातों का कोई डर नहीं रहता। इस जगह पानी इतना एकत्रित है जो कि यहां के लिए पूर्ण रीति से पर्याप्त है, पर उससे वृक्षों के मूल में कोई दुष्परिणाम नहीं होता और वृक्ष भर पर बढ़ते रहते हैं। इसका कारण यह है कि यहां की जमीन रेतीली—बालुकामयी—होने के कारण पानी झिर जाता है और इस लिए वृक्षों की जड़ों को पर्याप्त हवा मिलती रहती है। ग्रीष्म की आकस्मिक और अधिक धूप के कारण पानी के वाष्पीभवन (Evaporation) से जमीन बहुत रूखी पड़ जाती है और स्ट्राबेरी (Strawberry) के समान फलों को विपुल जल मिले बिना उत्तम फसल नहीं होती। इस दशा के कारण यहां के किसानों को ऐसे फलों के लिए पानी देना ही पड़ता है। इस भाग में पहाड़ों पर पानी काफी है, इस लिए फलकृषकों (Fruit Growers) ने परस्पर-सहकारी संस्था बना ली है और पर्वतों से पानी की नहरें निकाल कर जिले भर के सब खेतों में काफी तौर से पानी पहुँचा दिया है। यद्यपि पानी की कमी नहीं है, तथापि उसका उपयोग वैज्ञानिक रीति से और जरूरत के मुताबिक होता है।

आर्टली सेवफल।

सर्वोत्कृष्ट फल उत्पन्न करना इनका उद्देश्य रहता है; इस लिए सब शास्त्रों को उन्होंने अपना सेवक बना लिया है। वृक्षसंगोपन (Traning) वृक्षछेदन (Pruning) और वृक्षसंरक्षण आदि काम बड़ी दक्षता के साथ किये जाते हैं। वृक्षरोग (Plan deseases) फलरोग, वृक्षकीटक (Insect pests) और मूस, घूस आदि प्राणियों से रक्षा करने के लिए बड़ी होशियारी से खास-खास औषधियों की और अन्य उपायों की योजना की जाती है। औषधि-सिंचन की क्रिया (Spraying) से पेड़ों पर वृक्षरोग का चिन्ह ही नहीं देख पड़ता। ओरेगन-कृषि-महाविद्यालय (Oregon Agricultural College) की देखरेख में इन फल-कृषकों ने हुड रिवर शहर में एक प्रयोगशाला स्थापित की है। इस प्रयोगशाला की वृक्षरोग-चिकित्सा और निवारण, अध्यापक लारेंस (Prof. lowrence M. S c.) की देखरेख में होती रहती है। ये उच्च श्रेणी, निष्णात अध्यापक सर्वदा सूक्ष्मदर्शक यंत्र से भिन्न भिन्न वृक्षरोगों की चिकित्सा करते रहते हैं। इनको वेतन भी खूब मिलता है। इनके सहवास में मैंने बहुत सा समय व्यतीत किया है, इस लिए इस विषय का प्रत्यक्ष अनुभव सौभाग्य से मुझे प्राप्त हुआ है।

इस चित्र में बीचवाली सन्दूक सेबफलों की है। फल पतले कागज़ में लिपटे हुए हैं। आस पास की सन्दूकों में प्रत्येक खाने में फल भरे हुए हैं और ऊपर कागज़ ढंका है।

फल कृषकों की एकता:—(Fruit Grower's—Union) एकता का मधुर फल भारतवर्ष को अभी नहीं मिला; परन्तु इस देश के लोग ऐसी सम्पन्न स्थिति में भी एकता के लिए जो जान तोड़कर प्रयत्न करते हैं। सामाजिक, राजकीय, धार्मिक, औद्योगिक अथवा अन्य-चाहे जो काम हो, उन सब प्रकार के लोगों की एकता ये लोग पहले ही स्थापन कर लेते हैं और एकता की लगाम से जगत् का कारोबार अपने हाथ में ले लेते हैं। यहां के कुछ कृषकों को ज्योंही सेबों में कुछ फायदा जान पड़ा त्योंही उन्होंने अपने भाग के अन्य सेबवालों को एकता करने के लिए निमंत्रण दिया और "हुड-रिवर फल-कृषकों का ऐक्य" स्थापित किया। यह एकता १८ वर्ष पहले स्थापित हुई और १९१० में सेबफल वालों की एकता को भी अपने में शामिल कर लिया। इस एकता के बल पर यहां के लोग 'स्वतंत्र प्रयोगशाला' फल रखने की बड़ी कोठी और बर्फ बनाने का बड़ा कारखाना आदि खर्च की बड़ी बड़ी संस्थाएं सहज ही में स्थापित कर सके। इस एकता के लिए सरकारी ओरेगन कृषि-महा-विद्यालय की पूरी सहायता है; यही नहीं, बल्कि एकता के कार्य में विद्वान विज्ञान् अध्यापक और फलशास्त्रज्ञ (Horticulturist) भी निजी तौर पर पूरी सहायता देते हैं। इसी कारण इन लोगों को फलों के व्यापार में यह भी नहीं मालूम है कि निष्फलता कहते किसे हैं। कोई भी फल हो, उसके तोड़ने (Piking) और सुन्दर बक्स में भरने (Packing) की क्रिया में बहुत ही खबरदारी रखी जाती है। फल तोड़कर तुरन्त ही एकता (Union) की कोठी (cold Storage Plant) में ले जाते हैं। क्योंकि घर में अथवा गरम जगह में फल रखने से वे जल्दी सड़ जाते हैं, अथवा उनमें और कोई बिगाड़ पैदा हो जाता है। भारतवर्ष के फलों के व्यापारी भी यदि वैज्ञानिक रीति से फलों का व्यापार करें तो भारत की इस औद्योगिक शाखा में बहुत लाभ हो सकता है। जो व्यवसाय हमारे पास मौजूद हैं उनकी ओर लापरवाही करके बिलकुल नवीन व्यवसाय के लिए दूसरों के द्वारे फिरना विचित्रता की बात है।

हुड-रिवर के सेबफलों का वृत्तान्त:—

इस प्रान्त में करीब ७०,००० एकड़ उपजाऊ जमीन है, परन्तु उसमें लगभग ४०,००० एकड़ जमीन फलों की खेती करने योग्य है। इस समय सिर्फ १२००० एकड़ जमीन में फलों की खेती हुई है, जिसमें से १०००० एकड़ में सिर्फ सेबफलों की खेती हुई है। इतनी जमीन से सेबफलों की १४०,००० सन्दूकें बाहर बिक्री के लिये जाती हैं। वृक्षों की संख्या पर जब ध्यान दिया जाता है तब पहले पहल इस बात का आश्चर्य मालूम होता है कि हुड-रिवर की इतनी प्रसिद्धि होने का क्या कारण हुआ होगा। परन्तु जब हम इन लोगों के उद्योगी स्वभाव, दक्षता, व्यापारी रीति आदि बातों पर ध्यान देते हैं, तब जिस परमेश्वर ने ऐसे उद्योगी पुरुष निर्माण किये

रुपया लाभ ये लोग प्राप्त करते हैं। इन फलों को सुन्दर डब्बे में रखने (Packing) और उनकी रक्षा करने (Storage) आदि में बड़ी होशियारी रखी जाती है। ये फल भी तोड़ने के बाद हुड-रिवर शहर के युनियन के रक्षागृह (Cold Storage plant) में रखे जाते हैं। बेचने आदि का सारा काम ऐक्य (संघ) (Union) के द्वारा होता है। फल-कृषक को फल की फसल तैयार करने के सिवाय और किसी कार्य की चिंता नहीं रहती।

हुड-रिवर शहर और यहां की संस्था:—यह शहर कोलम्बिया और हुड रिवर नामक दो नदियों के संगम पर बसा है। सेबों के व्यापार का केन्द्रस्थान यही है। अग्निबोट और रेलगाड़ी आने जाने के कारण फलों की आमद और निकासी का बड़ा सुभीता है। यह शहर अपने जिले का भी मुख्य स्थान है। यहां अनेक पाठशालाएं हैं। बस्ती भर में चर्च (गिरजाघर) फैले हुए हैं। यह यहां के लोगों के धार्मिक होने का चिन्ह है। यहां के लोग अन्य शहरों की तरह मद्यपी नहीं हैं। इस शहर में शराब बेचने की सख्त मुमानियत है। यहां के सब निवासी प्राय किसान-फलकृषक हैं। इन फलों के किसानों में पदवीधरों (B. A, B. Sc, M. A) की ही भरती अधिक है। इस शहर में एक 'University Club' है और एक फल-संशोधन—प्रयोगशाला (Fruit Research Laboratory) है। इस प्रयोगशाला में विद्वान् लोग संशोधन का कार्य करते रहते हैं इसके सिवाय बर्फ का कारखाना, सन्दूकों का कारखाना, फलरक्षागृह, इत्यादि कारखाने हैं। व्यापार के मान से बस्ती बहुत ही छोटी है। भारतवर्ष के बहुत से गांव इस हुड-रिवर शहर से बड़े हैं। केवल स्थान-माहात्म्य के कारण ही हम इस गांव को शहर कह सकते हैं।

हुड-रिवर से हम क्या सीख सकते हैं:—पश्चिमी लोगों का संसार में इतना उत्कर्ष क्यों और कैसे हुआ है, यह बात यदि थोड़े ही में जानना हो तो इसके लिये हुड रिवर का उदाहरण बस होगा २०-२५ वर्ष पहले जिस जगह घोर अरण्य था उसी जगह आज सुन्दर बगीचे, रेलगाड़ियां, अग्निबोट, मोटरगाड़ियां, तारायंत्र, ध्वनियंत्र (Telephone) विद्युद्दीपक, इत्यादि आधुनिक सभ्यता के चिन्ह चारों ओर दृष्टिगोचर होते हैं। पहले जहां जंगली 'रेड इंडियन' लोग नग्न रह कर जंगली जीवों पर ही अपना बसर करते थे उसी प्रदेश में अब सभ्यता विराज रही है, और लक्ष्मी देवी का जयजयकार हो रहा है। यह सब किसका प्रभाव है? सिर्फ विद्या और दीर्घोद्योग का। इस जिले के उत्कर्ष में लोगों की उद्योगशीलता और विद्वत्ता तथा लोक-सत्तात्मक राज्य-पूर्ण स्वराज्य-कारणीभूत हुआ है। यहां विश्वविद्यालय के पदवीधरों ने कृषि का पवित्र कार्य अपने हाथ में लिया, इसी कारण फलकृषी में इतनी सफलता हुई। क्या भारतीय पदवीधरों का इधर कभी ध्यान जायगा? पर ध्यान भी गया तो उसका उपयोग क्या? शिक्षा तो उनको इस प्रकार की मिलती ही नहीं है कि जिसमें वे ऐसे ऐसे कार्य कर सकें। अमेरिका के विश्वविद्यालयों में अध्यापक से लेकर अध्यक्ष तक सभी, हाथ में कुदाल, फावड़ा अथवा हल पकड़ कर काम करना, सीखते-सिखाते हैं। परन्तु हमारे देश में इसके विरुद्ध ही हाल है। हाथ में पदवी का चमड़े का कागज और शिफारिसी पत्र लेकर जब यहां कोई काम के खोज में—नौकरी की तलाश में जाता है तब ये लोग पूछते हैं, "कागज में कुछ नहीं है। "What can you do?" आप कर क्या सकते हैं? यह पहले बतलाइये, तब काम मिलेगा!" यहां कोरी विद्वत्ता का मान नहीं है। अतएव हूड रियर हमको यदि कुछ शिक्षा देता है तो यही कि:—

शास्त्राण्यधीत्यापि भवन्ति मूर्खा।
यस्तु क्रियावान् पुरुषः स विद्वान्॥

हुड-रिवर शहर और नदियां।

परिताप।

१

पर-हित मुझको है स्वप्न का ज्ञान होता,
लख उदय किसीका दुःख-आघात होता,
हृदय यह अविद्या, मोह का है निवास;
प्रभु! मुझ पर कैसे पुण्य का हो प्रकाश?

२

भय-जनित सुखों को जान के मैं अमृत्य—
व्यसन विषय में हूँ लिप्त विक्षिप्त-तुल्य!!
अहह! सतत यों ही हो रहा शांति-ह्रास;
प्रभु! मुझ पर कैसे पुण्य का हो प्रकाश?

३

"निज सुख-हित देना दीन को दुःख नाना,
बल-रहित जनों को क्रूरता से सताना,"
अब तक इनको मैं मानता था विलास,
प्रभु! मुझ पर कैसे पुण्य का हो प्रकाश?

४

व्रत, जप, तप, पूजा भूल के की न मैंने,
मति गुरु-जन-सेवा-हेतु हा! दी न मैंने,
कुछ कर न सका मैं देश का दुःख नाश;
प्रभु! मुझ पर कैसे पुण्य का हो प्रकाश?

५

विकलचित क्षुधा से हो रहे म्लान मेरे—
घर घर फिरते जो हो रहे म्लान मेरे—
सविनय न उन्हें मैं दे सका अन्न-ग्रास,
प्रभु! मुझ पर कैसे पुण्य का हो प्रकाश?

६

शरण-हित हुए जो दुःख में लोग प्रार्थी—
कुवचन कहता था मैं उन्हें, नीच स्वार्थी।
अब शरण मिलेगी, हा! कहीं? है हताश,
प्रभु! मुझ पर कैसे पुण्य का हो प्रकाश?

७

अनल सम भरा है चित्त में काम, क्रोध,
विष सम उर में है गर्व हिंसा, विरोध,
निशिदिन करता है पाप ही मायपाश,
प्रभु! मुझ पर कैसे पुण्य का हो प्रकाश?

मोहनप्रसाद पांडेय।

जमशेटजी नसरवानजी ताता।

११ एप्रिल को बम्बई में श्रीमान् गवर्नर साहब ने स्वर्गीय जमशेटजी नसरवानजी ताता के स्मारक में उनकी मूर्ति बड़ी धूमधाम के उत्सव के साथ खोल दी। अगली पीढ़ी को मार्ग दिखलाना ही यदि स्मारक का उद्देश्य होगा—और सचमुच प्रत्येक स्मारक का उद्देश्य यही होता ही है—तो स्मारक बनाने के लिए श्रीमान् ताता के समान सर्वथैव योग्य पुरुष विरला ही मिलेगा। विद्वत्ता, कर्तृत्वशक्ति, साधुत्व, दानशूरत्व, स्वदेशभक्ति, इत्यादि गुणों में से एक भी गुण जिस मनुष्य में होता है वह स्मारक का पात्र होता है; फिर जिस असामान्य पुरुष में इन सब गुणों का समुच्चय हो उसके स्मारक की आवश्यकता कौन न स्वीकार करेगा? ऐसे अलौकिक पुरुष का चरित्र चाहे जितने बार गाया जाय, वह 'अधिकस्याधिकं फलम्' के न्याय से विहित ही है। अतएव आज हम ताता महाशय के संक्षिप्त चरित्र का पर्यालोचन करना चाहते हैं।

सन् १८३९ में श्रीमान् ताता का जन्म नवसारी स्थान में हुआ। तेरह वर्ष की उम्र में वे अँगरेजी पढ़ने के लिए बम्बई को आये और १८५५ में वे एलिफन्स्टन कालेज में विद्याभ्यास करने लगे। चार वर्ष वहाँ पढ़ कर फिर वे अपने पिता की कोठी पर काम देखने लगे। विदेशों में इस कोठी की शाखाएं स्थापित करने के लिए वे शीघ्र ही बाहर निकले। हांगकांग, शांघाई, याकोहामा, पेरिस, न्यूयार्क, आदि स्थानों में शाखाएं खुलीं और उनकी अच्छी उन्नति हुई। सन् १८६३ में ताता महाशय स्वदेश को लौट आये। उस समय अमेरिका में युद्ध हो रहा था और भारतीय कपास का भाव बहुत बढ़ गया था; इस कारण सट्टा के व्यापार की गड़बड़ मची थी। अन्त में इस व्यापार से बम्बई के कई व्यापारियों को बड़ी हानि हुई। सब के साथ ताता के पिता का भी नुकसान हुआ। परन्तु ताता महाशय ने तुरन्त ही अपने पिता के व्यापार में पत्ती ले ली और वह नुकसान पूरा कर लेने के लिए कमर कसी। थोड़े ही दिनों बाद उन्होंने बहुत अच्छी उन्नति कर ली। इसके बाद सन् १८६५ में वे इँग्लैंड की सफर को निकले। वे इँग्लैंड में भी अपनी कोठी की एक शाखा खोलना चाहते थे। परन्तु उस समय बम्बई के शेयर-बाजार की गड़बड़ मची थी, इस कारण ताता का विचार पूर्ण नहीं हुआ। विलायत से लौट आने पर उन्होंने अबिसीनियन लड़ाई के समय सेना को रसद पहुँचाने का ठेका लिया। इसके बाद बम्बई के बैंक की भराई के ठेके में भी उन्हें पूरा फायदा हुआ। सन् १८७२ में उन्होंने दूसरी बार इंगलैंड की सफर की। इस सफर में वे लंकाशायर के परगने में घूमे और वहाँ कपास की मीलों का निरीक्षण किया। इसके बाद, जब उन्होंने समझ लिया कि उस विषय का पूर्ण अभ्यास हो गया तब वे स्वदेश को लौट आये और यहाँ एक नवीन मील खोलने के लिए उन्होंने नागपुर शहर को सब प्रकार से पसन्द किया। १ जनवरी सन् १८७७ को नागपुर में उन्होंने "एम्प्रेस मिल" की स्थापना की। ताता महाशय जितने काम हाथ में लेते उन सब में कोई न कोई विशिष्टता अवश्य ही रहती। इस नियम के अनुसार एम्प्रेस मिल के प्रबन्ध में भी उन्होंने कई महत्व के सुधार किये। उन्होंने अपनी मिल के एजंट का कमीशन नफा के प्रमाण पर निश्चित किया। इससे एजंट को सुन्दर और स्वच्छ माल निकालने की सहज ही प्रवृत्ति हुई। नौकरों की तरक्की और पेंशन-फंड का भी ताता महाशय ने सुधार किया। उन्होंने यह नियम कर दिया कि जो नौकर बराबर २५ वर्ष नौकरी करेगा, उसे किसी न किसी हिसाब से तरक्की मिलनी ही चाहिए। इसके सिवाय नौकरी छोड़ते समय, नौकरी की मुद्दत के अनुसार, नौकरों को कुछ निश्चित रकम देने का भी प्रबन्ध कर दिया गया। नागपुर की इस मील की पूँजी आज तक ४७ लाख के ऊपर पहुँच गई है। इतनी पूँजी का पुतलीघर भारतवर्ष में दूसरा कोई भी नहीं है। ताता साहब के सुप्रबन्ध के कारण हिस्सेदारों को नफा भी अच्छा मिलता है। सन् १८८५ में उन्होंने पांडुचेरी में पुतलीघर खोलने का विचार किया; परन्तु, फिर यह विचार रहित करके उसकी जगह "कुर्ला स्वदेशी मिल" स्थापित की गई। इसके बाद इजिप्शियन कपास की खेती करने की ओर ताताजी का ध्यान गया। इस काम में उन्हें उस समय सरकार से उत्तेजना नहीं मिली। तथापि उन्होंने स्वयं अपने ही साहस पर सिंध और मैसूर प्रान्तों में लम्बे धागे के कपास की खेती कराई। मैंचेस्टर के पुतलीघरों को जब तक अमेरिकन कपास सस्ते भाव में और भरपूर मिलता गया तब तक भारत के कपास के सुधार की ओर किसी का विशेष ध्यान नहीं गया। पर अमेरिका में ही पुतलीघरों की अधिकता और सट्टे का प्रचार होजाने के कारण जब कपास का भाव बढ़ गया और मैंचेस्टरवालों का नुकसान होने लगा तब भारत में लम्बे धागे का कपास उत्पन्न करने की चिन्ता हुई। इसके बाद चीन और जापान को जानेवाले अग्निबोटों के माल के भाव की ओर ताता महाशय का ध्यान गया। बम्बई-बन्दर से शांघाय और केंटन को सूत और कपड़े की निकासी बढ़ गई, इससे बम्बई के पुतलीघरों की

श्रीमान जमशेटजी नसरवानजी ताता की प्रतिमा बम्बई के गवर्नर साहब खोल रहे हैं।

उन्नति होने लगी और लंकाशायर का माल चीन में न खपने लगा यह देखकर, जो योरोपियन अगिनबोट चीन को जाते थे उन्होंने अपने भाड़े का दर एकदम ड्योढ़ा कर दिया। इस प्रकार अचानक अपने व्यापार में धक्का पहुँचते हुए देख कर ताता ने जापान की निप्पान यासेन नामक कम्पनी को बम्बई और चीन के बीच में सफर करने के लिए बुलाया और बम्बई के कुछ व्यापारियों की सहायता से उस अगिनबोट को माल पहुँचाने का ठेका लिया। इस जापानी प्रतिस्पर्धी कम्पनी के खड़े होते ही योरोपियन कम्पनियों ने अपना दर एकदम आधा कर दिया। अब, जिन व्यापारियों ने जापानी जहाज में माल भेजने का वचन दिया था उनमें ताता के समान दूरदर्शिता नहीं थी, अतएव स्वार्थबुद्धि के कारण उनका मन धर्मविषम होने लगा; परन्तु ताता महाशय को साधारण व्यापारियों की यह सब कार्रवाई मालूम थी, इस कारण उन्होंने स्वयं अपनी हानि उठा कर यह प्रतिस्पर्धा जारी रक्खी। जब अंगरेजी कम्पनियों ने जब यह देखा कि भाड़े का दर आधा कर देने पर भी भारतीय व्यापारियों

आर्य लोग गौ को अपना देवता क्यों मानते हैं?

ऊपर के चित्र में भिन्न भिन्न प्रकार से यह दिखलाया गया है कि आर्य लोगों को गौ और बैल का कितने प्रकार से उपयोग होता है।

जमशेदजी नसरवानजी ताता।

११ एप्रिल को बम्बई में श्रीमान् गवर्नर साहब ने स्वर्गीय जमशेदजी नसरवानजी ताता के स्मारक में उनकी मूर्ति बड़ी धूमधाम के उत्सव के साथ खोल दी। अगली पीढ़ी को मार्ग दिखलाना ही यदि स्मारक का उद्देश्य होगा—और सचमुच प्रत्येक स्मारक का उद्देश्य यही होता ही है—तो स्मारक बनाने के लिए श्रीमान् ताता के समान सर्वथैव योग्य पुरुष विरला ही मिलेगा। विद्वत्ता, कर्तृत्वशक्ति, साधुत्व, दानशूरत्व, स्वदेशभक्ति, इत्यादि गुणों में से एक भी गुण जिस मनुष्य में होता है वह स्मारक का पात्र होता है; फिर जिस असामान्य पुरुष में इन सब गुणों का समुच्चय हो उसके स्मारक की आवश्यकता कौन न स्वीकार करेगा? ऐसे अलौकिक पुरुष का चरित्र चाहे जितने बार गाया जाय, वह 'अधिकस्याधिकं फलम्' के न्याय से विहित ही है। अतएव आज हम ताता महाशय के संक्षिप्त चरित्र का पर्यालोचन करना चाहते हैं।

सन् १८३९ में श्रीमान् ताता का जन्म नवसारी स्थान में हुआ। तेरह वर्ष की उम्र में वे अँगरेजी पढ़ने के लिए बम्बई को आये और १८५५ में वे एल्फिन्स्टन कालेज में विद्याभ्यास करने लगे। चार वर्ष वहाँ पढ कर फिर वे अपने पिता की कोठी पर काम देखने लगे। विदेशों में इस कोठी की शाखाएं स्थापित करने के लिए वे शीघ्रही बाहर निकले। हांगकांग, शांघाई, याकोहामा, पेरिस, न्यूयार्क, आदि स्थानों में शाखाएं खुलीं और उनकी अच्छी उन्नति हुई। सन् १८६३ में ताता महाशय स्वदेश को लौट आये। उस समय अमेरिका में युद्ध हो रहा था और भारतीय कपास का भाव बहुत बढ़ गया था; इस कारण सट्टा के व्यापार की गड़बड़ मची थी। अन्त में इस व्यापार से बम्बई के कई व्यापारियों को बड़ी हानि हुई। सब के साथ ताता के पिता को भी नुकसान हुआ। परन्तु ताता महाशय ने तुरन्त ही अपने पिता के व्यापार में पत्ती ले ली और वह नुकसान पूरा कर लेने के लिए कमर कसी। थोड़े ही दिनों बाद उन्होंने बहुत अच्छी उन्नति कर ली। इसके बाद सन् १८६५ में वे इँगलैंड की सफर को निकले। वे इँगलैंड में भी अपनी कोठी की एक शाखा खोलना चाहते थे। परन्तु उस समय बम्बई के शेयर-बाजार की गड़बड़ मची थी, इस कारण ताता का विचार पूर्ण नहीं हुआ। विलायत से लौट आने पर उन्होंने अबिसीनियन लड़ाई के समय सेना को रसद पहुँचाने का ठेका लिया। इसके बाद बम्बई के बैकबे की भराई के ठेके में भी उन्हें पूरा फायदा हुआ। सन् १८७२ में उन्होंने दूसरी बार इँगलैंड की सफर की। इस सफर में वे लंकाशायर के परगने में घूमे और वहाँ कपास की मीलों का निरीक्षण किया। इसके बाद, जब उन्होंने समझ लिया कि उस विषय का पूर्ण अभ्यास हो गया तब वे स्वदेश को लौट आये और यहाँ एक नवीन मील खोलने के लिए उन्होंने नागपुर शहर को सब प्रकार से पसन्द किया। १ जनवरी सन् १८७७ को नागपुर में उन्होंने "एम्प्रेस मिल" की स्थापना की। ताता महाशय जितने काम हाथ में लेते उन सब में कोई न कोई विशिष्टता अवश्य ही रहती। इस नियम के अनुसार एम्प्रेस मिल के प्रबन्ध में भी उन्होंने कई महत्व के सुधार किये। उन्होंने अपनी मिल के एजंट का कमीशन नफा के प्रमाण पर निश्चित किया। इससे एजंट को सुन्दर और स्वच्छ माल निकालने की सहज ही प्रवृत्ति हुई। नौकरों की तरक्की और पेंशन-फंड का भी ताता महाशय ने सुधार किया। उन्होंने यह नियम कर दिया कि जो नौकर बराबर २५ वर्ष नौकरी करेगा, उसे किसी न किसी हिसाब से तरक्की मिलनी ही चाहिए। इसके सिवाय नौकरी छोड़ते समय, नौकरी की मुद्दत के अनुसार, नौकरों को कुछ निश्चित रकम देने का भी प्रबन्ध कर दिया गया। नागपुर की इस मील की पूँजी आज तक ४७ लाख के ऊपर पहुँच गई है। इतनी पूँजी का पुतलीघर भारतवर्ष में दूसरा कोई भी नहीं है। ताता साहब के सुप्रबन्ध के कारण हिस्सेदारों को नफा भी अच्छा मिलता है। सन् १८८५ में उन्होंने पांडुचेरी में पुतलीघर खोलने का विचार किया; परन्तु, फिर यह विचार रहित करके उसकी जगह "कुर्ला स्वदेशी मिल" स्थापित की गई। इसके बाद इजिप्शियन कपास की खेती करने की ओर ताताजी का ध्यान गया। इस काम में उन्हें उस समय सरकार से उत्तेजना नहीं मिली। तथापि उन्होंने स्वयं अपने ही साहस पर सिंध और मैसूर प्रान्तों में लम्बे धागे के कपास की खेती कराई। मैंचेस्टर के पुतलीघरों को जब तक अमेरिकन कपास सस्ते भाव में और भरपूर मिलता गया तब तक भारत के कपास के सुधार की ओर किसीका विशेष ध्यान नहीं गया। पर अमेरिका में ही पुतलीघरों की अधिकता और सट्टे का प्रचार होजाने के कारण जब कपास का भाव बढ़ गया और मैंचेस्टरवालों का नुकसान होने लगा तब भारत में लम्बे धागे का कपास उत्पन्न करने की चिन्ता हुई। इसके बाद चीन और जापान को जानेवाले अगिनबोटों के माल के भाव की ओर ताता महाशय का ध्यान गया। बम्बई-बन्दर से शांघाय और कैंटन को सूत और कपड़े की निकासी बढ़ गई, इससे बम्बई के पुतलीघरों की उन्नति होने लगी और लंकाशायर का माल चीन में न खपने लगा। यह देखकर, जो पेनिनशुलर अगिनबोट चीन को जाते थे उन्होंने अपने भाड़े का दर एकदम ड्योढ़ा कर दिया। इस प्रकार अचानक अपने व्यापार में धक्का पहुँचते हुए देख कर ताता ने जापान की निप्पान यासेन नामक कम्पनी को बम्बई और चीन के बीच में सफर करने के लिए बुलाया और बम्बई के कुछ व्यापारियों की सहायता से उस अगिनबोट को माल पहुँचाने का ठेका लिया। इस जापानी प्रतिस्पर्धी कम्पनी के खड़े होते ही यूरोपियन कम्पनियों ने अपना दर एकदम आधा कर दिया। अब, जिन व्यापारियों ने जापानी जहाज से माल भेजने का वचन दिया था उनमें ताता के समान दूरदृष्टि नहीं थी, अतएव स्वार्थबुद्धि के कारण उनका मन चलविचल होने लगा; परन्तु ताता महाशय को साधारण व्यापारियों की यह सब कमजोरी मालूम थी, इस कारण उन्होंने स्वयं अपनी हानि उठा कर यह प्रतिस्पर्धा जारी रखी। जब योरोपियन कम्पनियों ने जब यह देखा कि भाड़े का दर आधा कर देने पर भी भारतीय व्यापारियों

श्रीमान जमशेदजी नसरवानजी ताता की प्रतिमा बम्बई के गवर्नर साहब खोल रहे हैं।

का गुड़ नहीं फूटता तब उन्होंने अपना दर बिलकुल ही कम कर दिया। अब तो बिलकुल परीक्षा का समय आ गया। स्वार्थ के कारण बहुत से व्यापारी पराङ्मुख होने लगे; पर ताता का निश्चय नहीं डिगा। जपानी अग्निबोट से माल भेजने में जितना अधिक महसूल देना पड़ता था उतना स्वयं देना कबूल करके ताता महाशय ने अपना वचन पूरा किया। इधर अँगरेज़ी कम्पनी के एजेंटों ने अपनी सरकार से कह कर जापानी सरकार की मार्फ़त निफ़ोन यूसेन कम्पनी को तम्बीह दिलाने का प्रयत्न भी किया; परन्तु जापान कुछ अँग-[illegible]

तनी ही प्रशंसा की जाय वह सब थोड़ा है। इस चढ़ाऊपरी में उन्हें दो लाख की हानि हुई; परन्तु अँगरेज़ी कम्पनियों का मद-भंजन करने में उन्हें जो सफलता हुई उसके आगे उन्होंने अपनी हानि को कुछ भी नहीं समझा।

परदेश में शिक्षा प्राप्त करने के लिए ताता ने भारतीय विद्यार्थियों को भी भेजने का प्रयत्न किया था, इसमें पहले सिर्फ़ पारसी विद्यार्थियों का ही प्रवेश होता रहा; परन्तु फिर ताता महाशय ने ये दर्वाज़े सब के लिये कर दिये। उनकी शिष्यवृत्ति पर सिविल-सर्विस परीक्षा पास किये हुए अनेक नौकर अब भी जीवित हैं। सिविल

सत्ता पूर्णतया छोड़ दे और उसे भारत-सरकार के अधिकार में दे। अन्त में मैसूर सरकार ने यह भी स्वीकार कर लिया और ३७१५ [illegible] जमीन पूर्णतया ब्रिटिश सरकार के अधीन कर दी, इसके सि[वा] इमारतों के फंड में तीन चार लाख रुपये देने का भी वचन दि[या]। अस्तु। इतने में ताता महाशय की आयु की मर्यादा समाप्त हो [गई] और वे २९ मई सन् १९०४ को जर्मनी के नौहीम शहर में स्वर्गवा[सी] हुए। इसके बाद मार्च सन् १९०५ में बम्बई के गवर्नर साहब की अध्यक्षता में उनके स्मारक के विषय में विचार करने के लिए एक सभा हुई और फंड जमा करने के लिए एक कमेटी बना दी गई। इसने कुल ४७ हज़ार रुपये जमा किये। जिन में से ४५००० रु[पये] खर्च कर के ताता महाशय की प्रतिमूर्ति तैयार कराई गई। यह प्रतिमा इस मास में गवर्नर साहब ने खोली है। श्रीमान् ताता के इस स्मारक को केवल औपचारिक समझना चाहिए। उनके स[च्चे] स्मारक वैज्ञानिक शिक्षा की संस्था, मध्यप्रांत का लोहे और फौलाद का कारखाना, खंडाले के पास विद्युज्जनक जलप्रपात, ताजमहल होटल, इत्यादि हैं। उनकी इन संस्थाओं से अच्छी तरह मालूम होता है कि उनमें कितनी अलौकिक कर्तृत्वशक्ति थी। अब हम इस बात का विचार करते हैं कि उनके चरित्र से साधारण जनसमूह और विशेष कर धनवान् लोगों को क्या शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए।

हमारे यहां साधारणतया यह नियम है कि विशेष तीव्र बुद्धि के लोग व्यापार में प्रवेश नहीं करते, किन्तु सरकारी नौकरी, वकालत अथवा डाक्टरी इत्यादि में प्रवेश करते हैं। कुछ दिनों से यह हवा

ताता के वैज्ञानिक विद्यालय (बंगलोर) के अध्यापक और विद्यार्थी।

सर्विस में प्रवेश करने के लिए इंगलैंड में रह कर परीक्षा दिये बिना काम नहीं चल सकता इसी लिए ताताजी ने विदेश में विद्यार्थी भेजने का उपाय किया था, परन्तु स्वदेश में ज्ञान-प्रसार करने का सब से अच्छा मार्ग यही है कि भिन्न भिन्न विषयों में पारंगत शिक्षक यहां लाये जावें और उनके द्वारा शिक्षा प्राप्त करना सब को सुलभ कर दिया जाय। और भारतवर्ष में वास्तव में यदि किसी शिक्षा की [illegible] आवश्यकता है तो वह व्यावहारिक वैज्ञानिक शिक्षा ही है। इन सब बातों का पूर्ण विचार कर के ताता महाशय ने वैज्ञानिक शिक्षा देने की योजना की और इस काम के लिए तुरन्त ही ३० लाख रुपये का दान प्रकट किया। ताता की योजना के अनुसार यह [illegible] खोलने के लिए नवीन कायदा बनाने की ज़रूरत हुई, इससे यह काम कुछ दिन के लिए स्थगित हो गया। [illegible]

बदल ज़रूर गई है, परन्तु सन् १८६० से लेकर और अभी १०-५ वर्ष पहले तक तो यह सर्वसाधारण ही नियम था। इस कारण व्यापारी लोगों में संकुचित दृष्टि के ही लोग विशेष रहते थे। अपने व्यवसाय से आगे तो उनकी दृष्टि ही न जाती थी। यही नहीं, किन्तु उनमें यह बात भी न देखी जाती थी कि अपने व्यवसाय में प्रवीणता प्राप्त करें या कोई नवीन युक्ति ढूँढ़ निकालें, अथवा कोई अपूर्व साहस दिखलावें। स्वार्थ के आगे उनकी दृष्टि नहीं जाती थी। इसका यह परिणाम हुआ कि पहले पहल बम्बई के बड़े व्यापारी वही समझे गये जो परदेशी माल के भारतीय एजंट थे। उन्हें [illegible] एजन्सी के कमीशन ही से काम—फिर स्वदेशी उद्योगधंधे मिट्टी में क्यों न मिल जावें; इन्हें कोई परवा नहीं। इस आत्मघातक [illegible] का ताता महाशय ने निषेध किया और व्यापारी दृष्टि को कुछ नवीन मार्ग दिखलाया। ताता महाशय ने अपने उदाहरण से व्यापारी वर्ग को एक स्वतंत्र और योग्य दिशा दिखला दी।

चाहे जिस विषय में हाथ डाला उस विषय का पूर्णतया [illegible] ज्ञान प्राप्त करना और उसमें कुछ नवीन सुधार [illegible] [illegible] कार्य में विशेषता [illegible] ताता महाशय का मुख्य गुण [illegible] महत्वाकांक्षा रखते थे कि हमारा कार्य सब से [illegible] और आदर्श [illegible] इस महत्वाकांक्षा को पूर्ण [illegible] में जिस बुद्धि की आवश्यकता होती है वह भी उनमें थी। यही कारण है कि उन्होंने जो काम हाथ में लिये वे [illegible]

...नहीं हुए; किन्तु वे उत्तम श्रेणी के और आदर्श-योग्य हुए हैं। ...वर्तमान की आवश्यकता नहीं कि उनकी उस बुद्धि में उनका ...व्यासंग भी मिला हुआ था। वैज्ञानिक-शिक्षा-विषयक विद्यालय ...ने का विचार जब से उनके मन में आया तब से उन्होंने इस ...य का इतना अध्ययन किया कि उस विषय की जितनी पुस्तकें ...नि पर डाली होंगी उनसे एक पुस्तकालय भर जा सकता है। ...ा यह निश्चय था कि कोई भी बात हो, जब तक सांगोपांग ...का अध्ययन न कर लिया जाय तब तक उस विषय के सम्बन्ध ...अपना मत न बनाना चाहिए और महात्मा तिलक की तरह उन ...यह स्वभाव था कि एक बार पूर्ण विचार करके जिस बात के ...ने का निश्चय हो गया उस निश्चय से तिलमात्र भी नहीं टलना ...हिए; फिर उसमें चाहे जितना संकट क्यों न भोगना पड़े, चाहे ...सलेही क्यों न चले जायँ। जब पहले पहल भारत में प्लेग आया ...र क्वारंटाइन तथा सेग्रिगेशन की रीति जारी हुई तब 'माथेरान' ...क स्थान के डाक्टरने, गर्मी में वहां हवा खाने को जानेवालों के ...ए कुछ नियम प्रसिद्ध किये। उनमें धनवान् और गरीब (रेल के ...ले दर्जे से और अन्य दर्जों से प्रवास करनेवाले) का तो भेद था किन्तु, इसके सिवाय, काले-गोरे का भी भेद था। पहले दर्जे प्रवास करनेवाले के लिए अधिक सुभीते तो थे ही; परन्तु उसमें देशी और यूरोपियनों के नियमों में भेद था। यह अपमानकारक पक्ष-पात ताता महाशय को सहन नहीं हुआ। देशियों के लिए जो नियम बनाये गये थे उनके अनुसार ताता महाशय को हुक्म हुआ कि वे भी दस दिन अस्पताल में अपनी प्रकृति दिखलाने के लिए आवें, अथवा पचास रुपये फीस देकर डाक्टरको घर में बुलावें। डाक्टर का पक्ष-पात देख कर ताता महाशय ने निःशस्त्र प्रतिकार का अवलम्बन किया वे अस्पताल में जांच कराने नहीं गये और न डाक्टर को फीस दे कर घर में ही बुलाया। इससे माथेरान के रहनेवालों में बड़ी हलचल मच गई। इस प्रकरण का समाचार बड़े बड़े अफसरों तक पहुँचा और अन्त में ताता का कार्य निर्दोष सिद्ध हुआ। इस प्रकार उनके निःशस्त्र प्रतिकार का विजय हुआ। दानशूरता के लिए वे बहुत ही प्रसिद्ध हैं। निदान ताता महाशय में नवीन मार्गदर्शकता, बुद्धिमत्ता और दक्षता, दृढ़ व्यासंग, दृढ़निश्चय और तेहा तथा स्वावलम्ब आदि अनेक अनुकरणीय गुण थे। जिस पुरुष में इतने गुणों का समूह था उसकी प्रतिमा, नवीन पीढ़ी के लिये मार्गदर्शकरूप, बम्बई नगरी के एक उत्तम स्थान में स्थापित हुई है, यह अत्यन्त योग्य है। परमात्मा करे कि श्रीमान् ताता महाशय का अनुकरण करने वाले अनेक धनवान् व्यापारी हमारे देश में उत्पन्न हों और ताता जी के सुपुत्र अपने पिता का आदर्श सदैव अपने सामने रखें।

‘समुद्रास्तृप्यन्तु!!!’

मानवजाति ने अपने बुद्धिचातुर्य से सृष्टि के पंचमहाभूतों पर [illegible]

...ी नहीं है। वहां क्षमा, दया, माया, आदि का नाम भी न लो। सृष्टि के नियम बड़े कठोर और अपवाद रहित हैं, अतएव जिसे अपनी कर्तृत्वशक्ति का अत्यन्त गर्व है उसे भी कभी न कभी अपनी दुर्बलता और स्खलनशीलता चुपके से कबूल करनी पड़ती है। ऐसे मौके कभी कभी आ जाते हैं, इसी लिये मानवी अहंकार की कुछ सीमा भी है, अन्यथा, इस बात का अनुमान नहीं किया जा सकता कि यह मानवी अहंता किस दर्जे तक जा पहुँचती। इस प्रकार के आकस्मिक मौके देख कर ही अत्यन्त नास्तिक लोगों की भी बुद्धि चकित हो जाती है और यह उद्गार आप ही आप निकल पड़ता है कि, "ईश्वरी सत्ता कुछ अतर्क्य है!" १५ एप्रिल को टिटानिक जहाज पर जो भयंकर अपघात और प्राणहानि हुई उसी कारण से आज हमें उपर्युक्त विचार सूझ पड़े। इस अपघात के बिलकुल ही अकल्पित और हृदयद्रावक होने के कारण मन खिन्न तो हो ही जाता है; किन्तु यह खिन्नता अधिक बढ़ जाती है, जब हम गत चार महीनों के ऐसे ही तीन चार और अपघातों पर दृष्टि डालते हैं। यद्यपि यह ठीक है कि टिटानिक जहाज की तरह पहले के दो अपघातों [illegible] ...ह बात मन पर घटने [illegible] आगे मनुष्य का बल [illegible] कारणीभूत होते हैं। और प्रत्येक नवीन अपघात के समय पहले की अनर्थ-परम्परा का एकत्रित परिणाम दृष्टिगोचर होता रहता है। इस लिये टिटानिक जहाज के अपघात का वृत्तान्त देने के पहले यह संक्षिप्त वृत्तान्त देना आवश्यक है कि दिल्ली और ओशियाना जहाज समुद्र के पेट में कैसे गड़प हो गये।

पी. और ओ. कम्पनी का दिल्ली नामक जहाज ६ दिसम्बर को लंडन से निकला। २०० मुसाफिरों ने उस जहाज पर जगह ले रखी थी। परन्तु उसके सौ मुसाफिर मार्सेल्स बन्दर में उससे मिलनेवाले थे। शेष १०० मुसाफिरों को लेकर यह जहाज जब जिब्राल्टर के सागर से भूमध्यसागर में प्रवेश करने लगा तब बादलों के चक्कर में फँस गया और १३ तारीख को केप स्पार्टेल की ओर बहते हुए जाकर चट्टान में टकराया। रात का समय था, इस लिये नौका में मुसाफिरों को बैठा कर उन भयंकर बादलों से किनारे ले आना बहुत ही भयंकर काम था। इसी जहाज पर सम्राट जार्ज के बहनोई ड्यूक आफ फाइफ और उनके कुटुम्बी जन थे। बेतार के विद्युत्सन्देश से चारों ओर दिल्ली जहाज के डूबने का समाचार दिया गया और तुरन्त ही फ्रायंट नामक फ्रेंच जहाज उसकी मदद के लिये आया। उस जहाज के खलाशियों ने अपने प्राणों की भी परवा न करते हुए दिल्ली जहाज के मुसाफिरों की रक्षा का प्रबन्ध किया। इस कारण राजघराने के सब मनुष्य और ८४ मुसाफिर बच गये। परन्तु इस काम में फ्रेंच जहाज के तीन खलाशियों के प्राण गये।

कहते हैं कि दिल्ली जहाज पर समुद्री मार्ग जानने के लिये जो समुद्र के नकशे थे वे पुराने रद्दी थे, इसी कारण यह अपघात हुआ। इस दिल्ली जहाज से करीब पौन करोड़ का सोना और रूपा भारत के लिये आ रहा था। वह जहाज डूब जाने पर गोतेखोरों के द्वारा निकाला गया।

दिल्ली नामक जहाज के 'समुद्रास्तृप्यन्तु' होने के बाद कुछ छोटे छोटे अपघात हुए। परन्तु एक और नवीन बड़ा जहाज ओशियाना १६ मार्च को डूब गया। यह दूसरा बड़ा अपघात है।

ओशियाना जहाज का डूबना।

पी और ओ कम्पनी का ओशियाना नामक एक नवीन जहाज लंडन के पास टिल्बरी बन्दर से १५ मार्च को रवाना हुआ। उस जहाज पर दो सौ खलाशी थे, परन्तु मुसाफिरों की संख्या सिर्फ चालीस ही थी। मुसाफिरों की संख्या थोड़ी होने का कारण यह है कि साधारणतया भारत की ओर आनेवाले मुसाफिर लंडन में ही जहाज पर नहीं बैठते; किन्तु मार्सेल्स बन्दर तक रेलगाड़ी से आकर फिर वहां जहाज पर चढ़ते हैं। इससे उनका तीन चार दिन का समय और जहाजी प्रवास का कष्ट बचता है। अस्तु। इस प्रकार यह जहाज चालीस मुसाफिरों को लेकर टेम्स नदी के मुख से निकल कर इँग्लिश खाड़ी में पैठा। १६ तारीख को सुबह चार बजे के करीब उक्त खाड़ी से प्रवास करता हुआ यह जहाज बीचीहेड नामक भूशिर के पास आया। उस समय एकदम उसके सामने पिसागुआ नामक जहाज आ गया। दोनों जहाज अपने अपने पूर्ण वेग में थे। अन्त में वे इतने पास पास आ गये कि दोनों की टक्कर को बचाने का अवकाश ही न रहा। दोनों की टक्कर हो गई। पिसागुआ जहाज का अगला भाग यद्यपि कुछ खराब हो गया, तथापि वह न डूबते हुए हवा के जोर से भगता हुआ निकल गया। हां, ओशियाना जहाज को इस टक्कर से बड़ा नुकसान पहुँचा और उसमें पानी आने लगा। सब मुसाफिरों को, नीचे का मंजिल छोड़ कर ऊपर आने की सूचना दी गई। यह सूचना पाते ही प्रायः बहुत से मुसाफिर नींद से गिरते पड़ते, आंखें मिलमिलाते रात के पहनाव में ऊपर आये। उनमें से कई मुसाफिर तो अर्धनग्न ही थे। परन्तु नीचे जा कर कपड़े पहन आने का उन्हें साहस न होता था। क्योंकि पानी आवाज करता हुआ जहाज में बड़े जोर से आ रहा था और लोगों के ओढ़ने बिछौने पानी में उतराने लगे थे। अब यह हाल देखा गया तब नौकाएं नीचे डाल कर उनमें मुसाफिरों के बैठाने का प्रयत्न होने लगा। एक डोंगी पानी में छोड़ते ही जहाज के धक्के से लौट गई और उसके सब मुसाफिर पानी में गिर पड़े। रात का समय था, इस कारण यह सुभीता नहीं था कि तैर कर डूबनेवाले मुसाफिर बचाये जावें। इस लिए मुसाफिरों के लिए रबर की पेटियां और तौके छोड़े गये। तुरन्त ही दूसरी डोंगी छोड़ कर पानी में पड़े हुए मनुष्य उसमें बैठाये गये। परन्तु इस गड़बड़ी में चार पांच मुसाफिर और पांच सात खलासी चल ही गये। इसके

बाद दूसरी डोंगियां छोड़ कर बाकी मुसाफिर और खलासी बचाये गये। इधर जहाज का अगला भाग बिलकुल डूब गया और पिछला भाग पानी पर उठा रहा। कुछ देर के बाद उसके इंजिन फूटे और उनके धड़ाके से जहाज एकदम ऊपर उठा और फिर अन्त में उसने जलसमाधि ले ली। तथापि उस जगह समुद्र बहुत गहरा नहीं था, इस कारण जहाज के ऊपर की चिमनी और डोल, आदि पानी के के ऊपर दिखते थे।

इस जहाज पर कप्तान की कोठरी में सोना और रूपा था। उसमें से तीस चालीस हजार का सोना और दो तीन हजार का रूपा ऊपर निकाला गया है। बाकी बचा हुआ भी शीघ्रही निकाला जायगा। डूबे हुए जहाज में पैठ कर ठीक कप्तान की कोठरी में जाना और अलमारी खोल कर उससे कुंजियां निकालना तथा खजाने की सन्दूक का ताला खोल कर उससे रकम बाहर निकालना सचमुच ही बड़े साहस और चपलता का काम है।

इंगलैंड में एक कमिशन के द्वारा, ओशियाना जहाज के डूबने की जाँच अभी होना है। जर्मन में पिसागुआ जहाज के विषय में जो जाँच हुई है उसका यह फैसिला हुआ है कि इस अपघात का सारा

टिटॅनिक आगबोट

दोष ओशियाना के अधिकारियों पर है क्योंकि यह जहाज अपनी नियत दिशा को छोड़ कर दूसरी ही तरफ चल रहा था। इधर यह भी चिल्लाहट मची है कि इस अपघात में ओशियाना जहाज के भारतीय खलासियों ने अपना काम ठीक तौर पर नहीं किया। परन्तु कमिशन की जांच का हाल जब तक न मिल जाय तब तक इस विषय में कुछ मत नहीं दिया जा सकता।

टिटानिक जहाज का डूबना।

ओशियाना के अपघात से बराबर एक मास बाद टिटानिक नामक बहुत बड़ा जहाज, अमेरिका को जाते हुए न्यूफौंडलैंड के पास डूब गया।

जहाज बहुत ही भारी था। यहां तक कि इसकी बराबरी का जहाज संसार में नहीं है। इसकी लम्बाई ८८० फीट, ९० फीट और उंचाई ६६ फीट थी। इस पर कुल ६ डेक थे। [illegible] मुसाफिरों के बैठने का इसमें सुभीता किया गया था। इसके तीनों इंजनों की कुल शक्ति ४६००० हार्स पावर की और प्रति घंटे २१ मील (समुद्री मील) चलता था। इस भारी जहाज के बनवाने में १,७१,२५,००० रुपया खर्च हुआ, और अभी १५ दिन पहले डेढ़ करोड़ का उसका बीमा भी हो गया था। इस टिटानिक जहाज पर मुसाफिरों के लिए सब प्रकार के सुख-सुभीते-सुखालय, स्नानागार, भोजनगृह, क्रीड़ाभवन, इत्यादि किये गये थे। इसके सिवाय इस जहाज की रचना भी ऐसी की गई थी कि चाहे जितने बादल आवें तो भी यह न डूबे। टिटानिक जहाज १० एप्रिल को साउदम्पटन बन्दर से २३४० मनुष्यों के साथ अमेरिका को चला। यह १६ तारीख को न्यूयार्क बन्दर में पहुँचनेवाला था। पर ईश्वर की इच्छा कुछ और ही थी। १४ तारीख रविवार को आधी रात लगभग यह जहाज न्यूफौंडलैंड टापू के पास आया। उस समय न्यूफौंडलैंड की ओर से बह कर आया हुआ बर्फ का एक बड़ा पर्वत पाँच मील के अन्तर पर दिख पड़ने लगा। गर्मी के दिनों में उत्तर ध्रुव की ओर से बर्फ के ऐसे अनेक पर्वत उत्तर अटलांटिक-महासागर में बह कर आते रहते हैं। दिन में इस प्रकार के तैरते हुए 'हिम-नग' देख कर बड़ा आनन्द आता है। दिन में सूर्य की

और पानी की गर्मी के योग से इन पहाड़ों का पानी में डूबा हुआ भाग बराबर पिघलता रहता है, इस लिए यह भाग पानी के ऊपर वाले भाग से हलका होता जाता है और इसी कारण ये पहाड़ समुद्र में ऊपर ही ऊपर कुलहाटें खाते हुए उछलते रहते हैं। अर्थात् ऐसे बर्फ के बहते हुए पहाड़, अटलांटिक महासागर में प्रवास करने वाले जहाजी मुसाफिरों को दिन में अपूर्व और मनोहर दृश्य दिखलाने वाले नैसर्गिक चमत्कार ही हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं। पर साथ ही साथ यह भी कहना पड़ता है कि रात के समय ये बर्फ पहाड़ जहाजों का नाश करनेवाले प्रत्यक्ष यमदूत अथवा निशाचर ही हैं। रात के समय इन बहते हुए पहाड़ों के आसपास बहुत घना कुहरा छाया रहता है। इस कारण यह अनुमान नहीं किया जा सकता कि ये पहाड़ कब आकर जहाज से टक्कर लगावेंगे। १४ तारीख को रात के समय साढ़े ग्यारह बजे के करीब ऐसा ही एक बर्फ का बड़ा पहाड़ टिटानिक की ओर आता हुआ देख पड़ा। पहाड़ और जहाज दोनों की गति बहुत तेज थी। कप्तान ने दोनों की टक्कर बचाने का प्रयत्न किया, पर वह पूर्ण रीति से सफल नहीं

हुआ। यद्यपि उसके प्रयत्न से दोनों की टक्कर आमने सामने नहीं हुई, परन्तु यह बर्फ का पर्वत जहाज के एक ओर से रगड़ता हुआ निकल गया। इस कारण यद्यपि जहाज के मुसाफिरों के इतना धक्का नहीं लगा कि वे समझ सकते, तथापि उस पर्वत ने अपनी धार से जहाज का एक किनारा बहुत सा काट डाला, इस कारण पानी जहाज के भीतर जाने लगा! इस समय प्रायः बहुत से मुसाफिर अपनी अपनी कोठरियों में अथवा अपनी अपनी जगहों में सो रहे थे, तथा कुछ लोग बैठे हुए ताश खेल रहे थे। परन्तु टक्कर का धक्का बिलकुल ही न समझ पड़ने के कारण सोनेवाले नहीं जगे और न जगनेवालों को यह दुर्घटना मालूम हुई! इसके सिवाय सब मुसाफिरों को विश्वास था कि टिटानिक के समान भारी जहाज कभी डूब नहीं सकता, इस लिए वे अपनी अपनी जगह में स्वस्थ ही थे। परन्तु जहाज के कप्तान और अन्य अधिकारियों को असली हालत तुरन्तही मालूम हो गई। उन्होंने उसी दम एंजिन बन्द करके जहाज को ठहरा दिया। मुसाफिर और खलासियों को समुद्र में तैरनेवाली रबरी कड़ियां और गोले बाँटे गये! जहाज की छोटी नौकाएं भी समुद्र में छोड़ी गईं और उनमें स्त्री तथा बच्चों का बैठना शुरू हुआ। परन्तु टिटानिक जहाज की मजबूती पर बहुत से मुसाफिरों का इतना दृढ़ विश्वास था कि उन्होंने यह भी समझा कि कप्तान आदि अधिकारी व्यर्थ ही के लिए ये सब उपाय कर रहे हैं। परन्तु धीरे धीरे जहाज का एक सिरा ज्यों ज्यों पानी की ओर झुकने लगा त्यों त्यों मुसाफिरों की आंखें खुलने लगीं और भावी महासंकट के भयंकर स्वरूप का चित्र उनके सामने खड़ा हो गया। इतने ही में कई लोगों ने पानी में छोड़ी हुई नौकाओं में जबरदस्ती से घुसने का प्रयत्न किया; और कुछ दंगा फिसाद भी होने लगा। अन्त में जहाज के अधिकारियों ने पिस्तौलें दिखाकर यह दंगा शान्त किया। इसके बाद उन नौकाओं में पहले स्त्री और बच्चे बिठाये गये; और पीछे बची हुई नौकाओं में कुछ पुरुष मुसाफिर तथा खलासी बैठाये गये; और ये नौकाएं अंधेरे में निकल गईं। मुसाफिरों में कुछ स्त्रियां ऐसे संकट के समय में अपने पति को छोड़ कर केवल अपने ही प्राण नहीं बचाना चाहती थीं। परन्तु इस प्रकार की सत्तर स्त्रियां जबरदस्ती से नौकाओं में लाकर बैठाई गईं। तथापि बहुत सी स्त्रियां अपने पति के पास

लोग जीवन

हुई लकड़ि-

बर्फ के पहा-

त लोग टिटैर

सेरा बिलकुल

होकर सीधा

और माल आदि

एक ओर चला गया और इसका बड़ा भयंकर शब्द हुआ। इस दशा में करीब पाँच मिनट जहाज खड़ा रहा। इसके बाद वह एकदम उलट गया; और उसके १५–१६ सौ मुसाफिरों में मरण-काल का हृदयद्रावक कोलाहल मचा! इस प्रकार जब जहाज पानी में डूब गया तब भीतर का बायलर फूटा और फिर दो तीन धड़ाके उड़े, साथही पानी में डूबे हुए कुछ मुसाफिर ऊपर आये; परन्तु प्राण बचाने का वहां उनके लिए कोई साधन नहीं था, इस कारण प्रायः बहुत लोगों को तुरन्त ही प्राणों से हाथ धोना पड़ा!

कप्तान ने जब यह देखा था कि बर्फ के पहाड़ में जहाज की टक्कर लगेगी तभी उसने बेतार के तार से और बारूद के बाण छोड़ कर चारों ओर भावी दुर्घटना के सन्देश भेजे थे, और अन्य जहाजों की मदद मांगी थी। इस लिए कोई चार साढ़ेचार बजे के करीब कार्पेथिया जहाज दुर्घना की जगह पर आया। उस समय टिटानिक की १६ छोटी छोटी डोंगियों में बैठ कर इतस्ततः घूमनेवाले और समुद्र में पड़े हुए तड़फड़ानेवाले कुल करीब ८६८ मुसाफिर कार्पेथिया ने चढ़ा लिए। यह जहाज १८ तारीख को शाम को न्यूयार्क बन्दर में पहुंचा।

अब अमेरिका में इस बात की जाँच हो रही है कि टिटानिक जहाज किन किन कारणों से डूबा। इस जाँच में अब अनेक मूर्ख खुल रही हैं। जहाज पर सब के लिए काफी डोंगियाँ न थीं। जो डोंगियां मौजूद थीं उनमें भी जितने मुसाफिर बिठाये जा सकते थे उतने नहीं लिए गये। पहले और दूसरे दर्जे के बचे हुए मुसाफिरों का कुल मुसाफिरों के मुकाबिले जो औसत पड़ता है उससे बहुत ही कम औसत तीसरे दर्जे के मुसाफिरों का पड़ता है। यही नहीं,

इस जांच का फैसला होने पर नौकानयन के नियमों में महत्व के फेरफार होंगे। अस्तु! आगे चाहे जो नियम बना करें; परन्तु इस समय इस भयंकर दुर्घटना के कारण डेढ़ हजार से अधिक मनुष्य और करोड़ों रुपये का माल 'समुद्रास्तृप्यन्तु' होगया, इसमें कोई शक नहीं!!!

इस दुर्घना में 'रिव्यू आफ रिव्यूज' नामक प्रसिद्ध मासिक पत्र के सम्पादक मि० स्टेड का देहान्त हो गया। सन् १८४९ में मि० स्टेड का जन्म हुआ। उनके पिता धर्मोपदेशक थे, इस कारण बालपनही से उन्हें धार्मिक और सामाजिक विषयों का ज्ञान होगया और उनकी वृत्ति सात्विक तथा परोपकारी बनगई। छुटपन ही से उन्हें समाचारपत्रों में लेख भेजने का शौक था। बड़े होने पर उन्होंने 'एको' नामक एक पत्र निकाला। इस पत्र के लेख मि० ग्लेडस्टन को भी पसन्द आये और उन्हींकी शिफारस से मि० मोर्ले ने स्टेड साहब को 'पालमाल-गजट' के सहकारी सम्पादक का स्थान दिया। बाद को सन् १८८३ ई० में मोर्ले साहब की जगह वे स्वयं मुख्य सम्पादक हुए। यह काम ६ वर्ष तक इन्होंने बड़े उत्साह के साथ किया। प्रसिद्ध पुरुषों से मिलकर सार्वजनिक प्रश्नों पर उनके मत प्रकाशित करने का तरीका मि० स्टेड ने ही जारी किया। यह तरीका पीछे से अत्यन्त लोकप्रिय हो गया। इनका यह नियम था कि सदसद्विवेकबुद्धि में जो बात आ जाती थी उसे ये निर्भय होकर कह देते थे और उसकी विरोधी बातों पर कठोर समालोचना करते थे—इसी कारण इन्हें एक बार तीन मास का कारागृहवास भोगना पड़ा। कुछ पुस्तक विक्रेताओं ने इनके लेखों का बहिष्कार भी दिया; तथापि सामान्य जनसमूह में उन पर पूज्य बुद्धि बढ़ने लगी। जब इनके राजनैतिक विचार पालमालगजट के मालिक के विचारों से भिन्न होने लगे तब इन्होंने उस पत्र का सम्बन्ध छोड़ दिया। इसके बाद सन् १८९० में इन्होंने 'रिव्यू आफ रिव्यूज' नाम का मासिक पत्र निकाला। इस मासिक पत्र के लेखों के कारण ये शीघ्रही जगत्प्रसिद्ध होगये और बड़े बड़े अफसर तथा राजा महाराजा लोग भी इनकी लेखनी को डरने लगे। उनकी यह उत्कट इच्छा थी कि कोई राष्ट्र एक दूसरे से स्पर्धा करने में अपना सामर्थ्य खर्च न करें, सबमें परस्पर स्नेहभाव रहे और यदि कोई वादविवाद की बात निकले तो शान्ति के साथ उसका फैसिला करने के लिये सब राष्ट्रों के प्रतिनिधियों की एक शान्तिसभा हो और उसका किया हुआ फैसला सब राष्ट्र शिरोधार्य करें। अपनी इसी इच्छा के अनुसार मि० स्टेड ने अत्यन्त परिश्रम से हेग की शान्तिपरिषद् स्थापित कराई। बोर-युद्ध के समय, यद्यपि प्रायः सारा इंग्लिश राष्ट्र युद्ध के अनुकूल था, तथापि उसके विरोध की कुछ भी परवा न करते हुए इन्होंने उस युद्ध का बड़ी तेजी से निषेध किया। 'मैं क्या अपने बोर-बन्धुओं के नाम पर छुरी चलाऊं!' और 'बोर-युद्ध के विरुद्ध युद्ध' नाम के दो लेख लिखकर इन्होंने बड़ी भारी हलचल मचा दी। बोर-युद्ध के आदि-प्रवर्तक और ब्रिटिश साम्राज्य के अभिमानी मार्मा-पुत्र मि० सेसिल रोड्स ने उस समय बोर-युद्ध के विरुद्ध लेखनी न चलाने के लिये मि० स्टेड

जिस जगह टिटानिक जहाज डूबा उस जगह समुद्र की गहराई अनुमान से १८००० फीट है।

बाद दूसरी डोंगियां छोड़ कर बाकी मुसाफिर और मल्लाह बचाये गये। इधर जहाज का अगला भाग बिलकुल डूब गया और पिछला भाग पानी पर उठा रहा। कुछ देर के बाद उसके इंजिन फूटे और उनके धड़ाके से जहाज एकदम ऊपर उठा और फिर अन्त में उसने जलसमाधि ले ली। तथापि उस जगह समुद्र बहुत गहरा नहीं था, इस कारण जहाज के ऊपर की चिमनी और डोल, आदि पानी के के ऊपर दिखते थे।

इस जहाज पर कप्तान की कोठरी में सोना और रूपा था। उसमें से तीस चालीस हजार का सोना और दो तीन हजार का रूपा ऊपर निकाला गया है। बाकी बचा हुआ भी शीघ्रही निकाला जायगा। डूबे हुए जहाज में पैठ कर ठीक कप्तान की कोठरी में जाना और अलमारी खोल कर उससे कुंजियां निकालना तथा खजाने की सन्दूक का ताला खोल कर उससे रकम बाहर निकालना सचमुच ही बड़े साहस और चपलता का काम है।

इंगलैंड में एक कमिशन के द्वारा, ओशियाना जहाज के डूबने की जाँच अभी होना है। जर्मन में पिसागुआ जहाज के विषय में जो जाँच हुई है उसका यह फैसिला हुआ है कि इस अपघात का सारा दोष ओशियाना के अधिकारियों पर है क्योंकि यह जहाज अपनी नियत दिशा को छोड़ कर दूसरी ही तरफ चल रहा था। इधर यह भी चिल्लाहट मची है कि इस अपघात में ओशियाना जहाज के भारतीय खलासियों ने अपना काम ठीक तौर पर नहीं किया। परन्तु कमिशन की जांच का हाल जब तक न मिल जाय तब तक इस विषय में कुछ मत नहीं दिया जा सकता।

टिटॅनिक आगबोट

टिटानिक जहाज का डूबना।

ओशियाना के अपघात से बराबर एक मास बाद टिटानिक नामक बहुत बड़ा जहाज, अमेरिका को जाते हुए न्यूफौंडलैंड के पास डूब गया।

यह जहाज बहुत ही भारी था। यहां तक कि इसकी बराबरी का दूसरा जहाज आज संसार में नहीं है। इसकी लम्बाई ८८० फीट, चौड़ाई ९० फीट और ऊंचाई ६६ फीट थी। इस पर कुल ९ डेक थे। कुल ३३४६ मुसाफिरों के बैठने का इसमें सुभीता किया गया था। इसके एंजिनों की कुल शक्ति ४६००० हार्स पावर की थी और यह प्रति घंटे २१ मील (समुद्री मील) चलता था। इस जहाज के बनवाने में १,३१,२४,००० रुपया खर्च हुआ, और इसी [illegible] [illegible] डेढ़ करोड़ का रुपया बीमा भी हो गया था। इस जहाज पर मुसाफिरों के लिए सब प्रकार के सुख-सुभीते, पुस्तकालय, व्यायामशाला, भोजनगृह, क्रीड़ाभवन, इत्यादि किये गये थे। [illegible] सिवाय इस जहाज की रचना भी ऐसी की गई थी कि चाहे [illegible] पानी आवे तो भी यह न डूबे। टिटानिक जहाज १० अप्रैल [illegible] साउथेम्पटन बन्दर से २३४० मनुष्यों के साथ अमेरिका [illegible] यह १६ तारीख को न्यूयार्क बन्दर में पहुँचनेवाला था। पर ईश्वर की इच्छा कुछ और ही थी! १४ तारीख रविवार को आधी [illegible] लगभग यह जहाज न्यूफौंडलैंड टापू के पास आया। उस [illegible] फौंडलैंड की ओर से बह कर आया हुआ बर्फ का एक बड़ा [illegible] पाव मील के अन्तर पर देख पड़ने लगा! गर्मी के दिनों में ध्रुव की ओर से बर्फ के ऐसे अनेक पर्वत उत्तर अटलांटिक सागर में बह कर आते रहते हैं। दिन में इस प्रकार के तैरते 'हिम-नग' देख कर बड़ा आनन्द आता है। दिन में सूर्य की और पानी की गर्मी के योग से इन पहाड़ों का पानी में डूबा हुआ भाग बराबर पिघलता रहता है, इस लिए यह भाग पानी के ऊपर वाले भाग से हलका होता जाता है और इसी कारण ये पहाड़ समुद्र में ऊपर ही ऊपर कुलांटें खाते हुए उछलते रहते हैं। अर्थात् ऐसे बर्फ के बहते हुए पहाड़, अटलांटिक महासागर में प्रवास करने वाले जहाजी मुसाफिरों को दिन में अपूर्व और मनोहर दृश्य दिखलाने वाले नैसर्गिक चमत्कार ही हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं। पर साथ ही साथ यह भी कहना पड़ता है कि रात के समय ये बर्फ के पहाड़ जहाजों का नाश करनेवाले प्रत्यक्ष यमदूत अथवा निशाचर ही हैं। रात के समय इन बहते हुए पहाड़ों के आसपास बहुत घना कुहरा छाया रहता है। इस कारण यह अनुमान नहीं किया जा सकता कि ये पहाड़ कब आकर जहाज से टक्कर लगावेंगे। १४ तारीख को रात के समय साढ़े ग्यारह बजे के करीब, ऐसा ही एक बर्फ का बड़ा पहाड़ टिटानिक की ओर आता हुआ देख पड़ा। पहाड़ और जहाज दोनों की गति बहुत तेज थी। कप्तान ने [illegible] की टक्कर बचाने का प्रयत्न किया; पर वह पूर्ण रीति से सफल

हुआ। यद्यपि उसके प्रयत्न से दोनों की टक्कर आमने सामने नहीं हुई, परन्तु यह बर्फ का पर्वत जहाज के एक ओर से रगड़ता हुआ निकल गया। इस कारण यद्यपि जहाज के मुसाफिरों के इतना धक्का नहीं लगा कि वे समझ सकते; तथापि उस पर्वत ने अपनी धार से जहाज का एक किनारा बहुत सा काट डाला, इस कारण पानी जहाज के भीतर जाने लगा। इस समय प्रायः बहुत से मुसाफिर अपनी अपनी कोठरियों में अथवा अपनी अपनी जगहों में सो रहे थे, तथा कुछ लोग बैठे हुए ताश खेल रहे थे। परन्तु टक्कर का धक्का बिलकुल ही न समझ पड़ने के कारण सोनेवाले नहीं जगे और न जगनेवालों को यह दुर्घटना मालूम हुई। इसके सिवाय सब मुसाफिरों को विश्वास था कि टिटानिक के समान भारी जहाज कभी डूब नहीं सकता, इस लिए वे अपनी अपनी जगह में स्वस्थ ही थे।

कारी व्यर्थ ही के लिए वे सब उपाय कर रहे हैं। परन्तु धीरे धीरे जहाज का एक सिरा ज्यों ज्यों पानी की ओर झुकने लगा त्यों त्यों मुसाफिरों की आंखें खुलने लगीं और भावी महासंकट के भयंकर स्वरूप का चित्र उनके सामने खड़ा हो गया। इतने ही में कई लोगों ने पानी में छोड़ी हुई नौकाओं में जबरदस्ती से घुसने का प्रयत्न किया; और कुछ दंगा फिसाद भी होने लगा। अन्त में जहाज के अधिकारियों ने पिस्तौलें दिखाकर यह दंगा शान्त किया। इसके बाद उन नौकाओं में पहले स्त्री और बच्चे बिठाये गये; और पीछे बची हुई नौकाओं में कुछ पुरुष मुसाफिर तथा खलासी बैठाये गये; और ये नौकाएं अंधेरे में निकल गईं। मुसाफिरों में कुछ स्त्रियां ऐसे संकट के समय में अपने पति को छोड़ कर केवल अपने ही प्राण नहीं बचाना चाहती थीं। परन्तु इस प्रकार की सत्तर स्त्रियां जबरदस्ती से नौकाओं में लाकर बैठाई गईं। तथापि बहुत सी स्त्रियां अपने पति के पास रह कर सती की मृत्यु से मरने के लिए जहाज ही पर बनी रहीं। जहाज के बाकी लोगों में से कुछ लोग जीवन की आशा से समुद्र में कूद पड़े और कुछ लोग बहती हुई लकड़ियों पर बैठ कर प्राणरक्षा का प्रयत्न करने लगे। परन्तु बर्फ के पहाड़ों से पानी इतना ठंडा हो गया था कि उनमें से बहुत लोग ठिठुर कर मर गये। इतने में टिटानिक जहाज का एक सिरा बिलकुल पानी में डूब गया और दूसरा सिरा १४० फीट ऊंचा होकर सीधा खड़ा हो गया। उस समय जहाज के सब जड़ पदार्थ और माल आदि एक ओर चला गया और इसका बड़ा भयंकर शब्द हुआ। इस दशा में करीब पांच मिनट जहाज खड़ा रहा। इसके बाद वह एकदम उलट गया, और उसके १४–१६ सौ मुसाफिरों में मरण-काल का हृदयद्रावक कोलाहल मचा! इस प्रकार जब जहाज पानी में डूब गया तब भीतर का बायलर फूटा और फिर दो तीन धड़ाके हुए, जिससे पानी में डूबे हुए कुछ मुसाफिर ऊपर आये, परन्तु प्राण बचाने का वहां उनके लिए कोई साधन नहीं था। इस कारण प्रायः बहुत लोगों को तुरन्त ही प्राणों से हाथ धोना पड़ा!

कप्तान ने जब यह देखा था कि बर्फ के पहाड़ से जहाज की टक्कर [illegible] तभी उसने बेतार के तार से और [illegible] के बाल दौड़ कर चारों ओर भावी दुर्घटना के सन्देश भेज दे, और अन्य जहाजों की मदद मांगी थी। इस लिए कोई चार साढ़ेचार बजे के करीब कार्पेथिया जहाज दुर्घटना की जगह पर आया। उस समय टिटानिक की १६ छोटी छोटी डोंगियों में बैठ कर इतस्ततः घूमनेवाले और समुद्र में पड़े हुए [illegible] करीब ७१८ मुसाफिर [illegible] लिए। यह जहाज १९ तारीख को न्यूयार्क बन्दर में पहुंचा।

अब कमीशन में इस बात की जांच हो रही है कि टिटानिक जहाज किन किन कारणों से डूबा। इस जांच में अब अनेक मुख्य

जिस जगह टिटानिक जहाज डूबा उस जगह समुद्र की गहराई अनुमान से १८००० फीट है।

खुल रही हैं। जहाज पर सब के लिए काफी डोंगियाँ न थीं। जो डोंगियां मौजूद थीं उनमें भी जितने मुसाफिर बिठाये जा सकते थे उतने नहीं लिए गये। पहले और दूसरे दर्जे के बचे हुए मुसाफिरों का कुल मुसाफिरों के मुकाबिले जो औसत पड़ता है उससे बहुत ही कम औसत तीसरे दर्जे के मुसाफिरों का पड़ता है। यही नहीं,

और स्त्रियां मर गईं। आगे का मार्ग ध्यान से देखने के लिए टिटानिक पर जो आदमी था उसे दूरबीन नहीं दी गई थी, और कहते हैं कि उसे यदि दूरबीन दी गई होती तो यह दुर्घटना टल गई होती। 'सर्च-लाइट' का भी पूरा पूरा प्रबन्ध नहीं था, इसी कारण, बर्फ का पहाड़ पास आजाने पर भी नहीं देखा जा सका। इस प्रकार की अनेक बातें अब खुलने लगी हैं। जान पड़ता है कि इस जांच का फैसिला होने पर नौकानयन के नियमों में महत्व के फेरफार होंगे। अस्तु। आगे चाहे जो नियम बना करें; परन्तु इस समय इस भयंकर दुर्घटना के कारण डेढ़ हजार से अधिक मनुष्य और करोड़ों रुपये का माल 'समुद्रान्तर्यन्तु' होगया, इसमें कोई शक नहीं!!!

इस दुर्घना में 'रिव्यू आफ रिव्यूज' नामक प्रसिद्ध मासिक पत्र के सम्पादक मि० स्टेड का देहान्त हो गया। सन् १८४९ में मि० स्टेड का जन्म हुआ। उनके पिता धर्मोपदेशक थे, इस कारण बालपनहीं से उन्हें धार्मिक और सामाजिक विषयों का ज्ञान होगया और उनकी वृत्ति सात्विक तथा परोपकारी बनगई। छुटपन ही से उन्हें समाचारपत्रों में लेख भेजने का शौक था। बड़े होने पर उन्होंने 'एको' नामक एक पत्र निकाला। इस पत्र के लेख मि० ग्लेडस्टन को भी पसन्द आये और उन्हींकी शिफारस से मि० मोर्ले ने स्टेड साहब को 'पालमाल-गजट' के सहकारी सम्पादक का स्थान दिया। बाद को सन् १८८३ ई० में मोर्ले साहब की जगह ये स्वयं मुख्य सम्पादक हुए। यह काम ६ वर्ष तक इन्होंने बड़े उत्साह के साथ किया। प्रसिद्ध पुरुषों से मिलकर सार्वजनिक प्रश्नों पर उनके मत प्रकाशित करने का तरीका मि० स्टेड ने ही जारी किया। यह तरीका पीछे से अत्यन्त लोकप्रिय हो गया। इनका यह नियम था कि सदसद्विवेकबुद्धि में जो बात आ जाती थी उसे ये निर्भय होकर कह देते थे और उसकी विरोधी बातों पर कठोर समालोचना करते थे—इसी कारण इन्हें एक बार तीन मास का कारागृहवास भोगना पड़ा। कुछ पुस्तक विक्रेताओं ने इनके लेखों का बहिष्कार भी किया; तथापि सामान्य जनसमूह में उन पर पूज्य बुद्धि बढ़ने लगी। जब इनके राजनैतिक विचार पालमालगजट के मालिक के विचारों से भिन्न होने लगे तब इन्होंने उस पत्र का सम्बन्ध छोड़ दिया। इसके बाद सन् १८९० में इन्होंने 'रिव्यू आफ रिव्यूज' नाम का मासिक पत्र निकाला। इस मासिक पत्र के लेखों के कारण ये शीघ्रही जगत्प्रसिद्ध होगये और बड़े बड़े अवसर पर राजा महाराजा लोग भी इनकी लेखनी को डरने लगे। इनकी यह उत्कट इच्छा थी कि कोई राष्ट्र एक दूसरे से स्पर्धा करने में अपना सामर्थ्य नष्ट न करे, सबमें परस्पर स्नेहभाव रहे और यदि कोई वादविवाद की बात निकले तो शान्ति के साथ उसका फैसिला करने के लिये सब राष्ट्रों के प्रतिनिधियों की एक शान्तिसभा हो और उसका किया हुआ फैसला सब राष्ट्र शिरोधार्य करें। अपनी इसी इच्छा के अनुसार मि० स्टेड ने [illegible] बोअर-युद्ध के समय, यद्यपि प्रायः सारा इंग्लिश राष्ट्र युद्ध के अनुकूल था, तथापि इन्होंने विरोध की कुछ भी परवा न करके इस युद्ध का बड़ी सख्ती से विरोध किया। 'मैं क्या [illegible] के [illegible] पर [illegible]!' और 'बोअर युद्ध के विरुद्ध युद्ध' नाम के दो लेख लिखकर इन्होंने बड़ी भारी हलचल मचा दी। बोअर-युद्ध के [illegible] और [illegible] के [illegible] मि० [illegible] के [illegible] इस युद्ध के विरुद्ध [illegible] के लिए मि० स्टेड

से आग्रह किया। और यह प्रार्थना यदि स्टेड साहब ने मान ली होती तो सेसिल की अगणित सम्पत्ति में से दस बारह करोड़ रुपये मि० स्टेड को भी, सेसिल के मरने पर उनके मृत्युपत्र-द्वारा मिले होते; परन्तु स्टेड साहब को द्रव्यतृष्णा की अपेक्षा स्वमत, न्याय, सत्य और भ्रातृभाव की चाह अधिक थी, इसी कारण उन्हों ने इतनी बड़ी सम्पत्ति पर लात मार दी! इससे कहना चाहिये कि क्षुद्र लाभ के लिये न्यायबुद्धि का खून करके भ्रातृद्रोह करने को तैयार होनेवाले लोगों की दृष्टि से स्टेड साहब ने यह बड़ी ही मूर्खता की!!

मि० स्टेड बड़े ही अनुभवी और कुशल लेखक थे। प्रजा के हित और सुख की वे अत्यन्त चिन्ता रखते थे। धर्म, नीति, न्याय और सदाचार का लड़कपन ही से उनके मन पर दृढ संस्कार हो गया था, इसी कारण, जब कोई अन्याय और अत्याचार का कार्य उनकी दृष्टि में पड़ता तभी वे सत्पक्ष के समर्थन करने में अपना तन-मन धन खर्च करने के लिये तैयार हो जाते थे। लेखन-स्वातंत्र्य के पवित्र अधिकार को अबाधित रखने ही के लिये उन्होंने विपिन बाबू का 'बम्बगोले की मीमांसा' नामक लेख को, खास तौर पर अपने मासिकपत्र में छाप दिया था। यह जान कर कि दिल्लीदरबार के अवसर पर राजनैतिक कैदी नहीं छोड़े गये, उन्होंने अपने मासिक-पत्र में इस विषय की कड़ी आलोचना की। वे दयालु स्वभाव के थे। उनका मन उदार था। जो नवसिखे उत्साही तरुण-लेखक अथवा राजनीतिके व्यवसाय में पड़ते थे उन्हें वे अनेक प्र[illegible] सहायता और पुरस्कार देते थे। आलसी, चैनी और आ[illegible] पर वे सदा अप्रसन्न रहते थे। उनका मत था कि [illegible] बहुत से सभासद केवल नाम के लिये होते हैं और महत्व के नैतिक विषयों पर वे अपना ठीक ठीक मत नहीं दे सकते, लार्ड-सभा का वर्तमान स्वरूप बदल जाना चाहिये; इसी [illegible] वीटो बिल के समय उन्होंने उस सभा पर कड़ी आलोचना [illegible] और लेडी कार्डिगान की नवीन पुस्तक की प्रशंसा करके लार्ड लोगों का सच्चा स्वरूप प्रकट होने में बड़ी मदद दी।

मि० स्टेडको भारत की राष्ट्रीय सभा का अध्यक्ष[illegible] की कई बार चर्चा चली थी; पर वह सुअवसर नहीं आसका। स्टेड को यदि सूक्ष्म रीति से भारत की सच्ची दशा निरीक्षण का अवसर मिला होता और सभापति की हैसियत से [illegible] पक्ष से यदि उनका निकट-सम्बन्ध हुआ होता तो भारत[illegible] हितार्थ उनकी लेखनी के सामर्थ्य का उपयोग हुआ होता, [illegible] श्वरी इच्छा यही थी कि ऐसे प्रसिद्ध पुरुष का अन्त इस प्रक[illegible] अकल्पनीय दुर्घटना से हो। रिव्यू आफ रिव्यूज़ के मार्च म[illegible] अंक में मि० स्टेड ने सूचना की थी कि कुछ दिनों से जहाज़[illegible] टनाएं बढ गई हैं, कम्पनियों को इधर ध्यान देना चाहिए[illegible] समय क्या स्वप्न में भी उन्हें यह मालूम था कि इतनी जल्दी [illegible] ही दुर्घटना से हमारी मृत्यु होगी।

भिन्न भिन्न भाषाओं की कविता में

बिम्बप्रतिबिम्बभाव।

१

जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः।
नास्ति येषां यशःकाये जरामरणजं भयम्॥

—भर्तृहरि।

Hail, bards triumphant! born in happier days,
Immortal heirs of universal praise!
Whose honours with increase of ages grow,
As streams roll down, enlarging as they flow
Nations unborn your mighty names shall sound!
And worlds applaud that must not yet be found!

POPE—ESSAY ON CRITICISM.

सब तें ऊंचो सुकवि जन जानत रस की सोत।
जिनके यश की देह को जरामरण नहिं होत॥

—प्रतापसिंह।

धर्म्य कवीचें किति थोर दैव।
सरस्वती लीन जयां सदैव॥
यत्कीर्ति-देहास न मृत्यु येई।
स्पर्शी नसे तो न कदा जराही॥

—एक मराठी-कवि।

२

किमित्यपास्याभरणानि यौवने।
धृतं त्वया वार्धकशोभि वल्कलम्॥
वद प्रदोषे स्फुटचन्द्रतारका।
विभावरी यद्यरुणाय कल्पते॥

—कालिदास-कुमारसम्भव।

As the sweet moon on the horizon's verge,
The maid was on the eve of womanhood

—BYRON—THE DREAM

[illegible] सदा [illegible] में शोभा को पानेवाला।
[illegible] नव [illegible] पथ में क्यों तू ने मन पर डाला?

—[illegible]प्रसाद द्विवेदी-कुमारसम्भवसार।

हे! [illegible]
[illegible]?
[illegible]
[illegible]!

—एक मराठी-कवि।

३

दुर्जनः परिहर्तव्यो विद्ययालंकृतोऽपि सन्।
मणिना भूषितः सर्पः किमसौ न भयंकरः॥

—भर्तृहरि।

Talents angel—bright,
If wanting worth, are shining instuments,
In false ambition's hand, to finish faults
Illustrious, and give infamy renown—

—YOUNG

विद्यायुत हू होय, तऊ दुष्ट तज दीजिये।
सर्प जु मणिधर कोय, भयकारी कह कीजिये॥

—प्रताप[illegible]

[illegible]

तो सर्प काय न डसे खल अंतरंगीं॥

—वामन पं[illegible]

४

सुजनो न याति वैरं परहित कार्ये विनाशकालेऽपि।
छेदेऽपि चन्दनतरु सुरभयति मुखं कुठारस्य॥

—कोई एक क[illegible]

Forgive thy foes—nor that alone—
Their evil deeds with good repay;
Till those with joy who leave thee none.
And Kiss the hand upraised to slay.
So does the fragrant Sandal bow
In meek forgiveness to its doom,
And over the axe at every blow
Sheds in abundance rich perfume!

—H. K[illegible]

संत असंतन्ह कै असि करनी।
जिमि कुठार—चन्दन-आचरनी॥
काटइ परसु मलय सुनु भाई!
निज गुन देइ सुगंध बसाई॥

—बाबा तुलसी[illegible]

[illegible] आणि [illegible]।
[illegible]॥
[illegible] चन्दन [illegible]।
[illegible]॥

—एक मराठी-क[illegible]

बड़ौदे की गुजराती–साहित्य–परिषद ।

'अनाश्रिता न शोभन्ते पण्डिता वनिता लताः—' यह वचन सर्वथा सत्य है। केवल ज्ञानार्जन के पवित्र हेतु से ही विद्या पढ़ना चाहिए। विद्या पढ़ कर उससे सांसारिक सुख की अपेक्षा रखना वाणिज्य वृत्ति है-तं ज्ञानपण्यं वणिजं वदन्ति-यह महाकवि कालिदास का वचन किसे स्वीकार न होगा? तथापि किसी पंडित की विद्वत्ता का तभी मान होगा जब उस विद्वत्ता का प्रकाश फैलेगा। और वर्तमान काल में उस विद्वत्ता का प्रकाश फैलाने के लिए ग्रन्थ-प्रकाशन ही एक मुख्य साधन है। जिस देश में सर्वत्र शिक्षा का प्रचार है उसमें ग्रन्थप्रकाशन-कार्य में विशेष परिश्रम नहीं पड़ता। ऐसे देशों में ग्रन्थप्रकाशन के लिए अनेक स्वतंत्र मंडलियां स्थापित होती हैं। हमारे देश में शिक्षा का प्रचार जैसा है -उसे सभी जानते हैं; अतएव प्रथम तो पुस्तकें पढ़ने की रुचि ही नहीं है। उसमें भी हमारी दरिद्रता हमें और मार रही है-मुद्रित ग्रन्थों के गट्ठे छापेखाने ही में पड़े सड़ा करते हैं-बाहर निकलने का ही मौका नहीं आता। इसी कारण नवीन ग्रन्थकार पैदा नहीं होते और जो हैं भी वे निरुत्साह रहते हैं- उन्हें उत्साह ही नहीं होता कि वे दीर्घ विद्याव्यासंग करके किसी विषय का सांगोपांग विवेचन करें। इसी न्यूनता को कम से कम दूर करने के लिए और भाषाओं की एक लिपि होना चाहिये और इसके लिये देवनागरी ही लिपि में सब ग्रन्थों के छापने की आवश्यकता है-इसीमें देश का हित है।

सभापति का व्याख्यान खतम होने पर श्रीसयाजीराव महाराज का महत्वपूर्ण भाषण हुआ। आपके कथन का सारांश यह है:-मेरे और मेरे राज्य के विषय में अध्यक्ष महाशय ने प्रशंसायुक्त वचन कहे हैं, इस लिये यहां पर दो शब्द कहे विना मुझ से नहीं रहा जाता। आप मेरे काम की तारीफ करते हैं, इस पर मुझे सन्तोष मालूम होता है। पर उसमें मैंने अपने कर्तव्य से अधिक और कुछ नहीं किया है-और मैं नहीं समझता कि अपना ही कर्तव्य बजाने के लिये किसीको धन्यवाद देने की क्या आवश्यकता है। जब भोजन ही अच्छा बना हुआ है तो उसके परोसनेवाले की तारीफ करने की क्या आवश्यकता है? वास्तव में वह भोजन जिसने तैयार किया है उसीको सब श्रेय देना चाहिए। इस न्याय से, गुजराती साहित्यरूपी भोजन तैयार करने का मान मेरे राज्य के विद्वान् लेखक और शिक्षाविभाग के अधिकारियों को देना चाहिए। अपने विचार प्रकट करने का मुख्य साधन देशी भाषा है। अतएव देशी भाषा को उत्तेजन देना राजा का कर्तव्य है। पश्चिम

बड़ौदे की गुजराती साहित्य परिषद के मुख्य सभासद।

[illegible]

आदि के विचारपूर्ण व्याख्यान हुए। अन्त में अध्यक्ष ने इन व्याख्यानों का समारोप करके अनेक उदाहरणों से यही सिद्ध किया कि सब प्रकार की उच्च शिक्षा मातृभाषाही के द्वारा देना उचित है। इसके बाद आपने आग्रहपूर्वक सूचना दी कि विद्वानों को मातृभाषा, में उच्च शिक्षा देने के योग्य, पुस्तकें तैयार करनी चाहिये। इसके बाद इस बात का विचार हुआ कि साहित्य का प्रचार करने के लिए कौन उपाय करना चाहिए। इस पर अध्यक्ष ने अपना मत दिया कि 'बहुत सी महत्वपूर्ण पुस्तकें तैयार करके ऐसा प्रबन्ध करना चाहिए कि जिससे वे सब को स्वल्प मूल्य पर मिल सकें।

७ एप्रिल को फिर सुबह सभा का काम शुरू हुआ। श्रीमती काशीबाई हेरलेकर ने 'वाचनमाला'-विषय पर व्याख्यान दिया और गुजराती-रीडरों के पाठों की न्यूनता बतलाकर उन्हें सुधारने की सूचनायें कीं। इसके बाद 'साहित्यपरिषद के हेतु,' 'गुजराती भाषा की दशा,' 'स्त्रीशिक्षा के विरुद्ध वचनों का निषेद,' 'भारतवर्ष के इतिहास पर कुछ विचार,' इत्यादि विषयों पर निबन्ध पढ़े गये और सुबह का काम खतम हुआ। दोपहर के बाद 'नागरी लिपि और गुजराती लिपि की उत्पत्ति'-विषय पर श्रीयुत गौरीशंकर ओझा ने निबन्ध पढ़ा। इसी समय श्रीमान् सयाजीराव गायकवाड़ की सवारी सभामण्डप में आ गई और सब का फोटो लिया गया। इसके बाद इस विषय पर चर्चा शुरू हुई कि राष्ट्रभर की "एक लिपि और एक भाषा" कौनसी हो सकती है। इस पर कुछ वाद-विवाद हुआ; पर अन्त में सर्वसम्मति से यही स्थिर हुआ कि नागरी लिपि और हिन्दी (आर्यभाषा) ही का सर्वत्र प्रचार हो सकता है-दूसरी लिपियों और अन्य भाषाओं का सारे भारत में प्रचार होना असम्भव है। यह निश्चय होजाने पर फिर महाराज गायकवाड़ का व्याख्यान शुरू हुआ। उसका सारांश इस प्रकार है:--

"कोई भी राष्ट्र हो उसकी प्रगति के ही, काल में इस गुजराती-साहित्य-परिषद के समान संस्थायें उत्पन्न होने लगती हैं। अपनी मातृभूमि की साहित्य-विषयक सेवा बंगाली, हिन्दी, उर्दू, मराठी और गुजराती संस्थायें कर रही हैं। भारतमाता के उत्साही और धैर्यशाली पुत्र भावी पीढ़ी के लिये गतकालीन साहित्य की रक्षा कर रहे हैं; परन्तु उनके कार्य की व्यापकता इससे अधिक विस्तृत चाहिये। जिस देश का गतकाल वैभवयुक्त है उस देश का वर्तमान काल भी विद्यमान विद्वानों को उतना ही वैभवशाली बनाना चाहिये। अपनी भावी पीढ़ी को यह कहने का मौका न आने दो कि हमारी निस्सत्व रक्तवाहिनियों में हमारे पुरखों का रक्त पानी हो गया और सुखासीन आलस्य में हमारा आत्मतेज लय हो-गया। यूरप की सब साहित्य-विषयक संस्थाओं में, फ्रेंच एकाडमी को प्रमुख स्थान देना चाहिये। परन्तु खेद की बात है कि विचारों की कल्पकता और बुद्धिमत्ता को चलन देने के बदले साहित्य का ठहरा हुआ साँचा और भाषा का बाहरी सौन्दर्य निर्माण करते हैं की ओर इस संस्था की प्रवृत्ति देख पड़ती है। यह एक दोष छोड़कर अन्य सब बातों में उसी संस्था का आदर्श हमें रखना चाहिये।

"जिस व्यक्तिसमूह के उद्देश समान नहीं हैं और जिसमें उन उद्देशों को पूर्ण करने के लिए सहकारिता का अभाव है वह व्यक्तिसमूह चाहे जैसा हो, 'राष्ट्र' का नाम धारण नहीं कर सकता-और लोगों को परस्पर का ज्ञान जब तक नहीं होगा तब तक एक दूसरे के विषय में परस्पर सहानुभूति कैसे उत्पन्न होगी? इस लिए मेरा कहना यह है कि तुम्हारे आसपास जो मानवी व्यवहार हो रहा है उसका निरीक्षण करके उसके विषय में लेखनव्यवसाय प्रारम्भ करो; और केवल पुरुषों की ही नहीं; किन्तु स्त्रियों की भी उन्नति करने में प्रवृत्त हो जाओ। परस्पर-सहानुभूति उत्पन्न होने के लिए पहला और मुख्य साधन एक भाषा है-और वह भाषा हिन्दी है। परन्तु काश्मीर से लेकर सीलोन तक यदि आज एक भाषा नहीं हुई तो, कम से कम एक लिपि तो सर्वत्र शुरू करना ही चाहिए।

"चरित्र-लेखन, गुजराती-साहित्य की भावी इमारत का मुख्य अङ्ग होना चाहिए। कुछ यह बात नहीं है कि केवल राज्यकर्ता या राजनीतिज्ञ लोगों ही के चरित्र बोधप्रद होते हों; किन्तु उन सामान्य व्यक्तियों का भी चरित्र प्रेरणादायक होता है जो संसार-यात्रा में सफल हो गये हैं। हमें यह न समझना चाहिए कि हम केवल गुर्जर देशस्थ हैं; किन्तु हमें यह बात अच्छी तरह ध्यान में रखनी चाहिए कि हम सम्पूर्ण जगत् के नागरिक हैं। अतएव संसार भर में जहां जहां कोई हमें अच्छी बात देख पड़े उसीका हमें अनुकरण करना चाहिए। अन्य राष्ट्रों की विचार-सम्पत्ति-दूसरे देशों का विद्याधन-हमें अपना बना लेना चाहिए। परन्तु इस काम के लिए हमें अपने विचार अपनी मातृभाषा के कुन्दन में ही जड़ना चाहिए। [illegible] लिए इस [illegible] कहां मिलेंगे? [illegible] लोग स्वीकार [illegible] है। अब [illegible] भी तक हानि [illegible] । प्रत्येक [illegible] से दो लाख रुपये मैंने अलग रख लिए हैं। इस रकम के व्याज से उन लोगों को पुरस्कार दिया जायगा जो लोग देशी भाषाओं में पर-भाषाओं के उत्तम ग्रन्थों का अनुवाद करेंगे। आशा है कि इस काम में इसे साहित्य परिषद की सहायता मिलेगी।"

क्या हिन्दी बोलनेवाले राजामहाराजाओं का भी इस ओर कभी ध्यान जायगा?

स्नाप-शाट्स।

तार के कौशल के काम।

(१) [illegible] तार पर [illegible], (२) तार पर [illegible], (३) एक पैर से तार पर [illegible]।

गान्धर्व-महाविद्यालय का पारितोपिक-समारम्भ।

प्रिल मास में यह उत्सव बम्बई के फ्रामजी कावसजी-हाल में ी धूम के साथ हुआ। डा० मैकीगन के हाथ से यह कार्य सिद्ध त्या गया। पहले पहल संस्था के सेक्रेटरी श्रीयुत फ़ुडा ने पोर्ट पढ़ सुनाई। सन् १६०१ में पंडित विष्णु दिगम्बर पलुसकर लाहोर में गान्धर्व महाविद्यालय की मूल स्थापना की। और सन् ९०८ में उसी संस्था की शाखा बम्बई में खोली गई। तब से आज क इस बम्बईवाली शाखा में करीब १००० विद्यार्थी और २५० द्यार्थिनी गायन वादन सीखने के लिये आईं। विद्यार्थियों के लिये इस संगीतशाला में भोजनगृह और वसतिस्थान का भी प्रबन्ध किया गया है और एक कृष्णालय नवीन खोला गया है। डा० मैकीगन ने अपने व्याख्यान में आर्य-गायन-कला का सब इतिहास बतलाया और प्रो० विष्णु दिगम्बर पलुसकर ने गायनकला में जो निपुणता प्राप्त की है तथा जो कठिन परिश्रम उन्होंने 'गान्धर्व महाविद्यालय के लिये किया है उसके लिये अध्यक्ष महाशय ने उन्हें धन्यवाद दिया। इस विद्यालय के स्त्री और पुरुष विद्यार्थियों तथा शिक्षकों आदि के फोटो नीचे दिये जाते हैं।

स्त्रीविद्यार्थियों और स्त्रीशिक्षकों का समूह।

पुरुष विद्यार्थियों और शिक्षकों का समूह।

बकासन।

वृक्षासन।

शिथिलासन अथवा ऊर्ध्वपादहस्तासन।

पद्मासन।

मत्स्येन्द्रासन।

ललितकला।

(प्रो० गोविन्द चिमणाजी भाटे, एम० ए०)

एक बार रोम शहर में एक नकलबाज ने यह इश्तहार दिया कि आज हम नाटकघर में एक ऐसा तमाशा दिखलावेंगे जैसा कभी किसीने न देखा होगा। उस दिन रात को नाटकघर में बड़ी भीड़ हुई। थोड़ी देर के बाद वह नकलबाज खाली हाथ आकर रंगभूमि में खड़ा हो गया। उसके साथ किसी प्रकार की भी सामग्री न देख कर लोगों को जिज्ञासा बढ़ी कि देखें अब यह क्या दिखलाता है। इतने ही में वह नकलबाज, अपना सिर छाती की ओर बढ़ा कर, मुँह से सुअर के छौने की तरह चिल्ला उठा। उसकी वह आवाज सुअर के बच्चे की चीख से इतनी मिलती थी कि लोगों को यह सन्देह हुआ कि हो न हो, यह नकलबाज अपने अँगरखे में कोई सुअर का बच्चा छुपा लाया होगा। इस संशय के कारण लोगों ने उसकी तलाशी ली; परन्तु कुछ नहीं मिला। इस पर लोगों को बड़ा कौतुक हुआ और उन्होंने बड़े जोर से तालियां पीट कर उस नकलबाज का गौरव किया। अस्तु। दर्शकों में एक गवाँर भी बैठा था। उसे सुअर का चिल्लाना अच्छी तरह मालम था। नकलबाज की इस नकल से उस गवाँर को समाधान नहीं हुआ। वह बड़े जोर से चिल्ला कर बोला—"कल मैं इससे भी अच्छी नकल करके दिखलाऊंगा" दूसरे दिन नाटकघर में और भी अधिक भीड़ हुई। नकलबाज और वह गवाँर दोनों रंगभूमि पर आये। पहले नकलबाज ने अपनी वैसी ही नकल करके दिखलाई और लोगों ने पहले ही दिन की तरह आज भी उसकी बड़ी प्रशंसा की; और सब मनुष्य समझने लगे कि इसके सामने यह गवाँर क्या अच्छी नकल कर सकेगा। इतने ही में वह गवाँर अपनी चादर इस प्रकार समेट कर कि जैसे उसकी चादर में सुअर का बच्चा छिपा हो (और सचमुच ही वह एक बच्चा लाया था), उसने उस बच्चे का कान जोर से दाबा। तुरन्त ही वह बच्चा जोर जोर से चिल्लाने लगा। परन्तु दर्शकों को यह ठीक नहीं जान पड़ा और जिसे देखिये वही यह कहने लगा कि इस गवाँर से यह नकल बिलकुल नहीं बनी। और बहुत से लोग यह भी चिल्लाने लगे कि इस गवाँर को नाटकघर से कान पकड़ कर निकाल दो। यह देख कर उस गवाँर ने अपनी चादर में से वह सुअर का बच्चा बाहर निकाल लिया और उसे सब को दिखलाते हुए वह बोला, "आप सब लोग मुझे नाजरपारखी ही देख पड़ते हो।"

यह कहानी इसापनीति की है। इसाप साहब ने इस कहानी से चाहे जो तात्पर्य निकाला हो, (वह तात्पर्य लोगों के ध्यान पर है) परन्तु इस कहानी में जो लोकविचार दिखलाया है वह सत्य है। हम लोग व्यवहार में भी रोज यही देखा करते हैं। असल से मनुष्य को जितना आनन्द नहीं होता उतना नकल से होता है। यह अन्धा संसार कभी कभी असल नहीं पहचानता; परन्तु नकल पर भूल जाता है। जगत् में सच्चे साधु पुरुष अज्ञात रहते हैं और भोंदुओं की ही कीर्ति विशेष होती है तथा उन्हींकी चलती है। सत्य वन-शोभा की अपेक्षा नाटक का नकली दृश्य ही लोगों को अधिक भाता है। किसीका सच्चा दुःख देख कर मनुष्य उतना द्रवित नहीं होता जितना नाटक के नकाश्रुओं से वह मोहित हो जाता है। सारांश, एक दो नहीं, हजारों बातें ऐसी बतलाई जा सकती हैं कि यह संसार असल की अपेक्षा नकल पर ही विशेष खुश रहता है। ऐसा क्यों होता है, यह विचार करने की बात है। हम नीचे जो विवेचन करेंगे उसमें इसका कुछ खुलासा होगा; परन्तु पहले हम अपनी कहानी पर आते हैं। स्वयं सुअर के चिल्लाने की अपेक्षा नकलबाज के चिल्लाने पर लोगों को अधिक आनन्द क्यों हुआ, इसका बीज मनुष्य की अनुकरण-प्रवृत्ति में है। कहते हैं कि मनुष्य अनुकरणप्रिय प्राणी है। मनुष्यप्राणी में यह अनुकरण प्रवृत्ति आनुवंशिक प्रणाली से आ गई है। उत्क्रान्ति-तत्व हमें यह बतलाता है कि मनुष्य-प्राणी वानर से हुआ है। और वानर की अनुकरण-प्रियता प्रसिद्ध ही है। यह प्रवृत्ति छोटे छोटे बच्चों में विशेष रीति से देखी जाती है। बड़ों की बोलचाल और उनका बर्ताव आदि देख कर बच्चे भी वैसा ही बर्ताव करने लगते हैं। बच्चों के प्रायः सब खेल इस अनुकरणप्रवृत्ति के ही फल होते हैं। छोटे लड़के लड़कियों के खेलों से उस देश के लोगों के रीति रवाज और मनःप्रवृत्ति का अच्छी तरह अनुमान किया जा सकता है। हमारी लड़कियों के खेल की ओर जो क्षण भर भी ध्यान देगा उसे तुरन्त ही मालूम हो जायगा कि भारत की स्त्रियों का ध्येयसर्वस्व विवाह ही है। हाँ, यह बात नहीं है कि यह अनुकरण बिलकुल जैसा का तैसा हो। इस अनुकरण में मनुष्य की निज की कल्पना भी मिलानी पड़ती है, तभी वह नकल हमें आनन्द-दायक मालूम होती है। उपर्युक्त कहानी में भी यही ध्वनित किया गया है। इसलिये न, असली सुअर के बच्चे की आवाज से उस नकलबाज की कम समानता रखनेवाली नकल ही लोगों को विशेष पसन्द आई।

सुअर का बच्चा सबको दिखलाकर वह गवाँर बोला, 'आप सब लोग मुझे नाजरपारखी ही जान पड़ते हो।'

परन्तु यह हम जानते हैं कि हमारे पाठक हम से यह पूछेंगे कि इस कहानी से, और यहां तक किये हुए विवेचन से, उपर्युक्त शीर्षक से क्या सम्बन्ध है। इसके लिये हमें केवल इतना ही कहना है कि 'नकलबाज और गवाँर' की कहानी में ललित कलाओं का मूल बीज है और इसी लिये हमने इस कहानी से ललितकलाओं के विषय का उपक्रम किया है। हमारी कहानी

का नकलबाज सब ललित-कला-कोविदों का आदि-गुरु ही है। नकलबाज भिन्न भिन्न प्राणियों की बोली का अनुकरण करके, और अनोखी बातें बतला कर, मनुष्यमात्र का मनोरंजन करता है; परन्तु कवि सारे संसार का शब्दचित्र खींच कर हमें आनन्द देता है। अतएव कवि भी संसार का नकलबाज (अनुकरणकर्ता) ही है। चितारी (चित्रकार) सब सुन्दर वस्तुओं के चित्र और दृश्य रंग कर हमें मोहित करता है; अतएव यह भी दृश्य वस्तुओं का नकलबाज ही है। गवैया मधुर स्वर से गा कर हमारा मन तल्लीन कर देता है; अतएव वह भी मधुर स्वर का नकलबाज ही है। अन्त में मूर्तिकार और शिल्पकार भी अपने भिन्न भिन्न कार्यों से सृष्टि के सौन्दर्य का प्रतिबिम्ब उठा कर हमें आनन्दसागर में मग्न कर देते हैं; इस लिये वे भी एक प्रकार से सृष्टि के नकलबाज ही हैं।

हम इस निबन्ध में ललितकलाओं का सामान्य स्वरूप, उनके वर्गीकरण और उनका उपयोग, इत्यादि बातों का थोड़े में ऊहापोह करना चाहते हैं।

ललितकला किसे कहते हैं, यह जानने के लिए हमें पहले यह जानना चाहिए कि कला क्या है। परन्तु कला का स्वरूप समझने के लिये हमें पहले यह देखना चाहिए कि शास्त्र क्या है। शास्त्र और कला दोनों आपस में सापेक्ष शब्द हैं; अतएव एक का अर्थ मालूम हुए बिना दूसरे का नहीं मालूम होगा। अब यह स्पष्ट है कि सृष्टि के किसी विशिष्ट पदार्थ-समुदाय के संघटित और सोपपत्तिक ज्ञान को शास्त्र कहते हैं। अधूरे और अव्यवस्थित ज्ञान को शास्त्र नहीं कह सकते। आकाश के तारकासमूह और ग्रहों के संघटित और सोपपत्तिक ज्ञान को ज्योतिःशास्त्र कहते हैं। सब वनस्पतियों के संघटित और सोपपत्तिक ज्ञान को वनस्पतिशास्त्र कहते हैं। अब, कोई न कोई वस्तु उत्पन्न करने के लिए ज्ञान की जो प्रत्यक्ष योजना करनी पड़ती है उसे कला कहते हैं—अर्थात् कला सर्वदा ज्ञान पर अवलम्बित रहती है; फिर वह ज्ञान शास्त्रीय, अर्थात् संघटित और सोपपत्तिक, हो अथवा व्यावहारिक और बिलकुल अनुभवजन्य हो, शास्त्रीय ज्ञान की उपपत्ति होने के पहले मनुष्य को व्यावहारिक और अनुभवजन्य ज्ञान होता है और उस पर कलाओं का भी प्रादुर्भाव होता है; परन्तु शास्त्रीय ज्ञान पर जमाई हुई कला बहुत अच्छी होती है। क्योंकि उसकी नींव मजबूत होती है। शास्त्र की बाढ़ के साथ ही कला की भी बाढ़ होती है। परन्तु कलाएं बहुत सी हैं। क्योंकि मानवी जीव को ... आ
पड़ती हैं उनको पूर्ण क ... प्रादुर्भाव होता है और म ... दिन पर दिन बढ़ती रहती ... बढ़ती रहती है। मनुष्य की बिलकुल बाल्यावस्था लीजिए। उस समय में मनुष्य की आवश्यकताएं बिलकुल थोड़ी होती हैं और उसकी वासनाएं भी बहुत बढ़ी हुई नहीं होतीं। इस कारण उस समय में कलाएं भी बहुत ही थोड़ी होती हैं। मानवी प्राणी की आदि-कला शिकार है। क्योंकि उस समय में दूसरे प्राणी मार कर मनुष्य अपनी उपजीविका करता है और उन प्राणियों को मारने के लिए वह कुछ न कुछ हथियारों की योजना करता है। प्रायः सब बाल्यावस्था के समाजों में तीरकमंच का हथियार शिकारी के पास देखने में आता है। परन्तु मनुष्यज्ञान की ज्यों ज्यों वृद्धि होती जाती है त्यों त्यों उसकी आवश्यकताएं और वासनाएं बढ़ती जाती हैं और उनकी तृप्ति के लिए वह भिन्न भिन्न कलाओं का आविष्कार करता रहता है। इस विषय में किसी सभ्य देश के मनुष्य और एक जंगली मनुष्य की रहनसहन का विचार करने से तुरन्त ही मालूम हो जायगा कि सभ्य देशों में कलाओं की कितनी उन्नति हुई है। परन्तु इन सब कलाओं को उपयुक्त कला कहते हैं और ललितकला इनसे भिन्न है। उपयुक्तकला और ललितकला का भेद 'उपयुक्त' और 'ललित' विशेषणों से अच्छी तरह व्यक्त होता है। जो वस्तुएं मनुष्य की आवश्यकताएं और वासनाएं पूरी करती हैं उन्हें हम उपयोगी या उपयुक्त कहते हैं। अतएव जो कला ऐसी उपयोगी वस्तुएं उत्पन्न करती है वे उपयुक्त कला हैं। और ललित शब्द का अर्थ सुन्दर है। इस लिए 'ललितकला' का शब्दार्थ यह हुआ कि "सुन्दर वस्तु-निर्माण करनेवाली कला"। अर्थात् सब ललितकलाओं का विषय सौन्दर्य हुआ। ललितकला चाहे जितनी भिन्न हों; और ललितकला-कोविदों की प्रतिकृतियों में चाहे जितना फर्क हो, उनकी साधन-सामग्री चाहे जो हो—सारांश, ललितकला, यों देखने में, परस्पर चाहे जितनी भिन्न देख पड़ें—तथापि उन सब की आत्मा एक ही है और वह आत्मा सौन्दर्य-प्रत्यय है। प्रत्येक ललितकला मनुष्य की सौन्दर्य भावना को उद्भूत करती है।

इस लिए ललितकलाओं का स्वरूप पूर्णतया ध्यान में आने के लिए हमें सौन्दर्य का थोड़ा सा विवरण करना चाहिए। परन्तु यह काम सहज नहीं है। प्रत्येक सहृदय मनुष्य स्वाभाविक ही कुछ न कुछ सौन्दर्य का परिचय रखता है। परन्तु पदार्थों का सौन्दर्य किस गुण पर अथवा किस स्वरूप पर अवलम्बित रहता है, यह बात शब्दों से व्यक्त करना कठिन है। क्योंकि यह विषय बुद्धिगम्य नहीं है, किन्तु भावना-गम्य है। अतएव कुछ ग्रन्थकार तो कहते हैं कि सुन्दरता की व्याख्या करना ही असम्भव है। उनकी राय है कि जिस तरह, कुछ गुणों की व्याख्या नहीं की जा सकती (... पदार्थ का मिठास ही लीजिए। मिठास गुण अनुभव से ही ... होता है। उसका शब्दज्ञान करा देना असम्भव है) उसी प्रकार सौन्दर्य का भी शब्दज्ञान करा देना असम्भव है। वह अनुभव से ही जानने योग्य है। अर्थात् उक्त ग्रन्थकारों का कथन है कि हम सौन्दर्य को, इससे अधिक और कोई उपपत्ति नहीं कर सकते कि यह कोई न कोई एक अवर्णनीय बात है। उनके कथन में कुछ तथ्यांश जरूर है। कोई मनुष्य जिस प्रकार किसी ... के सिद्धान्त का सप्रमाण और विश्वसनीय विवेचन कर सकता है उसी प्रकार यह नहीं बतला सकता कि अमुक वस्तु हमें सुन्दर क्यों भासती है। तथापि यह नहीं कहा जा सकता कि सौ... का विचार बिलकुल ही संदिग्ध है। और यह जरूर ही कहा जा सकता है कि उसका सामान्य स्वरूप क्या है, अथवा स... किसे नहीं सकते।

इसमें कोई ...
जगत् में हजारों ...
नहीं कहा जा स...
वस्तुएं बहुधा ...
भी स्वाभाविक ...
उपयोगिता का सम्बन्ध मनुष्य की वासनाओं और आवश्यकताओं से है। परन्तु सौन्दर्य का सम्बन्ध मनुष्य की वासनाओं या आवश्यकताओं से नहीं रहता।

इसी प्रकार आनन्ददायकता को भी सौन्दर्य नहीं कहते। सच है कि प्रत्येक सुन्दर वस्तु के दर्शन से प्राणिमात्र को आ... होता है; परन्तु आनन्ददायकता सौन्दर्य का परिणाम है—उ... कारण नहीं है। वस्तु इस लिए हमें आनन्द देती है कि वह सु... होती है; किन्तु वह इस लिए सुन्दर नहीं होती कि वह हमें आ... देती है। उपयोगिता की तरह वासनाओं और अवश्यकताओं ... आनन्द का विशेष सम्बन्ध है। मनुष्य की वासनाएं और आ...श्यकताएं पूर्ण हो जाने पर उसे आनन्द होता है। अतएव आ... सापेक्ष बात है। उसके उद्भव के लिए वासनाओं का पूर्ण अस्ति... अथवा प्रागभाव आवश्यक है; परन्तु सौन्दर्य का वैसा नहीं।

जिन वस्तुओं को हम सुन्दर समझते हैं उन पर जब हम ... रीति से नजर डालते हैं तब हमें उनमें कुछ बाहरी गुण ... पड़ते हैं।

सुन्दर वस्तुओं में ...
कोमलता आदि ...
एक प्रकार का ...
लीजिए—उदाहरणार्थ कोई सुन्दर पक्षी अथवा कोई सुन्दर फूल अथवा सुन्दर मोती या हीरा लीजिए—उस वस्तु में उपर्युक्त गुण ...नाधिक प्रमाण से होने ही चाहिए। परन्तु यह नहीं है कि ... का सौन्दर्य उसके इन बाहरी गुणों ही पर सर्वथा अवलम्बित ... सौन्दर्य गुण का मनुष्य के मन से अधिक निकट-सम्बन्ध है। प्रत्य... सुन्दर वस्तु मनुष्य को केवल आनन्द देती है। अर्थात् सु... वस्तु देखते ही मनुष्य आनन्दमय हो जाता है। यह नहीं कि ... वस्तु हमें चाहिए, अथवा उसके योग से हमारी किसी वासना ... तृप्ति होती है, अथवा उसके स्वामित्व से हमें आनन्द होता ... किन्तु सिर्फ उस वस्तु के दर्शनमात्र से हमारे मन को आनन्द हो... है। जिस प्रकार सूर्योदय होते ही सूर्य-कमल प्रफुल्लित होता ... अथवा चन्द्रोदय होते ही समुद्र उमड़ता है उसी प्रकार सुन्दर व... के दर्शन से मानवी मन प्रमुदित होता है! जब हम इसका वि... करते हैं कि यह ऐसा शुद्ध आनन्द क्यों होता है तब सौन्दर्य ... कुछ अधिक खुलासा होता है। जब हम किसी सुन्दर वस्तु को देख... हैं तब उसका स्वरूप हमारे मन में जम जाता है। अर्थात् हमा... जो यह कल्पना होती है कि अमुक वस्तु ऐसी होनी चाहिए, उस... इस दृश्य वस्तु की आकृति बिलकुल मिलती है। अर्थात् सुन्दर-व... दर्शन में मनुष्य की कल्पना और अवलोकन का अच्छा मेल बैठ... है। मानो, हमें ऐसा भास होता है कि, यदि हमें यह वस्तु बना... होती तो हमने यह ऐसी ही बनाई होती। इस प्रकार सुन्दर व... हमारे मन पर बैठने योग्य होती है; और हमें ऐसा जान पड़ता ... कि मानो हमारे मन में बैठने के लिए और हमें शुद्ध आनन्द देने ... लिए ही यह बनी है। सारांश, यद्यपि सृष्टि की वस्तुएं इस का... कारण-परम्परा का परिणाम होती हैं और उनका शास्त्रीय ज्ञा... इस कार्य-परम्परा के ढूंढ निकालने में रहता है, तथापि जब ... सृष्टि-वस्तुओं के सौन्दर्य-स्वरूप की ओर देखते हैं तब हमें यह ... पड़ता है कि सृष्टि का स्वरूप ऐसा ही बनाया गया है जो मान... कल्पना, उच्च भावना और उच्च ध्येय के लिए शोभा देने योग्य ... और कह सकते हैं कि इस सृष्टि और मानवी कल्पना के मेल से ... सौन्दर्य-भावना का उदय होता है।

सृष्टि की सम्पूर्ण वस्तुओं के सौंदर्य पहचानने की शक्ति को ...

अभिरुचि अथवा सहृदयता कहते हैं। यह अभिरुचि न्यूनाधिक प्रमाण से प्रत्येक मनुष्य में होती है। ऐसा मनुष्य विरलाही होगा जिसमें इस अभिरुचि-इस सहृदयता-का गंध भी न हो। सभ्य देश में सहृदयता का परिपोष अधिक पाया जाता है।

सृष्टि की प्रत्येक वस्तु में कुछ न कुछ सौन्दर्य भरा हुआ है। परन्तु, हाँ, सब को उसका भास नहीं होता। क्योंकि अभिरुचि कुछ स्थूल शक्ति है। जब किसी वस्तु में सौन्दर्य की मात्रा बहुत अधिक होती है, तभी इस शक्ति को उसका भास होता है; परन्तु यदि वह सौन्दर्य सूक्ष्म प्रमाण से हुआ तो फिर वह अभिरुचि शक्ति को नहीं देख पड़ता, अतएव, साधारण मनुष्य के लिये जो सौन्दर्य अगोचर है उसे सब के लिये सुगोचर कर देना ललितकलाओं का उद्देश्य है। ललित-कला-कोविद के लिये प्रतिभा शक्ति चाहिये। इस प्रतिभा शक्ति से वह सृष्टि का सौन्दर्य देखकर उसकी छाया अपनी कृति में उतारता है और उस कृति से फिर मनुष्य को आनन्द मालूम होता है, और उसी कृति को वह सुन्दर कहता है। सौन्दर्य की इस सर्वदेशीय व्यापकता के कारण, और प्रतिभा शक्ति की सक्षमता के कारण, सृष्टि का कोई भी अंश सच्चे ललित-कला-कोविद का विषय हो सकता है। चाहे जिस विषय पर कविता की जाय, पर यदि कवि सच्चा प्रतिभाशाली है, तो वह कविता उत्तम होनी ही चाहिये-और उसकी गणना ललितकृतियों में होनी ही है। जो बातें साधारण मनुष्य को नीरस, अरुचिकर और सौन्दर्यहीन जान पड़ती हैं उन्हींका सहृदय और प्रतिभाशाली कवि जो वर्णन कर देता है उसे प्रत्येक मनुष्य के मन को आनन्द होता है। अर्थात् कवि अपनी प्रतिभाशक्ति से जब उन वस्तुओं का अदृश्य सौन्दर्य प्रकट कर देता है तब वह मनुष्य की सामान्य अभिरुचि को भी पसन्द आ जाता है तथा उससे उसको परमानन्द आता है।

ऊपर जो विवेचन किया गया उससे ललितकलाओं का सामान्य स्वरूप कुछ न कुछ पाठकों के ध्यान में आया ही होगा। सृष्टि का अतीन्द्रियसौन्दर्य दृग्गोचर करना ललितकलाओं का उद्देश्य है। अतएव सृष्टि और ललितकलाओं का बहुत ही निकट-सम्बन्ध है और यह भी ध्यान में रखना चाहिये कि यद्यपि सृष्टिसौन्दर्य तथा ललितकलाओं का सौन्दर्य ये दो प्रकार सौन्दर्य, के माने जाते हैं तथापि ये दोनों परस्परावलम्बी हैं। उनका यह परस्परावलम्बित्व आगे के विवेचन और वर्णनों से ध्यान में आ जायगा।

सृष्टि के पदार्थ यद्यपि कार्य-कारण-परम्परा से बद्ध हैं, तथापि वे ऐसे भासते हैं जैसे स्वयंभूत हों, और इसी लिये वे हमें सुन्दर जान पड़ते हैं। परन्तु ललितकलाओं की कृतियाँ मनुष्यकृत होकर भी, ऐसी भासती हैं जैसे सृष्टिकृत हों और इसी लिये हम उन्हें सुन्दर कहते हैं। अब, यह स्पष्ट है कि कृत्रिम वस्तु सृष्टिकृत वस्तु के समान बनाने ही में ललितकला-कोविद का सच्चा कौशल है। यह बात आगे की बातों से स्पष्ट होगी।

दो चितेरे थे। दोनों में कौन उत्तम चितेरा है, इस पर दोनों में वाद-विवाद हुआ। निश्चय यह हुआ कि दोनों चितेरे एक एक चित्र तैयार करें और उन चित्रों की समानता से वाद विवाद का फैसला हो जाय। इसके अनुसार दोनों ने अपना अपना चित्र तैयार किया। पहले चितेरे ने अंगूर की एक ऐसी बेल बनाई जो पके हुए अंगूरों के गुच्छों से लदी हुई थी। वह बेल अपनी असली बेल से इतना सादृश्य रखती थी कि उस बेल और उन अंगूरों को असली समझ कर उस बेल पर पक्षी आने लगे। यह दृश्य दिखलाने के लिये वह चितेरा दूसरे चितेरे को अपने घर में बुला लाया और उसे, अपने चित्र से पक्षियों के धोखा खाने का दृश्य, दिखलाया और बड़ी युक्ति के साथ बोला, 'अब उत्तम चितेरा कौन है?' इस पर दूसरा बोला, 'सचमुच आपका चित्र बड़ा अच्छा है।' पहले ने कहा, 'अच्छा, अब आपका चित्र तो देखें चलें!' यह कह कर वे दोनों दूसरे चितेरे के यहाँ गये। घर पहुँचने पर पहले चितेरे ने दूसरे से पूछा, 'आपका चित्र कहाँ है?', दूसरे ने धीरे से उत्तर दिया, 'इस पड़दे के पीछे।' यह सुनते ही पहला चितेरा पड़दे को एक तरफ हटाने लगा। परन्तु पड़दा नहीं हटा। तब दूसरे चितेरे ने कहा, 'अब बतलाइये उत्तम चितेरा कौन है? आपके चित्र ने विचारहीन पक्षियों को ही धोखा दिया था; पर मेरे चित्र ने आपके समान चतुर चितेरे को भी धोखा दिया। यह पड़दा नहीं है, पड़दे का चित्र है।'

तब दूसरा चितेरा बोला, 'यह पड़दा नहीं है, पड़दे का चित्र है।'

अब, सौन्दर्य के उपर्युक्त संक्षिप्त विवरण से ललितकलाओं का साधारण स्वरूप पाठकों के ध्यान में आ जायगा और प्रवीण पाठकगण यह भी समझ जायँगे कि हमने इस लेख के प्रारम्भ में ललितकला कोविदों को 'नकलबाज' क्यों कहा था। सृष्टि की सुन्दर वस्तुएँ देखकर साधारण मनुष्य को आनन्द अवश्य होगा, परन्तु उसकी अभिरुचि के अनुसार उसके मन पर सुन्दरता की छाप नहीं बैठेगी, परन्तु प्रतिभावान मनुष्य के मन पर उस सुन्दरता की स्पष्ट और दृढ़ छाप बैठेगी। इतना ही नहीं, बल्कि उस सुन्दर वस्तु की प्रतिकृति करने की-अर्थात् अनुकरण या नकल करने की-उसमें बुद्धि भी आवेगी। फिर वह सौन्दर्य चाहे शब्द अथवा अक्षरकृति के द्वारा प्रतिबिम्बित करे, अथवा चित्रकृति के द्वारा प्रतिबिम्बित करे। हम ऊपर कह आये हैं कि ललित कला कोविदों में प्रतिभाशक्ति होती है। इसी शक्ति को कोई कोई कवि की कल्पनाशक्ति कहते हैं, इसी को कुछ लोग स्फूर्ति कहते हैं। यह शक्ति बुद्धि से भिन्न है। यह नहीं है कि इस शक्ति की उत्पत्ति कुछ खास निश्चित नियमानुसार होती हो। बुद्धिवाद शास्त्र प्रत्येक मनुष्य को सिखलाये जा सकते हैं। हाँ उस मनुष्य की धारणाशक्ति के अनुसार उसका न्यूनाधिक ज्ञान, बस। बुद्धिवाद ज्ञान के लिये ग्रन्थ में कई निश्चित नियम रहते हैं, उनके अनुसार चलने से वह ज्ञान मनुष्य को प्राप्त हो जाता है। परन्तु प्रतिभा की शक्ति जन्म से ही होती है वह ईश्वरी

वरदान मनुष्य अपने साथ ही लाता है। अध्ययन से, अभ्यास से, अवलोकन से और आदत से उसकी वृद्धि अवश्य होगी; परन्तु जो मनुष्य यह प्रतिभाशक्ति अपने साथ नहीं लाया वह कलाविद् कदापि नहीं हो सकता। जिसमें कवितास्फूर्ति नहीं है वह चाहे जितना प्रयत्न करे, पर सच्चा कवि नहीं बन सकता। काव्य के नियम देख कर, बड़े प्रयास से तुकबन्दी करते हुए, चाहे वह बहुत से पद्य लिखता चला जाय; पर उसके उन पद्यों को काव्य की पदवी कभी नहीं मिल सकती।

अब हम थोड़ा सा इसका विचार करते हैं कि ललितकला कितनी हैं और उनका वर्गीकरण कैसा किया गया है। सामान्यत पाँच ललितकला मानने की चाल है। और ललितकलाओं का सामान्य स्वरूप देखने से यही जान भी पड़ता है कि मुख्य कला पाँच ही हैं। एक दो और भी हैं; पर गौण होने के कारण उनका भी इन्हीं पाँच में अन्तर्भाव किया जाता है। इन पाँचों की एक प्रकार की परम्परा ही है। अर्थात् ये जड़ से चित् की ओर उत्तरोत्तर चढ़ती गई हैं। वे पाँच कला ये हैं:-शिल्पकला, मूर्तिकला, चित्रकला, संगीतकला और साहित्यकला। नृत्य का संगीत में अन्तर्भाव किया जाता है और नाट्यकला को साहित्य में लेते हैं।

इन कलाओं का वर्गीकरण भिन्न भिन्न विचारों से किया गया है। सृष्टिसौन्दर्य को मूर्त स्वरूप देना ही सब कलाओं का उद्देश्य रहता है और उस सौन्दर्य का आकलन नेत्र और कर्ण, जो सब इन्द्रियों में श्रेष्ठ हैं, के द्वारा किया जाता है। इन इन्द्रियों के विचार से सब ललित कलाओं के दो वर्ग होते हैं—दृश्यकला और श्राव्यकला। जिस कला की कृति नेत्रों से देखी जा सकती है-जिसके द्वारा सौन्दर्य दृष्टि-ग्राह्य होता है-उसे दृश्यकला कह सकते हैं। इस व्याख्या के अनुसार शिल्पकला, मूर्तिकला, और चित्रकला, ये दृश्यकला में आती हैं। और साहित्य तथा संगीत का श्राव्यकलाओं में अन्तर्भाव होता है।

और एक दूसरे प्रकार से भी ललितकलाओं का वर्गीकरण किया जाता है। वह इस . . . . ललितकलाओं का . . . . को जो सौन्दर्य देख पड़ता है उस सौन्दर्य का ज्ञान, उसे सर्वसाधारण को कर देना होता है। अर्थात् एक प्रकार से कला कोविद को अपने मन की कल्पना, विचार, अथवा ज्ञान, दूसरे को बतलाना होता है। और इस प्रकार के अन्तर्विचार दूसरे पर व्यक्त करने के भिन्न भिन्न साधन हैं। उन साधनों का उपयोग करके कला-कोविद अपनी कृति निर्माण करता है। अब, अमूर्त विचारों को व्यक्त करने के लिए मनुष्य के पास कौन साधन हैं? शब्द, आकार या आविर्भाव, और स्वर। इस साधनत्रय के कारण ललितकलाओं के भी तीन वर्ग होते हैं। साहित्यकला का साधन शब्द है। शिल्पकला मूर्तिकला और चित्रकला का साधन आकार या आविर्भाव है और साहित्य का साधन स्वर है।

वर्गीकरण की ये दो रीतियाँ, जो ऊपर बतलाई, उनका कुछ बहुत बड़ा उपयोग नहीं है। क्योंकि वर्गीकरण का महत्व वहीं होता है जहां हजारों वस्तुओं का शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त करना होता है। वनस्पतिशास्त्र और प्राणिशास्त्र में वर्गीकरण किये बिना कभी काम नहीं चल सकता। ललितकलाओं का कुछ वैसा हाल नहीं है। वे बहुत थोड़ी हैं। परन्तु ये वर्गीकरण यहां सिर्फ इसी लिए बतलाये गये हैं कि इनसे ललितकलाओं का सामान्य स्वरूप कुछ अधिक स्पष्टता से मालूम होता है और ललितकला तथा उपयुक्तकला का भेद साफ तौर से ध्यान में आ जाता है। उदाहरणार्थ, दृश्य और श्राव्य के वर्गीकरण से हम यह समझ सकते हैं कि ललितकलाओं का सम्बन्ध नेत्र और कान, दो इन्द्रियों से है। अर्थात् ललितकलाओं का विषय नेत्र और कान से ग्रहण किया जाता है। अन्य इन्द्रियों से उसका सम्बन्ध नहीं पड़ता। अन्य इन्द्रियों के विषय हमें आनन्द देते होंगे; परन्तु उन्हें सुन्दर या ललित नहीं कह सकते। हमारी रसनेन्द्रिय को मीठे पदार्थ पसन्द आवेंगे; परन्तु पदार्थ चाहे जितना मीठा हो, वह सुन्दर नहीं कहा जाता। सारांश, सुन्दरता की कल्पना ज्ञान की ही तरह उच्च-इन्द्रिय-गम्य है और इसी लिए, जो विषयवासनाएं कहलाती हैं उनमें सौन्दर्य का अन्तर्भाव नहीं होता। ब्रह्मानन्द की तरह अथवा ज्ञानानन्द की तरह ललितकलाओं से होनेवाला आनन्द ऊंचे दर्जे का है। वह क्षणिक नहीं है, अनित्य नहीं है, क्षणभंगुर नहीं है; किन्तु ज्ञान की तरह, ब्रह्मसाक्षात्कार की तरह, नित्य और शाश्वत है। यह बात हम वर्गीकरण के तत्व से जान पड़ती है। इसी प्रकार दूसरे वर्गीकरण से मालूम होता है कि सारी ललितकलाएं एक प्रकार की भाषाएँ हैं। जिस प्रकार एक मनुष्य अपने मन के गूढ़ विचार भाषा के द्वारा दूसरे पर प्रकट करता है उसी प्रकार कला कोविद अपनी कृति से अपना हृदय सारे जगत् को बतलाता रहता है। कवि का हृदय उसके काव्य में भरा रहता है। चित्रकार अपना हृदय अपनी उत्तम कृति में प्रतिबिम्बित करता है। शिल्पी अपना हृदय अपनी सुन्दर इमारत दिखलाता है। मूर्तिकार अपनी भव्य मूर्ति से वह हमें बतलाता और गायक अपना आवाज से हम पर प्रगट करता है।

. . . . : ही प्रत्येक सहृदय . . . . अभिरुचि करते हैं। . . . . विलक्षण आनन्द . . . . से हम सारे जगत् का मालूम होता है। अस्तु।

परन्तु यहां पर ऐसा प्रश्न उठेगा कि ललितकला कोविद यदि प्रत्येक पुरुष के लिए साध्य नहीं है तो साधारण जन को विषय का क्या उपयोग है? इसका उत्तर यह है कि इस विषय थोड़ा बहुत ज्ञान प्रत्येक मनुष्य को चाहिए; और प्रत्येक मनुष्य सृष्टि-सौंदर्य और ललितकला-सौन्दर्य की अभिरुचि चाहिए। . . . रूप से यह सब लोगों में होती है। परन्तु उसे उद्भूत करने . . . मनुष्य को सृष्टिसौन्दर्य और ललितकलासौन्दर्य पर मन होता है-एक प्रकार का इसका व्यसन लगाना होता है। इस का व्यसन हुए बिना यह नहीं कहा जा सकता कि . . . हुआ। ललितकला--विषयक प्रीति एक सुसंस्कृत मनुष्य . . . है। इतना ही नहीं, किन्तु आर्य लोग उसे मनुष्यत्व . . . समझते आये हैं। यह बात नीचे लिखे हुए सुप्रसिद्ध सुभाषित सिद्ध होती है:-

" साहित्यसंगीतकलाविहीनः। साक्षात् पशुः पुच्छविषाणहीनः
तृणन्न खादन्नपि जीवमानः। तद्भागधेयं परमं पशूनाम।

दूसरे एक सुभाषित में 'विद्याविहीनाः पशुभि समानः' है और तीसरे एक में 'धर्मो हि तेषां अधिको विशेषः। धर्मेणहीनः पशुभिः समानः॥' कहा है। यहां पर धर्म का रूढ़ अर्थ न लेते हुए यौगिक अर्थ लेना चाहिये; अर्थात् उसमें मनुष्य के . . . कर्तव्यबुद्धि आदि का अन्तर्भाव होता है। अब, ये सुभाषित एक जगह करने से मनुष्य का त्रिगुणात्मक . . . बनता है। वह यह है:-"विद्याकलाधर्मविदो मानव" अब, यह मनुष्य के विशिष्ट गुण का वर्णन प्रसिद्ध ग्रीक तत्ववेत्ता आरिस्टाटल के वर्णन से बिलकुल मिलता है। उसने भी यही कहा है कि ज्ञान, शील और कला यही तीन मनुष्य के विशिष्ट गुण हैं। इससे यह जान पड़ता है कि कलाओं का कैसा महत्व है। जिस जिस देश का सुधार हुआ है वहां वहां ललितकलाओं की उन्नति अवश्य हुई है। प्राचीन काल में ग्रीक लोग सुधार के शिखर पर पहुँचे हुए थे। इस कारण उन लोगों में ललितकलाओं की विलक्षण वृद्धि हो गयी थी। शिल्पकला और मूर्तिकला के विषय में ग्रीक लोगों की बड़ी ही . . . हुई और ग्रीक लोगों के बनाये हुए सुन्दर मन्दिर तथा उनकी . . . हुई मूर्तियां आज भी सर्वोत्कृष्ट मानी जाती हैं। ग्रीक लोगों जैसे ललितकला-कोविद शिल्पकार और मूर्तिकार हो गये . . . आज तक नहीं हुए। ग्रीक कवि और साहित्यकार भी बहुत प्रसिद्ध हैं। इस प्रकार, सुधार किये हुए ग्रीक लोगों में ललितकलाओं की उन्नति, और उनके विषय में प्रीति भी, बहुजनसमाज में बहुत बढ़ी हुई थी-सार्वत्रिक हो गई थी। आज कल के यूरप में भी शास्त्रज्ञान के प्रचार के साथ साथ ललितकलाओं का विस्तार हुआ है-और हो रहा है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि हमारे भारतवर्ष में भी किसी समय इन सब कलाओं में बहुत ही उन्नति हुई थी। इस बात के जीवित स्मारक भारतवर्ष में जगह जगह मिलते हैं। भारतवर्ष पर सृष्टिदेवी की भी अच्छी कृपा है। अतएव इस देश में सृष्टिसौन्दर्य के उदाहरणों की कमी नहीं है।

परन्तु दुर्भाग्य की बात है कि, इधर कुछ काल से, अज्ञानयुग में ललितकलासम्बन्धी हमारी अभिरुचि नष्ट हो गई थी। हमारे पूर्वज ऋषियों का सृष्टिसौन्दर्य और ललितकलाओं पर बड़ा प्रेम था। इस बात के अनेकों प्रमाण दिये जा सकते हैं। परन्तु भारतवर्ष की संस्कृति का जब पतन शुरू हुआ और चारों ओर अज्ञान फैल गया तब जैसे जैसे भारतीय लोग विद्याविहीन हुए वैसे वैसे वे कला विहीन भी हुए। बाद को ज्यों ज्यों, अँगरेजी राज्य के कारण, यहां फिर विद्या का प्रकाश होने लगा और लोगों का विद्या-विषयक प्रेम बढ़ने लगा त्यों त्यों अब शिक्षित लोगों में, न्यूनाधिक प्रमाण में ललितकला-विषयक तथा सृष्टिसौन्दर्यसम्बन्धी प्रेम जागृत होने लगा है, यह बड़े आनन्द की बात है। भारत में सृष्टिसौन्दर्य और ललितकला-सौन्दर्य की बिलकुल ही कमी नहीं है। विद्या प्राप्त करके हमें भारत के भिन्न भिन्न भागों का सृष्टिसौन्दर्य निरीक्षण करना चाहिये। प्रत्येक पुरुष को चाहिये कि वह बुढ़ापे में यात्रा करने न जा कर युवावस्था में ही यात्रा किया करे, इससे सृष्टिसौन्दर्यविषयक प्रीति स्वाभाविकही पैदा होगी। हम हृदय से चाहते हैं कि सृष्टिसौन्दर्य और ललितकलाओं की प्रीति हमारे नवयुवक पुरुषों में उत्पन्न हो।

सिंहाचलम् के प्रसिद्ध दृश्य ।

सिंहाचलम् के श्रीवराहनृसिंह–मन्दिर के सामनेवाले गरुडस्तम्भ का दृश्य ।

श्रीवराहनृसिंहजी का मन्दिर ।

मेनावली में कृष्णातट पर नानाफड़नवीस का बनवाया हुआ घाट ।

स्वर्गवासिनी श्रीमती जमनाबाई साहब गायकवाड़ की देवपूजा ।

भी उछलती है। इसी उछाल पर अथवा हवा के लचीलेपन पर ही अधिकांश में, पक्षियों का उड़ना अवलम्बित है यह लचीलापन पानी में नहीं है। क्योंकि पानी दाबने से दबता नहीं है, और इसी लिए [illegible] है। पानी और हवा के [illegible] में रखना चाहिए। पक्षी [illegible] पंखों के नीचे की हवा [illegible] ती है और इस उछाल का ही पक्षियों को उपयोग होता है। पंखों से हवा दाब कर पक्षी हवा की उछाल उत्पन्न करता है। जितने जोर से पक्षी पंख दबाता है उतने ही जोर से यह उछाल पैदा होती है।

मि० वैरन डी० केटर्स (यानक) मैसूर-महाराज को दुपत्ती यान की रचना समझा रहे हैं।

आकृति न० ३ मे मैसूर महाराज जिस दुपत्ती यान को देख [रहे] हैं उसका हवा में संचार।

पहले, बोट का विवेचन करते समय बतलाया जा चुका है कि बोट चलानेवाला लग्गी, बल्लियां, हत्थे, इन चार साधनो का उपयोग बोट चलाने मे करता है। पाल का उपयोग बतलाया ही जा चुका है। हत्थों का उपयोग बोट की दिशा बदलने में होता है। बाकी बचे लग्गी और बल्लियां। बांस की लम्बी और सीधी लकड़ी को लग्गी कहते हैं। बोट को किनारे से चलाते समय इसका उपयोग किया जाता है। किनारे की चट्टान पर इस लकड़ी के नीचे का सिरा रख कर जब ऊपर के सिरे पर जोर दिया जाता है तब बोट आगे सरकता है। जहां पानी उथला होता है वहां पानी में जमीन पर यह लकड़ी टेकी जाती है और ऊपर के सिरे पर जोर दिया जाता है, तब बोट अपनी जगह से चलता है। जब यह लग्गी पानी में जमीन तक नहीं पहुँचती है तब बल्लियों का उपयोग किया जाता है। उथली खाड़ी में सिर्फ लग्गी के ही सहारे से डोंगी एक सिरे से दूसरे सिरे तक पहुँचाई जाती है। गहरे पानी में जहां लकड़ी जमीन तक नहीं पहुँचती वहां लग्गी नहीं लगती और बल्लियों का ही उपयोग करना पड़ता है। बल्ली लगाने और लग्गी लगाने दोनों में एक ही तत्व है। यह तत्व समझने के लिये यंत्रशास्त्र के दो शब्द मालूम होने चाहिये। ये शब्द 'आट' और 'सहारा' हैं।

एकपाती यान के सामने दिखनेवाली मुख्य पतली के आगे रहनेवाला पंखा।

जब कोई बड़ा पत्थर उठाना होता है तब सहारे का उपयोग करते हैं। सहारे की जगह पर एक छोटा सा बांस या मामूली सब्बल लगाते हैं। जिस पत्थर को उठाना होता है उसके नीचे सब्बल का सिरा डाल कर उस सिरे से थोड़े अन्तर पर एक छोटा सा पत्थर रखते हैं और उस पर सब्बल से जोर देते हैं। इस छोटे पत्थर को ही आट कहते हैं। आट का पत्थर जितना कठिन होगा उतना ही अच्छा। नरम पत्थर की आट टिक नहीं सकती। सब्बल के दूसरे सिरे से हाथ से जोर डाल कर आट की सहायता से चाहे जितना बड़ा पत्थर उठा सकते हैं। बड़ा पत्थर जितने कम व ज्यादा वजन का होगा उतने ही हिसाब से आट आगे पीछे सरकानी पड़ेगी। आट और सहारे का नियम यह है कि आट से उस पत्थर के अन्तर और पत्थर के वजन का गुणनफल और आट से लेकर सहारे के दूसरे सिरे तक के अन्तर और हाथ के जोर का गुणनफल बिलकुल एक होगा। आट का स्थान और जोर [illegible] की जगह बदलने पर आट और सहारे की, भिन्न भिन्न तीन [illegible] होती हैं—तथापि उनके उपर्युक्त नियम में कुछ भी अन्तर [नहीं] पड़ता. यह बात यंत्रशास्त्र की थोड़ी सी भी जानकारी रखने[वालों] को मालूम होगी। हमें यहां सिर्फ इतना ही देखना है कि आट [की] तरह हवा और पानी का उपयोग कैसे होता है।

आट के बिना स[हारे] से जोर नहीं लगा स[कते]। लग्गी लगाते स[मय] लकड़ी को जमीन [पर] टेक कर जोर लगा[ते] हैं। इस जगह [ल]कड़ी के सहारे का [उप]योग होता है। बल्ली [चला]ते समय वह जमी[न] में नहीं लगती। वह स[दा] पानी में ही रहती [है]। अर्थात् जमीन के ब[दले] आट की जगह पर पा[नी] ही का उपयोग होता [है]। बल्ली का मुंह पानी [में] डुबा कर उसके दू[सरे] सिरे में जोर लगा[ना] पड़ता है। बल्ली के मुंह में पानी लगा रहता है और यहीं आट की जगह पानी का उपयोग होता है। पानी की तरह आट की [जगह] हवा का भी उपयोग किया जा सकता है। जमीन घन पदार्थ [है] तथा हवा और पानी प्रवाही पदार्थ हैं। तुलनात्मक दृष्टि से विचा[र] करते हुए, जिस प्रकार कालिदास ने मृगया का वर्णन करने में [चल] ('लक्ष्य चले') शब्द का उपयोग किया है, उसी प्रकार जमीन को अचल अथवा स्थिर, आट, और पानी तथा हवा को चल अथवा अस्थिर आट कह सकते हैं।

जमीन, पानी और हवा:—अथवा घनरूप, द्रवरूप और वा[युरूप]

रूप पदार्थों का विचार करते समय एक और बात ध्यान में रखनी चाहिए। घन पदार्थों के कण एक दूसरे से जमे रहते हैं; परन्तु द्रव-रूप तथा वायुरूप पदार्थों के कण एक दूसरे से सहज ही में अलग किये जा सकते हैं। जमीन लकडी से खींच कर फाडी नहीं जा सकती; अच्छा यदि फट भी गई तो फिर वे भाग एक दूसरे से जोडे नहीं जा सकते, उसी दशा में रहते हैं। परन्तु पानी या हवा लकडी से सहज ही खींची जा सकती है; और लकडी से खींचे हुए भाग आप ही आप फिर एक दूसरे से आ मिलते हैं; यहां तक कि यह भी नहीं समझ पडता कि लकडी से पानी कहां खींचा गया। लोहा लकडी, पानी और हवा इन तीनों से भारी है। लोहे का छोटा सा टुकडा जब हम किसी लकडी के टेबल पर डालते हैं तब टेबल का तख्ता उसे अपने बीच से नहीं जाने देता। परन्तु वही टुकडा जब हम पानी और हवा में डालते हैं तब ये दोनों प्रवाही पदार्थ उसे स्थान दे देते हैं और वह टुकडा तुरन्त ही नीचे गिर पडता है, इतने इन दोनों प्रवाही पदार्थों के कण भिन्न भिन्न हैं। स्थलचर, जलचर और वायुचर प्राणियों के अवयव ईश्वर ने ऐसे ही बनाये हैं जो जमीन, पानी और हवा में संचार करने योग्य हैं। आर जैसी ही कठिन या नरम होगी उसी हिसाब से प्राणियों के अवयव कठिन या नरम होंगे। घोडे की टाप कठिन होती है, पक्षी का पंख नरम होता है।

कोई भी जड पदार्थ जब हवा में गिरता है तब वह अपने वजन से अपने नीचे की हवा दाबता है। परन्तु हवा के कण दूर हट कर उस पदार्थ को स्थान देते हैं और वह पदार्थ नीचे गिर पडता है। जब हम लोहे का कोई खोला हवा में डालते हैं तो वह तुरन्त ही नीचे गिर पडता है। परन्तु उसी खोल का बिलकुल पतला पत्र बनाकर यदि वह हवा में आडा डाला जाय तो एकदम वह नीचे नहीं आवेगा। उसको नीचे आने में खोले की अपेक्षा कुछ न कुछ अधिक समय अवश्य लगेगा। खोले की तरह पत्र भी अपने वजन से अपने नीचे की हवा दाबता है और हवा के कण अलग हट कर उसे जगह देते हैं। खोले के नीचे जितनी हवा रहती है उससे कहीं अधिक हवा पत्र के नीचे रहती है। इस लिए पत्र का वजन बहुत सी हवा पर बंट जाता है, इस कारण खोले के नीचे की हवा पर जितना दबाव पडता है उतना दबाव पत्र के नीचे वाली हवा पर नहीं पडता। इसके सिवाय खोले के नीचे की हवा से पत्र के नीचे की हवा बहुत अधिक होती है, अतएव उतनी हवा हट कर पत्र को जगह मिलने में देर लगती है। इससे पत्तल का महत्व ध्यान में आ जायगा। पत्र किंवा पत्तल यदि हवा में वेग से जाता होगा तो पत्र के नीचे की हवा हट कर, पत्र के नीचे गिरने को बिलकुल समय ही न मिलेगा, क्योंकि वह पत्र क्षण क्षण भर में भिन्न भिन्न हवा पर से जायगा। पत्र अथवा पत्तल का वेग जैसा अधिक होगा उसी हिसाब से हवा में उसका ठहरना सहज होगा। बायसिकल धीरे धीरे चलाते समय तोल सम्हालना कठिन होता है, पर वही जब हम वेग से चलाते हैं तब तोल सम्हालना बहुत ही सहज होता है।

उपर्युक्त विवेचन से मालूम हो जायगा कि किसी विशिष्ट योजना से जड पदार्थ भी हवा में ठहराये जा सकते हैं। पिछले एक लेख में गति और पत्तल का उल्लेख हो ही चुका है। किन्तु समझने के लिये उसीका कुछ अधिक विस्तार करना चाहिये। ऊपर के खोले का ही उदाहरण लेते हैं। कल्पना करो कि उस खोले का वजन छै तोले है। उस खोले से एक वर्ग-फुट क्षेत्रफल का पतला पत्र बनाया गया। उस पत्र को जब हम हवा में डालेंगे तब उसके नीचे एक वर्ग-फुट जगह आवेगी। इतनी जगह की हवा छै तोले के वजन से दाबी जायगा। अब कल्पना करो कि इतनी हवा अलग हट कर पत्र के नीचे आने में एक सेकंड का समय लगेगा। एक वर्गफुट हवा दूर हट कर पत्र के नीचे आने में खोले की अपेक्षा अधिक समय लगता है। इस उदाहरण में, पत्र को ठहराने के लिये, पत्र के नीचे की हवा की एक वर्गफुट जगह उपयोगी होती है, अर्थात् पत्र को एक वर्गफुट जगह का आधार होता है। पत्र जितना बडा होगा उसी हिसाब से यह आधार बडा होगा। पत्र यदि गतिवान् होगा तो पत्र का क्षेत्रफल तो न बढेगा, किन्तु आधार की जगह अवश्य ही बहुत सी बढ जायगी। पत्र अथवा पतली जितनी जगह में संचार करती है उतनी ही उसके आधार की जगह बनती है। कल्पना करो कि एक वर्गफुट पत्र की गति प्रति सेकंड दस फीट है। अब चूंकि पत्र की गति प्रति सेकंड दस फीट है, इस लिये पत्र एक सेकंड में हवा की दस वर्ग-फीट जगह से जायगा। अर्थात् पत्र के ठहराने के लिये हवा की दस वर्गफीट जगह का उपयोग होगा। पहले एक-दशांश सेकंड में पत्र जिस हवा पर होगा वह हवा दूर हट कर पत्र को नीचे गिरने के लिये जगह देगी कि इतने ही में पत्र वह जगह छोड कर, दूसरे एक दशांश सेकंड में, पहली हवा के आगेवाली एक वर्गफुट जगह को व्याप्त करेगा; वह हवा हट कर ज्योंही पत्र को गिरने के लिये जगह देने लगेगी त्योंही पत्र अगली एक वर्गफुट जगह पर जायगा। इस प्रकार पत्र एक सेकंड में दस वर्गफीट जगह पर से जायगा। अर्थात् यह दस वर्गफीट जगह पत्र सम्हालने के लिये उपयोगी होगी अथवा यों कहिये कि पत्र के लिये दस वर्गफीट जगह का आधार होगा। इससे यह ध्यान में आ जायगा कि कोई गतिमान पतली जितने थोडे समय में जितनी अधिक जगह पर से जायगी उसी हिसाब से उसको ठहरानेवाला आधार होगा। इससे यह समझ में आ जायगा कि किसी मक्खी अथवा किसी पक्षी के पंख चाहे जितने छोटे हों, तथापि यदि उनकी गति बहुत वेग होगी तो वे थोडे ही समय में बहुत सी जगह में फर जावेंगे। अर्थात् हवा में ठहरने का काम वे भी कर सकेंगे। तात्पर्य, पतली और गति का प्रमाण उचित होना चाहिये, अर्थात् पतली बडी तो गति कम, और पतली छोटी तो गति अधिक।

डुपली यान का हवा में संचार—नजदीक और दूर से दिखने वाले दृश्य।

भारी या हलका—इस जगह बडे महत्व का प्रश्न उठता है। वह यह कि हवा में संचार करने का साधन हवा से भारी होना चाहिये या उससे हलका? साधारण लोग समझते होंगे यह साधन हवा से हलका होना चाहिये। हलका होने ही से वह हवा में उड सकता है, भारी नहीं उड सकता। यदि सिर्फ उद्देश ही की दृष्टि से देखा जाय तो उनकी यह समझ ठीक है, और वाष्पोड्डान बलून, इत्यादि साधन हवा, से भार हलका हिसाब भी ठीक है। पर यदि हम सृष्टि से यह प्रश्न करते हैं कि हवा में संचार करने का साधन हलका होना चाहिये या भारी, तो सृष्टि इसका दूसरा ही उत्तर देती है। सृष्टि का मत यह उत्तर देता है कि यह साधन
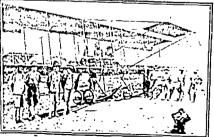
यह वायु-यान औरंगाबाद में संचार के लिए निकल रहा है।

भारी होना चाहिये। मक्खी, डांस, चमगीदड़, पक्षी, आदि हवा में उड़नेवाले अनेक प्राणी सृष्टि ने निर्माण किये हैं। परन्तु इनमें प्रत्येक प्राणी हवा से भारी है। हवा से हलका एक भी प्राणी सृष्टि ने नहीं पैदा किया। हवा में उड़ने का मनुष्यकृत साधन विमान है और यह उससे हलका है। ईश्वर-निर्मित साधन पक्षी है, जो हवा से भारी है। अतएव दो बातें परस्पर-विरुद्ध देख पड़ती हैं। विमान को हवा की अपेक्षा हलका बनाये बिना मनुष्य का उपाय ही नहीं चलता था। सृष्टि को हलकेपन की जरा भी जरूरत नहीं पड़ी। मनुष्यकृत विमान बड़ा है। ईश्वरनिर्मित विमान छोटा है। मनुष्यकृत विमान, सिर्फ खड़ा हुआ, नीचे या ऊपर जा सकता है। ईश्वरनिर्मित विमान चाहे जिस दिशा को जा सकता है। मनुष्यकृत विमान हवा के सामने पंगु ठहरता है। ईश्वरनिर्मित विमान हवा को अपने वश में रखता है। इसका कारण यही है कि मनुष्यकृत विमान निर्जीव है और ईश्वरनिर्मित विमान सजीव है। मनुष्य का विमान स्वयं कुछ भी नहीं कर सकता; ईश्वरनिर्मित विमान सब कुछ कर सकता है। मनुष्यकृत विमान हवा अपने वश में नहीं रख सकता; हवा पर सवार नहीं हो सकता; हवा के छोटे से झोंके पर भी वह अपना अधिकार नहीं जमा सकता, अतएव हवा के सामने वह बिलकुल दीन हो जाता है। ईश्वरनिर्मित विमान के जीव है, इच्छाशक्ति है, वह हवा को अपने वश में रख सकता है; वह हवा पर सवार हो सकता है, चाहे जितनी हवा आवे, वह उसकी परवा नहीं करता। मनुष्य का विमान हलका है, इस कारण वह उड़ता है; ईश्वरनिर्मित विमान भारी है, इस लिये हवा से वह अपने को उड़वाता है। इससे यह ध्यान में आ जायगा कि मनुष्य यदि हवा में मनमाने तौर पर संचार करना चाहे तो उसे अपने विमान में सुधार करना होगा। अब, इस सुधार का आदि तत्व यह है कि मनुष्य के विमान को, हवा को अपने वश में करने की युक्ति जानना चाहिये, उसे हवा पर सवार होना जानना चाहिये, हवा को प्रबल होने के लिये किसी प्रकार का अवकाश न देना चाहिये। यह सब तब हो सकता है जब विमान में शक्ति पैदा की जाय और वह उस शक्ति का उपयोग पक्षियों की तरह कर सके। अपना विमान सुधारते समय मनुष्य को ईश्वरनिर्मित विमान का अनुकरण करना चाहिये। सृष्टि के नियमों का यदि अनुकरण करना हो तो, फिर बाहर से देखने में चाहे जितना विरुद्ध देख पड़े, मनुष्य को अपना विमान हवा से भारी करना चाहिये और किसी न किसी उपाय से उसमें शक्ति और ला देना चाहिये। यह बात सच है कि मनुष्य उसमें जीव नहीं डाल सकता, तथापि उसमें किसी ऐसी शक्ति की योजना करना चाहिये कि जिससे हवा वश में रखी जा सके। अर्थात् उड़ने या उड़वाने अथवा सम्हलने का भेद ध्यान में रहना चाहिये। विमान हवा में उड़ता है; पर पक्षी हवा के द्वारा अपने को उड़वाता है-अथवा यों कहिये कि वह हवा में सम्हलता है। निर्जीव विमान को हवा के अनुकूल उड़ना पड़ता है; परन्तु पक्षी अपनी इच्छानुसार हवा में सम्हलता है। खुद उड़ने में उदासीनता और दुर्बलता देख पड़ती है, परन्तु सम्हलने में उत्साह और देख पड़ती है। उड़ने में शक्ति का उपयोग नहीं। सम्हलने में ... का उपयोग करना पड़ता है। मनुष्य को अपने विमान का ... करना हो तो, सिर्फ उड़ने से काम नहीं चलेगा; सम्हलना आ... चाहिये।

वजन चाहे जितना विरुद्ध देख पड़े, तथापि हवा में उड़ने लिए वह आवश्यक है। यह सच है कि जहां तक हो सके हवा संचार करने का साधन कम वजन का होना चाहिए। मनुष्य यह अड़चन मालूम होती थी कि प्रायः सब पदार्थ हवा की अ... भारी होते हैं। परन्तु ज्योंही हाइड्रोजन और कोलगैस के स... हवा से हलके पदार्थ मनुष्य को मिले त्योंही उसने विमान ... किया। जब तक हलका पदार्थ मनुष्य को नहीं मिला तब तक ... मार्ग-प्रतीक्षा करनी पड़ी। परन्तु भारी पदार्थों के वजन की ... अड़चन ईश्वर को नहीं मालूम हुई। इन हलके पदार्थों का ... न करते हुए परमात्मा ने जड़ पदार्थों से ही हवा में ... प्राणी तैयार किये हैं। भारी और हलके पदार्थों की बेसमझी से मनुष्य इस गड़बड़ी में पड़ा। अब पक्षी के शरीर का अध्ययन से यह गड़बड़ी दूर होने लगी है। उससे ऐसा जान पड़ता है वास्तव में यान, जहां तक हो सके, कम भारी होना चाहिए; ... जब हम हवा के व्याप से तुलना करते हैं तब मालूम होता है हवा से वह कुछ न कुछ भारी अवश्य होना चाहिए। पक्षी ... हवा से हलका हो तो वह उड़ ही नहीं सकता। हवा का ... सा झोंका भी उसे वायुमण्डल के बिलकुल बाहर फेंक देगा। ... ड्रोजन या कोलगैस की सहायता से मनुष्य ने जो अपना ... विमान तैयार किया है वह भी वास्तव में भारी ही है। फर्क ... ही है कि कुछ विशिष्ट ऊँचाई की हवा से वह हलका है। ... मंडल की चाहे जिस ऊँचाई को हवा से विमान हलका हो ... वायुमंडल से बिलकुल बाहर निकल जायगा, वायुमण्डल में उस ... रहना ही सम्भव नहीं। पानी में तैरनेवाली मछलियों के सम... में भी लोगों की ऐसी ही बेसमझी है। मछली भी पानी से हल... नहीं होती; वह पानी की अपेक्षा भारी होती है, इसी लिए ... में रह सकती है। पतंग भी हवा से भारी होती है, इसी कारण ... उड़ाई जा सकती है। ऊपर की सब बातों का विचार करने पर ... पड़ता है कि विमान का सुधार करते समय तीन बातें ध्यान ... रखनी चाहिए:-(१) जहां तक हो सके, विमान छोटा, कम वजन ... तथापि हवा से कुछ न कुछ भारी होना चाहिए; (२) विमान ... ही यथासम्भव हलके-से एंजिन के समान शक्ति की योजना ... जानी चाहिए; (३) पतली अथवा कृत्रिम पंखों को हिलाने में ... शक्ति का उपयोग होना चाहिए। इसमें कोई सन्देह नहीं कि ... सुधार करते ही विमान को यान का स्वरूप प्राप्त हो जायगा।

अगले लेख में 'पानी में तैरने और हवा में उड़ने' की तुल... करके हम पक्षी के शरीर की रचना का विस्तृत विवेचन करेंगे।

साहित्यचर्चा।

१ सीताचरितः—लेखक पं० रामजीलाल शर्मा। प्रकाशक इंडियन प्रेस, प्रयाग। पृष्ठसंख्या २३४। कागज, छपाई और जिल्द बहुत बढ़िया। कई सुन्दर चित्रों से सुशोभित। मूल्य १।) रु०।

यों तो महात्मा तुलसीदासजी की कृपा से महाराज रामचंद्रजी के साथ महारानी सीतादेवी का चरित भी सर्वसाधारण को मालूम हो चुका है; तथापि सीता महारानी के चरित से आज कल की संसारी स्त्रियों को क्या उपदेश ग्रहण करना चाहिए, यह बात इस पुस्तक में बहुत अच्छी तरह से दिखलाई गई है। सीताजी के चरित की प्रत्येक मुख्य घटना पर अपनी ओर से व्याख्यान करके उसका अच्छा खुलासा किया गया है। प्रत्येक आर्यगृहिणी को यह पवित्र चरित्र पढ़ कर उसके अनुकूल चलने का प्रयत्न करना चाहिए।

२ भारत के कारखाने—लेखक पं० चतुर्भुज औदीच्य। प्रकाशक बाबू रामलाल वर्मा, ४०१-२ अपर चितपुर रोड, कलकत्ता। पृष्ठसंख्या ८८। मूल्य ।।=) आने।

अंगरेजी भाषा में माननीय मुधोलकरजी की विस्तृत 'व्यापारी डायरेक्टरी' प्रसिद्ध है। उसी तरह की यह डायरेक्टरी अब हिन्दी डायरेक्टरी ... प्रकाशित हुई है। इसके पहले, लखनऊ के किसी महाशय ने भी प्रकाशित हुई है। ... हिन्दी की डायरेक्टरी हम देख चुके ... की प्रसिद्ध की हुई एक और हिन्दी की डायरेक्टरियों से यह अनुमान अवश्य होता है। यह भी अच्छी है। इन डायरेक्टरियों ... लिखने की ओर हिन्दी-लेखकों ... है कि अब व्यापार विषयक ग्रन्थ ... है। यह सुलक्षण है। अस्तु। औद्योगिक ... का ध्यान आकर्षित होने लगा है। ... इस पुस्तक में भारतवर्ष के मुख्य मुख्य पदार्थों के ... की लिखी हुई इस पुस्तक ... व्यापारी भाइयों को इसकी ... एक प्रति ... लिये हुए हैं। ... अवश्य अपने पास रखनी चाहिए।

३ सौ अजान और एक सुजानः--यह कल्पित प्रबन्ध हिन्दी भा... यों के "भीष्मपितामह" पण्डित बालकृष्णजी भट्ट का लिखा हु... है। इस उपन्यास में तिलिस्म और ऐयारी के उपन्यासों की त... आकाश पाताल एक नहीं किया गया; किन्तु स्वाभाविक घटना... से युक्त यह एक उपदेशात्मक प्रबन्ध है। प्रत्येक सहृदय इसे पढ़... मनोरंजन के साथ उपयुक्त शिक्षा भी प्राप्त कर सकता है। मू... ।।) आने।

४ नूतन ब्रह्मचारीः--यह उपन्यास भी उक्त भट्टजी का ... लिखा हुआ है। इस पुस्तक में यह दिखलाया गया है कि मनु... अपने शुभ्र चरित्र के बल पर क्या नहीं कर सकता? सब कुछ... सकता है। बालकों को सच्चरित्र बनाने के लिए यह पुस्तक ... नीय है। धनवान् धर्मात्माओं को चाहिए कि इस पुस्तक की ... प्रतियां खरीद कर बालकों में बांट दें। मूल्य सिर्फ =) आने।

५ अरविन्द-महिमाः--प्रकाशक पं० महादेवजी भट्ट, अहियापु... प्रयाग। भारतवर्ष के सच्चे कर्मयोगी महात्मा अरविन्द घोष ... नाम कौन नहीं जानता? इस पुस्तक में आप ही की महिमा ... गई है। आपके चित्र तथा सदुपदेशों का भी इसमें संग्रह है। ... =) आने।

पं० जनार्दन भट्ट, अहियापुर, प्रयाग के पते पर उपर्युक्त ... पुस्तकें मिल सकती हैं। भट्टजी की पुस्तकों का आदर ... उत्साह बढ़ाना चाहिए। ऐसा करने से वे अन्य उत्तमोत्तम ... भी प्रकाशित कर सकेंगे। क्रमशः

वार्षिक मूल्य ।
मामूली कागज़ की प्रति-सवा तीन रुपये।
एक प्रति का मूल्य-साढ़े चार आने ।
मोटे और चिकने कागज़ (आर्टपेपर) की
प्रति-साढ़े पांच रुपये ।
एक प्रति का मूल्य आठ आने ।
वर्ष २
अंक ६
ज्येष्ठ, सम्वत् १९६९ विक्रमी-जून, सन् १९१२ ई०।
चित्रशाळा
फोटोएनग्रेव्हर्स
स्टीमप्रेस
पूनासिटी.
आणि
लिथोग्राफर्स.

सूची।

चित्रमयजगत् के नियम।

ग्राहकों के लिये।

१. प्रति मास इस पत्र के दो संस्करण निकलते हैं। एक साधारण मोटे और चिकने कागज पर और दूसरा बहुत मोटे और चिकने कागज (आर्टपेपर) पर। साधारण कागजवाले का अग्रिम वार्षिक मूल्य डाकव्यय सहित ३।) रु० और एक संख्या का मूल्य ।)॥ तथा आर्टपेपरवाले संस्करण का वार्षिक मूल्य ५॥) और एक संख्या का मूल्य ॥) है।

२. ग्राहकों को अपना नाम और पता स्पष्ट देवनागरी अक्षरों में लिखना चाहिये। दो एक मास के लिए पता बदलवाने को डाक-घर से प्रबन्ध कर लेना चाहिये और यदि अधिक समय के लिये पता बदलवाना हो तो हमें सूचना देनी चाहिये। ग्राहक-नम्बर अवश्य लिखना चाहिये।

लेखकों के लिए।

१. इस पत्र में बहुधा छोटे छोटे शिक्षाप्रद, मनोरंजक और सचित्र ही लेख प्रकाशित होते हैं। इस लिए लेखकों को चाहिए कि उक्त गुणों से विहीन लेख भेजने का कष्ट न उठावें। किसी लेखक का कोई लेख किस अंक में प्रकाशित होगा—इसका कोई निश्चय नहीं।

२. लेखों के घटाने-बढ़ाने, लौटाने अथवा न लौटाने, और प्रकाशित करने या न करने का सब अधिकार सम्पादक को है। जो लेखक अपने लेख वापस चाहें उन्हें डाक-व्यय अवश्यही भेजना चाहिए। पत्र का उत्तर टिकट या जवाबी कार्ड मिलने पर दिया जाता है, अन्यथा नहीं।

विज्ञापनदाताओं के लिए।

१. एक मास	चार पंक्ति	१) रु०
तीन „	„	२॥) „
छै „	„	४) „
बारह „	„	६) „
एक वर्ष एक कालम=(२×३६च१००)		„
छै मास	„	६०) „
तीन „	„	३५) „

२. विज्ञापन छपाई का रुपया अग्रिम लिया जाता है। अधिक जानने के लिए पत्रव्यवहार कीजिए।

बोलने का कुछ प्रयत्न ही किया। बहुत देर तक वह विचार ही करता रहा।

यह देख कर उसका बाप बोला, "हाँ, बेटा, तेरा ही उत्तर ठीक है। ब्रह्म के विषय में कुछ भी नहीं कहा जा सकता। जहाँ उसके विषय में कुछ बोलना शुरू किया कि बस समझ लो कि उसने उसका अनन्तत्व नष्ट करके, सान्तत्व ला दिया, उसका [illegible] निरुपाधित्व निकाल कर उसे सोपाधित्व दे दिया, उसका [illegible] मर्यादित्व उसके आगे लगाया। वेदान्त के सैकड़ों श्लोकों अथवा वचनों का आधार देने से जो कहा नहीं जा सकता वह तेरे मौनव्रत ने कर दिखलाया।"

जिसे ज्ञान का [illegible] प्राप्त हो चुका है वह बोलने अथवा वाद-विवाद के झगड़े में पड़ता ही नहीं। ब्रह्म के विषय में बोलने का मौका आया कि बस उसकी वाक्-शक्ति उसे छोड़ जाती है। यह ब्रह्म ही ऐसी वस्तु है कि जिसका, साक्षात्कारपूर्वक, सिर्फ अनुभव किया जाता है; उसका वर्णन कभी नहीं किया जा सकता अथवा वह जाना भी नहीं जा सकता। अनुभव को छोड़कर उसके विषय में अन्य ज्ञान ही नहीं है। सब शंकाओं की निवृत्ति होना या सर्व आडम्बर बिलकुल दूर होना ही, अथवा तार्किक वादविवाद [illegible] हो, वास्तव में अपरोक्षानुभव होने का मुख्य लक्षण है।

जब हम कड़ाई में मक्खन को डाल कर उसे आँच पर रखते हैं [illegible] उसमें आवाज़ कब तक होती है? अर्थात् जब तक उसमें इतनी उष्णता नहीं आ जाती कि उसका जलांश जल जाय, या उसमें पानी का कुछ भी अंश न रहे, तभी तक। मक्खन जब तक अच्छी तरह–पूर्णतया–नहीं पक जाता तभी तक वह ऊपर को उबलता है और कल्-कल्-कल्-कल् आवाज़ करता रहता है।

जो मक्खन अच्छी तरह पक कर निःशब्द हो गया है–घी बन गया है–वही ब्रह्मसाक्षात्कार किया हुआ मुक्त ज्ञानी पुरुष है। मक्खन को जिज्ञासु कह सकते हैं। उसमें जो पानी का अंश है उस अग्नि के संस्कार से निकाल डालना चाहिए। यह पानी का अंश अहंकार है। जब तक यह अहंकार निकलता निकलता है तब तक कैसा नृत्य करता है! पर जहाँ एक बार यह अहंकार जलांश बिलकुल छोड़ गया कि बस पक्का घी बन गया। फिर उसमें गड़बड़ सड़बड़ कुछ नहीं! (हँसी)

जब मक्खन का जलांश–अहंकार–निकल जाता है तब उसका सब मैल कड़ाई में नीचे जा बैठता है। यही मल विषय (कामिनी और कांचन) और उनके दुष्ट साथी (इन्द्रिय-लोलुपता, सकाम कर्म, आदि) हैं।

अच्छा, सिद्ध पुरुष, बिलकुल ऊपर तक भरे हुए घड़े के समान है। घड़ा जब तक भरता रहता है तब तक वह भक्-भक्-भक्-भक् आवाज़ करता रहता है; पर ज्योंही भर गया त्योंही वह आवाज़ बिलकुल बन्द हो जाती है। यही आवाज़ विवेक या विचार है। इसी विवेक की सहायता से, यदि माता की कृपा हुई तो, ज्ञान की प्राप्ति होती है। घड़े से निकलनेवाली आवाज़ से यह जाना जाता है कि अभी यह घड़ा नहीं भरा। उसी प्रकार यदि विवेक या विचार हो रहा है तो इससे सिद्ध होता है कि अभी ब्रह्मसाक्षात्कार नहीं हुआ।

फूल पर चुपके बैठकर भ्रमर जब तक मधुपान का प्रारम्भ नहीं करता तभी तक वह गूँऊँऊँ शब्द करता रहता है। ज्योंही उसने मधु में मुख लगाया त्योंही उसका गुंजारव बन्द हो जाता है।

क्या ज्ञानप्राप्ति के बाद भी विवेक होता रहता है?

यहाँ एक प्रश्न उठता है–गुरु ज्ञानी होता है; पर जब वह शिष्य-सम्बन्धी अपना कर्तव्य करता है तब उसे विवेक का सहारा लेना पड़ता है–यह क्या बात है?–शिष्य का अज्ञान दूर करने के लिये गुरु को बोलना ही चाहिये। यह विवेक है ज़रूर; तथापि यह बाधक नहीं होता।

कड़ाई का वह मक्खन जब आँच से पक कर पक्का घी हो जाता है तब वह आवाज़ नहीं करता, यह सच है। इसमें कोई सन्देह नहीं। पर उस पक्के घी में कच्ची पूरी डाल कर तो देखो, तुरन्त ही आवाज़ निकलने लगती है। जहाँ उस तप्त हुए घी से, पूरी के पानी का संयोग हुआ कि फिर तुरन्त ही आवाज़ शुरू हो जाती है और जब तक वह पूरी पक कर खाने योग्य नहीं हो जाती तब तक वह आवाज़ नहीं रुकती।

यह पूरी ही शिष्य है। तपा हुआ घी जो फिर बोलने लगता है–गुरु फिर जो विवेक का अवलम्बन करने लगता है–वह सिर्फ पूरी के कच्चेपन–शिष्य के अज्ञान–को मिटाने के लिये करता है। आ[illegible] बन्द होते ही समझ लेना चाहिये कि शिष्य में पक्कापन आ[illegible] कारण गुरु ने बोलना बन्द किया है।

अब तक जो निरूपण किया गया उससे यही [illegible]
है कि आत्मा का ज्ञान सिर्फ [illegible]
ही होता है। जो वेदान्त [illegible]
ज्ञान सिर्फ वहीं [illegible]
स्वयं संवेद्य होता। [illegible]
आत्मा की [illegible] बतलाया है [illegible] उसके [illegible]
[illegible] अपरोक्षानुभव की [illegible]
[illegible] गुरु का अनुभव [illegible]

यह जो कहते हैं कि 'ईश्वर अज्ञात और अज्ञेय है' [illegible] नहीं है — उच्छिष्ट [illegible]।

सब वेद [illegible] मैं [illegible] रहते हैं। अर्थात् [illegible]
[illegible] उच्छिष्ट [illegible]
[illegible] के समान [illegible] जाते हैं। [illegible]
[illegible]
[illegible]
आत्मा के [illegible] और [illegible] आदि [illegible]
[illegible] जो [illegible] अथवा [illegible]
[illegible] लिखा है।

इनके मतानुसार सिर्फ एक ब्रह्म ही सत्य है; जग मि[illegible]
अर्थात् ब्रह्म की दृष्टि से देखा जाय तो जग मिथ्या [illegible]
के यह सृष्टि, मनुष्य जीवमात्र मिथ्या है; क्योंकि यह [illegible]
सत्य है। माया के मिथ्यापन का अनुभव होने ही [illegible]
जाता है, अथवा कहिये कि वह फिर ब्रह्म हो जाता है [illegible]
जाता है। इस अहंकार का नाम मात्र भी नहीं रहता। यही [illegible]
कल्प समाधि है।

जब तक हमारी यह दृढ़ भावना है कि मैं (देह) [illegible]
तब तक यह कहना, कि, 'जग मिथ्या है', बिलकुल [illegible]
है' जिसे ब्रह्मसाक्षात्कार नहीं हुआ–जिसे अपरोक्षानु[भव नहीं]
हुआ उसे जग का मिथ्यापन भी नहीं मालूम हो सकता
तब तक उसे यह अनुभव भी नहीं हो सकता कि जग किस
मिथ्या है।

अब, जो सत्पुरुष समाधिपद छोड़ कर नीचे के अंग या [illegible]
में, माता की ही इच्छा से लौट आता है उसका अहंकार उस[illegible]
उदित होता है। परन्तु यह भिन्न, मर्यादित और निर्मल त[illegible]
शुद्ध होता है। अहंकार का उदय होते ही वह योगी फिर [illegible]
में–इस मायिक जगत् में–संचार करने लगता है। जब तक [illegible]
अहंकार (स्वत्व, अस्मिता, देह) उसे सत्य (सापेक्ष भाव से)
होते रहता है तब तक जगत् भी सत्य रहता है और ब्रह्म [illegible]
(सापेक्षता से) रहता है!

उसकी अहंवृत्ति–मैंपन–ज्योंही फिर उसमें आ जाती है
उसे यह मायानिर्मित–प्रकृतिनिर्मित–सृष्टि सत्य मालूम होने[illegible]
है। परन्तु, चूंकि उसकी अहंवृत्ति ब्रह्म–साक्षात्कार के कारण [illegible]
निर्लेप अथवा पुनीत होती है; इस लिये उसे यह सृष्टि, ब्र[illegible]
ही व्यक्तरूप देख पड़ती है–उसे जान पड़ता है कि यह [illegible]
विश्वरूप से ब्रह्म ही फैला है–इस सृष्टिरूप से ब्रह्म ही इस [illegible]
इस विश्व में उसे जहाँ तहाँ ब्रह्म ही दिखने लगता है और [illegible]
से उसमें सत्यता आती है।

उसी प्रकार उसे यह भी देख पड़ता है कि यह माया वि[illegible]
है या अविद्यारूप है। इस माया में–इस विश्व में–जैसी उसे [illegible]
देख पड़ती है वैसी ही अविद्या भी देख पड़ती है–अर्थात् इन [illegible]
का अस्तित्व उसे देख पड़ता है।

विद्या ईश्वराभिमुख करनेवाली–ईश्वरप्राप्ति के लिये सा[illegible]
विवेक, वैराग्य, भक्ति, इत्यादि उसके अंग हैं। अविद्या [illegible]
पराङ्मुख करनेवाली–ईश्वरप्राप्ति में बाधक–है। कामिनी, [illegible]
महत्त्व, सन्मान, कर्मासक्ति, इत्यादि उसके अंग हैं।

अपरोक्षानुभवः–
द्वैत और अद्वैत का समन्वय।

परमेश्वर का सगुणत्व और परमेश्वर का निर्गुणत्व–इन दोन[ों]
जिन्होंने समाधि में अनुभव कि[या]
परमेश्वर के दोनों रूपों का–अप[रोक्ष]
कृति और पुरुष दोनों का–अपरो[क्ष]
जिन्हें समाधि में हुआ है–उ[न्हें]
विज्ञानी कहते हैं। (जिसे परमेश्वर का विशेष ज्ञान हो गया है
जिसने परमेश्वर को प्रत्यक्ष अथवा अनुभव से जान लिया है
विज्ञानी है। यही विज्ञानी शब्द का धात्वर्थ या मूलार्थ है।)

ईश्वर, माया, आत्मा, जगत्, इत्यादि भेदों के लिये, आदि[illegible]
प्रकृति–के रूप से, ब्रह्म ही कारण होता है–ये भेद, प्रकृति के [illegible]
पुरुष ही निर्माण करता है–यह बात विज्ञानी पुरुषों के प्रत्य[क्ष]
आ जाती है। भीतर–बाहर (अन्तरंग में और बाह्य जगत् में)

रमेश्वर दिखता रहता है और यह साक्षात्कार उन्हें स्वयं उसीसे मिलता है। परमेश्वर (सगुण) ने उनसे यह कहा है कि "समाधि न निर्गुण ब्रह्म के रूप से मैं ही भासमान होता हूं। ये भेद मैंने ही निर्माण किये हैं। चौबीस पदार्थों या तत्वों का-जीवात्मा और जगत् का-आदिकारण मैं ही हूं।"

सगुण ब्रह्म (प्रकृति) ही सारे नामरूपात्मक भेदों का-उत्पत्ति स्थिति, लय का-कारण होता है; जो परमेश्वर के सिर्फ सगुण रूप के ही भूखे होते हैं-अर्थात् जो भक्तिमार्गी होते हैं-उनके लिए वह (सगुण ब्रह्म) अनेक रूपों से प्रकट होता है; भक्तों का सम्पूर्ण जीव परमेश्वर का सगुण रूप ही है और यह सगुण रूप ही इस भेद-प्रपंच का मूल कारण है; अतएव वह (सगुण ईश्वर) उन्हें नाना-रूपात्मक देख पड़ता है। विज्ञानी पुरुष के लिए वह (सगुण परमेश्वर) सिर्फ एक ही त्रिगुणात्मक रूप से प्रकट होता है। विज्ञानी को चारों ओर उसका सिर्फ एक त्रिगुणात्मक रूप देख पड़ता है; भक्तों को वही बहुरूपी देख पड़ता है।

परमेश्वर (सगुण) अपने सतोगुण से पालन करता है, रजोगुण से उत्पत्ति करता है और तमोगुण से संहार या लय करता है। इन गुणों की वसति परमेश्वर के तईं रहती है-ये गुण परमेश्वर में रहते हैं; परन्तु वह उनमें नहीं रहता-वह बिलकुल अलिप्त रहता है।

परमेश्वर (सगुण या निर्गुण) लिये प्रमाण एक ही है--साक्षात्कार।

विज्ञानी की आत्मा (अन्तर्वृत्ति) निर्मल और पुनीत होती है, अतएव उसे परमेश्वर दिखता रहता है; वह उसका सगुण तथा निर्गुण अंग भी देख चुका है। अपने भीतर और अपने बाहर वह उसकी वाणी सुन चुका है। इतना ही नहीं; किन्तु वह उससे प्रेम-वार्ता भी कर चुका है। उसे पिता, माता, बन्धु, पत्नी, पुत्र, दास, इत्यादि, मान कर वह उसको पुकार भी चुका है। अतएव इन विज्ञानी पुरुषों का, जो अधिकारी बन चुके हैं, वचन प्रमाण ही है। उनके कथनानुसार माया (सृष्टि) कुछ मिथ्या नहीं है। विज्ञानियों के अनुभव के अनुसार माया अव्यक्त की ही व्यक्तावस्था-अथवा निर्गुण ब्रह्म का ही सगुण रूप है। माया निर्गुण ब्रह्म के सगुण अंग का सिर्फ बाहरी विस्तार है। मानवी योनि के अथवा तिर्यग् योनि के जीवात्मा तथा ब्रह्मांड के यावत् दृश्य पदार्थ उसी सगुण रूप ने उत्पन्न किये हैं। (अथवा यह कहना अधिक युक्तिसंगत होगा कि ये सब उस सगुणरूप से उत्क्रान्त हुए हैं।)

विज्ञानियों का यह आधार-उनका यह प्रमाण-बिलकुल अकाट्य अथवा अमोघ है; क्योंकि इसको साक्षात्कार का सहारा है।

परमात्मा ने अपने सगुण और निर्गुण दोनों रूपों से-दोनों अंगों से-ऋषियों को साक्षात्कार कराया है। मनुष्यों का उद्धार करने के लिए तथा भक्तों को सन्तुष्ट करने के लिए समय समय पर ऐसा साक्षात्कार होता है।

सगुण और निर्गुण परमात्मा।

परमात्मा निष्क्रिय अकर्मक है-वह उत्पत्ति, स्थिति, लय, आदि कुछ नहीं करता-ऐसा जब मैं उसे मान लेता हूं, ऐसी उसके सम्बन्ध में जब मैं भावना कर लेता हूं तब मैं उसे ब्रह्म, अथवा पुरुष, अथवा निर्गुण परमात्मा कहता हूं; और उसीको जब मैं सक्रिय अथवा सकर्मक-उत्पत्ति-स्थिति-लय, आदि कार्य करनेवाला-मानता हूं, अथवा उसके विषय में जब मैं उक्त भावना करता हूं तब मैं उसीको शक्ति, माया, प्रकृति, अथवा सगुण परमात्मा नाम देता हूं।

उपमाओं का उपयोग।

उपमान और उपमेय सब प्रकार से बिलकुल समान कभी नहीं होते। उपमाएं सदा एकांगी अथवा एकदेशीय होती हैं। उपमाओं की योजना इस लिए की जाती है कि जिससे अज्ञात वस्तु का विशेष गुण अथवा लक्षण स्पष्ट रीति से दृष्टि में आजाय और तद्विषयक सामान्य विचार श्रोताओं के मन में प्रकट हो जाय-उसका साधारण ज्ञान उन्हें हो जाय।

उदाहरणार्थ:---यदि हमने कहा कि 'वह बाघ है' तो ऐसा नहीं समझना चाहिए कि वह सब बातों में-सिर, दांत, नख, पूंछ इत्यादि में-बाघ के समान है। उस समय हमारे कहने का यह मतलब नहीं है कि बाघ के समान उसके पूंछ है या बाघ की तरह उसके नख हैं। किन्तु उस वाक्य का सिर्फ इतना ही अर्थ लेना चाहिए कि 'उसका रूप उग्र है' अथवा 'वह बाघ के समान पराक्रमी और साहसी है; तथा जिस काम को वह चाहेगा, कर सकता है-किसी काम में भी वह डर कर पीछे नहीं हट सकता।'

अतएव परमेश्वर के सगुण और निर्गुण रूपों का सम्बन्ध समझाने में चाहे जितनी अच्छी उपमाओं की योजना की जाय, तथापि उनसे पूर्ण समाधान नहीं हो सकता। वह अनुभव का ही काम है।

तथापि यह नहीं हो सकता कि उनका बिलकुल ही उपयोग न हो। आध्यात्मिक ज्ञान इन्द्रियातीत होता है। अतएव उसके सच्चे स्वरूप का रूपरंग-चाहे बिलकुल ही धुंधला क्यों न हो-मनरूपी चक्षुओं के सामने आने में उपमाओं से बड़ी मदद मिल सकती है।

दोनों एक ही हैं।

पर, यदि वास्तव में देखा जाय तो ब्रह्म, अथवा निर्गुण परमात्मा, और शक्ति, अथवा सगुण परमात्मा, दोनों का अन्तर, शून्य है। इनमें बिलकुल ही अन्तर नहीं। दोनों एक ही हैं।

अग्नि और उसकी दाहकशक्ति जैसे एक हैं वैसे ही सगुण ब्रह्म और निर्गुण ब्रह्म दोनों एक ही हैं। दाहकशक्ति से विरहित अग्नि की क्या कोई कुछ भी कल्पना कर सकता है?

दूध और उसकी शुभ्रता ये दोनों जैसे एक हैं वैसे ही ये भी एक हैं। शुभ्रता बिना दूध की कल्पना मन में नहीं आती।

रत्न और तेज जैसे एक हैं वैसे ही ये भी एक हैं। तेज को छोड़ कर केवल रत्न की कल्पना हम कर ही नहीं सकते।

सर्प और उसकी वक्रगति ये दोनों जिस प्रकार अभिन्न हैं उसी प्रकार ये भी अभिन्न हैं। वक्रगति बिना सर्प की कल्पना नहीं की जा सकती।

श्रीयुत सुधीन्द्र वसु, एम० ए०।

वसु महाशय बंगाल में ढाका के रहनेवाले हैं। आपने अमेरिका ही में बहुत दिन विद्याभ्यास किया है। बी० ए० और एम० ए० की परीक्षाएं भी आपने वहीं पास की हैं। सन् १९११ में राजकीय शोधक (Political [illegible]) के पद पर [illegible] युनिवर्सिटी (अमेरिका) में आप नियत हुए। वहां आप के व्याख्यानों का इतना प्रभाव पड़ा कि बड़े बड़े विद्वान् अमेरिकन उम्मेदवारों के रहते हुए वहां के कास्मा पालिटन क्लब के अध्यक्ष आप ही चुने गये। यह पहला ही मौका है, जब कि अमेरिकन युनिवर्सिटी में एक भारतीय अध्यापक नियत किया गया है। इसके लिये हम वसु महाशय को बधाई देते हैं।

श्रीमती सत्यबाला देवी।

श्रीमती सत्यबाला को परमात्मा ने मधुर स्वर का दान दिया है। [illegible] में आप ने [illegible] में बड़ा नाम पाया है। [illegible] है, [illegible] में आप बड़ी प्रवीण हैं।

न लोगों का यह हाल है, तथापि इनके लिए "कार्लाइल इंडियन कालेज" नामक एक प्रसिद्ध विद्यालय भी है और यहां इंडियन विद्यार्थी अर्वाचीन शास्त्रों और कलाकौशल में अच्छी प्रवीणता दिखलाते हैं। इससे यह अवश्य कहा जा सकता है कि ये लोग उच्च शिक्षा पाने पर अपनी उन्नति अवश्य कर सकते हैं; अस्तु। ऐरीज़ोना के पहाड़ी प्रदेश में इंडियन जाति के जंगली लोगों के झुंड के झुंड विचरते हुए देखे जाते हैं।

जून और जुलाई के दिनों में यहां बड़ी गर्मी पड़ती है। यहां मुख्य व्यवसाय तीन हैं:—(१) खनिज पदार्थ-विशेष कर तांबा-निकालना; (२) मांस के लिए गौ और भेड़ों के झुंड रखना; और (३) खेती। पहला व्यवसाय बहुत विस्तृत है। सिर्फ १९०८ के ही साल में यहां से २८९४२३२६७ पौंड ताम्बा बाहर के देशों में गया। सन् १९०९ तक इन भागों में ४० करोड़ डालर का ताम्बा उत्पन्न हुआ। पहाड़ खोद कर जो ताम्बा निकाला जाता है उसमें रेती मिली होती है; उस रेतीमिश्र धातु को बारीक करके पहले धोते हैं और उसकी रेती निकाल डालते हैं इसके बाद उसे भट्ठी में डाल कर शुद्ध तांबा निकालते हैं। ऐसे अनेक बड़े बड़े कारखाने यहां के पहाड़ों में देखे जाते हैं। हम जिस कारखाने को देखने गये थे वह यद्यपि उस समय आधा ही जारी था; तथापि चौबीस घंटे में सवा-चार-हजार टन, भट्ठी में डालने के पहले की कुछ रेती मिली हुई धातु निकलती थी और कारखाने तथा खान में कुल तीन हजार आदमी काम करते थे। ये कारखाने देख कर हमारे मन में यह विचार उठा कि यदि भारत में भी ऐसे ही कारखाने खोलने का प्रयत्न किया जाय तो अनेक गरीब लोगों का निर्वाह हो और भारत की नैसर्गिक खनिज सम्पत्ति बाहर निकले।

दूसरा व्यवसाय यहां गौ, आदि पशुओं के रखने का है। सन् १९१० में इस व्यवसाय से ११,९०४,१२१ डालर की आय हुई। इससे पाठकगण यह कल्पना कर सकते हैं कि यहां कहां कैसा उत्पन्न होता है। गौ, भेड़, सुअर, आदि अनेक पशुओं के हजारों झुंड इस रियासत में पले हुए हैं। अमेरिकन स्त्रियां अपनी टोपियों में जो पंख खोसती हैं उन पंखों की तादाद जितनी बड़ी होती है उसीसे उनके आराम और धन आदि का अनुमान किया जाता है। इन पंखों के लिए यहां के हजारों पक्षियों का संहार हो चुका है। परन्तु कुछ वर्ष पहले यहां की राष्ट्रीय सरकार को इन दीन पक्षियों पर दया आई और इनके न मारने का कायदा बन गया। अतएव अब ये पक्षी पाल लिए जाते हैं। अब इन पक्षियों की भी एक खेती सी हो गई है। खेती की वार्षिक फसल की तरह इन पक्षियों के पंख काट कर बाजार में बेचे जाते हैं। सन् १९१० में इन पंखों से १२४००० डालर की आमदनी हुई। अस्तु। अब यहां की खेती का कुछ वृत्तान्त पाठकों को सुनाते हैं। इससे अमेरिका की सुधरी हुई कृषिदशा का पाठकगण सहज ही अनुमान कर सकेंगे।

'रूज़वेल्ट'-बांध का दृश्य।

घास काटकर सुखाई जा रही है।

टोम्याटो की खेती।

यहां फलों की खेती प्रायः बहुत होती है। सन्तरा, निम्बू, सेब, इत्यादि फलों के सिवाय छुहारों की पैदाइश भी यहां बहुत है। तरकारियों में कोबी, आलू, गाजर, प्याज, इत्यादि की खेती औरों से अधिक होती है। गेहूं, मक्का, बाजरा यहां के मुख्य धान्य हैं। घास पैदा करने में भी बहुत सी जमीन का उपयोग किया जाता है।

यहां की जमीन में घास प्रति एकड़ ६ से बारह टन तक, बाजरा चार सौ से ६ सौ पौंड तक और गेहूं १५०० से २५०० पौंड तक उत्पन्न होते हैं। तरकारियों में आलू पांच से १५ हजार पौंड तक प्रति एकड़ पैदा होते हैं। शक्कर-बीट प्रति एकड़ ५ से १८ टन तक उत्पन्न होती है। मक्का दो हजार से ३१०० पौंड और छुहारे प्रति वृक्ष में ५० से २५० पौंड तक उत्पन्न होते हैं। इस समय ११५००० एकड़ जमीन सरकारी बांधों के योग से पानी पी रही है और इसमें प्रति एकड़ कम से कम ६० डालर का उत्पन्न होता है। कुछ बागों की जमीन तो ऐसी है कि जिसमें प्रति एकड़ ७०८ डालर तक की कीमत का माल पैदा होता है। पूरी जमीन में प्रति एकड़ २०. डालर का उत्पन्न होता है।

गुरुकुल में दीक्षान्त संस्कार।

इसमें सन्देह नहीं कि आर्यसमाज द्वारा जहां अनेक उपयोगी
र्य हो रहे हैं वहां उसके द्वारा भारतवर्ष की प्राचीन और अन्य-
र सभ्यता का भी उद्धार हो रहा है। प्राचीन समय में जिस
गुरुकुलों में छात्रगण, ब्रह्मचर्यपूर्वक विद्याध्ययन करते थे वह

न समय में स्वप्नवत् प्रतीत होता
र्तमान शिक्षाप्रणाली के कारण
न-सभ्यता का पुनरुद्धार होना
ष्कार्य प्रतीत होता ही था, किन्तु
समय यूनिवर्सिटियों से जो 'ग्रे-
ट' और 'अन्डर ग्रेज्युएट' निक-
हैं उनको न तो कुछ व्यावहा
ज्ञान ही प्राप्त होता है और न
ी शारीरिक दशा ही ठीक होती
नके जीवन का उद्देश्य केवल
वृत्तिद्वारा अपना पेट पालने के
तिरिक्त और कुछ नहीं होता। वे
को तो बिलकुल ढकोसला और
ड्म्बर समझते हैं। उनकी दृष्टि में
तो गंवार किसानों के गीत हैं।
की समझ के अनुसार प्राचीन
ि मुनि मूर्ख होते होंगे समय में,
ा वर्ष हुए कि, पंजाब की श्रीमती
ार्यप्रतिनिधि सभा ने हरिद्वार के
कट, गंगा के तट पर, कांगड़ी ना
क स्थान में गुरुकुल-महाविद्यालय
ापित किया। इस विद्यालय का
िप्त वृत्तान्त 'चित्रमयजगत्' के
टक किसी पिछली संख्या में पढ़
के हैं। इसमें 'गुरुकुल' की प्राचीन
ार आदर्श वैदिक प्रणाली के अनु
ार शिक्षा दी जाती है।

पिछली ईस्टर की छुट्टियों में इस
रुकुल का दशम वार्षिकोत्सव बड़ी
मधाम और सफलता के साथ हुआ।
ब की बार इस उत्सव की विशेष
मधाम का यह भी कारण था कि
रुकुल की स्नातक नामक अन्तिम
रीक्षा में जो दो ब्रह्मचारी उत्तीर्ण
ए थे उनका दीक्षान्त संस्कार भी

का ज्ञान बहुत अच्छा हो जाता है। महाविद्यालय में संस्कृत-
साहित्य, उपनिषद्, रामायण से लेकर अर्वाचीन काव्यों में से प्रधान
प्रधान ग्रन्थ पढ़ाये जाते हैं। इसके सिवाय संस्कृत-व्याकरण, वैशे-
षिक, आदि छे दर्शन, ऐतरेय तथा छान्दोग्य ब्राह्मणग्रन्थ, ऋग्वेद
तथा यजुर्वेद का उत्तम ज्ञान कराया
जाता है। संस्कृत-साहित्य का इति-
हास, समालोचना और बी० ए० स्टै-
ण्डर्ड तक अंगरेजी पढ़ाई जाती है।
महाविद्यालय की इन्हीं विषयों की
अन्तिम परीक्षा स्नातक में उपर्युक्त
दोनों सुयोग्य ब्रह्मचारी उत्तीर्ण हुए
हैं। ब्रह्मचारी हरिश्चन्द्रजी ने फिला-
सफी और दर्शन विशेष विषय लिये
थे तथा ब्र० इन्द्रचन्द्रजी ने इतिहास,
सम्पत्तिशास्त्र और वेद विशेष विषय
लिये थे। उक्त ब्रह्मचारियों ने इन वि-
षयों का एम० ए० स्टैण्डर्ड तक अनु-
शीलन किया है। कुछ कुछ इन्हीं वि-
शेष विषयों के अनुसार ब्र० हरिश्चन्द्र
को विद्यालंकार और ब्र० इन्द्रचन्द्र
को वेदालंकार की पदवी मिली है।

जिस समय इन ब्रह्मचारियों का
दीक्षान्त संस्कार (कन्वोकेशन) हुआ
उस समय सहस्रों नरनारी गुरुकुल
की तपोभूमि में एकत्र थे। गुरुकुल के
आचार्यजी ने इन दोनों नवस्नातकों
को उपदेश देकर गुरुकुल-महाविद्या-
लय का योग्यतापत्र (डिप्लोमा)
और उक्त पदवियां दीं। दोनों स्नातकों
ने आचार्यजी का उपदेश श्रवण
करके निम्न-लिखित गुरुदक्षिणाएं
उनके चरणकमलों में रक्खीं।

महात्मा मुंशीरामजी।

(आचार्य और मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल विश्वविद्यालय हरिद्वार।)

इसी अवसर पर था। इ-
नका नाम ब्रह्मचारी हरि-
श्चन्द्र और ब्रह्मचारी इन्द्र
है। आप दोनों गुरुकुल के
संस्थापक और मुख्याधि-
ष्ठाता महात्मा मुंशीरामजी
के सुयोग्य पुत्र हैं। महात्मा
मुंशीरामजी ने इस गुरुकुल
के लिये जो स्वार्थत्याग
किया है वह हमारे पा
ठकों को मालूम ही है।
आप अपना सर्वस्व दान
करके गुरुकुल की सेवा
कर रहे हैं।

गुरुकुल की स्नातक
परीक्षा वर्तमान यूनिव
र्सिटियों की एम० ए० की
परीक्षा के समान अन्तिम
है। गुरुकुल विद्यालय में
कुल चौदह श्रेणी हैं। जि-
नमें से दस श्रेणी विद्यालय
की हैं और चार महा वि-
द्यालय (College) की हैं।
विद्यालय में, गणित, पदार्थ-
विद्या, इतिहास, भूगोल, साहित्य, अंगरेजी, इत्यादि सभी विषय प्रवे-
शिका (इन्ट्रेन्स) तक की एफ०ए० स्टैण्डर्ड तक हो जाते हैं। संस्कृत

(१)

श्रीपूज्यपाद आचार्यजी!

गुरुकुलरूपी माता ने जो उपकार
मुझ पर किये हैं उनके परिवर्तन में मैं
क्या गुरुदक्षिणा दे सकता हूं?
अपनी तुच्छ शक्तियों से मैं माता की
जितनी सेवा कर सकता
हूं, इसके चरणों में सम-
र्पित है। गुरुकुल के अ
धिकारी कुल में या कुल
से बाहर जिस धर्मानु-
सारिणी सेवा के लिये
मुझे आज्ञा देंगे उसका
पालन करना मैं अपना
कर्तव्य समझूंगा। मैं जा-
नता हूं कि मेरी सेवा का
कुछ मूल्य नहीं है, तथापि
भक्ति और प्रेम से सम-
र्पित की गई सेवा को
स्वीकार कीजिये।

भवदीय विनीत शिष्य
हरिश्चन्द्र।

स्नातक हरिश्चन्द्र विद्यालंकार।

स्नातक इन्द्र वेदालंकार।

(२)

श्रीपूज्यपाद आचार्यजी!

मैं आपके चरणों में
भेंट लिखी हुई दक्षिणा उपस्थित करता हूं। आशा है, आप इसे
स्वीकार करके मुझे कृतार्थ करेंगे:—

(३६)
हृदय-वल्लभ जीवन प्राण औ-
विहग! तू जिसका शिरमौर है;
कुछ विचार, यहो सुपतिव्रता-
तव शुकी कितना दुख पा रही!

(३७)
शुक! सुवर्ण सुशोभित पींजरा-
मत विचार इसे प्रिय तू कभी;
समझ तू इसको मुख व्याल का-
सकल वस्तु विनाशक काल का!

(३८)
मिल नहीं सकता निज जाति से,
नहिं मिटा सकता मन की व्यथा।
परम सुन्दर कुंज निकुंज में-
न दिखला सकता अपनी छटा॥

(३९)
अति मनोज्ञ छटा बन कुंज की;
स्वजन मित्र सुहृज्जन में स्थिति;
वह विचार, सुकर्म, स्वतन्त्रता,
सब हुए सपना तव हेतु हैं!

(४०)
सुन गिरा मम, क्या इस चंचु से,
लग गया शुक! पंजर तोडने?
विफल हो यह यत्न नहीं सखे!
विहग-चचु-विघातक भी भला?

(४१)
शुक नरो! धर धीर सुचित्त हो,
न कर शोक, लगा मन योग में;
तज विकार सभी, भज कृष्ण को,
रह सदा परमारथ में रँगा॥

(४२)
समय पा कर यों भगवान की,
विहग! तू प्रियता अति पायगा;
सकल बन्धन से छुट जायगा;
सब कहीं सुख-चैन उडायगा॥

श्रीगिरिधर शर्मा।

नववीं बम्बई-दिगम्बर-जैन-प्रान्तिक परिषद्।

इस परिषद का अधिवेशन २६, २७, २८ एप्रिल को खामगांव में हुआ। सेठ पदमराजजी रानीवाला इसके अध्यक्ष हुए थे। सेठ हीरालाल रामजीलाल स्वागतकारिणी सभा के अध्यक्ष थे। इस परिषद में सेठ श्यामलाल ओंकारदास, सेठ माणिकचन्द हीराचन्द जे. पी. बम्बई, पंडित पन्नालालजी काशलीवाला इन्दौर, लाला प्रभुदयालजी बम्बई, बाबू माणिकचन्दजी बनाड़ी बम्बई, दीपचन्दजी उपदेशक, इत्यादि मुख्य सज्जन थे। इस बैठक में धर्मसम्बन्धी १२ प्रस्ताव पास हुए। आशा है कि हमारे जैन भाई अपनी उन्नति करते हुए देश की उन्नति और परोपकार की ओर भी ध्यान देंगे।

गुजरात के अकालग्रस्त पशुओं का समूह।

डा० भट्ट और के० एम. डी. कृष्णलाल ने अहमदाबाद में अकालपीड़ित पशुओं के लिए बहुत उद्योग कर के रिलीफ़ खोले हैं। उनमें से एक पशुसमूह का फोटो यहां दिया जाता है। सज्जनों को गुजरात के इस भयंकर अकाल में यथाशक्ति सहायता करनी चाहिए।

पूने की वसंत-व्याख्यान-माला।

गर्मी की छुट्टियों में जहां अन्य स्थानों के लोग शारीरिक सुखचैन में अपना काल व्यतीत करते हैं वहां पूना के सज्जन विद्याव्यासंग में वह अपना अमूल्य समय बिताते हैं। यही कारण है कि सम्पूर्ण आधुनिक सुधारों में यह नगर अन्य शहरों से बहुत बढ़ा चढ़ा हुआ है। महात्मा तिलक और देशभक्त मननीय गोखले इसी पुण्यनगरी के रत्न हैं।

यहां प्रति वर्ष उक्त छुट्टी में रोज किसी न किसी विद्वान् का व्याख्यान होता है। इन सब व्याख्यानों को 'वसन्त-व्याख्यान-माला' कहते हैं। यह व्याख्यानमाला स्वर्गीय महात्मा रानाडे और उनके कुछ मित्रों ने स्थापित की। आनन्द की बात है कि पूने के आधुनिक विद्वान् बराबर इसे उत्साह के साथ चलाये जाते हैं। इस माला के व्यवस्थापक प्रति वर्ष जिन विद्वानों को इस व्याख्यानमाला में व्याख्यान-कुसुम पिरोने के लिये निमन्त्रित करते हैं वे सब देशकाल के अनुसार ही अपना अपना भाषण करते हैं। सब धर्म और सब मतों के लोग—इस व्याख्यानमाला में व्याख्यान दे सकते हैं। महाराष्ट्र-प्रान्त के बड़े बड़े विद्वान् पुरुष और विदुषी महिलाएं इस माला को अपने अपने व्याख्यान-पुष्पों से सुशोभित करती हैं। अस्खलित वक्तृत्व, भाषापांडित्य, विद्वत्ता, विनोद, चातुर्य, वादविवाद-कौशल, कोटिक्रम, कवित्व, इत्यादि गुणों का समुच्चय-रूप में बहुत अच्छा अनुभव इस 'माला' में मिल सकता है। विज्ञान, धर्म, ज्योतिष, साहित्य, वैद्यक, अध्यात्म, तत्वज्ञान, व्याकरण, काव्य, अलंकार, प्रवास वर्णन, अर्थशास्त्र, विमान-विद्या, संगीत, गणित, इत्यादि विषयों पर भिन्न भिन्न विद्वान् व्याख्यान देते हैं। प्रत्येक व्याख्याता प्रायः अपने विषय का अच्छी तरह अभ्यास करके तब व्याख्यान देने खड़ा होता है, अतएव उसके विषय के परिपक्व ज्ञानफल का रसास्वाद श्रोताओं को अनायास ही प्राप्त होता है। प्रति दिन की सभा का कोई न कोई विद्वान् अध्यक्ष नियत किया जाता है। इस अध्यक्ष का भाषण भी कभी कभी एक स्वतंत्र व्याख्यान ही के तौर पर हो जाता है। भारतवर्ष के प्रत्येक नगर में यदि इस प्रकार की "वसन्तव्याख्यानमाला" स्थापित हो जाय तो देश का बड़ा कल्याण हो। अनेक नवीन नवीन वक्ता तैयार हों और उनके द्वारा चारों ओर ज्ञान का प्रसार भी खूब ही हो। अस्तु।

इस वर्ष की 'व्याख्यानमाला' के मुख्य मुख्य व्याख्यानों का सारांश और उनके वक्ताओं का चित्र आज हम 'चित्रमयजगत' के प्यारे पाठकों को भेंट करते हैं। आशा है कि पाठकगण इस व्याख्यानमाला से मनोरंजन के साथ साथ कुछ उपदेश भी ग्रहण करेंगे।

पहला व्याख्यान पूना के फर्ग्युसन कालेज के प्रिंसिपल डा० मेन का "Water supply in the Deccan" (दक्षिण भारत में पानी की सप्लाई) विषय पर हुआ। आपने कहा—'दक्षिण भारत का यह भाग हजारों वर्ष पहले ज्वालामुखी के [illegible] से बना है। इन पहाड़ों के [illegible] [illegible] है। जिस भाग को [illegible] है वहां पानी [illegible] है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] इस [illegible]

डॉ० मेन।

प्रदेश में नीचे तालाब की तरह विस्तृत पानी नहीं भरा है; किन्तु वह जमीन के नीचे छेदों में भरा रहता है और यह जानना कठिन होता है कि वे छेद कहां हैं। कोई जमीन में कान लगा कर, कोई आस पास के वृक्षों से और कोई केवल अन्तःस्फूर्ति से बतलाते हैं कि इस जगह पानी है या नहीं। परन्तु इनमें से कोई मार्ग विश्वास का नहीं है। मेरे पास एक ऐसा यंत्र है कि जो यह बतला सकता है कि पानी कहां मिलेगा। जमीन के भीतर बहनेवाले पानी के अनुरोध से विद्युत्प्रवाह बहते रहते हैं। उस बिजली का इस हमारे यंत्र पर जो प्रभाव पड़ता है उससे पानी का अनुमान किया जा सकता है। परन्तु इस यंत्र से यह नहीं मालूम होता कि वह कितनी गहराई पर है और सोता कितना बड़ा है। आर्टीशियन कूएं इस भाग में खोदे नहीं जा सकते। क्योंकि ६००७ फीट तक खोद बिना ज्वालामुखी की चट्टानों के नीचे जा नहीं सकते और इतनी गहराई तक खोदना असम्भव है। मैं इस विषय का अभ्यास कर रहा हूं, अभी वह पूर्ण नहीं हुआ। तथापि इतना कह सकता हूं कि इस प्रदेश में पानी की विपुलता है। परन्तु वह कहां है, कैसे मिलेगा, यह बात जो महाशय बतला सकेंगे उनका लोगों पर बड़ा ही उपकार होगा।

श्रीयुत हेनरी पोलक (दक्षिणी आफ्रिका के भारतीय लोगों के नेता) का "दक्षिणी आफ्रिका के भारतीय लोगों की दशा" इस विषय पर व्याख्यान हुआ। वे बोले:—साठ वर्ष हो गये, जब दक्षिणी आफ्रिका के गोरे लोगों को मजदूरों की जरूरत पड़ी और वे अपनी सरकार के मारफत भारतवर्ष से नेटाल को मजदूर ले गये। उस समय उनको यह डर था कि करार खतम हो जाने पर मजदूर स्वदेश को लौट जावेंगे, इसी कारण गोरों ने इन्हें जमीन, आदि देकर बस लिया। परन्तु कुछ काल बाद भारतीय मजदूरों की संख्या बढ़ने लगी और वहां के निवासी गोरों की संख्या कम होने लगी, अतएव भारतीय मजदूरों के बहिष्कार करने का निश्चय किया गया। परन्तु इसके लिये भारतीय सरकार की मंजूरी नहीं मिली। अब यद्यपि नेटाल में मजदूरों का जाना बन्द हो गया है, तथापि जो मजदूर आज वहां स्थित हैं उन्हें सजा देने,

मि० हेनरी पोलक।

एक ही कुटुम्ब के लोगों में फूट डा[illegible] भिन्न भिन्न जगहों के कामों पर भेजने का क्रम जारी है। मजदूरों का [illegible] न्यूनाधिक रहने से जगह खराब [illegible] मुद्दत खतम हो जाने पर प्रत्येक [illegible] ४५) रु० कर देना पड़ता है और [illegible] वसूल करने के लिये लोग दुर्मार्ग का [illegible] लम्बन करते हैं। गत २५ वर्षों से ट्रांस[illegible] अन्याय हो रहा है। परन्तु बोरयुद्ध [illegible] से भारतीय लोगों की दशा बहुत ही [illegible] हो गई है। जब यह कायदा पास [illegible] भारतीय लोग अपने नाम रजिस्टर [illegible] और अपने अँगूठे की छाप दें तब [illegible] प्रतिकार की हलचल शुरू हुई। इस [illegible] में साढ़े तीन हजार लोग जेल की सजा भोग रहे हैं। अब यह रजिस्ट्रेशन और [illegible] सम्बन्धी निर्बन्ध रद्द करना स्वीकार [illegible] गया है, परन्तु अभी इसका बिल नहीं हुआ है। आशा है कि आप लोग या[illegible] पास होने के लिये सरकार को सूचना [illegible] हमें सहायता करेंगे। इस प्रश्न का [illegible] हो जाने से यह निश्चित हो जायगा कि [illegible] साम्राज्य में भारतीय लोगों का स्थान [illegible] है। हम अपने तन, मन और धन [illegible] परवा न करके यह हलचल कर रहे [illegible] शा है कि आप लोग भी हमें सब [illegible] मदद देंगे।

प्रोफेसर धर्मानन्द कौसंबी का [illegible] मार्क्स का जीवनचरित्र और उसके [illegible] विषय पर व्याख्यान हुआ। आपने [illegible] कार्लमार्क्स का जन्म ५ मई सन् १८[illegible] जर्मनी में हुआ। इनके पिता [illegible] और बड़े [illegible] थे, परन्तु कार्लमार्क्स [illegible] महात्मा हुए कि वे द्रव्य की कुछ भी [illegible] करने और अपने जातिबन्धुओं के [illegible] निरन्तर गरीबी में [illegible] रहे [illegible] की उम्र में डाक्टर की पदवी पाकर [illegible] समाचारपत्र के सम्पादक हुए। उस [illegible] उन्होंने प्रचलित राजसत्ता [illegible] कठोर टीका की। अतएव उन्हें [illegible] उन्हें भागना पड़ा। [illegible] वे वहां से लंदन को गये [illegible] उन्होंने समाज-सत्ता-वादियों की [illegible] स्थापित की। इंग्लैंड और [illegible]

प्रो० धर्मानन्द कौसम्बी।

ते हुए भी उन्होंने अपने मतों का प्रचार
में जी-जान तोड़ कर परिश्रम किया
सारे राष्ट्र के मजदूरों का संघ स्थापित
। फ्रेंको-जर्मन-युद्ध के कारण यह संस्था
गई। तथापि उसके तत्व सारे राष्ट्र में
गये हैं और उनके फल आज भी चारों
देख पड़ते हैं। कार्लमार्क्स के मुख्य तत्व
थे:—इतिहास, साधन के अनुकूल बद
है; यह समय पूंजीवालों और मजदूरों
झगड़े का है; और पूंजीवाले जो नफा
हैं वह खाने का उनका हक नहीं है,
एव वे यह प्रतिपादन करते थे कि चाहे
र व्यवसाय का नफा हो उसे सार्वजनिक
मानना चाहिये। कार्लमार्क्स के अनु-
यियों का मुख्य कथन यह है कि देश की
न किसी एक व्यक्ति की नहीं है, किन्तु
सारे समाज की है।

जाती थी। बीच में यूरोपियन राष्ट्रों ने सब सोने के ही सिक्कों का प्रचार कर दिया; अतएव चांदी सस्ती हो गई। और भारतवर्ष से जो रकम विलायत को रवाना करनी पड़ती है उसमें ईस्टइण्डियाँ बहुत लगने लगी। तब भारतीय सरकार कठिनाई में पड़ी और चांदी का नवीन सिक्का न चला कर पुराने सिक्कों को कृत्रिम मूल्य दे दिया गया। इसके बाद देश में रुपयों की कमी हो गई और रुपये की कीमत १ शिलिंग ४ पेन्स के करीब हो गई। तब एक नवीन ही चाल निकाली गई। इंगलैंड का पौंड यहां लाया गया और नवीन रुपयों का चलाना भी शुरू किया गया। परन्तु, साथ ही यह नियम किया गया कि सोना पाने पर रुपये बना दिये जायंगे; परन्तु चांदी नहीं ली जायगी। यही पद्धति अब भी जारी है। यह न तो पूरी पूरी एकचलनात्मक पद्धति है और न द्विचलनात्मक ही पद्धति है; अतएव उसे हम अधेली पद्धति कहेंगे। इस पद्धति से चांदी का भाव कम का कम ही बना रहा और लोगों के पास की रक्खी हुई चांदी कम कीमत हो गई। रुपये का मूल्य कृत्रिम हो जाने के कारण जाली सिक्का बनाने की चाल चल गई। और चूंकि रुपये बनाने में सरकार का फायदा है, इस लिये रुपये अधिकाधिक बनने लगे और महंगी आने लगी। और टकसाल के काम में जो यह नफा हुआ वह सोने के रूप में भारत में नहीं रक्खा गया; अतएव उधर से भी भारत को घाटा ही रहा। अब, जब तक सोने का सिक्का यहां न चलाया जायगा तब तक यह दशा नहीं सुधर सकती।

नासिक के वकील श्रीयुत प्रधान ने "हमारी वर्तमान धार्मिक दशा" इस विषय पर वक्तृता दी। उसका सारांश इस प्रकार है—आज मैं खास कर तीन बातों का विचार करूंगा-(१) पश्चिमी लोगों के संसर्ग से हमारे धर्मविचारों में कैसा फर्क हो गया है; (२) हमारी वर्तमान धार्मिक स्थिति कैसी है और (३) अब उसमें कौन से सुधार आवश्यक हैं। सन् १८३५ में बैंटिंक साहब ने हमें अँगरेजी भाषा के द्वारा पश्चिमी शिक्षा देना प्रारम्भ

नहीं है। इस सब परिस्थिति का परिणाम यह हुआ कि सन् १८६७ के करीब बम्बई में प्रार्थनासमाज स्थापित किया गया और सन् १८७० में स्वामी दयानन्दजी ने आर्यसमाज की स्थापना की। इस तरफ के लोगों (महाराष्ट्र, आदि) पर आर्यसमाज और प्रार्थनासमाज की विशेष छाप नहीं बैठी। इसके बाद की पीढ़ी, मिल, स्पेन्सर, आदि के ग्रन्थ पढ़ कर, नास्तिक बनने लगी। परन्तु पाश्चात्य देशों में इसके विरुद्ध बातें होने लगीं। पौर्वात्य धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन करने के कारण उन्हें वेदान्त का ज्ञान होने लगा। एक जर्मन पंडित ने बम्बई में व्याख्यान देकर, यहां के लोगों को, पौर्वात्य तत्वज्ञान न छोड़कर, उसके अध्ययन करने का उपदेश दिया। वैज्ञानिक आविष्कारों से भी वेदान्त के तत्व सत्य ठहरने लगे। तब तीसरी पीढ़ी धर्म की ओर फिर आकर्षित हुई। परन्तु पहले का यह विचार कि, जीवन को एक संकट समझ कर उसे टालना चाहिये और संसार का त्याग करना चाहिये, बिलकुल नष्ट होने लगा; तथा धर्म का एक यह नवीन विचार सर्वमान्य होने लगा कि संसार का त्याग हो ही नहीं सकता-और न उसकी जरूरत है-अतएव अपने, और देश के, कल्याण में तत्पर होना ही हमारा कर्तव्य है। परमात्मा की उपासना पर लोगों का विश्वास जमा और समाजहित का विचार दृढ करने के लिये यह आवश्यक जान पड़ने लगा कि व्यक्तिशः परमात्मा की प्रार्थना करना जितना जरूरी है उतना ही सब लोगों को एकत्र जमा कर भी ईश्वर की उपासना करना आवश्यक है। अतएव अब, पुरानी परम्परा को सुधार कर, वेदशास्त्र और उपनिषदों के तत्वज्ञान के आधार पर, सार्वजनिक उपासना करने की चाल का समावेश करके धर्मस्थापना का प्रयत्न करना चाहिये। मैं आशा करता हूं कि ऐसा उपक्रम शुरू करने का समय और उसे करनेवाली विभूतियां शीघ्र ही अवतीर्ण होंगी और उस धार्मिक विचार से वर्तमान कितने ही विकट प्रश्न बड़ी सरलता से हल हो जायंगे।

फर्गुसन कालेज के प्रो० भाटे।

फर्ग्युसन कालेज के प्रोफेसर भाटे ने "भारत के वर्तमान सिक्कों का चलन" इस विषय पर व्याख्यान दिया। उन्होंने कहा:—सन् १८३५ में पहले पहल भारत में इन सिक्कों की प्रणाली शुरू हुई। उस समय कायदे के अनुसार कम्पनी के रुपयों का चलन चला। सन १८९३ तक यही प्रणाली अमल में लाई

नासिक के वकील श्रीयुत प्रधान।

किया। पाश्चात्य संस्कृति हमने तुरंत ही स्वीकार कर ली और फिर हम आत्म-निरीक्षण करने लगे। और जल्दी जल्दी में हमने यह अनुमान निकाला कि हिन्दू लोगों की अवनति का कारण हिन्दूधर्म ही है। तिस पर भी मिशनरियों ने यह कोलाहल मचा दी रक्खा था कि हिन्दूधर्म में सब बुराई ही बुराई

अकोला के वकील श्रीयुत चिपलूनकर।

अकोला के वकील श्रीयुत वासुदेव लक्ष्मण चिपलूनकर (प्रसिद्ध चिपलूनकर शास्त्री जी के भतीजे) ने "साधक के लक्षण" विषय पर अपना भाषण किया। आपने कहा:—श्रीसमर्थ रामदास स्वामी महाराष्ट्र के आदर्श सन्त हैं। उन्होंने अपने श्रीमत् दासबोध ग्रन्थ में साधक के सम्बन्ध में एक समास लिखा

है। सत्व, रज, तमादि गुणों से और काम-क्रोधादि विकारों से बद्धत्व आता है। इस बन्धन से छूटने की जिसे इच्छा होती है उसे मुमुक्षु कहते हैं। बारम्बार प्रयत्न करने पर भी सफल न होकर जो बुद्धिपूर्वक मोक्ष के साधन ढूंढने लगता है वह साधक है। साधक की बुद्धि चिकित्सक होनी चाहिए। साधक दो प्रकार के होते हैं। जिन्हें ज्ञान-दीक्षा मिल चुकी है वे ऊंचे दर्जे के साधक हैं। उनके लक्षण बतलाना मेरी शक्ति से बाहर है; अतएव मैं उसमें नहीं पड़ता। वासनाओं की संशुद्धि करना साधकों का कार्य है। जो साधक यह काम प्रयत्नपूर्वक करता है उसीके सम्बध में मैं चार शब्द कहूँगा। हमारे प्रयत्न और सामर्थ्य के अनुसार शीघ्र अथवा वि-लम्ब से हम में सुधार होता है। चित्त को एकाग्र किये बिना यह सामर्थ्य प्रकट नहीं होता। प्रातःकाल शुचिर्भूत हो कर और मन एकाग्र करके हमें उस गुण का चिन्तन करना चाहिये जिसे अपने शरीर में लाना है। सुबह जिस गुण का चिन्तन किया है उसीको अपने दिनभर के व्यवसाय में-कृति में-लाना चाहिए और रात को सोने के पहले अपने मन को यह हिसाब देना चाहिए कि उक्त गुण हमारी कृति में कहां तक उतर आया है। ऐसा ही यदि नित्य क्रम रखा जायगा तो उससे सु-परिणाम अवश्य होना ही चाहिए। परन्तु यह होने के लिए 'मैं-पन' या अहन्ता छोड़ देनी चाहिए, अपने दुर्गुणों को चिकित्सक बुद्धि से देखना चाहिए; परन्तु दूसरे के विषय में अनावश्यक [illegible] रखना चाहिए और [illegible] मान न दिखाते हुए [illegible] चाहिए। ऐसा करने [illegible] की पदवी में सिद्ध-[illegible] लगना है।

इन व्याख्यानों के [illegible] म्बर पलुसकर, प्रो० भा[illegible] गर्दे, आदि अनेक विद्वानों [illegible] नोटेशन पद्धति, हमारी दा[illegible] इत्यादि विषयों पर इस [illegible] श्रीमती मनूबाई भागवत, [illegible] महिला ने जीव के बद्ध [illegible] उसके मोक्ष का उपाय [illegible] व्याख्यान दिया।

साहित्यचर्चा।

६ सम्राट पञ्चम जॉर्ज का जीवनचरित्रः—(सचित्र) काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा-द्वारा प्रकाशित। पृष्ठसंख्या १३७ मूल्य ।।।) आने।

यह पुस्तक एक मुसलमान महाशय ने बड़ी योग्यता से लिखी है। इसके १५ परिच्छेदों में महाराज जॉर्ज के राज्याभिषेक तक का सब चरित्र आगया है। एक परिच्छेद में महारानी मेरी का चरित्र है। इस राजदम्पत्ति का चरित्र सिर्फ राजामहाराजाओं के ही लिए अनुकरणीय नहीं है, किन्तु इनका गार्हस्थ्य चरित प्रत्येक गृहस्थ के लिए आदर्शरूप है। अतएव इस चरित की एक एक कापी प्रत्येक पढे लिखे गृहस्थ के घर में रहनी चाहिए।

७ भगवद्गीताः—आर्य-समाज के प्रसिद्ध विद्वान् पं० तुलसीराम स्वामीकृत आर्यभाषानुवाद-सहित-पृष्ठ संख्या ३५४। मूल्य ।।=) आने मिलने का पताः—स्वामिमशीन प्रेस मेरठ।

इसमें भगवद्गीता के श्लोकों का ठीक ठीक अर्थ किया गया है। अद्वैत-वादियों और पौराणिकों की तरह इसके अर्थ में खींचतान कम की गई है। पुस्तक के अन्त में विशिष्ट-श्लोकों का शंका-समाधान किया गया है और श्लोकों की वर्णानुक्रम सूची भी दे दी गई है। निदान इसके पढ़ने से गीता-सम्बन्धी अनेक रहस्य मालूम होंगे।

८ आश्चर्यजनक घंटी और अन्य रोचक कथाएं—लेखक श्री-युत सत्यदेव। पृष्ठ-संख्या ११०। [illegible] है आने। मिलने का पता [illegible] चार आख्यायिकाओं का [illegible] सरस्वती में प्रकाशित [illegible] है। सब कथाएं उपदेश-प्रद और मनो-रंजक हैं।

९ [illegible]—सम्पादक 'एक भारतपुत्र'। प्रकाशक मेसर्स रामचन्द्र एंड ब्रदर्स, लाहौर। मूल्य ।।) आने।

इस पुस्तक में स्त्रियों के लिये उपयोगी कई विषयों पर भिन्न भिन्न निबन्ध हैं। पुस्तक के अन्त में कई पतिव्रता सतियों के चरित्र भी हैं। पुस्तक के पढ़ने से जान पड़ता है कि इसके लेखक को स्त्रियों की वर्तमान दुर्दशा पर बड़ा तरस आया है और उनकी दशा सुधा-रने के शुद्ध हेतु ही से उसने यह पुस्तक रची है। यद्यपि इसका [illegible] अच्छा नहीं है और [illegible] आदि की अशुद्धियां भी बहुत हैं, तथापि पुस्तक की उपयोगिता [illegible] हुए ये कोई दोष नहीं हैं। जो बहनें मूल्य न दे सकें वे इसे [illegible] पते से सिर्फ डाक महसूल भेज कर ही मंगा सकती हैं।

१० नित्यकर्मपद्धति—लेखक [illegible] साह, [illegible] बाजार अल्मोड़ा। मूल्य [illegible] आने।

इस पुस्तक में, प्रातःकाल से लेकर [illegible] समय तक के सब धा-र्मिक नित्यकर्मों का बहुत अच्छा विवरण किया गया है। [illegible] में जो [illegible] आते हैं उनका [illegible] भी किया गया है। प्रत्येक [illegible] के काम की चीज़ है।

११ पद्यप्रबन्धः—लेखक बाबू मैथिलीशरण गुप्त। मिलने का पताः—बाबू [illegible] गुप्त चिरगांव, झांसी। पृष्ठ संख्या १२३ मूल्य ।=) आने।

इस पुस्तक में गुप्तजी की ४० भिन्न भिन्न कविताओं का संग्रह है। [illegible] सरस्वती, [illegible] पत्रों में प्रकाशित हो चुकी [illegible], गुप्तजी की कविताओं में [illegible] बार पढ़ने पर भी वे नवीन ही मालूम होती हैं। [illegible] रचना में कविता के सब सद्गुण पाये जाते हैं और पाठकों पर उसका बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता है। [illegible] चरण सिखाने के लिए काव्य एक अच्छा साधन है। [illegible] किये हुये उपदेश से मनुष्य के हृदय पर जितना प्र[illegible] उतना अन्य साधनों से नहीं होता। काव्य के द्वारा [illegible] न्तियां हो जाती हैं। जितनाही प्रभावशाली काव्य हो[illegible] तनो ही शिक्षा का प्रचार देश में होगा उसी हिसाब [illegible] अपना काम कर जायगा। अतएव, हम गुप्तजी से [illegible] करते हैं कि आप अब स्फुट कविता करना छोड़ [illegible] के अनुसार संस्कृत के किसी उत्तम कथानक के आधार [illegible] महाकाव्य निर्माण करने का प्रबन्ध करें जिसका हिन्दी [illegible] अपूर्व प्रभाव पड़े और जो अपने प्रभाव से हिन्दी संसा[illegible] क्षण-हलचल मचा दे। बंगाली में महाकवि माइकेल मधु[illegible] आदि कुछ कवियों के 'मेघनादवध,' आदि कुछ काव्य [illegible] के हैं। गुप्तजी को बहुत ऊंचे दरजे का कवि समझ कर [illegible] सूचना की है।

१२ आचार्य-वंशावली—(संस्कृत)—लेखक श्रीयुत सदाशिव दीक्षित। प्रकाशक प्रभाकरी कम्पनी, काशी। इस[illegible] में नेपाल-देश-निवासी श्रीमान् आचार्य शिरोमणि दीक्षित [illegible] जीवनवृत्तान्त और उनकी वंशावली का विवरण है। आप[illegible] आपकी पत्नी का एक एक चित्र भी है। आप बड़े साधु[illegible] आपकी जीवनी से अनेक उपदेश मिल सकते हैं।

१३ महाभारतसार—लेखक कुँअर हनुमन्तसिंह रघुवंशी [illegible] पंगलो ओरियंटल प्रेस आगरा। मूल्य २) रु०।

हिन्दी में महाभारत की जितनी पुस्तकें अभी तक नि[illegible] उन सब में यह पुस्तक बढ़ी चढ़ी है। इस पुस्तक में महाभार[illegible] समान विस्तृत ग्रन्थ का सार इस खूबी के साथ खींचा गया है [illegible] कोई भी महत्व की बात छूटने नहीं पाई और न कोई व्यर्थ वि[illegible] ही हुआ। ठाकुर साहब की भाषा जैसी सरल और सुबोध [illegible] है उसे सब लोग जानते ही हैं। अतएव इसमें कोई सन्देह नहीं [illegible] यह पुस्तक बालक, युवा, वृद्ध, स्त्री, पुरुष, सब के लिये उप[illegible] हुई है।

१४ बालस्मृतिमाला—लेखक श्रीयुत सुन्दरलाल शर्मा। प्रका[illegible] इंडियन प्रेस, प्रयाग। मूल्य ।।) आने।

इसमें अठारह स्मृतियों का पूरा पूरा सार है। हमारे [illegible] महर्षियों ने जो नीति और तत्व स्मृतियों में लिख रखे हैं [illegible] हिन्दी में सार खींच कर पं० सुन्दरलालजी ने बड़ा प्रशंसनीय [illegible] किया है। इंडियन प्रेस की बालपुस्तकमाला की अन्य पुस्तकों [illegible] तरह यह भी बालकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। आज [illegible] मदरसों में बालकों को धर्म और नीति की शिक्षा प्राय बिल[illegible] ही नहीं दी जाती। अतएव उनके पालकों को चाहिये कि [illegible] प्रेस की ये पुस्तकें बालकों को अपने घर में ही पढ़ाने का प्र[illegible] कर दें।

१५ गार्फील्ड—प्रकाशक इंडियन प्रेस प्रयाग। मूल्य [illegible]

यह अमेरिका के सुप्रसिद्ध प्रेसिडेन्ट गार्फील्ड का जीवन[illegible] है। भारत के प्रत्येक नवयुवक पुरुष को इस पुस्तक से लाभ [illegible] चाहिये। इसके पढ़ने से हमारे नवयुवकों को यह बात मालूम [illegible] जायगी कि अपनी अपनी जन्मभूमि के विषय में हमारा [illegible] कर्तव्य है।

इँगलैंड देश, अँगरेजी साम्राज्य, अँगरेजों का वैभव, अँगरेजी भाषा, इत्यादि बातों का उन्हें अभिमान होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है; परन्तु उनकी दृष्टि केवल इँगलैंड भर के लिए ही संकुचित नहीं हो गई थी; किन्तु वे किसी भी देश के दीन-दुखी, विपद्ग्रस्त और अन्याय से सताये जानेवाले लोगों का पक्ष लेकर, अपने प्रभावशाली लेखों और व्याख्यानों के द्वारा अन्याय से उनका उद्धार करने के लिये, निरपेक्ष भाव से, अपनी शक्ति-भर, प्रयत्न करते थे। और इसी कारण "उदार चरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्" को चरितार्थ करनेवाले साधु पुरुषों में उनकी गणना होने लगी थी। इस प्रकार का लोकहितकर्त्ता पुरुष इस दुर्घटना में विलीन हो गया, अतएव सारे जगत् की और मानवजाति की आज अपरिमित हानि हुई है। इस दुर्घटना से टिटानिक-जहाज के स्वामियों की करोड़ों रुपये की हानि हुई होगी और यह हानि पूरी करने में कदाचित् उन लोगों को अनेक वर्ष भी लगेंगे, परन्तु स्टेड साहब की मृत्यु से सारे संसार का जो नुकसान हुआ है वह करोड़ों रुपयों की माप से भी नहीं मापा जा सकता और यह क्षति पूर्ण करने के लिये, इस बीसवीं शताब्दी में भी, कोई मार्ग नहीं है। अतएव टिटानिक की दुर्घटना से यदि कोई सब से बड़ा नुकसान हुआ है तो वह स्टेड साहब की आकस्मिक मृत्यु से जगत् का, और सारे मनुष्यों का नुकसान है। यह बात इँगलैंड और अमेरिका के भी विचारवान् पुरुषों ने कह डाली है। इस लिये यह हम अपना परम पवित्र कर्तव्य समझते हैं कि ऐसे महापुरुष का सचित्र संक्षिप्त चरित्र हम अपने प्यारे पाठकों को भेंट करें।

विलियम् थामस स्टेड का जन्म सन् १८४९ में न्यूकासल शहर से कुछ दूर पर हौडन-आन्-टाइन नामक छोटे से गाँव में हुआ। उनके पिता इस गाँव में कांग्रिगेशनल चर्च के एक धर्माधिकारी थे-अर्थात् यह कहने में कोई हर्ज नहीं कि इँगलैंड के एक साधारण गरीब ... जन्म हुआ। वेकफील्ड ... चूंकि उनके पिता ... उम्र तक ही उन्हें ठीक ठीक शिक्षा मिल सकी। कालेज अथवा युनिवर्सिटी का उन्हें दर्शन भी नहीं हुआ। चौदह वर्ष की उम्र में ही स्कूल छोड़ कर न्यूकासल के एक व्यापारी के यहां वे बिना वेतन के, उम्मेदवार के तौर पर, काम करने लगे। इस व्यापारी के यहां वे सात वर्ष तक मुनीमत का काम करते हुए पड़े रहे। चूंकि रूस देश से इस व्यापारी का बड़ा व्यवहार था, इस लिये श्रीयुत स्टेड को उतने समय में रूसी लोगों और रूस देश के विषय में अच्छा ज्ञान हो गया। स्कूल में यद्यपि उन्हें बहुत ही थोड़ी शिक्षा मिली थी, तथापि उनके पिता घर में उन्हें बहुत ऊंचे दर्जे की शिक्षा देते रहे थे। इसके सिवाय स्टेड साहब को भी पुस्तकावलोकन की बड़ी शौक थी, इस कारण उन्होंने स्वयं भी स्वावलम्बन के मार्ग से अनेक ग्रन्थों का परिशीलन करके अपना ज्ञान बढ़ा लिया था। उनके कुटुम्ब की रहन-सहन बिलकुल ब्राह्मणों की सी, अथवा हमारे यहां के वर्तमान 'ब्राह्मण' कहलानेवाले कुटुम्बों से भी अधिक, सादी और सत्वगुणप्रधान थी। प्युरिटन मत पर चलनेवाले उनके पिता ने उनके लिये सख्त ताकीद कर दी थी कि ताश, उपन्यास अथवा नाटक की पुस्तकें स्पर्श न की जायँ। स्वयं स्टेड साहब ने भी अपने एक लेख में कहा है कि ५३।५४ वर्ष की उम्र तक मैंने किसी नाटकघर में नाटक देखने के लिये पैर भी नहीं रखा था। परन्तु उक्त व्यापारी के यहां नौकरी करते समय शेक्सपियर के नाटक वे अवश्य पढ़ते रहे थे। न्यूकासल के व्यापारी के यहां मुनीमत की चक्की पीसते समय स्टेड साहब मौका पाकर डार्लिंग्टन के 'नार्दर्न इको' नामक एक समाचारपत्र में कभी कभी लेख भेजा करते थे। ये लेख उस पत्र के स्वामी को पसन्द आते थे और वह उन्हें प्रकाशित भी करता था। परन्तु इन लेखों के लिये पुरस्कार उन्हें एक कौड़ी का भी नहीं मिला था। अन्त में सन् १८७१ में उक्त पत्र के सम्पादक का स्थान खाली हुआ और, चूंकि उस पत्र के मालिक को इनकी लेखशैली पसन्द आई थी, इस लिये उसने इन्हें उक्त स्थान पर वेतन के साथ नियत कर लिया। इस समय स्टेड साहब की उम्र २२ वर्ष की थी। उन्हीं दिनों तुर्कलोग और उनकी बल्गेरियन प्रजा में अनबन हो गई और तुर्कलोग बल्गेरियन लोगों को बहुत सताने लगे। इस पर इँगलैंड में बड़ी हलचल मची। इस समय स्टेड साहब ने अपने स्वभाव के अनुसार, बल्गेरियन लोगों का पक्ष लेकर, तुर्कों के संकट से उन्हें छुड़ाने के लिये, बड़े प्रभावोत्पादक लेख लिखे; वे लेख ग्लैडस्टन के समान इँगलैंड के राजनीतिज्ञ और सार्वजनिक नेता को भी बहुत पसन्द पड़े। श्रीयुत स्टेड के इन लेखों के कारण 'नार्दर्न इको' पत्र बड़ा प्रसिद्ध हो गया और स्वयं लंडन नगर के पाठकों पर भी स्टेड के लेखों का भारी प्रभाव पड़ने लगा। तब लंडन के बड़े बड़े नेताओं से जान पहचान करने के लिये वे वहां गये। ग्लैडस्टन और कार्लाइल के समान जगद्विख्यात पुरुषों से उन्होंने भेंट की। बड़े बड़े लोगों को भी बुद्धिशून्य और मरामूर्ख ठहरानेवाले कार्लाइल के समान तत्ववेत्ता

ने भी स्टेड को "That good man Stead" (सत्पुरुष स्टेड ... कर सम्मान किया। इस प्रकार जब स्टेड साहब की संत... प्रशंसा होने लगी तब 'पालमाल गजट' नामक बड़े भारी पत्र के उस समय के सम्पादक मि० मोर्ले, अर्थात् भारत के निकट-परिचित लार्ड मोर्ले, ने स्टेड साहब को अपने नीचे ... एक सम्पादक नियत कर लिया। यह सन् १८८० की ... पहले पालमाल गजट में सब मुख्य लेख मोर्ले साहब ही लि... और अन्य सब भागों का काम स्टेड को सौंप दि... था। मि० स्टेड प्रायः अनेक विषयों में मोर्ले साहब को ... करते रहते और उनके सब विचार प्रायः मोर्ले साहब की ... अधिक जोशीले, स्वतंत्र और कुछ विलक्षण रहते थे। मोर्ले साहब ने उस समय मि० स्टेड को The irrep... अथवा 'गरम' नाम दिया था। आगे चल कर मि० मोर्ले ने ... समाचारपत्र के अग्रलेख (Leader) लिखने का ... स्टेड साहब ही पर छोड़ दिया और जिन लेखों की, मोर्ले के नाम पर, पाठकों में प्रशंसा हुआ करती उनमें से कि... लेख मोर्ले साहब के नहीं; किन्तु मि० स्टेड की लेखनी से ... हुए होते थे। सन् १८८३ में मि० मोर्ले ने अपने सम्पाद... इस्तीफा दिया और उनके बाद स्टेड साहब ही पालमाल ग... मुख्य सम्पादक नियत हुए। स्टेड के अधिकार में इस दैनि... की पूरी जवाबदारी आने पर लंडन में और सारे इँगलैंड में ... दिन सुबह पाठकगण बड़ी उत्सुकता के साथ यह प्रतीक्षा ... रहते कि देखना चाहिये, आज पालमाल गजट में कैसे लेख ... हैं। पालमाल गजट की सम्पादकता करते समय स्टेड सा... अँगरेजी साम्राज्य के गौरव और उसके दृढ़ीकरण के लिये ... महत्वपूर्ण राजकीय विषयों पर लेख लिखे और विशेष प्रसं... आ पड़नेपर अनेक उचित बातें इँगलैंड के राजनीतिज्ञों को सु... उत्तरदायी प्रधानों ने यह स्वीकार किया है कि आफ्रिका के ... प्रान्त पर जनरल गार्डन के नियत होने से जो वहां अँगरेज... गौरव स्थापित हुआ उसके लिये मुख्यतः स्टेड साहब के लेख ... कारणीभूत हुए। उसी तरह सन् १८८४ के लगभग जब इँगलैं... नौसेना की दशा असन्तोषजनक थी तब स्टेड साहब ने ... 'Truth about the Navy' (नौसेना की वास्तविक ...) नामक लेख में नौसेना का सुधार करने के लिये अनेक सूचना... और सारे राष्ट्र का ध्यान उसकी ओर आकर्षित किया। इन ... नाओं के अनुरोध से ही आगे चल कर नौसेना का सुधार ... और स्टेड साहब ने तत्काल ही यदि दक्षता न दिखलाई होती ... इँगलैंड की नौसेना में बड़ा ही अप्रबन्ध मच गया होता-यह ... बड़े बड़े अडमिरल लोगों ने भी स्पष्ट रीति से स्वीकार कि... इसी प्रकार आयर्लैंड को स्वराज्य देने के पक्षपातियों में मि० ... का अग्रेसरत्व था ही। आयर्लैंड को स्वराज्य (होमरूल) दे... बात जब ग्लैडस्टन साहब के मन में भी न आई थी तभी से ... साहब ने होमरूल की आवश्यकता प्रस्थापित कर दी थी। ... स्वयं ग्लैडस्टन साहब ने जब होमरूल का पक्ष उठाया तब उ... मि० स्टेड को, अपने तौर पर पत्र भेज कर, धन्यवाद दिया था।

सन् १८८५ में मि० स्टेड ने Maiden tribute of modern ... bylon नामक एक पुस्तक निकाली। इस पुस्तक में उन्होंने ... दिखलाया था कि लंडन में तरुण स्त्रियों को कुमार्ग में प्रवृत्त ... संभावित वेश्याओं के गुप्त व्यवसाय को प्रोत्साहन देकर ... ही लोग, जो ऊपर से भोले भाले दिखते हैं, किस प्रकार धन ... हैं और इससे अनीति का कैसा प्रचार हो रहा है। इस पुस्त... मि. स्टेड ने ऐसे प्रतिष्ठित कहलानेवाले पुरुषों का अत्यन्त उद्वेग... सच्चा स्वरूप बिलकुल खोल दिया था और उन्होंने उसमें ... प्रतिपादित किया था कि इस प्रकार की संभावितपन की ... का प्रतीकार करने के लिए अवश्य कोई कायदा बनना चाहि... उन्होंने अपने विधानों का समर्थन करने के लिए उसी पुस्त... अनेक प्रमाण दिये थे। इस पुस्तक में वर्णन की हुई वास्तविक ... को यद्यपि कोई भी अस्वीकार नहीं कर सकता था, तथापि ... के कुछ बड़े लोगों और अधिकारियों का यह मत हुआ कि ... अश्लील और मलीन बातें प्रकट रूप से पुस्तकाकार प्रसि... करना अनुचित है, इस कारण स्टेड साहब पर फौजदारी मु... दमा चलाया गया और नवम्बर सन् १८८५ में उन्हें जस्टिस ... ने तीन मास की सजा दी। यह सजा स्टेड साहब ने हालांकि ... भोगी। इँगलैंड में सम्पादक के समान उच्च श्रेणी के मनुष्य ... केवल लेखन-स्वातंत्र्य की स्थापना के कारण अथवा उद्योगमग्न... कारण यदि जेल होता है तो उसे बदमाश, खूनी और डाकू ... श्रेणी में रखने की चाल नहीं है। ऊंचे दर्जे के अपराधी ... कारण उनके लिए बहुत से सुभीते रहते हैं। स्टेड साहब ... तो इस कैद में समाचारपत्रों के लिए लेख लिखने की भी ... गई थी! जेलखाने की कोठरी में बैठ कर वे अपने दैनिक ... लिये प्रति दिन लेख लिखा करते और हालांकि के जेल में ... भोगते समय मैंने पालमाल गजट के सम्पादक का काम कैसे ...

इस विषय पर, जेल से लौटने पर, उन्होंने एक छोटी सी पुस्तक भी निकाली थी। जेल से जब वे छूटे तब जेल के अधिकारियों ने जेल के वस्त्र उन्हें भेंट किये। जिस दिन स्टेड साहब को जेल की सज़ा मिली उस दिन की सांवत्सरिक तिथि वे प्रति वर्ष मनाते थे और उस दिन वही जेल में पाई हुई कैदी की पोशाक पहन कर वे अपने पाहुनों का आगत-स्वागत करते थे! इस सजा के कारण इँगलैंड में स्टेड साहब का नाम सर्वतोमुखी हो गया और अन्याय की किसी घटना का भी समाज और सरकार से यदि किसीको फैसला कराना होता तो वह स्टेड साहब ही से सम्मति पूछने आता! पालमाल गजट के आफिस में इस प्रकार के लोगों के झुंड के झुंड प्रति दिन आने लगे; और स्टेड साहब ने यदि समझने कि यह बात वमुच अन्याय अथवा अनर्थ से पूर्ण है तो उसका प्रतिकार करने के लिए वे बहुधा अपना तन मन धन खर्च करने लगते। इसके बाद दिन दिन उन्हें यह आवश्यकता मालूम होने लगी कि अपना, निज का, स्वतंत्र, कोई दैनिक या मासिक पत्र होना चाहिए; अतएव उन्होंने, पालमालगजट से अपना सम्बन्ध छोड़ कर सन् १८९० में

“ रिव्यू आफ रिव्युज़ ” की स्थापना

की। जब से इस मासिक पत्र की स्थापना हुई तब से लेकर गत अप्रैल मास के अन्त तक उन्होंने इस पत्र की नीति कैसी रखी थी [illegible] में संसार के सभी महत्वपूर्ण [illegible]

[illegible] बलाढ्य पक्ष के विरुद्ध बलहीन पक्ष की तरफदारी करने का जो व्रत उन्होंने एक बार अपने कर में पहन लिया था उसे उन्होंने कभी नहीं निकाला। अपने प्रख्यात रिव्यू की स्थापना करने के साथ ही रूस की राजकीय स्थिति की ओर उनका ध्यान गया। स्टेड को छुटपन ही से यूरप के, अन्य परकीय देशों की अपेक्षा, रूस के विषय में अधिक सहानुभूति थी। उनका निजी मत था कि इँगलैंड में, रूस के सम्बन्ध में, व्यर्थ और अकारण बेसमझी उत्पन्न हो गई है। सन् १८८४ में अफगानिस्तान की सीमा पर पँजदे नामक स्थान के विषय में रूस और इँगलैंड के बीच में जो झगड़ा पैदा हो गया था उससे जान पड़ता था कि इन दोनों बलवान् राष्ट्रों में अब युद्ध हुए बिना कदापि न रहेगा; परन्तु स्टेड साहब ने अपने लेखों के द्वारा, इँगलैंड के सामने रूस का पक्ष इस सरलता और शान्ति के साथ रखा कि इन दोनों राष्ट्रों में युद्ध की आग नहीं भड़की। पूर्ण स्वतंत्र रीति से लेख लिख कर किसी उचित कार्य का समर्थन करने के लिए, रिव्यू आफ रिव्यूज़, स्टेड साहब के लिए एक अच्छा साधन हो गया। बोर युद्ध के समय बोरों के पक्ष में चूं भक करना, इँगलैंड के बहुजनसमाज के मत से, देशद्रोह करना ही था; परन्तु स्टेड साहब स्वयं इँगलैंड में ही रह कर, बड़े साहस के साथ, बोर लोगों की तरफदारी कर रहे थे।

Shall I slay my br ther Boer (मैं क्या अपने बोरबन्धु का खून पीऊं?) के समान छोटी छोटी पुस्तकें लिख कर उन्होंने बोर-युद्ध के सम्बन्ध में अँगरेज़ों का अन्याय प्रकट कर दिया और जितने दिन युद्ध होता रहा उतने दिन बराबर उन्होंने War against War “ युद्ध के विरुद्ध युद्ध ” नामक साप्ताहिक पत्र, हानि उठा कर, अपने खर्चे से जारी रखा। स्टेड साहब का उद्देश्य था कि सत्पक्ष का समर्थन करने ही के लिए लेखन-व्यवसाय करना चाहिए-और अपना यह उद्देश्य उन्होंने बोर-युद्ध के समय बड़े धैर्य के साथ स्थिर रखा। दक्षिण आफ्रिका के प्रसिद्ध लक्ष्मी-पुत्र मि० सेसिल रोड्स स्टेड साहब के पुराने मित्र थे और वे बोरयुद्ध के कट्टर पक्षपाती थे। इसी प्रकार बोर-युद्ध के समय जो नेटाल के हाई कमिश्नर थे वे लार्ड मिलनर पालमालगजट में स्टेड साहब के सहायक सम्पादक थे। ये महाशय भी बोर-युद्ध के अनुकूल थे। परन्तु स्टेड साहब ने इन बड़े बड़े बलवान् और धनवान् मित्रों की मित्रता की कुछ भी परवा न करके न्याय और सत्पक्ष का समर्थन किया, इसमें उनकी जितनी प्रशंसा की जाय सब थोड़ी है। स्टेड के समान साहसी और निश्चयी पुरुष जब तक इँगलैंड में उत्पन्न होते हैं, इसी लिए इँगलैंड का वैभव और गौरव आज स्थिर है।

संसार के सब राष्ट्र आपस में युद्ध करके जो अपनी क्रूरता और रुधिरप्रियता का तामसी बर्ताव दिखलाते हैं उसे बन्द करने के लिए सन् १८९८-९९ में स्टेड साहब ने ज़ोर से परिश्रम कर के हेग में शान्ति-परिषद् (Peace conference) करवाई और इसके लिए खास कर रूस के ज़ार निकोलस की मदद प्राप्त की।

'रिव्यू आफ रिव्यूज' निकालते समय स्टेड साहब ने अपना जो ध्येय और नीति अँगरेज़ी बोलनेवाले लोगों के सामने रखा था उसका उन्होंने अपने जीवन के अन्त समय तक पालन किया। रिव्यू के पहले ही अंक में उन्होंने भारत के विषय में अपने देशबान्धवों को सूचित किया था कि साम्राज्य के सूत्रधारों को अपनी नीति ऐसी ही रखना चाहिए कि जिससे भारत के समान दीनहीन प्रजा की उन्नति हो और वह न्यायपूर्ण शासन से सुख-शान्ति प्राप्त करे। अर्थात् उन्होंने अपने साम्राज्य-सत्ता-प्रिय सजातियों को “ नीतिरस्मि जिगीषताम् ” इस गीता वचन का रहस्य समझा दिया था। वे सदा अपने इस वचन के अनुसार चलते थे—Nor must we ign.r the still weightier duty of the just Government [illegible] ..ndred millions [illegible], creed, rank [illegible] निन्दनीय चाल [illegible] तिलक के समान [illegible] प्रिय हो चुके हैं, [illegible] ने कभी न्यूनता [illegible] खा कि इस अव- [illegible] होंने अपना यह [illegible] तिलक के समान [illegible] इसी प्रकार, दिल्ली-दरबार के बाद लंडन-टाइम्स ने जब श्रीमान् महाराज सयाजीराव पर निरर्थक आक्षेप किये थे तब भी श्रीयुत स्टेड ने योग्य शब्दों में महाराज की तरफदारी की थी। इसी प्रकार की अनेक बातों में उन्होंने अपना भारतसम्बन्धी प्रेम प्रकट किया था, इस कारण वे भारतवासियों को बहुत प्यारे हो गये थे।

जो महाशय 'रिव्यू आफ रिव्यूज' को सदा पढ़ते रहे होंगे उन्हें स्टेड साहब का लेखन-कौशल अवश्य ही मालूम होगा। वे अपने मासिकपत्र में, प्रत्येक अंक के प्रथम पांच-सात पृष्ठों में, सारे संसार की प्रगति की पर्यालोचना कर जाते थे। उसे पढ़ कर सहज ही पाठक लोग सारे जगत् की राजकीय क्रान्तियों का हाल जान लेते थे। उनके लेखों की भाषा अत्यन्त सरल और जोशीली होती थी। उनके लेख पढ़ कर मामूली पढ़े-लिखे आदमी भी उनके मन का भाव समझ जाते थे। जब कभी वे किसी महत्वपूर्ण राजकीय क्रान्ति पर लिखते तब वे कुछ ऐसी शब्दयोजना करते कि लेख का भाव पढ़नेवाले के मन में अवश्य ही जम जाता। वे अपने मासिकपत्र में सदा मनोरञ्जक और शिक्षाप्रद जीवनचरित्रों का समावेश करते थे। स्वयं मोर्ले साहब ने भी उनकी भाषा की प्रशंसा की है। उनके समान प्रभावशाली लेखक इँगलैंड में मिलना कठिन है।

पं० प्रतापनारायण मिश्र की

कहावतें।

१

छोड़ि नागरी सुगुन आगरी, उर्दू के रँग राते।
देसी वस्तु बिहाय बिदेसिन सों सर्वस्व ठगाते॥
मूरख हिन्दू कस न लहैं दुख, जिन कर यह ढँग दीठा।
“ घर की खाँड़ खुरखुरी लागे, चोरी का गुड़ मीठा॥ ”

२

राखहु सदा सरल बर्ताव,
पै समझहु सब टेढ़हु भाव।
नतरु कुटिल जन निज गति ठाटैं,
“ गधे का मुँह कुत्ता चाटैं॥ ”

३

निज-हित, कुल-हित, देस हित,
[illegible] जु [illegible]।
“ [illegible] करने काज का
काज [illegible] ”॥

श्रीमती सत्यभामाबाई तिलक की शोचनीय मृत्यु।

गुरुवार ता० ७जून को करीब आधी रात के समय लोकमान्य महात्मा तिलक की धर्म-पत्नी सौभाग्यवती श्री.सत्यभामाबाई तिलक का स्वर्गवास हो गया। इधर तीन चार वर्षों से मधुमेह के कारण, इनका स्वास्थ कुछ कुछ बिगड़ गया था; तथापि यह नहीं जान पड़ता था कि इतनी जल्दी इनका देहान्त हो जायगा। महात्मा तिलक के देश-निकाले का समाचार पाकर इन्होंने अन्न छोड़ दिया था; और तब से दूध तथा फल-फलहरी को छोड़ कर और कुछ भी ये नहीं खाती थीं। इतना ही नहीं बल्कि इन चार वर्षों से किसीने भी इन्हें अपने महल के अन्तःपुर से बाहर निकलते हुए नहीं देखा। इस प्रकार के शारीरिक और मानसिक निर्बन्ध, बड़ी कठोर रीति से, ये इन चार वर्षों से पाल रही थी। इन्हें बड़ी आशा थी कि तिलक महाराज इस दिल्ली-दरबार के समय छूटेंगे और हम उनसे एक बार फिर मिल सकेंगी; पर दुर्भाग्य से उनकी यह आशा सफल नहीं हुई। परन्तु इसमें कोई भी सन्देह नहीं है कि प्राण निकलते समय अपने पूज्य पति ही की ओर इनकी वासना रही होगी-महात्मा तिलक के ही रूप का चिन्तन करते करते इनका अन्त हुआ होगा। अस्तु। तिलक महाशय की तरह इनका स्वभाव भी बहुत सात्विक और सरल था। दृढ़ता और निश्चय भी इनमें उन्हींकी तरह था। यों तो महात्मा तिलक की इस दशा में, पति-वियोग के दुःख का धक्का अचानक उनके हृदय में लगा ही होगा; तथापि उनकी जिस पवित्र "मनोदृढ़ता" ने उन्हें अनेक संकटों के समय धैर्य दिया है वही इस समय भी देगा-इसका हमें पूर्ण विश्वास है।

टिटानिक जहाज की दुर्घटना के दृश्य।

टिट्यानिक जहाज वर्फ के पर्वत से जहां टकराया था उस जगह का दृश्य।

टिटानिक के ऊपर से, स्त्री और बालकों को डोंगियों में भरकर समुद्र में छोड़ रहे हैं।

दन्तकुसुमाकर।
DANT KUSUMAKAR
MUTTRA

१७ वर्षकी परीक्षित

गवर्नमेन्ट से रजिस्ट्रीकी हुई

धातु वर्धक और पौष्टिक अपूर्व महौषधि

हर प्रकार के प्रमेह और उससे पैदा हुए दोषों से यथा पर पछताना थोड़ा चलने फिरने से थकावट आना, भूख न लगना, कब्ज रहना, सिर घूमना, जलन तथा हाथ पैरों में झुनझुन होना, मन मलीन, चेहरा शुष्क और तेजहीन रहना, आदि धातु क्षीण के दोषों को फौरन नष्ट कर दुर्बल और कमजोर मनुष्यों को हट्टा, कट्टा, पट्टा बनाकर शरीरका पौरुष बढ़ाने वाली "पुष्पराज वटिका" एक मात्र दवाई मूल्य ४० खुराक का फी बक्स २॥) रु० ६० खुराकका बक्स ३॥) रुपया और ८० खुराक का फी बक्स ४॥) रुपया वी. पी. खर्च ।) आना

४० खुराक का दाम

छपगई ! छपगई !! सचित्र

नाटक रामायण

सातोंकाण्ड

गोस्वामी तुलसीकृत रामायणके आधार पर नाटकी धुनके हर तरहके दिल चस्प गजल, ठुमरी, दादरा, कजरी, कव्वाली, आदि नये २ गानोंमें भाव पूर्ण गानेकी २२६ सफे की नवीन पुस्तक मूल्य २॥) रु० वी.पी. ।) आ.

पता—सुन्दर शृंगार महौषधालय मथुरा ।

भारतवर्ष पर अरिष्ट

इस और जर्दी बुखार महामें प्रबल [illegible] के पीछे लगा हुआ है। दासु प्रतिकार करने के लिये, बाटलीवाला जर्दी बुखार की औषधि और गोलियां [illegible] । इस अकस्मात् भगवान का [illegible] मालूम हो रही। यह औषधि [illegible] चाहिये। कीमत १ रुपया।

बाटलीवाला की निर्बल लोगों के लिये शक्तिकारक गोलियां।

इस औषधि के सेवन से दिमाग की [illegible] नस, वीर्यनाश, प्रमेह और [illegible] पुरुषत्वहीनता तथा अजीर्ण इत्यादि विकार जल्द दूर होते हैं। मूल्य १॥) रु०

बाटलीवाला का दन्तमंजन।

यह दन्तमंजन वैद्यक रीति से कुछ [illegible] औषधों का मायफल से मिलाकर बनाया [illegible] है। मूल्य चार आने।

बाटलीवाला का दाद का मलहम

इससे दाद, खाज, खुजली, आदि [illegible] विकार एक दिन में नष्ट होता है। [illegible] ।) आने।

ये औषधियां सब दवा बेचनेवालों के [illegible] और डा० एच० एल० बाटलीवाला [illegible] मु० वरली लेबोरेटरी, दादर, बम्बई से [illegible] मिलेंगी।

राजा रविवर्मा के

प्रसिद्ध चित्र।

यह एक ८८ चित्रों की पुस्तक मोटे [illegible] चिकने कागज (आर्टपेपर) पर छपी [illegible] प्रत्येक चित्र के साथ उसकी ऐतिहासिक [illegible] भी दी गई है। आर्यभाषा में बिलकुल [illegible] है। आवरणपृष्ठ पर राजा रविवर्मा का [illegible] चित्र "शकुन्तला-जन्म" तीन रंगों में [illegible] है। पुस्तक की शोभा देखते ही बनती [illegible] तिस पर भी मूल्य सब के सुभीते के [illegible] सिर्फ १) ही रुपया रखा है।

सूचना—पुस्तक की मांग धड़ाधड़ [illegible] है। एक एक ग्राहक ने अपने और अपने [illegible] के लिए पांच पांच दस दस तक [illegible] मंगवाई हैं। अब ग्राहकों के पास पुस्तकें [illegible] जा रही हैं। कृपापूर्वक ग्राहकगण वी. [illegible] स्वीकार करें। नवीन ग्राहक शीघ्र [illegible] अन्यथा दूसरा एडीशन निकलने तक [illegible] प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।

मैनेजर चित्रशाला प्रेस [illegible]

वेस्टर्न मेनुफेक्चरिंग कम्पनी [illegible]

स्वदेशी बटन

हाथीदांत के समान [illegible] तीन (काले, नीले, [illegible] इत्यादि)। कीमत [illegible] दर्जन से ले कर दो [illegible] जैन सके। व्यापारियों [illegible] अधिक सुभीते का [illegible] गया है। इस पते पर पत्रव्यवहार [illegible]

मैने०—चित्रशाला, पू[illegible]

बिक्री को तैयार!] [बिक्री को तैयार!

छोटे बच्चों के लिए

सचित्र अक्षरबोध।

इसमें 'अ' से 'ज्ञ' तक सब स्वर और व्यंजन और वस्तु दिये गये हैं जिनके नाम के प्रथमाक्षर तथा चित्र अलग अलग भड़कदार रंगों में दिये गये हैं। १ से १० तक अंक भी उपरिनिर्दिष्ट पद्धति ही से बतलाये गये हैं। पुस्तक का आकार क्राउन चतुर्थांश ७×९ रक्खा गया है, इस लिए चित्र और अक्षर उत्तमोत्तम, और आकार में बड़े होगये हैं। कालेजों में ए. बी. सी. सिखाने के काम में जिस तरह की पुस्तक [illegible] किया जाता है उसी तर्ज पर इस पुस्तक की रचना की गयी है। इस लिए छोटे बच्चे इस पुस्तक को बहुत पसन्द करते हैं, और इस पर से अपना प्रथम पाठ बिना आयास सीख सकते हैं।

मैनेजर—चित्रशाला, पूना।

संस्कृत-प्रबोध।

यदि आप सरल हिन्दी-भाषा में संस्कृत व्याकरण का रहस्य जानना चाहते हैं, तो संस्कृत-प्रबोध के चारों भागों को देख जाइये। यह आपको अनायास संस्कृत में प्रवेश करा देगा। मूल्य चारों भागों का ॥।=)

पता—बदरीदत्त शर्मा।

आर्यसमाज, ठंडी सड़क, कानपुर।

यह मासिक पत्र रामचंद्र वासुदेव जोशी ने 'चित्रशाला' प्रेस, पूना में छापकर प्रकाशित किया।

वर्ष २
अंक ७
आणि

सूची।

अँगरेजी राज्यकर्ता, गवर्नर जनरल और योरोपियन सरदार।

१ फ्रेंच गवर्नर डूप्ले २ लार्ड क्लाइव ३ वारन हेस्टिंग्स ४ लार्ड कार्नवालिस ५ मार्किस वेलस्ली ६ नेपोलियन बोनापार्ट ७ लार्ड हेस्टिंग्स ८ लार्ड विलियम बेन्टिक ९ सर चार्लस मेटकाफ १० लार्ड आकलैंड ११ लार्ड एलिनबरो १२ सर चार्लस नेपियर १३ लार्ड हार्डिंज १४ लार्ड डलहौसी १५ लार्ड केनिंग १६ जनरल हेवलाक १७ सर जेम्स आउट्रम १८ लार्ड लारेन्स १९ लार्ड मेयो २० लार्ड नार्थब्रुक २१ लार्ड लिटन २२ लार्ड रिपन २३ लार्ड डफरिन २४ लार्ड लेन्सडोन २५ लार्ड एल्जिन २६ लार्ड कर्जन २७ महारानी विक्टोरिया २८ महाराज सप्तम एडवर्ड २९ महारानी अलेक्जेंड्रा ३० सप्तम एडवर्ड युवराज सहित। पांचवें जार्ज और महारानी मेरी।

मैनेजर—चित्रशाला प्रेस, पूना।

सचित्र पोस्टकार्ड।

(एक रंग में)

दाम प्रति ग्रोस २) रु०, ३० कार्ड ...
प्रति कार्ड दो पैसे।

१ सौभद्र नाटक के पांचवें अं... २ घटोत्कच और सुभद्रा। ३ ... बलराम सुभद्रा से मिलने आये हैं। ४ ... के ओर की स्त्री। ५ रायगढ़ पर ... नाये। ६ महारानी चिमनाबाई ... गायकवाड़, बड़ोदा। ७ शराब पिया हुआ ... धन की सौता। ९ विश्वामित्र-मेनका। ... चार-तरंग। ११ डरा हुआ। १२ ... स्त्री १३ गरुड़ और विष्णु। १४ गोवा ... फवाली स्त्री। १५ गोवा की तरफ ... नं० २। १६ हँसने का एक प्रकार। ... १८ श्रीनर्मदा ... न्तला-पत्र-लेखन। ... श्री द्वारकानाथ ... स्वामी, आलन्दी। २१ ... २० श्रीहनुमानजी। ... महाराज की समाधि। २२ ... २३ सरस्वती। २४ सुख-शयन। ... २६ मद्रासी सुन्दर स्त्री। ... (हैम्लेट) २८ फतेहपुर सीकरी ... २९ शेषशायी। ३० त्र्यम्बकेश्वर ...

मैनेजर—चित्र...

चित्रमयजगत् के नियम।

ग्राहकों के लिये।

१. प्रति मास इस पत्र के दो संस्करण निकलते हैं। एक साधारण मोटे और चिकने कागज पर और दूसरा बहुत मोटे और चिकने कागज (आर्टपेपर) पर। साधारण कागजवाले का अग्रिम वार्षिक मूल्य डाकव्यय सहित ३।) रु० और एक संख्या का मूल्य ।)॥ तथा आर्टपेपरवाले संस्करण का वार्षिक मूल्य ५॥) और एक संख्या का मूल्य ॥) है।

२ ग्राहकों को अपना नाम और पता स्पष्ट देवनागरी अक्षरों में लिखना चाहिये। दो एक मास के लिए पता बदलवाने को डाकघर से प्रबन्ध कर लेना चाहिये और यदि अधिक समय के लिये पता बदलवाना हो तो हमें सूचना देनी चाहिये। ग्राहक-नम्बर अवश्य लिखना चाहिये।

लेखकों के लिए।

१. इस पत्र में बहुधा छोटे छोटे शिक्षाप्रद, मनोरंजक और सचित्र ही लेख प्रकाशित होते हैं। इस लिए लेखकों को चाहिए कि उक्त गुणों से विहीन लेख भेजने का कष्ट न उठावें। किसी लेखक का कोई लेख किस अंक में प्रकाशित होगा—इसका कोई निश्चय नहीं।

२ लेखों के घटाने-बढ़ाने, लौटाने अथवा न लौटाने, और प्रकाशित करने या न करने का सब अधिकार सम्पादक को है। जो लेखक अपने लेख वापस चाहें उन्हें डाकव्यय अवश्य ही भेजना चाहिए। पत्र का उत्तर टिकट या जवाबी कार्ड मिलने पर दिया जाता है, अन्यथा नहीं।

विज्ञापनदाताओं के लिए।

१. एक मास	चार पंक्ति	१) रु०
तीन „	„	२॥) „
छः „	„	४) „
बारह „	„	६) „
एक पृष्ठ एक कालम=१२×३॥=१००)		„
छः मास	„	६०) „
तीन „	„	३५) „

२. विज्ञापन छपाई का रुपया अग्रिम लिया जाता है। अधिक जानने के लिए पत्रव्यवहार कीजिए।

मैनेजर—हिन्दी-चित्रमयजगत्, पूना सिटी।

सुगन्ध ! इनाम !! उपहार !!!

वर्ष २] आषाढ़, सम्वत् १९६९ विक्रमी—जौलाई, सन् १९१२ ईसवी। [अंक ७

परम पिता का आदेश।

ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वियौष्ट, संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः।
अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदत एत, सध्रीचीनान् वः संमनसस्कृणोमि ॥

—अथर्व० कां० ३ सू० ३० मं० ५।

भावार्थः—बुधवर पुरुषो हे ! भिन्नता को भगा दो। हिल मिल कर डोलो, ऐक्य से कार्य साधो ॥
मधुर वचन बोलो, पैर आगे बढ़ाओ ! सब सहृदय लोगो ! चित्त-संस्कार पाओ ! !

शान्तिसोम्।

रामकृष्ण-वाक्सुधा।

बिन्दु १०

(ब्रह्मनिरूपण-गतांक से आगे)

महाराजः—मैं यह पहले बतला ही चुका हूं कि उत्पत्ति, स्थिति और लय का काम शक्ति (माया, प्रकृति, सगुण ब्रह्म) करती है। उसके दो स्वरूप हैं:—विद्याशक्ति और अविद्याशक्ति। घटाघट में ये बराबर प्रकाशित नहीं [illegible]-प्रत्येक घट में ये बराबर प्रमाण में व्यक्त नहीं होते। यह प्रमाण [illegible] भिन्न होता है। चाहे मनुष्य हो, चाहे कोई अन्य प्राणी हो—यह [illegible] में भिन्न ही भिन्न होता है। क्योंकि भिन्नत्व, वैचित्र्य, अथवा [illegible]मता ही सृष्टि का सामान्य नियम है। एकत्र अथवा समता का नियम नहीं है।

[illegible] बड़ा पक्षपाती है ? क्या [illegible] मनुष्य समान होते हैं ?

विद्यासागरः—तो फिर, महाराज, हम जब संसार में आते हैं हम सब को ईश्वरी दान (बुद्धि, रूप, गुण, लक्षण, इत्यादि) बराबर न मिलना कैसी बात है ? क्या कुछ चुने हुए—प्यारे—लोगों [illegible] लिए ईश्वर पक्षपात करता है ?

महाराजः—हां, देखिये, मैं समझता हूं कि जैसी संसार की [illegible] है उसीके अनुसार हमें चलना चाहिए। ईश्वर के कार्यों का [illegible] मनुष्य को कभी नहीं हो सकता—उसके हेतु मनुष्य कभी नहीं [illegible] सकता।

[illegible] वह विभु (सर्वव्यापक) है, अतएव सब प्राणियों में—चींटी के [illegible] क्षुद्र प्राणियों में भी—वही नहीं, प्रत्येक वस्तु में वह भरा हुआ [illegible] यह सच है कि ईश्वर अपने सब प्राणियों में अधिष्ठित—व्याप्त—[illegible] है, तथापि यह भी झूठ नहीं है कि सब प्राणी सामर्थ्य और [illegible] लक्षणों में भिन्न भिन्न होते हैं।

[illegible] अन्यथा एक ही मनुष्य दस मनुष्यों के लिए भी भारी होकर [illegible] पराजित कैसे करता ? किसी अधिक शक्तिमान् पुरुष को [illegible] कर सैकड़ों—हज़ारों—आदमी भग जाते हैं—उसके सामने खड़े [illegible] साधारण पुरुष की ताब नहीं रह सकती। वह हम [illegible] है।

शारीरिक बल का जैसा यह हाल है वैसा ही नैतिक बल का भी है। धार्मिकता और आध्यात्मिकता का भी यही हाल है। नैतिकता भिन्न भिन्न होती है। आध्यात्मिकता का भी सर्वत्र बराबर प्रमाण नहीं होता।

मैं आप ही से पूछता हूं कि अन्य तमाम लोगों की अपेक्षा लोग आपका इतना अधिक क्यों सम्मान करते हैं ? कुछ यह तो नहीं है कि आप कोई विलक्षण मनुष्य हों—आपके मस्तक पर दो शृंग हों—और इसी लिए आपको देखने के लिए इतनी भीड़ लगी रहती हो ! (हंसी)

नहीं। सृष्टि के नियमानुसार उसमें भिन्नता रहनी ही चाहिए, और मेरी माता—शक्ति—ही इन अनेक रूपों से व्यक्त हुई है। उसका निजका सामर्थ्य अनन्त है और वही जगत् तथा जीव के रूपों से—शारीरिक, बौद्धिक, नैतिक अथवा आध्यात्मिक विषयों में भिन्न भिन्न अनेक वस्तुओं अथवा प्राणियों के रूपों से—नाट्य कर रही है।

और वह मेरी माता और कोई नहीं है—ब्रह्म है। यह कह कर महाराज ने निराकार पर ब्रह्मरूपिणी काली माता का एक पद गाया,

यह स्तोत्रमय पद समाप्त होते ही जान पड़ा कि महाराज ने समाधि के अवर्णनीय प्रदेश में प्रवेश किया है। उनका वह [illegible]

[illegible] —समाधि में [illegible]।

और भक्तिमधुर शब्द बन्द हो गया। [illegible] बन्द निश्चल और स्थिर हुए। [illegible] भीतर ही भीतर उस दिव्य [illegible] के सुख का अनुभव करने लगे। [illegible] ब्रह्मानन्दस्वरूप में महाराज ने मज्जन किया। उनके मुख पर [illegible] [illegible] और अन्त में मन्दस्मित की लहरें उनके मुख पर उठने लगीं।

[illegible] में आकर वे बोले:—मां, [illegible] मां—काली—[illegible] ब्रह्म ही है। [illegible] ने इसका स्पष्ट विवेचन किया है,

[भाग २] आषाढ़, सम्वत् १९६९ विक्रमी–जौलाई, सन् १९१२ ईसवी। [अंक ७

परम पिता का आदेश।

ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वियौष्ट, संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः।
अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदत एत, सध्रीचीनान् वः संमनसस्कृणोमि॥

—अथर्व० कां० ३ सू० ३० मं० ५।

भावार्थः—बुधवर पुरुषो हे! भिन्नता को भगा दो! हिल मिल कर डोलो, ऐक्य से कार्य साधो॥
मधुर वचन बोलो, पैर आगे बढ़ाओ! सब सहृदय लोगो! चित्त-संस्कार पाओ!!

शान्तिरोम्!

रामकृष्ण–वाक्सुधा।

बिन्दु १०

(ब्रह्मनिरूपण–गतांक से आगे)

...राज.—मैं यह पहले बतला ही चुका हूं कि उत्पत्ति, स्थिति और लय का काम शक्ति (माया, प्रकृति, सगुण ब्रह्म) करती है। उसके दो स्वरूप हैं:—विद्याशक्ति और अविद्याशक्ति। घटाघट में ये बराबर प्रकाशित नहीं ...एक घट में ये बराबर प्रमाण में व्यक्त नहीं होते। यह प्रमाण ...भिन्न होता है। चाहे मनुष्य हो, चाहे कोई अन्य प्राणी हो—वह ...भिन्न ही भिन्न होता है। क्योंकि भिन्नत्व, वैविध्य, अथवा ...ही सृष्टि का सामान्य नियम है। एकत्व अथवा समता ...नियम नहीं है।

...र पक्षपाती है? क्या ...य समान होते हैं?

...सागरः—तो फिर, महाराज, हम जब संसार में आते हैं ...सब का ईश्वरी दान (बुद्धि, रूप, गुण, लक्षण, इत्यादि) ...न मिलना कैसी बात है? क्या कुछ चुने हुए–प्यारे–लोगों ...ईश्वर पक्षपात करता है?

...राजः—हां, देखिये, मैं समझता हूं कि जैसी संसार की ...उसीके अनुसार हमें चलना चाहिए। ईश्वर के कार्यों का ...ष्य को कभी नहीं हो सकता–उसके हेतु मनुष्य कभी नहीं ...रखता।

...विभु (सर्वव्यापक) है, अतएव सब प्राणियों में–चींटी के ...क्षुद्र प्राणियों में भी–यही नहीं, प्रत्येक वस्तु में वह भरा हुआ ...सच है कि ईश्वर अपने सब प्राणियों में अधिष्ठित–व्याप्त– ...तथापि यह भी झूठ नहीं है कि सब प्राणी सामर्थ्य और ...णों में भिन्न भिन्न होते हैं।

...या एक ही मनुष्य दस मनुष्यों के लिए भी बली होकर ...पराजित कैसे करता? किसी अधिक शक्तिवान् पुरुष को ...अकेला–दुकेला आदमी भग जाता है–उसके सामने अकेले- ...साधारण पुरुष की दाल नहीं गल सकती। यह हम सभी- ...।

शारीरिक बल का जैसा यह हाल है वैसा ही नैतिक बल का भी है। धार्मिकता और आध्यात्मिकता का भी यही हाल है। नीति-मत्ता भिन्न भिन्न होती है। आध्यात्मिकता का भी सर्वत्र बराबर प्रमाण नहीं होता।

मैं आप ही से पूछता हूं कि अन्य तमाम लोगों की अपेक्षा लोग आपका इतना अधिक क्यों सन्मान करते हैं? कुछ यह तो नहीं है कि आप कोई विलक्षण मनुष्य हों–आपके मस्तक पर दो शृंग हों–और इसी लिए आपको देखने के लिए इतनी भीड़ लगी रहती हो? (हँसी)

नहीं। सृष्टि के नियमानुसार उसमें भिन्नता रहनी ही चाहिए; और मेरी माता–शक्ति–ही इन अनेक रूपों से व्यक्त हुई है। उस-का निजका सामर्थ्य अनन्त है और वही जगत् तथा जीव के रूपों से—शारीरिक, बौद्धिक, नैतिक अथवा आध्यात्मिक विषयों में भिन्न भिन्न अनेक वस्तुओं अथवा प्राणियों के रूपों से—नाट्य कर रही है।

और यह मेरी माता और कोई नहीं है–ब्रह्म है। यह कह कर महाराज ने निराकार पर ब्रह्मरूपिणी काली माता का एक पद गाया,

यह स्तोत्रमय पद समाप्त होते ही जान पड़ा कि महाराज ने समाधि के अवर्णनीय प्रदेश में प्रवेश किया है। उनका वह दिव्य और श्रुतिमधुर शब्द बन्द हो गया। चारु चक्षु निश्चल और स्थिर हुए। अन्तर्यामी भीतर ही भीतर उस दिव्य दर्शन के सुख का अनुभव करने लगे। थोड़ी देर ब्रह्म-साक्षात्कारामृत में महाराज ने मज्जन किया। उनके मुख पर दिव्य तेज झलकने लगा और अन्त में मन्दस्मित की लहरें उनके मुख पर उठने लगीं।

महाराज की समाधिलक्षणी है–समाधि में साक्षात्कार।

अधूरी जागृतावस्था में आकर ये बोले:—हां, मेरी मां–काली–केवल ब्रह्म ही है। षड्दर्शनों में इतना ... विवेचन किया है,

तथापि वे जिस वस्तु का पता नहीं लगा सके वह वस्तु मेरी माता ही है।

उस माता की कृपा से जहां अहंवृत्ति का नाश हुआ कि समाधि में ब्रह्म का साक्षात्कार होता है और तब वह परमात्मा–जीवात्मा नहीं–ब्रह्मत्व का उपभोग करता है। यदि अहंकार, अथवा जीवात्मा, निर्मल होकर वैसा ही बना रहा तो सगुण परमात्मा का अथवा उसके किसी स्वरूप का—श्रीकृष्ण, चैतन्यदेव, आदि अवतारी पुरुष के रूप से, अथवा पुरुष, स्त्रियां, लड़के और सारे सजीव प्राणियों के रूप से, किंबहुना सम्पूर्ण चौबीस तत्वों अथवा पदार्थों के रूप से व्यक्त होनेवाले उसके स्वरूप का—दर्शन अथवा अपरोक्षानुभव होना उसकी कृपा से सम्भव होता है।

सर्वसमर्थ माता।

मेरी माता (सगुण परमात्मा) निर्विकल्प समाधि में अहंवृत्ति स्वयं ही निकाल डालती है—उसका लय कर देती है। इसका परिणाम यह होता है कि समाधि में ब्रह्मरस लूटने को मिलता है।

कभी कभी अपनी इच्छा के अनुसार वह अपने भक्तों के तईं अहंवृत्ति स्थिर रखती है, उन्हें दर्शन (साकार अथवा सगुण रूप से) देती है और उनसे बातें करती है।

ब्रह्म–भांडार की कुंजी सिर्फ शक्ति ही के पास–उपनिषदों के वर्णन किये हुए सगुण ब्रह्म के पास ही, अथवा भक्तों के साकार देवता के पास ही, रहती है। तत्ववेत्ता अथवा मीमांसक लोगों का जिस पर सारा निर्भर है वह उनकी विचारशक्ति अथवा तर्कशक्ति उसी से–मेरी माता ही से–सगुण परमेश्वर ही से–उन्हें प्राप्त होती है।

साक्षात्कार और तर्क अथवा अनुमान; ईश्वर के सगुणत्व का प्रमाण; ईश्वर के निर्गुणत्व का प्रमाण।

इसके सिवाय प्रार्थना, ध्यान, भक्ति, आत्मसमर्पण, इत्यादि का उद्गम भी मेरी सर्वसमर्थ माता ही से है।

फिर, एक बात और है, विज्ञानी पुरुष की समाधिस्थिति कभी कभी वैसी ही स्थिर रहती है और कभी कभी नहीं रहती। उस परमानन्द स्थिति में उसे भला कौन स्थिर रखता है? उसे जागृतावस्था ही में भला कौन लाता है? सगुण ईश्वर–मेरी माता ही। और कौन?

यह मेरी माता मिथ्या कैसे हो सकती है? कदापि नहीं हो सकती। एक ही सत्य का–ब्रह्म का–यह केवल सगुण अंग है। हां, इसी मेरी माता ने अपने लड़कों को यह आश्वासन दिया है:—'मैं हूं;' 'मैं जगज्जननी हूं,' 'वेदान्त का ब्रह्म मैं ही हूं,' 'उपनिषदों का आत्मा भी मैं ही हूं।'

इस प्रकार सगुण ईश्वर साक्षात्कार देता है। साक्षात्कार ही उसके अस्तित्व का प्रमाण है।

अच्छा, ब्रह्म का साक्षात् अनुभव काली ही (अर्थात् महाकाल का सगुणांग) ला देती है। जो योगी समाधि में है वह ब्रह्म के विषय में कुछ भी नहीं बोल सकता। समुद्र में लय होनेवाली नमक की पुतली की तरह वह भी लय हुआ रहता है–उसका स्वत्व नहीं रहता–वह अद्वैतावस्था में रहता है। अच्छा, समाधि छूटने के बाद भी वह ब्रह्म के विषय में कुछ नहीं बोल सकता। जहां वह द्वैत में आया कि बस वह अद्वैत के विषय में–ब्रह्म के विषय में निःशब्द–मूक–हो जाता है। जहां वह एक बार सापेक्ष अथवा दिक्कालादि मर्यादित जगत् में आ गया, कि बस फिर केवल और शुद्ध ब्रह्म के सम्बन्ध में उसका मुहँ बन्द हो जाता है।

मेरी माता (ब्रह्म सगुणांग) यह कहती है—'मैं ब्रह्म (उपनिषदों में वर्णन किया हुआ निर्गुण ब्रह्म) हूं'

इस कारण भी साक्षात्कार ही निर्गुण ब्रह्म का प्रमाण है। चाहे कोई भी ब्रह्म को चाहे जितना वर्णन करे, तथापि उस वर्णन में उसके अहंकार का गंध लगे बिना कभी नहीं रहेगा–उस वर्णन में उसका अहंकार–उसका द्वैतपन–अवश्य ही प्रतिबिम्बित होगा। कम से कम उसके ब्रह्म पर इस अहंभाव की छाया तो पड़े ही गी, अथवा उसके उस ब्रह्म पर इस अहंभाव का अवगुंठन अवश्य ही पड़ेगा।

कुछ भी हो, जब हमारी विचारशक्ति और हमारी तर्कशक्ति पंगु है तब इनके बल पर, निस्सन्देह, हम ब्रह्म को नहीं छू सकते। अतएव साक्षात्कार चाहिए, तर्क का यहां काम नहीं है! विचार नहीं, सेवा चाहिए।

बहुत बार सगुण परमेश्वर दिव्यरूप अथवा देह से (यह रूप अथवा देह चर्मचक्षुओं को नहीं दिखती) प्रकट होता है उस रूप का दर्शन, सिर्फ निष्पाप, अथवा पावन हुए, जीवों को होता है। अथवा दूसरे शब्दों में इसे और अधिक स्पष्ट करके इस प्रकार कह सकते हैं कि प्रभुकृपा से जिसे भागवती तनु प्राप्त होता है उस तनु की दिव्य दृष्टि से उन रूपों का प्रत्यय होता है।

[illegible] के दिव्य रूप।

ये रूप सभी मनुष्यों को नहीं दिख सकते; सिर्फ सिद्ध पुरुषों ज्ञान से पूर्ण हुए पुरुषों को–माता की कृपा से उनका होता है।

एक बार श्रीरामचन्द्र अपने परम भक्त हनुमान से बोले:–'वत्स, मुझे किस नाते से देखता है, और ध्यान तू कैसे करता है, यह मुझे बता।' भक्त हनुमान ने उत्तर दिया, "यदि देहात्मबुद्धि मुझ में लगी होती है अर्थात् देहात्मबुद्धि की ओर मन होती है, तो मैं यह भावना रख कर तेरी पूजा करता हूं कि, तू है। ऐसी दशा में मैं अपने को तेरा एक अंश–ईश्वर का एक अंश मानता हूँ! कभी तुझे सेव्य और अपने को सेवक मान कर–सेव्य–सेवक भाव से—मैं तेरा ध्यान करता हूं। परन्तु, हे राम, तेरी कृपा से जब मन का ध्यास तत्वज्ञान की ओर–ब्रह्मज्ञान की ओर–जब लगता है तब मुझे ऐसा देख पड़ने लगता है कि जो मैं हूं सो तू है और जो तू है वही मैं हूं––यह मुझे अनुभव होता है।

ज्ञानमार्ग और भक्तिमार्ग, दोनों अपरोक्षानुभव की ओर–अद्वैत की ओर–जाते हैं।

हनुमान के इस कथन का तात्पर्य यह कि समाधि लग जाने पर उसका 'मैं' राम में–परमात्मा में–ब्रह्म में–घुल जाता है–विलीन हो जाता है–ब्रह्मज्ञान यही है।

अच्छा देखो, एक अमर्याद, विस्तीर्ण, पानी का विस्तार है–ऊपर पानी है, नीचे पानी है, जहां देखिये, पानी ही पानी है। और कल्पना करो कि शीतके योग से उसमें से कुछ पानी बर्फ हो गया। अतएव उसे घनत्व प्राप्त हो गया है। बाद को यह भी समझो कि उस बर्फ में गर्मी पहुँचाई गई; फिर वह बर्फ पिघल गई और वह पानी ही बन गई।

वह पानी का अनन्त विस्तार ही ब्रह्म है। बर्फ हो घनरूप हुए इस पानी के अंश, भक्तों को देख पड़नेवाले परमात्मा के सगुणरूप हुए। भक्त की निष्ठा, प्रीति, भक्ति, आत्मसमर्पण, इ० को शीत समझो। अच्छा, उष्णता क्या है, तो सत् (ब्रह्म) और असत् (जगत्) का जो विचार अन्त में निर्विकल्प समाधि का साधनभूत और कारणीभूत होता है वही विचार, और 'मैं' बकनेवाले अहंकार, का निःशेष लय ही उष्णता है।

भक्त को (द्वैती उपासक को) प्रभु कदाचित् अपने अनन्त रूप दिखलावेगा—भक्त के सामने वह अनेक रूपों से कदाचित् प्रकट होगा। पर माता की कृपा से समाधि में जो ब्रह्मपदारूढ़ हो जाता है उसके लिये वह फिर निराकार, अव्यय और केवल परमात्मा ही बना रहता है।

इस प्रकार भक्तिमार्ग और ज्ञानमार्ग के ये सिरे अन्त में मिल जाते हैं—यही भक्तियोग और ज्ञानयोग का समन्वय है।

जो सौभाग्य से सगुण–निर्गुण ईश्वर का अपरोक्षानुभव कर चुका है उसके ध्यान में यह आ जाता है कि [illegible] पदार्थ अथवा तत्व* (को मिला कर) उत्पन्न हुए हैं।

जगत् क्या है? ईश्वर, आत्मा (जीवात्मा) और सृष्टि का ऐक्य।

ध्यान में रखना चाहिये कि मेरी माता जैसे एक है और अनेक है, वैसे ही वह एक और अनेक दोनों से अतीत है। अर्थात् एक होकर भी अनेक रूपों से नाट्य करनेवाली, अनेक रूप धारण करनेवाली प्रकृति और एक ही, किन्तु [illegible] ब्रह्म–इन दोनों का अन्तर्भाव मेरी माता ही में होता है। आत्मा (जीवात्मा) के रूप से प्रत्येक मानवी तनु का आश्रय है, इतना ही नहीं; किन्तु अनेक पदार्थों के रूपों से धारण कर रही है।

अद्वैत मत (अर्थात् जिस मत में ब्रह्म को केवल अमर्याद निरुपाधिक ईश्वर माना है) को निर्दोष नहीं मानना चाहिये। इसका पहला कारण यह कि ब्रह्म (निर्गुण) का समाधि में अनुभव होता है; और दूसरा कारण यह है कि माता यह साक्षात्कार देती है कि ब्रह्म केवल है और उसका अनुभव सिर्फ समाधि ही में होता है, तथा वह और कुछ नहीं–सिर्फ मेरा ही निर्गुण अंग है। यह कोई भी, कदापि, नहीं कह सकता कि "सिर्फ मेरा मत (ईश्वरसम्बन्धी) निर्दोष, सत्य, सयुक्तिक, ग्राह्य और सिद्ध है; जो ईश्वर को सगुण मानते हैं वे भ्रष्ट हैं। सगुण ईश्वर सिर्फ [illegible] है। सगुण ईश्वर के हाथ में मोक्ष की कुंजी ही नहीं, इत्यादि।"

नवीन तत्व।

---

* पांच स्थूल महाभूत, पांच सूक्ष्म महाभूत, पांच कर्मेन्द्रिय, पांच ज्ञानेन्द्रिय, बुद्धि और अहंकार।

शाब्दिक अद्वैती—घटाकाश, पटतन्तु, सुवर्णालंकार, सर्परज्जु, इत्यादि न्यायाडम्बर पर अद्वैत की सत्ता कर धन्यता माननेवाले—अथवा सिर्फ कोरे तत्वज्ञानी—जब तक केवल अपनी बुद्धिशक्ति पर अथवा तर्कशक्ति पर सारी उछल कूद करते हैं, तब तक वे इस कूटक का, अथवा प्रश्न का, यह उत्तर देते हैं कि, "यह भ्रान्ति (अर्थात् परमात्मा व्यात्मपन आने की बात) आई कहां से, सो कुछ हमें मालूम होता।"

शाब्दिक अद्वैतियों का कूटक—पूर्ण आत्मा को-परमात्मा को-यह भावना कैसे प्राप्त होती है कि हम अपूर्ण हैं-पशु हैं।

परन्तु साक्षात्कार, अथवा अपरोक्षानुभव, से जो उत्तर मिलता है वह बिलकुल अखंडनीय होता है। मेरी माता (ब्रह्म का सगुण रूप) यह बतलाती है कि, "मैंने ही, वेदान्त के ब्रह्म ने ही, यह सारा पसारा निर्माण किया है—इस प्रपंच का कारण मैं ही हूं।" जब तक तुम यह कहते रहते हो कि 'मैं समझता हूं' या 'मैं नहीं समझता' तब तक तुम्हारी यह भावना स्थिर रहती है कि हम कोई एक व्यक्ति हैं। इस प्रकार जब तक तुम्हारा व्यक्तित्व अबाधित है तब तक यह सब पसारा तुम्हें सत्य ही मानना चाहिये, मिथ्या नहीं मान सकते।

मेरी माता फिर भी यह कहती है, "व्यक्तित्व, स्वत्व, अहंकार जब मैं बिलकुल निकाल डालती हूं-अहंकार का जब मैं बिलकुल लय कर देती हूं-तभी परमात्मा का (मेरे निर्गुण अंग का) समाधि में अनुभव मिलता है।" और फिर उस दशा में मिथ्या या अमिथ्या, सत्य या असत्य, ज्ञान या अज्ञान, का वाद ही नहीं रहता—वहां ये प्रश्न ही नहीं रहते। इसीको कहते हैं ब्रह्म का ज्ञान।

महात्मा डब्ल्यू० टी० स्टेड।

[२]

स्टेड की धर्मश्रद्धा।

स्टेड साहब को छुटपन ही से घर में धार्मिक शिक्षा अच्छी मिली थी, इस कारण धर्म और ईश्वर की श्रद्धा उनके मन से कभी न छूटी। सिर्फ लोकलज्जा के लिये यह कहना, कि ईश्वर है और उसकी हमें जरूरत है, सहज बात है। ऐसी केवल व्यावहारिकता की धार्मिक बुद्धि कितने ही चतुर और व्यवहारज्ञ कहलानेवाले लोगों में देखी जाती है। परन्तु स्टेड साहब की श्रद्धा उस ... की नींव पर रची ... हृदय में जमी रहती ... पर उनका इतना ... काम, जो देखने में प्रथम असम्भव जान पड़ते थे, सिद्ध हो गये। यह बात स्टेड साहब के मन में छुटपन से ही आ गई थी कि संसार का कोई भी विषय हो, यदि उसमें अन्याय, जुल्म, अनाचार अथवा अत्याचार देख पड़े तो उसका प्रतिकार होना ही चाहिये। बालपन की यह प्रवृत्ति जन्मभर उनमें बनी रही। Tribute of Modern Babylon नामक पुस्तक लिख कर जैसे उन्होंने इँगलैंड के अत्याचारों का आविष्करण किया उसी प्रकार अमेरिका के बड़े बड़े शहरों की अनीतियों और दुराचारों को प्रकट करके उन्हें दूर करने का स्टेड साहब ने अनेक बार प्रयत्न किया। If Christ came to Chicago—अर्थात् "यदि ईसामसीह शिकागो आवे!" और, Satan's Invisible world displayed अर्थात् "अदृश्य रूप से होनेवाली शैतानी लीला का आविष्करण," इत्यादि प्रकार की पुस्तकें लिख कर इन्होंने इस बात का सब तरह से विचार किया है कि घनी बस्तीवाले आधुनिक सभ्य नगरों में अनीति, अधर्म, अन्याय और पाप आदि से पूर्ण बर्ताव कितना बढ़ रहा है और उसका निर्मूलन करने के लिये किस मार्ग का और किन उपायों का अवलम्बन करना चाहिये। सेसिल रोड्स की तरह, अमेरिका के प्रसिद्ध कोट्याधीश मिस्टर एंड्रू कार्नेजी से भी स्टेड साहब की घनी मित्रता थी। एंड्रू कार्नेजी लड़कपन में, अपने मा बाप के साथ, स्काटलेंड से अमेरिका को, बड़ी दरिद्रावस्था में आये। बालक कार्नेजी ने यहां आकर पहले तार ले जानेवाले लड़कों में नौकरी की थी; परन्तु कर्मधर्मसंयोग से वे अपनी साठ पैंसठ वर्ष की उम्र में साठ करोड़ रुपयों के स्वामी बन गये। इतना रुपया एकत्र हो जाने पर सन् १९०० ई० में इन्होंने यह निश्चय किया कि अब धन नहीं कमावेंगे, किन्तु संचित धन का सिर्फ सद्व्यय करेंगे। परन्तु अब उन्हें यह कठिनाई आ पड़ी कि यदि उत्तम दानधर्म किया भी जाय तो किस रीति से? इस कारण कार्नेजी साहब ने स्टेड साहब से इस विषय में सम्मति ली। उस समय स्टेड साहब ने—Andrew Corneg e's Conundrum what shall I d with my Fourty Million Pounds—अर्थात् एंड्रयू कार्नेजी की कठिनाई-साठ करोड़ रुपयों का क्या किया जाय? नामक एक छोटी सी पुस्तक लिख कर दानशूर कार्नेजी को उत्तम दानधर्म करने के अनेक मार्ग सुझाये। स्टेड साहब की कुछ सूचनाएं कार्नेजी-कुबेर को ग्राह्य मालूम हुईं और स्काटलैंड, इँगलैंड, अमेरिका, आदि अनेक देशों की पाठशालाओं और लाइब्रेरियों पर कुछ वर्ष पहले कार्नेजी ने जो सुवर्णवर्षा की उसका अधिकांश श्रेय स्टेड साहब ही को देना चाहिये। सेसिल रोडस भी अपनी दस बारह करोड़ रुपयों की सारी सम्पत्ति स्टेड साहब के सिपुर्द करके उन्हींको अपनी ओर से दानधर्म करने के लिए कहनेवाले थे; परन्तु बोरयुद्ध के विषय में उनका मतभेद हो जाने के कारण दोनों में कुछ मनमुटाव ही हो गया और रोडस के दानधर्म की रीति स्टेड नहीं निश्चित कर सके।

महात्मा डब्ल्यू० टी० स्टेड।

स्टेड साहब की ईश्वर और धर्म पर तो दृढ़ श्रद्धा थी ही, इसके सिवाय मानसशास्त्र, पूर्वजन्म, पुनर्जन्म, आत्मा का अमरत्व, इत्यादि ... उन्होंने यह प्रकट किया कि हम अनेक वर्ष पहले मरे हुए बड़े बड़े पुरुषों की आत्माओं से, एक ऐसी स्त्री के मार्फत, जिस पर भूतसंचार हुआ है, सम्भाषण कर सकते हैं-इतना ही नहीं बल्कि डिज्रेली और ग्लाडस्टन की आत्माओं के साथ जो उनके सम्भाषण हुए उन्हें उन्होंने छाप कर प्रकाशित भी कर दिया। उनकी ऐसी हरकतें उनके कई मित्रों को नागवार गुजरती थीं। परन्तु स्टेड ने, अपने मित्रों की उस अप्रसन्नता पर कुछ भी ध्यान न देकर, अपना ... पूर्वक ... भी ... योग ... निक ... बात अपने पुत्र तथा अन्य घर के लोगों से कई बार प्रकट कर दी थी कि घर में स्वस्थ बिछौने पर पड़े हुए हमारी मृत्यु नहीं होगी, किन्तु कहीं न कहीं सफर में आकस्मिक दुर्घटना से हमारी मौत होगी!

स्टेड साहब की निजी रहन सहन बड़ी सादी थी। उनकी घराऊ दशा बड़े सुखसमाधान की थी। २३ वर्ष की अवस्था में उनका विवाह उन्हींके गांव में एमा लूसी विल्सन नामक एक सुशील कन्या के साथ हुआ। बालबच्चों का सुख भी उन्हें अच्छा मिला। उनका एक लड़का तो कई वर्ष पूर्व जाता रहा और दूसरा, बड़ी योग्यता

शाब्दिक अंटैनी—महाकाश, घटनन्तु, सुवर्णालंकार, सर्परज्जु, इत्यादि न्यायाडम्बर पर अंटैन को नचा कर धन्यता मानने- वाले—अथवा सिर्फ कोरे तत्व- ज्ञानी—जब तक केवल अपनी बुद्धिशक्ति पर अथवा तर्कशक्ति

...हिक अंगुलियों का नृत्य—पूर्ण आत्मा को-परमात्मा को-यह भावना कैसे प्राप्त होती है कि हम अपूर्ण हैं-पशु हैं?

र सारी उछल कूद करते हैं, तब तक वे इस कूटक का, अथवा स प्रश्न का, यह उत्तर देते हैं कि, "यह भ्रान्ति (अर्थात् परमात्मा (जीवात्मपन आने की बात) आई कहां से, सो कुछ हमें मालूम हीं होता।"

, परन्तु साक्षात्कार, अथवा अपरोक्षानुभव, से जो उत्तर मिलता , वह बिलकुल अखंडनीय होता है। मेरी माता (ब्रह्म का सगुण ंग) यह बतलाती है कि, "मैंने ही, वेदान्त के ब्रह्म ने ही, यह सारा पसारा निर्माण किया है-इस प्रपंच का कारण मैं ही हूं।" जब तक तुम यह कहते रहते हो कि 'मैं समझता हूं' या 'मैं नहीं समझता' तब तक तुम्हारी यह भावना स्थिर रहती है कि हम कोई एक व्यक्ति हैं। इस प्रकार जब तक तुम्हारा व्यक्तित्व अबाधित है तब तक यह सब पसारा तुम्हें सत्य ही मानना चाहिये, मिथ्या नहीं मान सकते।

मेरी माता फिर भी यह कहती है, "व्यक्तित्व, स्वत्व, अहंकार जब मैं बिलकुल निकाल डालती हूं-अहंकार का जब मैं बिलकुल लय कर देती हूं-तभी परमात्मा का (मेरे निर्गुण अंग का) समाधि में अनुभव मिलता है।" और फिर उस दशा में मिथ्या या अ- मिथ्या, सत्य या असत्य, ज्ञान या अज्ञान, का वाद ही नहीं रहता- वहां ये प्रश्न ही नहीं रहते। इसीको कहते हैं ब्रह्म का ज्ञान।

महात्मा डब्ल्यू० टी० स्टेड।

[२]

स्टेड की धर्मश्रद्धा।

ड साहब को छुटपन ही से घर में धार्मिक शिक्षा अच्छी थी, इस कारण धर्म और ईश्वर की श्रद्धा उनके मन से कभी हटी। सिर्फ लोकलज्जा के लिये यह कहना, कि ईश्वर है और की हमें जरूरत है, सहज बात है। ऐसी केवल व्यावहारिक ा की धार्मिक बुद्धि कितने ही चतुर और व्यवहारज्ञ कहलाने- लोगों में देखी जाती है। परन्तु स्टेड साहब की श्रद्धा उस र की व्यावहारिक सुविधा अथवा असुविधा की नींव पर रची नहीं थी, किन्तु उनकी श्रद्धा सदैव उनके हृदय में जमी रहती वह सदा सर्वदा जागृत रहती थी। ईश्वर पर उनका इतना विश्वास होने के कारण ही, उनके वे बड़े बड़े काम, जो देखने ायम असम्भव जान पड़ते थे, सिद्ध हो गये। यह बात स्टेड

महात्मा डब्ल्यू० टी० स्टेड।

हब के मन में छुटपन से ही आ गई थी कि संसार का कोई भी विषय , यदि उसमें अन्याय, जुल्म, अनाचार अथवा अत्याचार देख तो उसका प्रतिकार होना ही चाहिये। बालपन की यह प्रवृत्ति भर उनमें बनी रही। Tribute of Modern Babylon नामक लेख लिख कर जैसे उन्होंने इंग्लैंड के अत्याचारों का आविष्करण या उसी प्रकार अमेरिका के बड़े बड़े शहरों की अनीतियों और ाचारों को प्रकट करके उन्हें दूर करने का स्टेड साहब ने अनेक प्रयत्न किया। If Christ came to Chicago-अर्थात् "यदि ामसीह शिकागो आवे!" और, Satan's Invisible world played अर्थात् "अदृश्य रूप से होनेवाली शैतानी लीला का विवरण," इत्यादि प्रकार की पुस्तकें लिख कर इन्होंने इस र का सब तरह से विचार किया है कि घनी बस्तीवाले आधु- िक सभ्य नगरों में अनीति, अधर्म, अन्याय और पाप आदि पूर्ण बर्ताव कितना बढ़ रहा है और उसका निर्मूलन करने के ए किस मार्ग का और किन उपायों का अवलम्बन करना चाहिये। सिल रोडस की तरह, अमेरिका के प्रसिद्ध कोट्याधीश मर ड्र कार्नेजी से भी स्टेड साहब की घनी मित्रता थी। ऐंड्रयू कार्नेजी लड़कपन में, अपने मा बाप के साथ, स्काटलैंड से अमेरिका को, बड़ी दरिद्रावस्था में आये। बालक कार्नेजी ने यहां आ- कर पहले तार ले जानेवाले लड़कों में नौकरी की थी; परन्तु कर्म धर्मसंयोग से वे अपनी साठ पैंसठ वर्ष की उम्र में साठ करोड़ रुपयों के स्वामी बन गये। इतना रुपया एकत्र हो जाने पर सन् १९०० ई० में इन्होंने यह निश्चय किया कि अब धन नहीं कमावेंगे, किन्तु संचित धन का सिर्फ सद्व्यय करेंगे। परन्तु अब उन्हें यह कठिनाई आ पड़ी कि यदि उत्तम दानधर्म किया भी जाय तो किस रीति से? इस कारण कार्नेजी साहब ने स्टेड साहब से इस विषय में [illegible]

[illegible]

शालाओं और लाइब्रेरियों पर कुछ वर्ष पहले कार्नेजी ने जो सुवर्ण- वर्षा की उसका अधिकांश श्रेय स्टेड साहब ही को देना चाहिये। सेसिल रोडस भी अपनी दस बारह करोड़ रुपयों की सारी सम्पत्ति स्टेड साहब के सिपुर्द करके उन्हींको अपनी ओर से दानधर्म करने के लिए कहनेवाले थे, परन्तु बोरयुद्ध के विषय में उनका मतभेद हो जाने के कारण दोनों में कुछ मनमुटाव ही हो गया और रोडस के दानधर्म की रीति स्टेड नहीं निश्चित कर सके।

स्टेड साहब की ईश्वर और धर्म पर तो दृढ़ श्रद्धा थी ही, इसके सिवाय मानसशास्त्र, पूर्वजन्म, पुनर्जन्म, आत्मा का अमरत्व, इत्यादि पौर्वात्य आध्यात्मिक तथा पारमार्थिक विचारों का भी वे चिकित्सापूर्वक अध्ययन करते थे। इन बातों की चर्चा करने के लिये उन्होंने Borderland "सीमाप्रान्त" नामक एक मासिक पत्र निकाला था। सन् १८९३ से १८९७ तक, चार वर्ष, उन्होंने इसे स्वयं हानि उठा कर जारी रखा। सन् १८९२-९३ में उन्होंने Real Ghost stories 'सच्चे भूतों की कहानियां' नाम की दो पुस्तकें प्रकाशित कीं। उन्होंने यह प्रकट किया कि हम अनेक वर्ष पहले मरे हुए बड़े बड़े पुरुषों की आत्माओं से, एक ऐसी स्त्री के मार्फत, जिस पर भूत- सचार हुआ है, सम्भाषण कर सकते हैं-इतना ही नहीं बल्कि डिज़्रेली और ग्लाडस्टन की आत्माओं के साथ जो उनके सम्भाषण हुए उन्हें उन्होंने छाप कर प्रकाशित भी कर दिया। उनकी ऐसी हरकतें उनके कई मित्रों को नागवार गुजरती थीं। परन्तु स्टेड ने, अपने मित्रों की उस अप्रसन्नता पर कुछ भी ध्यान न देकर, अपना यह विचार स्थिर रखा कि आविष्करणीय बातों का बुद्धिपूर्वक सप्रयोग छानबीन करना ही चाहिये। अपनी मृत्यु के सम्बन्ध में भी उन्होंने कई भविष्यवादियों से खुलासा कर लिया था और, यद्यपि वे यह नहीं जान सके थे कि अटलांटिक महासागर में टिटानिक जहाज की दुर्घटना में हमारी मृत्यु होगी, तथापि उन्होंने यह बात अपने पुत्र तथा अन्य घर के लोगों से कई बार प्रकट कर दी थी कि घर में स्वस्थ बिछौने पर पड़े हुए हमारी मृत्यु नहीं होगी, किन्तु कहीं न कहीं सफ़र में आकस्मिक दुर्घटना से हमारी मौत होगी!

स्टेड साहब की निजी रहन सहन बड़ी सादी थी। उनकी घराऊ दशा बड़े सुखसमाधान की थी। २३ वर्ष की अवस्था में उनका विवाह उन्हींके गांव में एमासुली विल्सन नामक एक कन्या के साथ हुआ। बालबच्चों का सुख भी उन्हें अच्छा [illegible]। उनका एक लड़का तो कई वर्ष हुए जाता रहा और [illegible] पुत्र

के साथ, उनके पीछे उनका व्रत चलाने के लिए तैयार है। चौबीस घंटों में पाँच सात घंटे की निद्रा के सिवाय बाकी सब समय वे लोकोपयोगी बातों का विचार करते रहते और संसार की सब प्रकार की क्रान्तियों का सूक्ष्म दृष्टि से निरीक्षण करते रहते। इसके सिवाय, नाना प्रकार के विषयों पर वादविवाद करने के लिए, सम्मति लेने के लिए अथवा किसी सार्वजनिक महत्वपूर्ण विषय में उनके लेखन-सामर्थ्य की मदद लेने के लिए, प्रति दिन इतने लोग उनके पास आते कि सामान्य लोगों को यही आश्चर्य होता कि इतने लोगों से बड़े प्रेम के साथ बातें करके, उनकी शिकायतें और उपालम्भ सुन कर फिर भी अपने विस्तृत लेखन-व्यवसाय को अव्याहत जारी रखने के लिए उनके मन में शान्ति और स्थिरता कहां से आती है! इसमें कोई शंका नहीं कि जो विभूतियां सत्कार्य के लिए दिन रात मनन और निदिध्यास करके, सत्कार्य के लिए उद्योग करके, अपनी देह कष्टित करते हैं उन्हें ईश्वर अवश्य [illegible] शारीरिक और मानसिक बल देता है। परोपकारी पुरुषों को [illegible] ऐसे अविश्रान्त श्रम करने का सामर्थ्य प्राप्त होता है। [illegible] सिर्फ कुर्सीमेज लगा कर कलम घिसना ही नहीं जानते [illegible] किन्तु शान्तिपरिषत् के समान महत्वपूर्ण कामों के लिए उन्होंने [illegible] तीन बार सारे यूरप की यात्रा की थी। रूस देश की यात्रा तो उन्होंने कई बार की और स्वयं ज़ार साहब से लेकर अन्य सरकारी अधिकारियों और लोकपक्ष के नेताओं इत्यादि, सब पक्ष के लोगों से भेट करके उन्होंने रूस में पार्लिमेन्टरी राज्यपद्धति प्रस्थापित करने के लिये रूसी भाषा में सम्भाषण और व्याख्यान दिये। इतना ही नहीं, किन्तु कई मास तक वे किसी रूसी देशभक्त की [illegible] वहां सन् १९०५ में राजनैतिक हलचल करते रहे। रूस के प्रसिद्ध तत्ववेत्ता, प्रभावशाली लेखक और उन्नीसवीं शताब्दी के यूरप के भूषण साधु कौंट लियो टॉलस्टॉय पर स्टेड साहब की बड़ी भक्ति थी। सन् १९०६ में उन्होंने Tales and talks of Tolstoy 'टॉलस्टॉय की आख्यायिकाएं और उनके वचन, नामक एक ग्रन्थ अँगरेज़ी में प्रकाशित किया।

जर्मनी और इँगलेंड दोनों बलवान् और सभ्य राष्ट्रों में इधर बहुत दिनों से वैमनस्य बढ़ रहा है, यह बात स्टेड साहब को बिलकुल ही न रुचती थी। आज कितने ही वर्षों से अँगरेज लेखक जर्मनी के विषय में और जर्मन लेखक इँगलेंड के विषय में लोकक्षोभ उत्पन्न करने योग्य कुत्सित लेख निकाल रहे हैं। जर्मनी और इँगलेंड का यह झगड़ा यदि ऐसा ही बढ़ता गया तो इन दो राष्ट्रों के युद्ध में सारे यूरप, किम्बहुना सारे संसार को कष्ट होगा। अतएव यह भावी अरिष्ट टालने के लिए और जर्मन तथा इंगलिश लोगों में स्नेहभाव और बन्धुप्रेम स्थिर रखने के लिए स्टेड ने सन् १९०६ में १९०७४ जर्मन सम्पादकों को इँगलेंड में बुलाया और जर्मन तथा इँगलिश सम्पादकों का एक सम्मेलन कर, कर आपस का मनमुटाव और बेसमझी दूर करने का प्रयत्न किया। पार्लिमेन्ट के बहुत से प्रतिष्ठित सभासद इस सम्मेलन में उपस्थित हुए थे और लंडन में जो जर्मन सम्पादक मेहमान आये थे उन्हें स्वयं इँगलैंड के बादशाह स्वर्गीय सप्तम एडवर्ड महाराज ने [illegible] नामक राजभवन में एक उत्तम भोज दिया था। जर्मन पाहुनों का आगत-स्वागत करने में, उन्हें अनेक अँगरेज़ी संस्थाओं का महत्व और मर्म समझाने में और इँगलैंड के अनेक दर्शनीय स्थल दिखला कर उनके मन में बन्धुभाव और प्रेम उत्पन्न करने में स्टेड साहब ही अगुवा थे। अर्थात् स्टेड साहब के विश्वबन्धुत्व की सीमा सिर्फ़ [illegible] ही तक नहीं रही, किन्तु उन्होंने अनेक कष्ट और परिश्रम सह कर उसका आचरण कर दिखाया। इसी कारण सारे संसार में आज उनका नाम [illegible] हुआ है।

यह बतलाने की आवश्यकता ही नहीं है कि आयर्लेंड की राजनैतिक हलचल में भी उन्होंने आयरिश राष्ट्रीय नेताओं का ही [illegible] उठाया था। [illegible] और [illegible] के पूर्ण [illegible] निर्मल, [illegible] सच्चा [illegible] ईसा के [illegible] धर्म समर्थक थे। [illegible] [illegible] पर स्टेड साहब की बड़ी भक्ति थी। एक बार [illegible] और [illegible] की [illegible] [illegible] के विषय में यह [illegible] कि यह [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] P[illegible] नामक [illegible] लिखा [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible]

प्रवर्तक बतलाया था और इस प्रकार आयर्लैंड की स्वराज्य-[illegible] हलचल को नष्ट करने का निन्दनीय प्रयत्न किया था। परन्तु [illegible] के बाद टाइम्स के ही कार्य दूषित ठहराये गये और आयरि[illegible] ओं के काम निर्दोष सिद्ध हुए। इसमें स्टेड के समान सत्पुरु[illegible] ष्य ही कुछ न कुछ कारणीभूत हुए। स्टेड साहब यदि [illegible] से बच कर कुछ दिन और जीवित रहते तो भारत की [illegible] बातों की सच्चाई-झुठाई उन्होंने अँगरेज़ी राष्ट्र के आगे [illegible] प्रकट की होती। प्रसंगवशात् विपिन बाबू और तिलक [illegible] इत्यादि भारतीय नेताओं के लेखों और कामों का समर्थन [illegible] प्रकार से उन्होंने भारतीय लोकपक्ष को अपनी लेखनी द्वारा [illegible] कुछ आधार और सहारा दिया ही था; परन्तु रूस की दशा [illegible] अवलोकन करके वे वहां की राजनैतिक दशा सुधारने में [illegible] से ऐसा प्रयत्न करते थे वैसा भारत के विषय में करने [illegible] अभी तक मौका नहीं मिला था। आगे पीछे यदि उन्होंने [illegible] की कोई यात्रा की होती तो अवश्य ही इस देश को [illegible] हुआ होता।

अँगरेज़ी बोलनेवाले सारे राष्ट्रों पर स्टेड साहब का इतना [illegible] दृढ़ और चिरकालिक गौरव स्थापित था; तथापि उन्होंने [illegible] में प्रवेश करने का कभी प्रयत्न नहीं किया। इस पर बहुत [illegible] को बार बार आश्चर्य होता था। परन्तु, स्टेड साहब समझते [illegible] किसी भी राजकीय विशिष्ट पक्ष में न मिलना चाहिए; क्योंकि [illegible] करने से अपनी व्यक्तिविषयक विचार-स्वतंत्रता नष्ट हो [illegible] इसी कारण वे लिबरल अथवा युनिअनिष्ट किसी पक्ष में [illegible] नहीं हुए। यद्यपि यह सच है कि युनिअनिष्ट लोगों के [illegible] और सरदारी पंथ की नीति की अपेक्षा लिबरल पक्ष के [illegible] स्टेड साहब के मत अधिक मिलते-जुलते थे। परन्तु [illegible] पर 'लिबरल' का आदरणीय नाम धारण करनेवाले [illegible] को भी अनेक बार अपनी उदारमतवादिता एक कोने में र[illegible] है और सत्ताधारियों की इज्जत अथवा Prestige रखने [illegible] व्यवहार में सुलतानी रीति का ही अवलम्बन कर[illegible] है। अतएव, उच्च ध्येयों का सदैव प्रतिपादन करनेवाले [illegible] और साधु-पुरुषों को राजकीय कार्यों का प्रत्यक्ष [illegible] अधिकारारूढ़ न होना चाहिये। प्राचीन काल में [illegible] राजाओं को सलाह देनेवाले वसिष्ठ अथवा नारद के सम[illegible] पुरुष, यद्यपि नीतिन्याय के मार्गों का राजाओं को उप[illegible] करते थे, तथापि मंत्रित्व-पद के वस्त्र उन्होंने किसी रा[illegible] नहीं किये। इसी प्रकार, स्पेन्सर के समान तत्ववेत्ता [illegible] सरीखे उदारबुद्धि पुरुष इँगलैंड के प्रधान मंडल में भी [illegible] सकते थे; परन्तु उन्होंने जानबूझ कर वैसा नहीं किय[illegible] समान सम्पादकीय व्यवसाय किये हुए मोर्ले और मिल[illegible] साम्राज्य के बड़े बड़े अधिकारी बन कर लार्ड पदवी भी प्र[illegible] परन्तु मोर्ले और मिलनर ने सम्पादक और केवल सा[illegible] करनेवाले ग्रन्थकार के नाते से जिस ध्येय का उद्घाटन, [illegible] पादन और प्रचार किया था उसी ध्येय के विरुद्ध, [illegible] के नाते से, बर्ताव करने का उन पर अनेक बार [illegible] और इस कारण मोर्ले साहब की उज्ज्वल कीर्ति [illegible] न्यूनता आई, यह आक्षेप, स्वयं मोर्ले साहब के अनेक [illegible] पर किया है। इसी आक्षेप से बचने के लिये, [illegible] किसी सच्चे गुरु को शोभा देने योग्य, इस मार्ग का [illegible] था कि राजकाज की कारवाई में हम प्रत्यक्ष कभी [illegible] पार्लिमेन्ट से बाहर रह कर ही, राजकीय विषयों [illegible] लोगों पर, अपने ध्येयों और विचारों की छाप [illegible] सिवाय, राजनैतिक विषयों में पड़नेवाले नवयुव[illegible] करके अपने लेखों के द्वारा स्टेड साहब सदा उनका [illegible] करते थे। इँगलैंड के वर्तमान 'चैन्सलर आफ [illegible] लायड जार्ज करीब दस वर्ष पहले बहुत प्रसिद्ध पु[illegible] सात आठ वर्ष पहले स्टेड साहब ने उनका चरित्र [illegible] में लिख कर उन्हें यह सार्टिफ़िकेट दे रखा था कि [illegible] ही लिबरल दल के नेता बन कर मुख्य प्रधान के [illegible] होंगे। उस समय लायड जार्ज सिर्फ़ इसी बात [illegible] वे वेल्स के [illegible] उत्साही और परिश्रमी [illegible] [illegible] के एक नेता हैं। सात आठ वर्षों में लायड [illegible] उन्नति कर ली उसका अधिकांश श्रेय स्टेड सा[illegible] चाहिये। इसी प्रकार कोई आठ दस वर्ष पूर्व उन्हों[illegible] का भी एक Character Sketch 'चरित्र [illegible] [illegible] में लिखा था और उनके विषय में भी [illegible] भविष्य कह रखा था कि वे मुख्य प्रधान की पदवी [illegible] इन दोनों पुरुषों के विषय में उनके भविष्य [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

ो आवश्यकता न थी। परन्तु श्रीसमर्थ रामदासस्वामीने, शिवाजी
ाराज को राजनैतिक सम्मतियां देते हुए भी, जिस प्रकार मुख्य
धानत्व का पद स्वयं नहीं लिया उसी प्रकार, केवल मार्गदर्शक के
ौर पर, ब्राह्मणत्व का सत्य कार्य जो पुरुष अपने ऊपर लेते हैं वे
धिकारी अथवा सत्ताधीश के पद से दूर रह कर-सत्ता की कुन
पने को न स्पर्श कराते हुए-दूसरे लोगों के ही हाथ से, अपने विचार
नुसार, अभीष्ट कार्य सिद्ध करा लेते हैं। इसी रीति से, अँगरेजों
के गुरु और मार्गदर्शक के नाते से, महात्मा स्टेड ने, सत्य,
और परमेश्वर का स्मरण करते हुए, जन्म भर अपना कर्तव्य
ा। रूस में जैसे काउंट टालस्टाय, अथवा भारत में जैसे
मा तिलक, वैसे ही इँगलेंड में स्टेड एक आधुनिक साधु पुरुष
ये। इन तीनों विभूतियों के शारीरिक गुण एक ही प्रकार के
भये—देशकाल के अनुसार सिर्फ नाम में, पहनाव में अथवा
कुछ छोटी-मोटी बातों में कुछ भेद होगा। ऐसे नररत्न ईश्वर
ी कृपा से कभी कभी किसी देश को मिल जाते हैं। अँगरेजी
का गौरव सिद्ध करने के लिये सिर्फ यही एक बात पर्याप्त
ि इस उन्नीसवें-बीसवें शतक में, स्टेड के समान पुरुष स्वयं
ड में अवतीर्ण होकर बहुजन-समाज पर अपना सामर्थ्य स्था-
कर सकता है।

स्टेड के विषय में इँगलेंड और अमेरिका का लोकमत।

टेड साहब के इस संक्षिप्त चरित्र में पाठकों को यह भी जानना
श्यक है कि उनके विषय में इँगलेंड और अमेरिका के समान
ावशाली राष्ट्रों के उच्च श्रेणी के महानुभावों का क्या मत था।
सज्जनों का मत स्टेड के मत से बहुत कम मिलता था उन
[illegible] शंसा की है।
[illegible] के भेजे हुए
[illegible] के एक श्रेष्ठ
धिकारी लार्ड फिशर तथा लार्ड मिल्नर, लार्ड एशर, अर्ल ग्रे,
दि महापुरुष, उसी प्रकार मि० गार्विन, डा० डिलन, मासिंघम,
क्लिफर्ड, रौंडर, आदि प्रसिद्ध सम्पादक, धर्माध्यक्ष और
क इत्यादि सब प्रकार के लोगों ने, भिन्न भिन्न प्रकार से,
[illegible] र ने कहा है
[illegible] देशाभिमानी
[illegible] ने स्टेड को
सम्बन्धी कारवाई का पूर्ण वृत्तान्त देकर कहा है कि 'स्टेड
हब ही के उत्साह दिलाने से रूस के 'बड़े' कहलानेवाले नाला-
क और आलसी लोगों ने भी राष्ट्रकार्य के लिये कमर कसी और
उन्हींकी उत्तेजना से डूमा सभा स्थापित करते समय ज़ार और
उनके प्रधान मंत्रियों ने लोकपक्ष को कुछ सुभीते दिये।' अर्ल ग्रे
कहते हैं, 'स्टेड इतिहास लिखनेवाले नहीं, किन्तु इतिहास नि-
र्माण करनेवाले कर्तृत्ववान् पुरुष थे। जिस समय वे हालवे जेल में
कैद की सज़ा भोग रहे थे उस समय मैं उनसे मिला था। निराशा
के वचन उनके मुख से कभी नहीं निकलते थे; और प्रत्येक निरा-
श्रित, बलहीन, तथा अन्यायपीड़ित मनुष्य के पीछे लड़ने के लिए
सदा वे अपने शस्त्रों सहित सज्ज रहते थे। ऐसी लड़ाइयों में उन्होंने
अनेक बार स्वयं अपनी हानि सही है, परन्तु प्रतिपक्षी शत्रु के भयानक
स्वरूप से डर कर उन्होंने कभी पीठ नहीं दिखलाई।" मि० जे० एल०
गार्विन, पालमालगजट के वर्तमान सम्पादक, कहते हैं, "समाचार-
पत्र का यह व्यवसाय नहीं है कि सिर्फ सामयिक विषयों का प्रच-
लित लोकमत, ग्रामोफोन की तरह, बतला कर दिखा दिया जाय;
किन्तु समाचारपत्र का व्यवसाय वह साधन है जिसके द्वारा अनेक
बातें प्रत्यक्ष घटित कराई जाती हैं-जिससे अनेक क्रांतियां (रद्दोबदल)
कराई जाती हैं। यह आदर्श स्टेड साहब ने, अपने उदाहरण से,
संसार के सामने रख दिया है। किसी तीसरे मनुष्य की तरह, सब
घटनाओं पर, प्रेक्षक के नाते से, अपना मत देकर क्षुद्र लेखन-व्य-
वसाय में ही सम्पादक की इतिकर्तव्यता नहीं होनी चाहिए; किन्तु
सम्पादक के हाथ में मार्गदर्शक का ऐसा भारी सामर्थ्य रहता है कि
वह अपने लेखनकौशल के बल पर, अपने देश के कल्याण का
स्वार्थ रखते हुए, बड़े राजनीतिज्ञों और सत्ताधिकारी पुरुषों से,
अपने मतानुसार अनेक क्रान्तियां करा लेता है। यह पाठ स्टेड
साहब ने सारे संसार के सम्पादकों को सिखा दिया है। केवल
अपने बल पर, किसी राजकीय पक्ष का भी सहारा न लेते हुए, जग-
द्विख्यात होकर, सम्पूर्ण सभ्य संसार की क्रान्तियों में, अपने मता-
नुसार, इष्ट अनिष्ट सुधार कर लेनेवाला स्टेड के समान समाचारपत्र-
सम्पादक (journalist) आज यूरप में तो कोई मिल नहीं सकता।"
अमेरिका के प्रसिद्ध धर्माध्यक्ष रे० डा० हिलीस साहब महात्मा
स्टेड के विषय में कहते हैं:—आज एक ऐसा पुरुष इस संसार से
उठ गया है कि जो नैतिक सुधार और परोपकार के लिए अपनी
देह को सदा कठिन करता रहता था। हम केवल एक बड़े सम्पादक
के नाते से ही स्टेड साहब के गुण नहीं गाते हैं; किन्तु उनकी
जाज्वल्य धर्मश्रद्धा, सत्यप्रीति, न्यायप्रियता, और जगत् से अन्याय
तथा अत्याचार उठा देने के लिए जो उन्होंने जन्म भर मनुष्य-
जाति की सेवा की है, उसके लिए भी, हमें उनका गुण-कीर्तन
करना चाहिए!'

वर्षा।

१
गरमी के दिन रहे न, 'वर्षा' आ गई।
दूर हुआ तप, शान्ति जगत में छा गई॥
बेचैनी कुछ नहीं, मुदित-मन हैं सभी।
रहती दशा समान किसीकी क्या कभी?

२
झुलसे वन गिरि हुए सभी वैसे हरे।
सूखे सर, नद, झील, लबालब आ भरे॥
जल ही जल-मय धूल-धूसरित ठौर है।
समय पड़े होता कुछ का कुछ और है॥

३
दल के दल बादल हैं नभ में घूमते।
उच्च पर्वतों की चोटी वे चूमते॥
कृषकों के मन में आनन्द अपार है।
निःसंशय यह स्वार्थ-पूर्ण संसार है॥

४
खेतों में मन-प्राण-समेत किसान हैं।
जोत जोत हल नित्य बो रहे धान हैं॥
फ़ुरसत थोड़ी नहीं उन्हें अब काम से।
विना काम है, भला कौन आराम से?

५
तृण-दल चारों ओर मनोहर हैं बढ़े।
प्रकृति-वधू के हरे पाँवड़े ज्यों पड़े॥
बीरबहूटी-यूथ कहीं मन मोहते।
लाल लाल बूटे जैसे हों सोहते॥

६
कहीं वृत्त सी कहीं आयताकार सी,
कहीं लम्ब फिर कहीं बनी आधार सी
देखो यह किस भाँति लहलही दूब है।
जल की बूँदें लटक रहीं क्या खूब हैं॥

७
बाग-बगीचे अतुलनीय-शोभा-सने,
नन्दन-वन के यथा प्रतान्तर हों बने॥
माली-गण अब तो फूले न समा रहे।
सम्पाते में दुख-दुर्ग स्वयं जाते ढहे॥

८
कहीं केतकी-कुल, कदम्ब हैं झूलते।
हरशृङ्गार, अशोक कहीं हैं फूलते॥
जूही कहीं निहाल निवारी-डाल है।
कहीं मोतिया मुकुलित मालामाल है॥

९
कहीं सन्तरा, सेब, सरीफ़, अनार हैं।
पनस कहीं कमरख, केला, कचनार हैं॥
मेवे, बड़हल कहीं पड़े हैं टूट ही।
तूत और जामुन की तो है लूट ही॥

१०
पुष्प पवन को करते सौरभदान हैं।
पर-हित देते परोपकारी प्राण हैं॥
फैलाता वह जिसे सुदूर तुरन्त ही।
सन्तों के यश प्रकटित करते सन्त ही॥

११
गरज गरज नभ में बादल घिरने लगे।
बुन्द बुन्द से देखो सर भरने लगे॥
अहा! चल रही शीतल मन्द बयार है।
यथा प्राकृतिक पंखा ही तैयार है॥

१२
इस अवसर हैं कहाँ मोर कब चूकते?
फैला कर सांठि पुच्छ हर्ष से कूकते॥
जिस पर, जिस जन का, जितना अनुराग है,
होता प्रकटित यथासमय वह भाग है॥

१३
श्यामल कमल दल खिले ललाम ललाम हैं।
सहृदय उनको देख देख खुशहाल हैं॥
भौंर भौंरी हैं उनसे मँडरा रहे।
करते "गुनगुन" से परम सुख पा रहे॥

१४
कहीं कुई, कमलिनी नया बहार है।
पनडुब्बों लेती डुबकियाँ अपार है॥
कहीं कहीं सारस प्रफुलित-चित डोलते।
हंस, बतक फड़का फड़का पर बोलते॥

१५
झरने "झरझर" दुग्ध-फेन सम झर रहे।
दादुर "टरटर" नाद मज़े में कर रहे॥
सुन पड़ती है झिल्ली की झनकार यों,
कहीं जम रही हो सितार की तार ज्यों॥

१६
श्याम घटा में बक-माला है जा रही।
मानों वर्षा-विजय-ध्वजा फहरा रही॥
उड़ती, इसका देख स्वरूप सुहावना-
कवियों के मन में कितनी हो कल्पना॥

१७
"खुले केश में क्या प्रसून का भार है?"
"किम्वा पुष्प-प्रयुक्त माँग की धार है?
प्रबल मेघ, लघु पंक्ति, न भय मन में कहीं,
"बाधाओं से कर्मवीर डरते नहीं॥"

१८
मेघ मौन, जब तक चपला चुपचाप है।
किन्तु चमकते ही करता आलाप है॥
पर के दुख सज्जन अपने ही जानते।
उसी भाँति सुख से सदैव सुख मानते॥

१९
देख प्रदीप, पतङ्ग मुदित जाते वहीं।
जल कर भी कुछ दुख कदापि लाते नहीं॥
"जीवन का बस सार अकेला प्रेम ही।"
मिलता है उपदेश हमें इससे यही॥

२०
यद्यपि कहते हैं "ऋतुराज वसन्त है,"
पर वर्षा! तेरे गुण का क्या अन्त है?
विश्वमाता तू वर्ष एक भी जो कहीं,
मचता "हाहाकार" कहाँ जग में नहीं?

पाण्डेय मुकुटधर विद्यार्थी।

...र के बैठने का स्थान गद्दियों से मढ़ा हुआ था। इस पीयर के ...चे है पेनी कर देकर समुद्र में तैर भी सकते थे। पीयर के पास ...त दिन, विशेषतः रात को, चित्रविचित्र वस्त्र धारण किये हुए नर ...रियों की बड़ी भीड़ होती थी। हम एप्रिल में गये, इस कारण ...त उस समय वहां कम था। हमारे चार दिनों में से तीन दिन ...हां हवा भी स्वच्छ थी, अतएव दिन भर लोग आरामपथ पर ...ते हुए नजर आते थे। ईस्टर (गुडफ्रायडे ईस्टर का भाग है) ...घूमने के जहाज चलने लगते हैं। ...में मुसाफिरों के दो दर्जे रहते हैं। ...भी कभी लोग किसी पास के बन्दर ...घूम आते हैं अथवा कभी इँगलिश-...नल में कुछ दूर तक जाकर लौट ...ते हैं। बन्दर पर ठहरने का कर्तव ...क घंटा काट कर लगभग घंटे भर ...मुद्र में घूमते हैं। हम भी मिड-चनल ...एक सफर कर आये। जहाज पर ...क स्त्री हार्प लेकर और पुरुष फिडल ...कर दिल-बहलाव करते थे। खेल ...तम होने पर लोगों के सामने टोपी ...राते हैं। मन में दाक्षिण्य उत्पन्न ...ने पर पेनी से लेकर कुछ न कुछ उस-...डालना चाहिए। बड़ी दूर जाने पर ...पारी जहाज दिखाई देते हैं।

दक्षिण आफ्रिका का स्मारक—ब्रायटन।

...मुद्री वायु से बहुत ही आनन्द आ रहा था। लौटने पर ...र ज्यों ज्यों देख पड़ने लगा त्यों त्यों उसकी शोभा बहुत ही ...जेदार जान पड़ने लगी। समुद्र किनारे एक ओर होटल, ऊपर के ...कान, आरामपथ के नर-नारी, बाग, आदि की शोभा रमणीय ...न पड़ती थी।

... पेलेस पीयर के पास ही अक्वेरियम है। वहां भिन्न भिन्न जाति ...की मछलियां जीती हुई रखी हैं। मौका न मिलने के कारण हम ...हें नहीं देख सके।

... पेविलियन नाम की एक इमारत वहां है। उस इमारत का इति-...स यह है कि महारानी विक्टोरिया के चचे चौथे जार्ज के नि-...सस्थानों में एक यह भी स्थान था। ये राजा चौथे जार्ज महा...

यात्रास्थल (डामिस्टेड)—ब्रायटन।

...पियलस्पट कहे जाते थे। इन्होंने मिसेस फिट्ज हर्बर्ट नामक ...क सुन्दर युवती विधवा के साथ विवाह किया था *। परन्तु यह ... [illegible] ... है

करा दिया। परन्तु राजा जार्ज ने इस स्त्री को राज्ञीपद का अभिषेक नहीं करने दिया और उसकी अत्यन्त अवहेलना की। उस मिसेस फिट्ज का चित्र इस पेविलियन में है और उसके रहने का स्थान भी दिखलाया जाता है। इस पेविलियन में चीन के बहुत से दृश्य हैं। चीनी रीति के चित्र और भालरें हैं। एक टेबल पर हॉलीलेंड, अर्थात् पेलेस्टाइन (ईसामसीह की जन्मभूमि) का नकशा है। और कुछ यहां देखने योग्य नहीं। सिर्फ कहने भर को भारतीय कारीगरों-बढ़ई, हलवाई, लकड़ेवाले आदि-के मिट्टी के छोटे छोटे चित्र एक जगह हैं।

डोम—साठ फीट ऊंचा एक मंडप है। यहां पहले चौथे जार्ज की घुड़शाला थी। अब उसका संगीत-गृह हो गया है। मण्डप के ऊपर की सब पटाई नकशादार है, इससे भीतर की ओर पोला उजेला आता है।

इसके बाद वाचनालय, चित्रशाला, अजायबघर, इत्यादि की इमारतें देखने योग्य हैं। इन इमारतों में अजायबघर के १३ कमरे हैं। उनका विवरण इस प्रकार है:-१ पुराण-वस्तु वर्ग २ और ३ पुराणवस्तु-वर्ग और मानववंश-वर्ग ४ मानववंश-वर्ग ५ और ६ मृत्तिकावस्तु-वर्ग ७ भूगर्भ-वर्ग (ऑल) ८ भूगर्भ-वर्ग और खनिजवर्ग ९ प्राणिशास्त्रीय-वर्ग १० कीटकवर्ग ११ अस्थि-वर्ग १२ क्षुद्रयोनिवर्ग १३ जलज-वर्ग। ये कमरे दो मंजिलों पर आसपास बने हुए हैं और उनके बीचवाले खुले चौकों में बहुत भारी भारी मूल के चित्र लगे हुए हैं। एक ओर वाचनालय है। यह सब संग्रहालय बहुत अच्छा है।

इससे अलग एक इमारत में आंग्ल पक्षियों का एक संग्रहालय है। यहां प्रत्येक पक्षी की परिस्थिति दिखलानेवाला दृश्य उसके आस पास है। कुछ पक्षियों का अधर में उड़ना दिखलाया गया है। यहां मैंने बड़े बड़े गरुड़ और हंस भी देखे।

बैंक हालिडे के दिन सध्यासमय पांच बजे मैं ब्रायटन से चला

हॉमस्टेड स्पेनिएर्डजा—ब्रायटन।

और साढ़े छः बजे लंडन आया। इस दिन यहां हेम्पस्टेड हीथ नामक मैदान में मे... [illegible] ...में बहुधा नीचे दर्जे ... [illegible] ...में होते हैं। नारिय... [illegible] ...गती हैं। बाजी बट... [illegible] ...गण स्त्री-पुरुष, आपस में, बिना जान पहचान, कई प्रकार की चेष्टाएं करते हैं। बीच में आर्गन ग्राइंडर (डंडा घुमाते हुए बाजा बजानेवाला) बाजा बजाते हुए निकलते जाते हैं। किंचित् मत्त स्त्री-पुरुष उन बाजों की ताल पर नाचा करते हैं (ये बिलकुल नीचे दर्जे के लोग होंगे) संध्यासमय से ११० बजे रात तक यहीं कैपियन रहती है।

* On the left are pictures of George the builders & the position & is Fitzherbart, the lady whom, it is now proved incontesfaldy, married

Mis Fizherbart, was for a long time a resident of Brighton she is buried is..........bst Brighton when her tomb is to be ...n."

नं० २ क्रिस्टल पेलेस (बिल्लौरी राजमहल)

...प्रथम सर्वराष्ट्रीय प्रदर्शन के लिये जो भवन बनाया गया था ...सोंकी सामग्री से यह क्रिस्टल पेलेस नामक राजभवन बनवाया ...गया। सन् १८५४ में यह खोला गया। यद्यपि यह राजमहल लंडन ...बाहर है, तथापि आप लंडन के चाहे जिस स्टेशन से जाइये, ...हां जाने आने के लिये एक शिलिंग-फीस मिला कर डेढ़ शिलिंग ...का टिकट मिलता है। इस महल के बनवाने में कुल १५ लाख रुपये ...खर्च हुए। इस सम्पूर्ण राजमहल में कोई २०० एकड़ से अधिक स्थान घिरा हुआ है। यद्यपि इसे राजमहल कहते हैं तथापि इसमें कभी कोई निवास नहीं करता। इसे एक प्रकार की स्थिर प्रदर्शिनी ही समझना चाहिये। एक व्यापारी कम्पनी टिकटों के धन से इस प्रदर्शिनी को कायम रखती है। यद्यपि ऊपर ऊपर देखने से मालूम होता है कि कुछ दिनों से इस प्रदर्शिनी की शोभा कम हो गई है, तथापि जो कुछ है वही बहुत दर्शनीय है। ३ बजे से ७ बजे तक (चाय पीने और खाना खाने का समय छोड़ कर) मैं घूमता रहा, तथापि सब कुछ नहीं देख सका और जो कुछ देखा, वह भी ऊपर

... है सो तो है ही, उसके ...जक बातें होती हैं। इन ... शुरू शुरू में कुछ सि-ढ़ियां चढ़ने के बाद साधारण चौड़ाई का एक अंगन पड़ता है। वहां हरियाली, छोटे छोटे जलाशय, पुष्पवृक्ष, आदि हैं। इसके ऊपर चढ़ने से महल का द्वार मिलता है और उसके भीतर जाने पर बीच का बड़ा कमरा मिलता है। यह कमरा महल की लम्बाई भर, करीब १६०० फीट लम्बा है। महल चार पांच मंजिल का है। कमरों में जगह जगह भोजनगृह, छोटे छोटे हौज, फौवारे, बैठने के लिये कुर्सियां और बेंचें इत्यादि हैं। सब से बड़े कमरे में विविध-कालीन प्रसिद्ध पुरुषों की प्रस्तर-मूर्तियां हैं। इनमें बम्बई के एक पारसी महाशय और नाना शंकर सेठ की छाती तक मूर्तियां हैं। एक ओर वहीं स्केटिंग रिंक है। फर्शबन्दी की हुई समतल जगह को रिंक कहते हैं। उस पर चक्रदार लोहे के जोड़े पहन कर फिसलते हुए चलने को स्केटिंग कहते हैं। नवीन सीखनेवाले को पहले तोल सम्हालना कठिन मालूम होता है; परन्तु यह विद्या सरल है और इसमें बड़ी मजा है। बर्फ से जब तालाब जम जाते हैं तब उन पर स्केटिंग करने के लिये स्त्री पुरुषों की बड़ी भीड़ मचती है। बर्फ न होने पर महसूल देकर रिंक में जाना पड़ता है। स्केटिंग करनेवालों का, पानी की मछलियों की तरह, गति-विलास देख कर नेत्रों को बड़ा आनन्द होता है। यहीं एक नाटकगृह है। उसमें बीच बीच में सी-नोमेटोग्राफ दिखलाया जाता है। कमरे के मध्यभाग में अर्ध गोलाकार बड़ी जगह है। वहां नाटकगृह के दूसरे मंजिल की सी बेंचों की सोपान-परम्परा है। इस अर्ध गोल का व्यास २१६ फीट है। इसके ऊपर मण्डप बना है। बीच में ऊंची जगह पर एक बहुत बड़ा आर्गन (बहुत भारी हारमोनियम) है। उसकी नलियां (कुल ४३८४) कोठरी की तरह आस पास हैं, और भीतर बजानेवाले के लिये बैठने की जगह है। इस हारमो-नियम की कीमत नब्बे हजार रुपये है। यह यंत्रशक्ति की सहायता से बजाया जाता है। इस सभागृह में कुल ४५०० मनुष्य बैठते हैं। मैं जिस समय वहां पहुँचा उस समय एक राजकन्या लड़कों को पारितोषिक बांट रही थी। उपर्युक्त अर्ध गोल के नीचे, बैठने के लिए कुर्सियां रखी हैं। वहां जाने के लिए महसूल देना पड़ता है। उसके पीछे एक कठड़ा है। कठड़े के बाहर एक बड़ा चौक बना हुआ है। वहां अन्य दर्शकगण खड़े रहते हैं, अथवा जो थोड़ी सी कुर्सियां वहां रखी हैं उन पर बैठ जाते हैं।

क्रिस्टल पॅलेस—लंडन।

इस कमरे के बाहर और कुछ जगहें भी मुख्य इमारत में हैं। एक जगह शतरंज खेलने के टेबल रखे हैं। इसी प्रकार कई अन्य मनोरं-जक खेलों का भी वहां प्रबन्ध है। जीना उतर कर नीचे जाने पर एक कमरा और मिलता है, जिसमें शश-मर्कटादि प्राणी, शुक, धूक-चातकादि पक्षी, मत्स्य-मकरादि छोटे आकार के जलचर कांच की सन्दूकों में बन्द हैं। यह संग्रह कुछ बहुत बड़ा नहीं है। एक गेलरी में प्राणिशास्त्रविषयक संग्रह है। इस जगह अनेक देशों के क्रूर प्राणी रखे हुए हैं। ये प्राणी यद्यपि मृत हैं, तथापि अत्यन्त सजीव से दि-खाई देते हैं। एक ऊंट पर दो बाघ आक्रमण कर रहे हैं, भेडिये अपना भक्ष्य पकड़ रहे हैं, बैल चीतों से अपनी रक्षा कर रहे हैं, एक हंस मछली मुंह बाये खड़ा है, इत्यादि दृश्यों के सिवाय, स्यार और बन्दर आदि प्राणियों के भी दृश्य हैं। दूसरी ओर की गैलरी में आफ्रिका, अमेरिका, आस्ट्रेलिया, आदि देशों के नग्न रहनेवाले जंगली लोगों के दृश्य (मिट्टी के चित्र) दिखलाये गये हैं, ... पंक्ति में भारतीय लोगों के भी चित्र हैं। एक जगह ... एक जगह प्राचीन ग्रीक और रोमन लोगों की बनाई मूर्तियां, एक स्थान में प्रसिद्ध पुरुषों की मूर्तियां, एक जगह में खुदे हुए अंगरेज राजे, रानियां और साधु, इत्यादि की मूर्तियां हैं। यहां के सब पदार्थों पर एक प्रकार की चम-झलक रहती है।

इमारत के बाहर एक जलाशय है। उसका आकार ... की तरह है। अतएव इसका नाम भी "फेयर आर्चिटेक्ट..." इसके एक तरफ 'वाटरशूट' है, इसीके पास सात ... चौड़ी एक पानी की नहर ऊँचाई पर से गिराई गई है। इसे ... डियन रेपिड्स्' कहते हैं। उसके ऊपरी सिरे से डोंगी में बैठा कर नीचे को छोड़ते जाते हैं। एक छोटी सी रेलगाड़ी, ... पर अनेक देशों के प्रसिद्ध स्थलों के दृश्य दिखलाये जाते हैं। ... सिवाय और कितने ही मनोरंजन के साधन हैं। उनके मान ... को बड़ी बड़ी प्रदर्शिनी कुछ नहीं हैं। प्रत्येक दृश्य के देखने में छै आने तक महसूल देना पड़ता है! इतना रुपया और सम... करने का सुभीता मुझे नहीं था। वहीं एक हिन्दू भगवे क... खड़ा था। वह भूत, भविष्य अथवा जादू, इत्यादि की ... बतला रहा था। मेरे मन में आया कि देखना चाहिए; पर ... गई थी, इस कारण मैं आगे ब...

साढ़े चार बजे सभागृह में ... शुरू हुआ। यहां ४५०० गाय... थे। आर्गन की आवाज यद्यपि ... थी, तथापि कर्ण-मधुर थी। ... गीत गाये गये। उनमें ३-४ ... थे। ये गीत शास्त्रीय रीति से ... गये, अतएव मेरे लिए 'अ... कवित्व निवेदनम्' का ... हुआ। कुछ गीत ठेके पर ... चाल में गाये गये। उनमें मु... आनन्द आया। सब गायक ... कही हुई बातों के अनुसार अपने रूमालों से भाव ... थे। एक गीत समाप्त होते ... डक्टर (हाथ में छड़ी लेकर ... नियमन करनेवाला) ने अपना रूमाल अपने आगे खड़ा ... उसके साथ ही सब गायको ने अपने अपने रूमाल आगे कि... समय उन ४५०० गायकों के रूमालों की सफेदी चारों ओर ... इसके बाद कंडक्टर के रूमाल हिलाते ही सब गायक भी हि... लाने लगे। फिर उसने रूमाल के विरुद्ध सिरे ज्योंही दोनों ... पकड़े त्योंही रूमाल की त्रिकोणाकृति खुल गई। सब ने ... किया। इसके बाद कंडक्टर ने अपना रूमाल इधर उधर ... फिर सब ने अपने अपने रूमाल हिलाये। उस समय ऐ... ऐसा जान पड़ा कि जैसे बगुलों का कोई झुंड उड़ता हो। ... तालियां पीटीं।

बहुत से लोगों को आकर्षित करने के लिए यहां समय ... पर इसी प्रकार के मनोरंजक खेल हुआ करते हैं। ऊपर ... कुमारी के हाथ से पारितोषिक बँटाने का उल्लेख आया है; ... कारण अनेक लड़कों के पालक इस बार यह जलसा देखने को आ... कभी क्रिकेट, फुटबाल, आदि के मैचेस, फूलों की, कुत्तों... बाइसिकलों की प्रदर्शिनी और संगीत के जलसे इत्यादि हुआ... हैं। गर्मियों में गुरुवार और शनिवार को रात के समय ... बाजी छुड़ाई जाती है और इस निमित्त कभी कभी १०-२० ... दर्शक तक जमा हो जाते हैं।

नं० २ टॉवर आफ लंडन (लंडन का किला)

सन् १०७८ ई० में विलियम दि कांकरर ने यह भू-कोट किला बनवाया। उसके बाद कई राजाओं ने समय समय पर इसमें सुधार किये, तथापि इसका स्वरूप अब भी प्राचीन ही है। इसमें कुल १८ एकड़ जमीन घिरी है। यद्यपि इस समय सैनिक दृष्टि से इसका कोई उपयोग नहीं है तथापि अनेक वर्षों तक इसका उक्त कार्य में उपयोग होता रहा है। राजकीय जेल के काम में भी यह किला उप-युक्त हो चुका है। चार्ल्स दि सेकंड (१६६०-१६८०) के जमाने तक राजमहल के तौर पर इसका उपयोग किया गया। खंदक के भीतरी तट में तेरह बुर्ज हैं, और उसके भीतर जो दूसरी दीवाल है उसमें तेरह बुर्ज हैं। खंदक में इस समय पानी नहीं रहता। रानी एलिजाबेथ व सिंहासनारूढ़ होने के पहले यहीं ऐन बोलिन ... इसी किले में बन्दिवान् थीं। यहां लेडी जान ग्रे और मेरी ... स्कॉटस् इत्यादि कई राजकीय कैदियों के सिर काटे ... एडवर्ड दि फिफ्थ, उसके भाई, हेनरी दि सिक्स्थ, इत्यादि ... खून किया गया! यहां देखने योग्य दो स्थान महत्व पूर्ण ... राजभूषणागार और दूसरा आयुधागार।

राजभूषणागार।

ये राजभूषण, एक सिढ़ढ़ियोंदार गोलाकार चबूतरे पर ... हैं। उसके आसपास कटघरा और कांच का बेष्टन है। इस ... का व्यास लगभग १२—१४ फीट है, इस कारण भूषण ... देख सकते हैं। महत्वपूर्ण भूषण इस प्रकार हैं:—

(१) राजमुकुट—यह महारानी विक्टोरिया के लिए ... में बनाया गया। इसमें एक बड़ा भारी माणिक है। ...

को लड़ाई में मिला है। पहले इस मुकुट में २८१८ हीरे, २१७ मोती और अन्य रत्न थे, तथा सब का वजन लगभग ३१ औंस था। इसके बाद आफ्रिका के कुलीनन हीरे के दो भाग (आफ्रिका के तारे) किये हैं; उनमें से छोटा हीरा (मामूली कागजी निम्बू के सदृश) उसमें लगाया गया है। उसी समय करीब १०७ के, रत्न और लगाये गये हैं।

(२) रानी का मुकुट, इसके सिवाय दूसरा एक रानी का मुकुट है।

(३) सेंट एडवर्ड का मुकुट-यह चार्लस् दि सेकंड के लिए बनाया गया।

(४) प्रिंस आफ वेल्स का छोटा मुकुट।

लंडन का किला।

(५) दरबार में लगाया हुआ मुकुट; इसका वर्णन पाठकों ने पढ़ा ही होगा।

(६) सुवर्ण गोल, इस पर कुछ रत्न जड़े हैं। इसका आकार शुतुर्मुर्ग के अंडे का सा है।

(७) रानी का सुवर्णगोल।

(८) राजदण्ड-यह करीब गज भर लम्बा है। इसके मस्तक पर कुलीनन हीरे का बड़ा हिस्सा जड़ा हुआ है। मध्यम दर्जे के अमरूद का सा इसका आकार है।

(९) रानी का राजदण्ड।

इनके सिवाय सोने और हाथी-दांत के अन्य राजदण्ड, कंकण घोड़े के 'स्पर' आदि भूषण हैं। दो पौने दो हाथ के व्यासवाली सोने की थालियां; लवण-

लंडन का किला–बेचाप बुर्ज।

लंडन का किला–कैदियों की कोठडी।

लंडन का किला–अश्वकवचागार।

लंडन का किला–राजभूषण। (इसमें दिल्लीदरबार का मुकुट नहीं।)

लंडन का किला–[illegible]।

लंडन का किला–[illegible]।

पात्र, मद्यपात्र, इत्यादि वस्तुओं के सिवाय अभिषेकपात्र, चमचा और राजवंश के लिए बापतिस्मा, इत्यादि हैं। दूसरी ओर राजखड्ग हैं। उनमें भौतिक अधिकार का खड्ग, धार्मिक अधिकार का खड्ग, और भूतदया का बोथर (धार लौटा हुआ) खड्ग इत्यादि हैं।

भिन्न भिन्न सन्मानों के बिल्ले (*Stars of orders*) चाँद, इत्यादि रखे हुए हैं। भारतवर्ष का कोहनूर विंडसर कैसल में रक्खा है, इसका ठीकठीक नमूना कुन्दन में जड़ा हुआ यहाँ रखा है। इसके सिवाय कुलीनन हीरे के बेढंगे मूल स्वरूप का भी नमूना यहाँ रखा है।

शस्त्रागार।

हेनरी दि एट्थ ने पहले ग्रीनिच में जो शस्त्रागार बनवाया उसका परिणत स्वरूप यह आयुधागार है। एक कमरे में एशियाटिक लोगों की लड़ाइयों में प्राप्त किए हुए शस्त्र हैं और उनके थोड़े थोड़े वर्णन के पत्रक अलमारियों में चिपके हुए हैं। उनमें नाना प्रकार के कवच तलवारें, कटारें, ढालें, कुल्हाड़ियाँ, बघनखे, इत्यादि रखे हैं। बघनखों के सामने लिखा है:—" ऐसे ही एक बघनखे से शिवाजी ने, अफजलखाँ से मिलते समय, उसे मार डाला।" पंजाबी लोगों के दो चक्र रखे हैं। कुछ बन्दूकें और बारूद रखने के नक्काशीदार डब्बे हैं।

दूर शस्त्रों से ले कर ... ...

प्रारम्भिक दशा से लेकर अब तक की दशा दिखलाई गई। तीसरे कमरे में सोलहवें और सत्रहवें शतक के अँगरेजों के मनुष्यों तथा घोड़ों के कवच रखे हुए हैं। १८ फीट तक लम्बे भाले रखे हुए हैं। कुछ मोटे लोहे के पत्रों के धनुष हैं। उन्हें कर बाण चलाने के लिए उनके दण्ड में स्प्रिंग की योजना की गई है।

ब्रह्मदेश के सेनापति महाबन्दुला का कवच एक बनावटी मनुष्य को पहनाया हुआ है। इसके सिवाय और जापानी कवचों के नमूने भी दर्शनीय हैं।

एक जगह अपराध कबुलाने के लिए वेदना-यंत्र रखे हैं; हाथों और पैरों में डोरियाँ बाँध कर मनुष्य को आड़ी ताने का यंत्र, अँगुलियाँ कुचलने का यंत्र, इत्यादि इस देश में काम में लाये जाते थे।

एक जगह शिरच्छेद करने के समय गर्दन रखने का ठीहा, शिर काटने की कुल्हाड़ी रखी हुई है। 'वोचंप टावर,' में मिली हुई वस्तुएँ रखी हैं। जिनमें प्राचीन सिक्के और कैदियों के पत्थर पर खोदे हुए अक्षर, इत्यादि हैं।

नं० ४ सेंटपालस कैथीड्रल।

कहते हैं कि इस जगह बहुत प्राचीन काल में डायना (इन्दुमती) नामक देवता का देवालय था। उसके बाद रोमन लोगों के समय में इस जगह एक चर्च बनाया गया। उसके पश्चात् आग, बिजली और अन्य दुर्घटनाओं से दो तीन बार सत्यानाशी हुई। इसके बाद सन् १६६५-१७१० की अवधि में वर्तमान इमारत बनवाई गई। इसमें साढ़े आठ लाख पौंड खर्च हुए यह देवालय रूम के सेंटपीटर्स मन्दिर के ढँग पर बना हुआ है। परन्तु उससे यह बहुत छोटा है। इसकी लम्बाई ५०० फीट और चौड़ाई ११८ फीट है। भीतरी ऊँचाई २२५ फीट और बाहर की सब से अधिक ऊँचाई ३६४ फीट है। गुम्बज का व्यास १०२ फीट है (रोम के सेंट पीटर का १३९ है) यह मन्दिर सादे पत्थर का बना हुआ है। क्रिश्चियन देवालयों में इसका पाँचवाँ नम्बर है। पहले चार नम्बर रोम, मिलन, सेविल और फ्लारेन्स में हैं। इस देवालय के आगे एक छोटा सा बाग है और आसपास चर्चयार्ड (दहनभूमि) है। पहले पहल मन्दिर की चौड़ाई भर लम्बी-चौड़ी सिड़ढियाँ हैं। उनसे चढ़ कर ऊपर जाने पर छोटा सा आंगन पार करने के बाद टोपी उतार कर मन्दिर में प्रवेश करना होता है। (यहाँ देवालय और अस्पताल में जाते समय टोपी निकालने की चाल है) देवालय में जाने पर पहले एक बड़ा कमरा मिलता है। उसके आगे आठ खंभों का अष्ट-कोण है, उसी पर गुम्बज है। उसके आगे भजन गाने का कमरा है। इसके बाद ईसामसीह की सूली पर चढ़ी हुई मूर्ति है। ईसामसीह ने धर्मस्थापना करते समय मूर्ति-पूजा का निषेध किया था, इस कारण क्रिश्चियन लोग परमेश्वर की मूर्ति नहीं बनाते। परन्तु ईसामसीह और उनकी कुमारी माता की मूर्ति ये लोग भी पूजने लगे हैं। धर्मसुधार करते समय अन्य अन्य बातों की तरह इस बात पर भी आक्षेप हुआ और इसी कारण प्रोटेस्टेंट मन्दिरों में मूर्तिपूजा की कमी हो गई। तथापि मैंने जो सरकारी और निजी दो तीन प्रोटेस्टेंट चर्च यहाँ देखे उनमें निदान मेरापाल अथवा क्रस पर चढ़े हुए क्राइस्ट के चित्र के बिना काम नहीं चलता। अँगरेजी राज्य यद्यपि प्रोटेस्टेंट पंथ का है, तथापि कुछ राजाओं की मानाएं रोमन कैथोलिक होने के कारण यहाँ का सरकारी धर्म कैथोलिक पद्धति के संस्कार से बिलकुल खाली नहीं रह सका। अस्तु।

इस देवालय के पिछले भाग में रंगीन चित्रविचित्र काँचों की खिड़कियाँ हैं। मन्दिर भर में अनेक राष्ट्रीय पुरुषों के पुतले, उनमें भारत में प्रसिद्ध पाये हुए राजकीय और पादरी और भी कुछ मूर्तियाँ हैं। लार्ड कार्नवालिस की मूर्ति है। एक तरफ ब्रिटानिया है और दूसरी ओर एक भारतीय स्त्री (बैठी हुई में) और एक बैरागी बैठा हुआ है। वहाँ एक और मूर्ति है। चार हाथ हैं, जिनमें से पिछले दो टूटे हुए हैं। यह मुझे शिव मूर्ति जान पड़ी, क्योंकि सिर पर जटा है और जटाओं से गंगा निकल कर नीचे की ओर गई है। परन्तु मूर्ति के स्त्रियों के से पुष्ट स्तन हैं! चित्रकार का अज्ञान समझ कर मैं आगे बढ़ा और एक मीनार है। उसकी २६० सिड़ढियाँ चढ़ कर ऊपर पर मनुष्य 'विस्परिंग गैलरी' में पहुँचता है (प्रवेश होने के लिए जेब ढीली करनी पड़ती है!) गैलरी या छज्जे की पिछलीवाली दीवाल बड़ा गुम्बज होने के कारण एक दीवाल में मुँह लगा कर बिलकुल धीमे बोलने पर भी दूसरी ओर बोल सुनाई देता है। इसीसे वहाँ के ... ने मुझे सामने की ओर बैठा कर ... फीट की दूरी से मन्दिर का ... बतलाया। छज्जे की चौड़ाई ... फीट है। मन्दिर और गैलरी गुम्बज के आगे, कुछ भी नहीं ... जिसने गोल गुम्बज नहीं देखा है उसके लिए यह गैलरी बड़ी कौतुकपूर्ण है, इसमें कोई सन्देह नहीं। इसके बाद ११८ सिड़ढियाँ चढ़ कर जाने से खुली हुई गैलरी मिलती है। इस पर से लंडन का बहुत सा हिस्सा देख पड़ता है। इसके ऊपर भी एक गैलरी है; परन्तु उस पर जाने के लिए बहुत द्रव्य लगता है इससे मैं नहीं गया। मन्दिर के नीचे एक भुँइरा है। उसमें जाने के लिए भी पैसे गिनने पड़ते हैं। इसे क्रिप्ट कहते हैं। यहाँ कबरें हैं। उन पर अनेक पुतले और मृत्युशिलाएँ आदि हैं।

सेंटपालस मन्दिर—लंडन।

४ बजते ही संगीत-प्रार्थना का आरम्भ हुआ। कुछ देर होने के बाद एक आदमी कुछ, एक प्रकार की, संथा सी देता है। 'संथा' इस लिए कहा कि यह बड़े सपाटे के साथ पढ़ा जाता पड़ता है। बीच बीच में लोग 'आमेन' शब्द कहते जाते हैं। उस समय आर्गन स्वर देता है। इसके बाद फिर संगीत होता है। फिर मिनट उपदेश होता है। बड़े और छोटे दोनों प्रकार के पादरियों के लिए उपदेश-पीठ भिन्न भिन्न हैं। यह सब प्रार्थना एक घंटे में होती है। पाँच बजे मन्दिर बन्द होता है।

पुराने रामपंचायतन की नई आवृत्ति।

हमारे पुराने रामपंचायतन की खूब मांग होने के कारण हमने उसकी नई आवृत्ति निकाली है। यह १५×२० के कागजों में छपी हुई है। इसके सिवाय नवीन प्रकार का शिवपंचायतन, गायत्री, प्रातःसंध्या, मध्यान्हसंध्या, सायंसंध्या, ... नानारंगी इस कुल्मों के चित्र (१५×२०) हरिहर-भेट, रामदास, अक्कलकोट के स्वामी, नृसिंहसरस्वती, श्री दत्तात्रेय, ... नन्द, कनकघारा का हाथ और (गजानन) ... १०×१४ आदि नवीन चित्र बड़े ... में सुन्दर छपे हुए हैं। ... १०×१४ की एक प्रति की कीमत क्रमशः ४ आने और एक आना। डाकमहसूल अलग। व्यापारियों को अच्छा कमीशन मिलेगा।

मैनेजर चित्रशाला ...

। किसी योद्धा के भाला घुमाने के कौशल के कारण पहले पड़ा होगा। अँगरेजी के 'शेक' (हिलाना) और 'स्पीयर' । इन दो शब्दों से 'शेक्सपियर' (Shakespeare) नाम गा। यह तर्क कुछ निराधार नहीं है। क्योंकि हमारे देश में तिन काल में 'पिनाकी', (शंकर) 'परशुराम' तथा अर्वा- ाल में 'खड्गबहादुर', 'भालेराय' इत्यादि नाम पाये जाते विलियम शेक्सपियर के पहले भी 'शेक्सपियर' उपनाम क पुरुष इँगलैंड के बहुत से गाँवों में हो गये हैं। यह उप समल Yeomen (क्षत्रियों की तरह रहनेवाले किसान) में बहुत पाया जाता था। अस्तु। महाकवि शेक्सपियर का नाम 'विलियम' था। उसके बाप का नाम जॉन था। इँगलैंड क परगने में स्निटरफील्ड नामक गाँव शेक्सपियर का मूल । उसके (आजा तक) पूर्वज इसी गाँव में रह कर किसानी व्यवसाय करते थे। उसका बाप जॉन उस गाँव से चार मील एवन् नदी के किनारे स्ट्रैटफर्ड नामक गाँव में जा बसा और परिश्रम के साथ खेती करके अपना निर्वाह करने लगा। पहले गाँव के लोगों की आवश्यकता की सब चीजों की खोली और वर्ष दो वर्ष के बाद उसी दूकान के मुनाफे से दो ाल ले लिये। उस समय के कुछ कागजपत्रों में यह भी उल्लेख है कि शेक्सपियर का बाप मांस बेचा करता था।

; भी हो, जान शेक्सपियर ने जमीन आदि लेकर स्ट्राटफर्ड पना स्थिर निवासस्थल बनाया और थोड़े ही समय में गाँव त्यो में उसकी गणना होने लगी। गाँव की म्युनिसिपलिटी का बड़ा नाम होने लगा और धीरे धीरे गाँव के दीवानी फौजदारी अधिकार उसको दिये गये। हिसाब रखनेवालों में रन प्रसिद्ध हो गया। अब, अधिकारी की हैसियत से उसे कागजपत्रों पर हस्ताक्षर करने की आवश्यकता पड़ने लगी। यह अच्छी तरह लिख-पढ़ नहीं सकता था, अतएव वह कभी उन कागजपत्रों पर अपनी निशानी कर दिया करता हां, यह नहीं कहा जा सकता कि वह बिलकुल ही नहीं- लिख ा था; क्योंकि कुछ कागजपत्रों पर उसके हस्ताक्षर भी पाये हैं। यह गाँव की म्युनिसिपलिटी का अध्यक्ष था और अध्य- छोड़ने के बाद हिसाब जांचनेवाला नियत किया गया था। भी प्रमाण मिले हैं कि जिनसे जान पड़ता है कि उसने म्युनि- लिटी को कर्ज दिया था।

ान शेक्सपियर ने आर्डेन नामक एक धनवान् और कुलीन की लड़की से विवाह किया। स्त्री का नाम था मेरी आर्डेन। -पत्नी में प्रेम खूब था। उनके छः सन्तानें हुई। उनमें से पहले लड़कियां हुई, जो बिलकुल लड़कपन में ही जाती रहीं। और रा लड़का हुआ। यही लड़का हमारे लेख का नायक जगत्प्र- महाकवि शेक्सपियर है। २२ या २३ एप्रिल सन् १५६४ में थम शेक्सपियर का जन्म हुआ। साधारणतः २३ एप्रिल ही की सच्ची जन्मतिथि समझी जाती है, इसका कारण यह है कि महाकवि की मृत्यु उसी तारीख को हुई। ठीक जन्मतिथि कोई हो, परन्तु उसके बाप्तिस्मा का संस्कार २६ अप्रिल १५६४ को । इसका उल्लेख गाँव के मंदिर के बाप्तिस्मा-रजिस्टर में है।

स्ट्राटफर्ड आन एवान नामक गाँव में आज तक शेक्सपियर का जन्मगृह दिखलाया जाता है। यह घर दो घर मिल कर बना है। ले पास ही पास दो घर थे, एक पूर्व की तरफ और दूसरा श्चिम की तरफ। इनमें से पश्चिम ओरवाला घर शेक्सपियर के बाप ने मोल लिया था। इस बात का प्रमाण भी मिला है। परन्तु १५७५ में शेक्सपियर का जन्मघर कह कर जो गृह दिखलाया ता है वह पूर्व ओर का है। और इसी घर के पहले मंजिल पर ; कोठरी है—यही कोठरी, शेक्सपियर का जन्मस्थान कह कर, बतलाई जाती है। सन् १८०६ ई० तक ये घर हार्ट नामक एक ान के अधिकार में थे, परन्तु १६ सितम्बर सन् १८४७ ई० में लोगों ने ये घर मोल ले लिये। उन्होंने चन्दा करके ये घर लिये चन्दे से ही ये दोनों घर मिलाये गये और उनका जीर्णोद्धार या गया। घरों का सब सामान-प्राचीन लकड़ी आदि-रानी एलिजाबेथ के जमाने का है। परन्तु, यह स्पष्ट ही है कि, जब दो का एक घर कर दिया गया तब घर विस्तृत हो गया और उस न का सच्चा-आदि का-स्वरूप भी बदल गया। विस्तृत स्वरूप का कारण यह है कि यहां सार्वजनिक चन्दे से एक अजायब- बनाया गया है। तथापि शेक्सपियर का जन्मस्थान और उसके के नीचे का हिस्सा कायम है। सन् १८६६ में यह सब जायदाद दस्थालों ने स्ट्राटफर्ड की म्युनिसिपलिटी के अधिकार में कर दी; और उसके बाद सन् १८९१ ई० में पार्लिमेन्ट ने, एक स्वतंत्र कमेटी कर, शेक्सपियर के गाँव का यह स्थान और लंडन का भी का निवासस्थल, इत्यादि उस कमेटी के अधिकार में दे दिया।

सन् १५६४ से लेकर सन् १५७२ तक, अर्थात् शेक्सपियर का वर्ष शुरू होने तक, बराबर जॉन शेक्सपियर का वैभव बढ़ता । उसकी सम्पत्ति और प्रतिष्ठा दोनों बढ़ती गयीं। इस बात का प्रमाण मिला है कि सन् १५६४ में जब स्ट्राटफर्ड गाँव में प्लेग बड़े जोर-शोर से हुआ तब जॉन शेक्सपियर ने दीन दुर्बल लोगों को द्रव्य विषयक अच्छी सहायता दी। उसने, आगे चल कर, दो घर भी मोल लिये। गाँव की म्युनिसिपलिटी की अध्यक्षता का मान भी उसे मिला। एक बार उसके गाँव में दो नाटकमंडलियां आईं उनका सन्मान भी उसीने किया। परन्तु सन् १५७२ से उसकी उतरती- कला शुरू हुई-यहां तक कि वह, आगे चल कर, कर्जदार भी हो गया। इतना ही नहीं, बल्कि एक बार उसे दीवानी जेल की हवा- लात में भी रहना पड़ा!

इधर कुटुम्ब भी बढ़ने लगा। विलियम् (चरित्रनायक) को छोड़ कर गिलबर्ट, रिचर्ड और एडमंड नामक तीन लड़के उसके और थे। इनके सिवाय जोन और ऐन नामक उसके दो कन्याएं भी थीं। यह सब परिवार बड़ा हुआ। इनमें से सिर्फ कुमारी ऐन सन् १५७९ में ८ वर्ष की होकर मर गई।

ऐसी दशा में यह कुटुम्ब जल्दी ही कंगाल हो गया। परन्तु गाँव में मुफ्त शिक्षा दी जाने के कारण विलियम् शेक्सपियर को शिक्षा मिलती रही। उस समय अँगरेजी भाषा की वर्णमाला वर्तमान रीति से लिखने की प्रणाली न थी। एक और ही पुरानी प्रणाली थी। यह प्राचीन प्रणाली और अक्षरों की बनावट जर्मनी में आज भी जारी है। परन्तु इँगलैंड में रानी एलिजाबेथ के समय से इटालियन प्रणाली चल गई। तथापि गवंई-गाँव में उस समय भी प्रायः प्राचीन का ही अभिमान अधिक था। इस कारण वहां के स्कूलों में प्राचीन लिपि की ही चाल थी। इसके सिवाय अँगरेजी के साथ साथ लैटिन भाषा की भी उन स्कूलों में अच्छी पढ़ाई होती थी। ग्रीक भाषा के मूलतत्व भी उन स्कूलों में पढ़ाये जाते थे। बहुत लोग [illegible] इटालियन और [illegible] कहीं कहीं [illegible] है, इसका [illegible] अनुवाद पढ़े होंगे। अँगरेजी भाषा के सिवाय शेक्सपियर को अन्य दूसरी भाषा नहीं आती थी। परन्तु यह सम्भव नहीं है। क्योंकि उसके समय में उपर्युक्त भाषाओं में से कई भाषाओं के अँगरेजी में अनु- वाद ही न हुए होंगे। परन्तु शेक्सपियर बड़ा बुद्धिमान था और उसकी धारणाशक्ति भी बहुत दृढ़ थी, इस कारण, आवश्यकता- नुसार, उक्त भाषाओं का तात्कालिक ज्ञान प्राप्त कर लेना कुछ, उसके लिए, असम्भव नहीं था।

सन् १५७४ ई० में शेक्सपियर स्कूल में पढ़ने जाता था। उसी साल रानी एलिजाबेथ बड़ी धूमधाम के साथ अपने एक कृपा-पात्र सरदार अर्ल आफ लीस्टर के यहां निमन्त्रण में गई। यह उत्सव बड़ी तैयारी से हुआ था। अग्निक्रीड़ा, नाटक और अन्य नाना प्रकार के ललित खेल उस समय हुए थे। यह उत्सव-स्थल शेक्सपियर के गाँव से कुछ ही मील दूर था। गवंई-गाँव के लोग अपने निकट के ऐसे उत्सव देखने में भला कब चूकनेवाले हैं! अतएव, सम्भव है कि शेक्सपियर भी अपने भाई-बहनों के साथ उक्त उत्सव देखने गया हो; क्योंकि उसके एक नाटक में, उसी उत्सव के सदृश, कुछ वर्णन आया है।

जान पड़ता है कि सन् १५७७ में विलियम् शेक्सपियर, अपने बाप की दीनावस्था के कारण, स्कूल छोड़ कर, अन्य काम करने लगा होगा। पांच सात वर्ष तक उसने सम्भवतः अपने बाप के व्यव- साय में ही सहायता दी होगी।

बाद को सन् १५८२ में करीब साढ़े अठारह वर्ष की अवस्था में शेक्सपियर का विवाह हुआ। उसकी स्त्री स्ट्राटफर्ड के पास ही रहनेवाले एक किसान की लड़की थी और वह उम्र में शेक्सपियर से आठ वर्ष बड़ी थी! इसका नाम था आन् उर्फ आग्नीस। कदाचित् शेक्सपियर और आग्नीस ने, प्रेम-बन्धन में फँस कर, धार्मिक रीति से विवाह-संस्कार होने के पहले ही, केवल पाइनिश्चय से ही, गांधर्वविधि से विवाह कर लिया। होगा पीछे से धार्मिक रीति से लग्न-संस्कार हुआ। इस सस्कार के छः मास बाद उस दम्पति के एक सन्तान हुई। इस सन्तान का नाम सूसाना था। इसके बाद करीब दो वर्ष शेक्सपियर अपने कुटुम्ब के साथ स्ट्राटफर्ड में रहा। इस अवधि में उसके यमज-सन्तान हुई-एक लड़का और एक लड़की- हैम्नेट और जुडिथ। सन् १५८४ के समाप्त होते होते, कभी न कभी, शेक्सपियर अपना गाँव छोड़ कर लंडन चला गया। तब से लेकर सन् १५९६ तक, अर्थात् ११ वर्ष तक, फिर वह कौटुम्बिक सुख का अनुभव करने के लिए वहां से लौटा ही नहीं। इससे-कितने ही लोग यह अनुमान करते हैं कि उसका अपनी पत्नी पर कुछ विशेष प्रेम नहीं था। और वास्तव में ऐसा होना सम्भव भी है। युवावस्था में अविचार से किसी स्त्री के प्रेमपाश में फँस कर मनुष्य कभी कभी अपने को बद्ध कर लेता है, परन्तु दृढ़ परिचय होने पर एक दूसरे के दोष स्पष्ट दिखलाई देने लगते हैं। स्वभाव नहीं मिलता और नवीनता की रौनक भी खतम हो जाती है। इसके बाद खेद होना शुरू होता है। यही हाल शेक्सपियर के इस वैवाहिक सम्बन्ध में

हुआ होगा। कवि, नाटककार अथवा उपन्यासकर्त्ता लोगों के ग्रन्थों के वचनों से-उसमें भी पात्रों के मुख से कहलाये हुए वचनों से-कवि, नाटककार अथवा उपन्यासकर्त्ता लोगों के चरित्र के सम्बन्ध में अनुमान निकालना बहुत भ्रामक है। परन्तु प्रसंग-विशेष में किसी पात्र के मुख से निकले हुए वचन इतने प्रभावशाली होते हैं कि पाठक के मन में यह बात आये बिना नहीं रहती कि वे वचन स्वानुभव-प्रेरित होने ही चाहिए। शेक्सपियर के वैवाहिक सम्बन्ध का वृत्तान्त जब मन में आता है तब उसके दो नाटकों के, दो पात्रों के, मुख के वचन अवश्य ही याद आ जाते हैं। ट्वेल्फ्थ नाइट नामक उसके नाटक में, दो पात्रों के संवाद में, एक पात्र ने दूसरे पात्र को जो उपदेश किया है वह इस अर्थ का है कि वर से वधू की उम्र अधिक होना सुखदायक नहीं होता।

Twelth Night or what you will नामक एक शेक्सपियर का नाटक है। उसमें एक ऐसा प्रसंग आया है:—एक राजा का मन एक सरदार की कन्या पर लगा था, परन्तु उस कन्या का प्रेम राजा पर नहीं था। इस लिए वह राजा से विवाह करना स्वीकार नहीं करती थी। राजा ने एक दूत उसके पास भेजा, ताकि वह राजा पर प्रेम करने लगे। यह दूत एक स्त्री थी, जो पुरुष-वेष में रह कर राजा की सेवा किया करती थी। यह स्त्री राजा पर मोहित थी। परन्तु राजा को इस बात की कल्पना भी न थी। बाद को एक दिन किसी प्रसंग पर राजा ने उस दूत से, साधारण ही, यह प्रश्न किया कि "क्यों रे, जान पड़ता है कि तू किसी स्त्री पर मोहित हो गया है। बतला, यह सच है या नहीं ?"

दूतः—हाँ, महाराज, कुछ कुछ सच अवश्य है।
राजाः—वह स्त्री किस रंग की है ?
दूतः—आप ही के समान है महाराज !
राजाः—तो फिर वह तेरे योग्य नहीं। भला उम्र कितनी है ?
दूतः—आप ही की इतनी उम्र होगी, महाराज !
इस पर राजा कहता है:—

'Too old, by Heaven. Let still the woman take
An elder than herself, so wears she to him.
So sways she level in her husband's heart,
For, boy, however we do praise ourselves,
Our fancies are more giddy and unfirm,
More longing, wavering, sooner lost and worn,
Than women's are.

VIOLA —I think it will my lord.

DUKE —Then let thy love be yonger than thyself,
Or the affection cannot hold the bent;
For women are as roses, whose fair flower,
Being once displayed, doth fall that very hour.

Act II. Sc IV.

इस अवतरण में राजा ने अपने दूत को स्पष्ट रीति से यह उपदेश किया है कि "स्त्री जब अपने से बड़े पुरुष के साथ विवाह करती है तभी उसे सुख होता है, और पति का प्रेम वह अपनी ओर खींच भी सकती है। क्योंकि पुरुष अपने प्रेम की दृढ़ता पर चाहे जितनी आत्मश्लाघा किया करें, तथापि इसमें कोई सन्देह नहीं कि स्त्रियों के प्रेम की अपेक्षा पुरुषों के प्रेम में चंचलता अधिक होती है। लहर के आते ही वे बड़ी उत्कंठा से किसी स्त्री का स्वीकार कर लेते हैं, परन्तु पीछे से ज्योंही उनका मन चंचल हुआ कि बस थोड़े ही अवकाश में उनका प्रेम न जाने कहां चला जाता है। अतएव, हे लड़के ! तू अपने से कम उम्रवाली स्त्री का प्रेमी बन। तभी उस पर तेरा प्रेम रहेगा। क्योंकि स्त्रियां गुलाब के पुष्प के सदृश होती हैं। उनकी सौन्दर्य-कलिका का विकास देख कर पुरुष का मन मोहित होने भी नहीं पाता कि तुरन्त ही उसकी दृष्टि में वह कुम्हलाई हुई सी भी दिखने लगती है !"

इस सम्पूर्ण कथन का सारांश इतना ही है कि पुरुष को चाहिये कि वह अपने से बहुत अधिक उम्रवाली स्त्री से-प्रेम की क्षणिक लहर में आकर-विवाह न करे। ऐसा करने से उसे शीघ्र ही पश्चात्ताप करने का अवसर आता है।

ऊपर दिया हुआ अँगरेज़ी का सम्पूर्ण अवतरण पढ़ने पर और स्वयं शेक्सपियर की पत्नी ही मुख्य मन में लाने पर, अवश्य ही जान पड़ता है कि उपर्युक्त पंक्तियों में उसके आत्मानुभव के ही उद्गार हैं।

अब टेम्पेस्ट-नामक-नाटक की पंक्तियां देखिये। प्रोस्पेरो ने जब अपनी कन्या मिरांडा के फेर्डिनन्ड पर पाया और यह भी देखा कि उन दोनों का परस्पर प्रेम भी है तब वह अपने भावी दामाद से कहता है:—

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] and [illegible] bestrew

The union of your bed with weeds so loathly,
That you shall hate it both: therefore take heed
As Hymen's lamps shall light you.

Tempest Act. IV Sc.

उपर्युक्त अवतरण का सारांश इतना ही है कि "बेटा ! मैं अपनी कन्या तुझे देता हूं और तू इसके योग्य है भी, तथा तूने गुणों से ही इसे प्राप्त किया है। परन्तु धर्मशास्त्र [illegible] ग्रहण करने के पहले यदि तूने उसका कौमार्य हरण कि[illegible] कभी हित नहीं होगा। परमेश्वरी कोप होगा। तुम [illegible] आजन्म दुःख भोगना पड़ेगा। झगड़े मचेंगे, लड़ाइ[illegible] तुम्हारी शय्या कंटकमय होगी।" इ० इ० इ०

ये वचन भी इतने प्रभावशाली हैं कि इन्हें पढ़ते समय [illegible] में आता है कि आत्मानुभव की प्रेरणा बिना ये उद्गार नहीं [illegible] होंगे। इसी प्रकार के आधारों से कहा जा सकता है कि [illegible] शेक्सपियर के हाथ से ऐसी कुछ भूलें हुईं और उन्हीं के [illegible] भोगने पड़े। शेक्सपियर के नाटकों में कॉमेडी आफ एर्स [illegible] एक नाटक है। इस नाटक में आड्रियाना नामक एक [illegible] का वर्णन आया है। वह भी अपने पति से उम्र में बड़ी [illegible] संशय यह था कि "मेरा पति युवक है और मैं उससे बड़ी [illegible] हूं, अतएव मेरी सुन्दरता अवश्य ही उतर गई होगी और [illegible] रण मेरे पति का चित्त मुझमें नहीं रमता-उसका चित्त [illegible] ओर अवश्य गया है !" इसी संशय के कारण वह अपने [illegible] खुले दिल बर्ताव नहीं करती थी। ऐसी संशयी स्त्रियां [illegible] देखी जाती हैं। शेक्सपियर की पत्नी भी इसी स्वभाव की [illegible] इसी कारण शेक्सपियर कई वर्ष तक, उससे अलग रह कर [illegible] में बना रहा। उतरती उम्र में फिर वह अपनी स्त्री से [illegible] सुख से रहने लगा। ऐसे मनुष्यों के उदाहरण सब [illegible] पाये जाते हैं कि जो युवावस्था में तो अपनी पत्नी से [illegible] का बर्ताव करते हैं और उसके सहवास से उकताते हैं, परन्तु [illegible] के ढल जाने पर फिर उसीके साथ सुख से रहते हैं। [illegible] की भी यही दशा हुई होगी। क्योंकि पहले तो वह लंडन में [illegible] कई वर्ष [illegible] अपने गाँव को गया ही नहीं, और फिर अब [illegible] दूसरी बार लंडन को भी नहीं लौटा।

हम ऊपर यह कह ही चुके हैं कि कवि, उपन्यासकर्त्ता [illegible] विशेषतः नाटककार लोग जो व्यक्तियों के चित्र अपने ग्रन्थों [illegible] में खींचते हैं उनमें स्वयं उन ग्रन्थकर्त्ताओं, या उनसे सम्बन्ध [illegible] वाली व्यक्तियों, के चरित्र के विषय में अनुमान करते हुए, [illegible] यही न समझना चाहिये कि, हम सत्य घटना तक पहुँच [illegible] हैं। परन्तु यह भी नहीं हो सकता कि उक्त प्रकार के अनुमान [illegible] हम सदा सत्य से बहुत दूर ही बने रहें। हमारे अनुमान [illegible] वचनों और चित्रों के आधार पर स्थित हैं उन पर उन [illegible] की दृढ़ता अवश्य ही सधी रहेगी।

"वंशी"

बजी पिय श्याम की वंशी, अहाहाहा, अहोहोहो !
हुए मोहित सभी के मन, अहाहाहा, अहोहोहो !
मधुर कैसी धुनी सोहे, सकल सुर नर के मन मोहे,
हुआ तल्लीन मन मेरा, अहा०
सखा आनन्द कुंजन में प्रमुद छाया मधोवन में,
लता तरु गुल्म भाते हैं, अहा०
पपीहा कर रहा पीपी, मनोहर मोर नचते हैं,
शुकी शुक सारिका बोलें, अहा०
अविद्या के हटे बादल, हुई विद्या धुले सब मन,
उगा सूरज दिया भ्रम दल, अहा०
रहे ना द्वेष लोभादि, मिटे सब काम क्रोधादि,
गई दुविधा सभी दिलकी, अहा०
विविध पर्दे हटे दिल के, कटी माया मिटे भ्रम सा
हुई झांकी कन्हैया की, अहा०
न हिंसा है न चोरी है, न मिथ्या है न माया है,
हुए सब ब्रह्मरस भोगी, अहा०
रहा कोई नहीं दुश्मन, हुए निर्मल सभी के मन
बसे आ मन में मन-मोहन, अहा०
जहां मैं मेरी रंगत है, मैं हर गुल में तेरी बू है,
जहाँ देखूं वहां तू है, अहा०
[illegible] है तू, मैं सहरा हूं, चमन है तू, मैं शीनम हूं
पवन तू मैं हूं [illegible], अहा०
[illegible] तू है मैं आभा मैं, जो [illegible] तू तो मैं [illegible]
सकल तू प्रेमी मैं गिरिधर, अहा०
तुही [illegible] तुही दिनकर, तुही [illegible]
[illegible] है [illegible] निरधर, अहा०

श्रीगिरिधर [illegible]

योग भी चलाया गया, पर वे उस काल्पनिक दोष से न्यायमन्दिर में निष्कलंक सिद्ध हुए। राजनैतिक हलचल की अपेक्षा धार्मिक और सामाजिक हलचल की ओर उनका अधिक ध्यान रहता था। उनका मत था कि कोई भी सुधार हो वह शास्त्र और पूर्वपरम्परा को छोड़ कर न होना चाहिए। इस विषय पर वे कभी कभी उतावले सुधारकों से वादविवाद भी कर बैठते थे। बालविवाह-निषेध और बाल-विधवा-विवाह-प्रचार के लिए उन्होंने बहुत उद्योग किया। और उनके परिश्रम से विधवा-विवाह में बड़ी उत्तेजना हुई। वे यद्यपि जातिभेद के निर्बन्ध का कठोर रीति से प्रतिपालन करते थे, तथापि उनके घर में जो पाहुन आते उनके साथ वे किसी प्रकार का भेदभाव न रख कर बर्ताव करते थे। सार्वजनिक कृषि, आरोग्य और शिक्षा आदि विषयों की ओर भी उनका बड़ा ध्यान था। उन्होंने तंजौर ज़िला में एक सार्वजनिक सभा स्थापित की और बीस वर्ष तक स्वयं उसे चलाया। सन् १९०१ ई० में उन्हें सी० एस० आई० की पदवी मिली। मृत्यु से दो तीन वर्ष पहले वे मद्रास की लेजिस्लेटिव कौंसिल के सभासद बनाये गये। यह कार्य भी उन्होंने अन्त समय तक बड़ी योग्यता से किया। सारांश, उन्होंने राजसेवा के साथ साथ स्वदेश-सेवा करने में [illegible] आयु व्यतीत की। स्वधर्माचरण और कर्तव्यनिष्ठा के वे अवतार थे। इसी कारण मरणकाल में भी उनकी शान्ति [illegible] नहीं हुई और "अनायासेन मरणं विना दैन्येन जीवनं" [illegible] दशाओं का उन्होंने पूर्ण रीति से अनुभव किया।

उपसंहार।

दीवान बहादुर रघुनाथरावजी बड़े विद्याव्यासंगी, [illegible] और निर्भय पुरुष थे। उनके भाषण और लेखन में ये गुण [illegible] तरह प्रकट होते थे। उनकी प्रतिष्ठा जितनी ही बड़ी थी [illegible] चालढाल उतनी ही सादी थी। उनकी समाधानवृत्ति और परोपकार तत्परता देख कर उन्हें बहुत लोग "अर्वाचीन [illegible]" कहते थे। सार्वजनिक लाभ के लिए वे अपनी हानि करने [illegible] तैयार रहते थे। उन्होंने अपनी बहुत सी जगह और बड़ा पुस्तकालय एक सार्वजनिक संस्था को दे दिया है। सब [illegible] को इस पूजनीय महर्षि के सद्गुणों का अनुकरण करना चाहि[illegible]

साहित्य-चर्चा।

१ देश का धन—लेखक श्रीयुत राधा-मोहन-गोकुलजी। पृष्ठसंख्या ११२। मूल्य ॥) आने।

[illegible]

२ सभा व वक्तृता—लेखक श्रीयुत राधा-मोहन गोकुलजी। पृष्ठसंख्या ५८। मूल्य ≈) आने।

इस पुस्तक में सभा की रचना, सभापति का कर्तव्य और व्याख्यान-दाता के गुणों का विवेचन किया गया है। प्रत्येक सभ्य-पुरुष और उपदेशक बनने की इच्छा रखनेवाले पुरुषों को इसमें अनेक ज्ञातव्य बातें मिलेंगी।

३ नीतिछंदावली—सम्पादक लाला-राधामोहन-गोकुलजी। पृष्ठ संख्या ४८ मू० ≈) आने।

[illegible] पर लिखी [illegible] । पुस्तक [illegible]

हम कोकिलें इसी उपवन की यह उद्यान हमारा है॥
जब हम अतिशय विचलित होवें, मातृभूमि में रहता मन।
जहां जाय मन वहां हमी हैं, मन तन से नहिं न्यारा है॥
भूमि मात्र में ऊंचा पर्वत करता जो नभ से बातें।
यही हिमालय शैल पुरातन रक्षक हितू हमारा है॥
अगणित नदियां इस पर्वत के सुन्दर तट में करें किलोल।
जिनके कारण नन्दन बन सम भारतवर्ष हमारा है॥

उपर्युक्त तीनों पुस्तकें ग्रन्थकर्ता के पास नं० १७, पथुरियाघाटा कलकत्ता के पते पर मिल सकती हैं।

४ कान्यकुब्ज ब्राह्मणों की प्राचीन तथा अर्वाचीन अवस्थाओं का वर्णन—लेखक पं० गंगाप्रसादजी अग्निहोत्री। प्रकाशक श्रीवेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई।

जहां तक हम जानते हैं, भारत की सब ब्राह्मण 'कहलानेवाली' जातियों में कान्यकुब्ज ब्राह्मणों की दशा अत्यन्त शोचनीय है। [illegible] के कारण इन लोगों में जितनी कुरीतियां घुस गई हैं उतनी और किसी ब्राह्मणसमाज में नहीं। ऐसी दशा में अग्निहोत्रीजी ने यह निबन्ध लिख कर कान्यकुब्ज-समाज का बड़ा उपकार किया है। इस [illegible] पृष्ठ के निबन्ध में आपने कान्यकुब्जों की पुरानी और नवीन दशा की तुलना करके उन्हें सन्मार्ग पर लाने का प्रशंसनीय प्रयत्न किया है। प्रत्येक कान्यकुब्ज भाई को चाहिए कि वह इस निबन्ध को [illegible] कर अपने समाज की [illegible] का सुधार करे।

५ श्रीरामचरितमाला—[illegible]

[illegible]

[illegible]

यहां हम पाठकों के विनोदार्थ देते हैं। इनमें श्रीराम के के अंगुष्ठ-चिन्हों की कुछ व्याख्या है:—

(१.)

गोपद वाम अँगुष्ठ-सौध में लसत धरा को अंका।
पील वरण अतिशय मनहारी दासन करन अशंका।
कामरूप भगवान् याहि तें प्रगटे संत बतावैं।
सुखकर अचल लसा गुण रूरो, ध्यान किये जन पावैं।

(२.)

पृथ्वी पै अंगुष्ठ-सौध में अमृत-कलश सुहायो।
महा मनोहर छवि को आलय स्वर्ण रंग मन भायो।
सुरगण-भोग सुधा को आकर याही को पहचानो।
सुखकर जीवन मुक्तिप्रदायक अमर करण फल जानो।

६ पत्रोपहार—लेखक पं० नर्मदाप्रसाद मिश्र। कुँअर हनुमन्तसिंह रघुवंशी, राजपूत एंग्लो ओरियंटल प्रेस, मूल्य ।) आने।

इस पुस्तक में नव उपदेशात्मक पत्र-प्रबन्धों का संग्रह [illegible] गया है। ये पत्र 'विभूति भूषण' नामक पुरुष ने, [illegible] अपने बेटे 'सन्तोष' को लिखे हैं। पत्रों में नैतिक शिक्षा कूट [illegible] भरी गई है। नवयुवक मिश्रजी की नैतिक विषयों पर [illegible] हम बड़े प्रसन्न हुए। यह पुस्तक विद्यार्थियों को, [illegible] कार्य में, मार्गदर्शक का काम दे सकती है।

७ कविकर्तव्य—संकलयिता अधिकारी जगन्नाथ [illegible] मूल्य ।) आने। मिलने का पता—'साधु' कार्यालय, [illegible]

इस पुस्तक में 'कवि और कविता' पर अच्छा विवेचन [illegible] गया है। कवियों को अपनी कविताशक्ति अंकुरित करने [illegible] बताये गये हैं। कवियों के लक्षण भी दिये गये हैं। [illegible] कविताओं के, संस्कृत और हिन्दी भाषा के, नमूने भी [illegible] पुस्तक उपयोगी है।

'जगत्' पर सहयोगिनी।

पूने के चित्रशाला-प्रेस से हिन्दी में चित्रमय-जगत् [illegible] एक मासिक पत्र निकलता है। इसके दस बारह अङ्क [illegible] तक निकल चुके हैं। हर अङ्क में बड़े आकार के [illegible] पृष्ठ यह दो तरह के काग़ज़ पर छपता है। चिकने काग़ज़ [illegible] का मूल्य ५॥) और मामूली काग़ज़ के संस्करण का [illegible] इस पत्र में सुन्दर सुन्दर अनेक चित्र निकलते हैं। [illegible] पत्र में चित्रों की अधिकता होनी ही चाहिए। [illegible] लक्ष्मीधर वाजपेयी इस पत्र का सम्पादन करने लगे हैं तब [illegible] भाषा और विषय-निर्वाचन में बहुत उन्नति हुई है। [illegible] विशेष मनोरञ्जक और उपयोगी होने लगे हैं। [illegible] अच्छी निकलने लगी है, चित्रों का क्या कहना है। [illegible] चित्रों की खान ही है। यह प्रेस रंगीन चित्रों का [illegible] खाना है और नया वर्ष में १०० रंगीन चित्र [illegible] देने से भी कम में एक चित्र! इस प्रेस के रंगीन चित्र पुस्तकों में भी लगाये जा सकते हैं।

हम इस चित्रमय-जगत् का अभ्युदय हृदय से चाहते हैं। [illegible]

सच है, समाधि में जिसकी अहंवृत्ति का लय होता है और ब्रह्म से तादात्म्य हो कर उसका सम्यक् प्रत्यय जिसको आता है उसे एक अदृश्य शक्ति नीचे जगत् में-जागृति में-फिर खींच लाती है। यह अदृश्य

तीसरा उपाय—सर्वसमर्थ माता और कर्म, सगुण परमेश्वर के द्वारा क्या ब्रह्मज्ञान हो सकता है?

शक्ति कौन है? इस प्रश्न का उत्तर पाने के लिए हमें फिर अपनी सर्व समर्थ माता की ओर ही झुकना चाहिए। समाधि में अहंकार कायम रखना और उसे मिटा डालना, ये दोनों बातें, केवल एक उसीके हाथ में हैं।

तत्वज्ञानी अथवा तार्किक कहता है कि समाधि में पहुँचा हुआ योगी अपने धर्म के कारण ही से-पूर्वजन्मार्जित कर्म के कारण ही-फिर जगत् में आ पड़ता है, उसका कर्म ही उसे जागृति में लाने का कारण होता है।

अर्थात् जब तक अहंवृत्ति कायम रहती है तब तक कर्ता और कर्म का जोड़ा नहीं छूटता। उसी प्रकार कार्य और कारण का भी लय नहीं होता। केवल यही नहीं, किन्तु करोड़ों जीव, चौबीस तत्वों से युक्त यह जगत, भूत-वर्तमान-भविष्य आदि काल, पूर्व-जन्म, पुनर्जन्म, इत्यादि सर्व भेदाभेद बिलकुल सत्य बने रहते हैं। उसी प्रकार इन सब भेदों का कारण बननेवाला सर्वशक्तिमान् ईश्वर-मेरी माता—सगुणपरमात्मा—भी बिलकुल सत्य ही रहता है।

साक्षात्कार से इस कथन की पुष्टि होती है। क्योंकि माता कहती है, कि "इन सब भेदों का कारण मैं ही हूं। सत्कर्म अथवा दुष्कर्म मेरे तंत्र से चलते हैं। कर्म का बन्धन है जरूर, पर उस बन्धन का कारण मैं ही हूं। बंन्धन में डालना और बन्धन से निकालना, ये दोनों बातें मेरे हाथ की हैं। सब कर्मों पर-सत् अथवा असत् कर्मों पर-मेरी ही सत्ता चलती है। इस लिए तुम सब मेरी ओर आओ, मैं तुम को इस संसार से-इस कर्मसागर से-पार कर दूंगी। फिर तुम चाहे जिस मार्ग से क्यों न मेरी ओर आओ। भक्ति मार्ग से आओ; चाहे तो ज्ञानमार्ग से आओ, अथवा कर्ममार्ग से आओ। तुम्हारी इच्छा हो तो मैं तुम्हें ब्रह्म का ज्ञान भी करा दे सकती हूं। समाधि तक पहुँचने के बाद भी यदि कर्म बाकी होगा तथा शरीर और अहंकार यदि कायम होंगे, तो ऐसा समझो कि उस कर्म, शरीर और अहंकार को कायम रखने का प्रबन्ध मैंने ही, किसी विशिष्ट हेतु से, किया है"

अपने लड़कों को-अपने भक्तों को-उसने (माताने) इन सब बातों का ज्ञान, साक्षात्कार के द्वारा करा दिया है।

अतएव, यदि कोई चाहता हो कि हमें ब्रह्मज्ञान हो, तो वह ब्रह्मज्ञान प्राप्त होने के लिए, बड़ी आतुरता से, उस माता की विनती करना चाहिए और सब प्रकार से उसी पर अपना भार डाल देना चाहिए-अनन्यगतिक होकर उसके शरण में जाना चाहिए-इतने पर, अन्त में, उसे वह ज्ञान अवश्य ही प्राप्त होगा।

भक्त को क्या ब्रह्मज्ञान हो सकता है?

ब्रह्मज्ञान के लिए ऐसा आतुर होकर भक्त जब मेरी माता (अथवा उसके किसी रूप) के पास आता है, तब उसकी भक्ति में अहंकार का मिश्रण रहता है, परन्तु अन्त में, माता की कृपा से, समाधि में उसके अहंकार का पूर्णतया अस्त हो जाता है।

कर्ता और कर्म के भेद का कारण सगुण ईश्वर (सगुण ब्रह्म)-मेरी माता ही-है। समाधि में यह अहंकार नष्ट करके वही (मेरी माता ही) ब्रह्म का ज्ञान करा देती है।

"यह वही करती है-" इस बात का ज्ञान हमें साक्षात्कार से होता है।

जिस तत्वज्ञ का साक्षात्कार पर, तथा तर्कबुद्धि पर, भी विश्वास नहीं होता वह यह कहता है कि, "सगुण ईश्वर के द्वारा जीवात्मा को मुक्ति अथवा ब्रह्मज्ञान का लाभ कदापि नहीं हो सकता"।

तत्वज्ञ या ज्ञानी पुरुष जब यह कहता है कि 'ब्रह्म का ज्ञान मैं स्वय ही कर सकता हूं' तब वह नीचे की दशा में ही (सापेक्ष अथवा दृश्य जगत् में)-मैं और तू का भेद जिसमें बना रहता है ऐसी ही स्थिति में-रहता है। उस स्थिति में तुम्हें स्वाभाविक ही सगुण ईश्वर-मेरी सर्वसमर्थ माता-का अस्तित्व मानना ही चाहिए।

यह कथन बिलकुल विलक्षण जान पड़ता है कि जीव अपनी संकुचित बुद्धि के ... पर ब्रह्म का ज्ञान स्वयं कर सकता है; परन्तु मेरी माता में यह ज्ञान करा देने का सामर्थ्य नहीं, अथवा जीव में स्वयं मुक्ति पद प्राप्त करने का सामर्थ्य है, परन्तु मेरी सर्वसमर्थ माता में जीव को उस मुक्तिपद पर पहुँचाने का सामर्थ्य नहीं!

... भक्त यह बात भूल जाते हैं कि सगुण और निर्गुण दोनों एक ही व्यक्ति के अंग हैं। जब तक हमें अपने व्यक्तित्व- अथवा अहंकार- की भावना रहती है तब तक परमेश्वर ... अनन्तशक्ति सगुणरूप ही दिखलायेगा। अर्थात् ... शक्ति में ब्रह्म का ज्ञान करा देनेवाली शक्ति का भी ... रहता है।

परन्तु केवल तर्क भी एक शिथिल मुसाफिर है। मि... सहारे से चलना यही अनिश्चितता और धोखे का काम है!

इसके अतिरिक्त जिस तर्कबुद्धि पर तत्वज्ञ पुरुष का ... मदार रहता है वह भी तो सगुण ईश्वर ही से प्राप्त होती है।

अतएव, केवल अद्वैत-वादियों के मत में एक नवीन तत्व ... विशेषता हुई। वह नवीन तत्व यही है कि ब्रह्म का ज्ञान ... ईश्वर के द्वारा होता है, अथवा सगुण ईश्वर में ब्रह्मज्ञान ... सामर्थ्य है।

अहंभाव का पूर्णतया लय हो जाने पर समाधि में ... त्कार होना और ब्रह्म का ... अथवा नास्तित्व के विषय में ... प्रतिपादन न करते हुए निर... जाना ही शुद्ध ज्ञान है। अद्वैत... पथ में ज्योंही बात निकाली गई कि, बस, समझ लो, द्वैत ... क्योंकि जहां एक आया कि फिर दूसरा भी आना ही चाहि... का उच्चारण करते ही दूसरे का अस्तित्व आप ही आप ... जाता है। सारांश, जहां अद्वैत के विषय में शब्द निकला ... उसके साथ ही द्वैत खड़ा हो जाता है। ज्योंही ब्रह्म बोला... अर्थात् ज्योंही वह वाचा का विषय हुआ- कि तुरन्त ही ... सापेक्षता लगी। क्योंकि, जब तक समाधि में निरुपाधिक ... ब्रह्म का अनुभव नहीं मिला तब तक वह निरुपाधिक ब्र... ब्रह्म) बहुत होगा तो, 'सोपाधिक' के विरुद्ध अर्थ का ... होगा; अथवा वर्णमाला के कुछ अक्षरों से बना हुआ, सि... शब्द होगा, बस!

चौथा उपायः—'ब्रह्म' का नाम लेते ही सापेक्षता दौड़ती है।

नित्य के विषय में जहां हमने बात निकाली कि बस ... मय (अनित्य) जग आगे आवे ही गा। 'अव्यक्त' शब्द ... रण करते ही व्यक्त की भावना अवश्य ही ... उदाहरणार्थ, प्रकाश आया कि फिर उसके विरुद्ध, अन्धकार ... विचार आवे ही गा; अथवा 'सुख' का नाम लेते ही उस... द्वन्द्वी दुःख की याद आवे ही गी।

जगत् का अनित्य, अथवा लीलामय, भाग जिसका है, ... नित्य भाग भी है, और नित्य भाग जिसका है उसीका अनित्य ... (नित्य और अनित्य दोनों एक ही व्यक्ति के दो अंग हैं।)

नित्य की ओर यदि हमें जाना है तो अनित्य से-इस ... से-होकर, मार्ग निकालते निकालते ही हमें जाना होगा। ... नित्य से जब हम चलेंगे तब भी मार्ग ढूँढते ढूँढते लौट कर ... अनित्य में ही- दृश्य जगत् में ही-आना होगा। (परन्तु ... अवश्य है कि जहां हम एक बार 'नित्य' से मिल आये ... फिर यह दृश्य जगत्, पहले की तरह, मिथ्या न मालूम ... नित्य का अथवा अव्यक्त का केवल व्यक्तस्वरूप ... लगता है।)

यदि तुम ब्रह्म का स्वरूप बतलाने लगो तो अवश्य ही ... उसका यथार्थ निरूपण या प्रतिपादन कभी नहीं कर सकोगे ... द्वारा उस पर और ही किसी बात का-तुम्हारे स्वत्व ... का-अध्यास अवश्य ही होगा। तुम्हारे स्वत्व के पुट ... पर चढ़े बिना कभी न रहेंगे।

तात्पर्य इतना ही कि, हमें फिर साक्षात्कार पर ही ... रहना चाहिये। परमेश्वर ही (मेरी माता ही) कहती ... 'सगुण ईश्वर मैं ही हूं, और समाधि के अनुभव में आनेवाला ... ईश्वर (ब्रह्म) भी मैं ही हूं।'

इधर देखिये, कि मट्ठे का अस्तित्व स्वीकार किये बिना ... की कल्पना ... कर सकोगे, ... उसका नाम ... ले सकोगे।

शांकरमतानुयायियों के मायावाद, और कपिलप्रणीत सांख्यमतानुयायियों के परिणामवाद का, तथा अद्वैत, और विशिष्टाद्वैत का, समन्वय।

नेनू जिस प्रकार मट्ठे का भाग है उसी प्रकार मट्ठा भी ... भाग है। नेनू का नाम लेते ही, सापेक्षता से, जैसे मट्ठे ... आ ही जाती है वैसे ही मट्ठे का नाम लेने पर, सापेक्षता ... की कल्पना आये बिना कभी न रहेगी।

व्यक्तिपन जब तक बना हुआ है—भावना जब तक ... और कुछ भी विकल्प जब तक बाकी है—तब तक, ... दोनों का अस्तित्व स्वीकार किये बिना, अन्य मार्ग ही ...

जब तक तुम्हारा व्यक्तित्व नहीं गया, जब तक, माता ही ... तुम्हारा अहंकार बना हुआ है, तब तक, जहां तुमने 'नित्य' ...

का नाम लिया कि उसके साथ 'सोपाधिक' तयार ही है; 'नित्य' कहते ही 'अनित्य' सामने खड़ा रहेगा; तुम्हारे 'वस्तु' कहते ही उस 'वस्तु' के 'गुण' तुरन्त ही आगे आवेंगे; तुम 'निर्गुण' लाये कि 'सगुण' तुम्हारे पीछे लगा ही है; 'एक' का उच्चारण नहीं करने पाओगे कि 'अनेक' उसका साथी खड़ा ही रहेगा!

जब माता समाधि में तुम्हारा अहंकार (व्यक्तित्व) नष्ट कर डालेगी तब ब्रह्म का सम्यक् प्रत्यय आवे ही गा। फिर सम्पूर्ण शब्द बन्द; और वहां जो कुछ होगा, वह, वहां का वहीं! क्योंकि समुद्र की थाह लेने के लिए गई हुई नमक की पुतली जब अनन्त महासागर में तद्रूप हो गई, तब फिर वह (उस समुद्र के विषय में) क्या बोले? कुछ बोल ही नहीं सकती।

यह स्थिति यदि दृष्टान्त से वर्णन की जा सकती है, तो हम यह कह सकते हैं कि, समाधि के अनुभव में आनेवाला ब्रह्म मूल द्रव्य है, उस अव्यक्त ब्रह्म का व्यक्त अथवा सगुणरूप नेत्र् है. और [illegible]शीस तत्वों से युक्त यह जगत् मट्टा है!

मेरी माता ने (ब्रह्म के सगुण अंग ने) यह कहा है कि, 'मैं

पांचवां उद्योग —भक्तिमार्ग और ज्ञानमार्ग, दोनों ब्रह्मज्ञान को जाते हैं। श्रद्धा और प्रार्थना का प्रभाव।

वेदान्त का ब्रह्म हूं। ब्रह्मज्ञान देना मेरे हाथ में है। अहंकार मिटा कर और समाधि में ब्रह्मसाक्षात्कार करा कर मैं यह ज्ञान करा देती हूं।' 'पवंच, [illegible]ले यह है कि, यदि माता की कृपा होगी तो, ज्ञानमार्ग से तुम [illegible] पा सकोगे। परन्तु हम में, विशेष कर इस कलियुग में, बहुत [illegible] लोग पहुंच सकते हैं। क्योंकि हममें जो देहात्म बुद्धि भरी [illegible] है उसका छूटना बहुत कठिन है।*

अथवा, माता की यह प्रार्थना, कि 'हमें भक्ति और ज्ञान दे,' [illegible] तुम (ब्रह्म की ओर) जा सकोगे। आत्मसमर्पण, शुद्धप्रेम, [illegible]यादि भक्ति के अनेक अंग हैं। पहले उनके (भक्ति के अंगों के-[illegible]था भक्ति के) द्वारा मेरी माता (सगुण परमेश्वर) की ओर [illegible]ओ।

मैं तुम्हें यह विश्वास दिलाता हूं कि, यदि तुम्हारी प्रार्थना शुद्ध [illegible] की होगी तो मेरी माता उसे अवश्य सुनेगी। हां, तुम्हें धैर्य [illegible] रखना चाहिये, क्योंकि अपने लड़कों को-भक्तों को-उसने [illegible] साक्षात्कार ही दिया है।

अच्छा, यदि तुम उसके निर्गुण अंग का साक्षात्कार चाहते हो, [illegible] भी उसको प्रसन्न करो। यदि उसने ध्यान दिया—यदि वह तुम [illegible] कृपा करना चाहेगी (क्योंकि वह सर्वसमर्थ है) तो तुम स[illegible]माधि में उसके निर्गुण अंग का भी अनुभव कर सकोगे और यही [illegible]नुभव ब्रह्मज्ञान है।

[illegible] हां, मुझे यहां यह अवश्य बतला देना चाहिये कि, जो भक्त है

[illegible] भक्त की इच्छा।

वह, ईश्वर का—मेरी माता का, अथवा श्रीकृष्ण, चैतन्यदेव, इत्यादि उसके अवतारों में से किसी का, अथवा उसके अनन्त [illegible] रूपों में से किसी रूप का—केवल दर्शन हो जाने से साधा-रणतया बिलकुल सन्तुष्ट रहता है। साधारण तौर से भक्त की कुछ यह इच्छा नहीं होती कि उसे निर्गुण का ही अनुभव हो। उसकी यह बहुत इच्छा रहती है कि समाधि में हमारा अहंकार सब प्रकार से लुप्त न हो। उसे इसी में सन्तोष रहता है कि, हमारा अभिमान इतना बना रहे कि, जिससे हम आनन्दपूर्वक अपनी उपास्य मूर्ति के दर्शनसुख का अनुभव ले सकें। शक्कर से एक रूपता प्राप्त करने की अपेक्षा—शक्कर में मिल जाने की अपेक्षा—उससे अलग रहकर उसका मिठास लेना उसे ठीक जान पड़ता है!

ऐसे भक्त को मेरी माता सगुण रूप से-साकार होकर-दर्शन देती है, क्योंकि भक्तों पर-अपने बच्चों पर-उसका मन बहुत रहता है।

देवता के रूप का जिसे पूर्णतया आकलन हो गया-देवता के

छठवां उद्योग —अपरोक्षानुभव' दिव्य दृष्टि के लक्षण।

प्रत्यक्ष दर्शसुख का जिसने अनुभव कर लिया-उसे अपरोक्षानुभूति का हठ रखना ही चाहिए, क्योंकि परमार्थ में महत्व का विषय यही है।

पहले ही से इस प्रकार के वाक्य कह डालने में कोई अर्थ नहीं है कि:-" मैं ईश्वर का स्वरूप समझ गया-जो ब्रह्म भीतर-बाहर व्याप्त है उसे मैंने जान लिया। अहा! मुझे दिख पड़ने वाली प्रत्येक वस्तु-पुरुष, स्त्री, पशु, पक्षी, वृक्ष, फूल, पाषाण, सब कुछ-ईश्वर स्वरूप ही है! मैं केवल आनन्द की-सुख की-मूर्ति हूं। मैं सुख-दुःखातीत हूं। सोऽहम्! सोऽहम्!! इत्यादि।"

पहले साधन करना चाहिए। इसके सिवाय अन्य मार्ग ही नहीं है। उसके बिना सच्ची भक्ति नहीं प्राप्त हो सकती। जब तक साधन का सम्पादन नहीं हुआ तब तक हम चाहे जितना चिल्लाया करें, तथापि ब्रह्मज्ञान का गन्ध भी नहीं मिल सकता। तब तक सब बोलना-चालना व्यर्थ है।

क्योंकि यह ब्रह्मज्ञान की सम्पत्ति सुरक्षित रीति से तहखाने में रखी हुई है और उसमें मजबूत ताला भी लगा है। उस तहखाने का ताला तुमने नहीं खोला। तुम मुख से (जब तक साधन नहीं किया तब तक) ये वचन नहीं निकाल सकते कि:-" मैंने यह ताला खोल कर तहखाने में पैर रखा। देखिये, उस सम्पत्ति पर मैंने हाथ चलाया! ये रत्न, हीरे, माणिक कितने तेजस्वी हैं! ये देखिये, सब मेरे हाथ में आगये।"

जिस पुण्यात्मा को परमेश्वर की दिव्य मूर्ति का साक्षात् दर्शन हो जाता है उसकी वृत्ति बाल के समान सरल और सादी बन जाती है। उसे यह जगत् कुछ निराले ही स्वरूप का मालूम लगता है।

इस जगत् की नामरूपात्मक भिन्नता का भास उसे नहीं जान पड़ता। उसके आगे जो दिव्य रूप प्रकट होता है उसे देख कर, भक्ति के मद से, बहुधा उसका भान नष्ट जाता है। पवित्रता के मोहित अंग में यह तदाकार हो जाता है। इस कारण बहुधा 'शुचि' और 'अशुचि' के सम्बन्ध की भेदबुद्धि उसमें नहीं रहती।

अन्त में, उसकी जागृति क्षीण क्षीण में जाने लगती है और समाधि में जड़ के सदृश उसकी अवस्था होती है।

अपरोक्षानुभव प्राप्त होने तक मनुष्य को गुप्त रहना चाहिए और जगत् का-कामिनी और कांचन का-त्याग करना चाहिए।

* [illegible] ।
[illegible] ॥—गीता

अमेरिका में कृषिशिक्षा और उसके साधन।

(श्रीयुत [illegible])

स्थूल दृष्टि से विचार करने पर भी मालूम हो सकता है कि संसार में मानव जाति के लिए आवश्यक सम्पत्ति प्रदान करनेवाले दो धन्धे हैं। पहला कृषि और दूसरा खनिज पदार्थों का संग्रह। [illegible] दो प्रकार की होती है:— [illegible] और दूसरी [illegible] से उत्पन्न होनेवाली [illegible] खनिज पदार्थों [illegible], बहुधा पर्वतों में, बहुत बड़े बड़े और [illegible] पाये जाते हैं। यदि हम ऐसी कल्पना करें कि [illegible] पृथ्वी पर [illegible] तो जान [illegible] है कि, उसकी [illegible] की दृष्टि से, खनिज [illegible] बिलकुल [illegible] है। [illegible]

[illegible]

[illegible] सहायता [illegible] कितने [illegible] [illegible] मानवजाति के भाग्य और [illegible], भविष्यकाल कैसा हुआ है इसमें क्या हाल होगा! [illegible] यह मतलब नहीं है कि मानवजाति की [illegible] खनिज पदार्थों पर बिलकुल [illegible] नहीं रह[illegible] [illegible] कृषि का धन्धा [illegible] है। [illegible]

सच है, समाधि में जिसकी अहंवृत्ति का लय होता है और ब्रह्म से तादात्म्य हो कर उसका सम्यक् प्रत्यय जिसको आता है उसे एक अदृश्य शक्ति नीचे जगत् में-जाग्रति में-फिर खींच लाती है। यह अदृश्य

तीसरा उपांग.—सर्वसमर्थ माता और कर्म, सगुण परमेश्वर के द्वारा क्या ब्रह्मज्ञान हो सकता है?

शक्ति कौन है? इस प्रश्न का उत्तर पाने के लिए हमें फिर अपनी सर्व समर्थ माता की ओर ही झुकना चाहिए। समाधि में अहंकार कायम रखना और उसे मिटा डालना, ये दोनों बातें, केवल एक उसीके हाथ में हैं।

तत्वज्ञानी अथवा तार्किक कहता है कि समाधि में पहुँचा हुआ योगी अपने धर्म के कारण ही से-पूर्वजन्मार्जित कर्म के कारण ही-फिर जगत् में आ पड़ता है, उसका कर्म ही उसे जागृति में लाने का कारण होता है।

अर्थात् जब तक अहंवृत्ति कायम रहती है तब तक कर्ता और कर्म का जोड़ा नहीं छूटता। उसी प्रकार कार्य और कारण का भी लय नहीं होता। केवल यही नहीं, किन्तु करोड़ों जीव, चौबीस तत्वों से युक्त यह जगत, भूत-वर्तमान-भविष्य आदि काल, पूर्व-जन्म, पुनर्जन्म, इत्यादि सर्व भेदाभेद बिलकुल सत्य बने रहते हैं। उसी प्रकार इन सब भेदों का कारण बननेवाला सर्वशक्तिमान् ईश्वर-मेरी माता—सगुणपरमात्मा—भी बिलकुल सत्य ही रहता है।

साक्षात्कार से इस कथन की पुष्टि होती है। क्योंकि माता कहती है; कि "इन सब भेदों का कारण मैं ही हूं। सत्कर्म अथवा दुष्कर्म मेरे तंत्र से चलते हैं। कर्म का बन्धन है जरूर, पर उस बन्धन का कारण मैं ही हूं। बंधन में डालना और बन्धन से निकालना, ये दोनों बातें मेरे हाथ की हैं। सब कर्मों पर-सत् अथवा असत् कर्मों पर-मेरी ही सत्ता चलती है। इस लिए तुम सब मेरी ओर आओ, मैं तुम को इस संसार से-इस कर्मसागर से-पार कर दूंगी। फिर तुम चाहे जिस मार्ग से क्यों न मेरी ओर आओ। भक्ति मार्ग से आओ; चाहे तो ज्ञानमार्ग से आओ, अथवा कर्ममार्ग से आओ। तुम्हारी इच्छा हो तो मैं तुम्हें ब्रह्म का ज्ञान भी करा दे सकती हूं। समाधि तक पहुंचने के बाद भी यदि कर्म बाकी होगा तथा शरीर और अहंकार यदि कायम होंगे, तो ऐसा समझो कि उस कर्म, शरीर और अहंकार को कायम रखने का प्रबन्ध मैंने ही, किसी विशिष्ट हेतु से, किया है"

अपने लड़कों को-अपने भक्तों को-उसने (माताने) इन सब बातों का ज्ञान, साक्षात्कार के द्वारा करा दिया है।

अतएव, यदि कोई चाहता हो कि हमें ब्रह्मज्ञान हो, तो वह ब्रह्म-

भक्त को क्या ब्रह्मज्ञान हो सकता है?

ज्ञान प्राप्त होने के लिए, बड़ी आतुरता से, उस माता की विनती करना चाहिए और सब प्रकार से उसी पर अपना भार डाल देना चाहिए-अनन्यगतिक होकर उसके शरण में जाना चाहिए-इतने पर, अन्त में, उसे वह ज्ञान अवश्य ही प्राप्त होगा।

ब्रह्मज्ञान के लिए ऐसा आतुर होकर भक्त जब मेरी माता (अथवा उसके किसी रूप) के पास आता है, तब उसकी भक्ति में अहंकार का मिश्रण रहता है, परन्तु अन्त में, माता की कृपा से, समाधि में उसके अहंकार का पूर्णतया अस्त हो जाता है।

कर्ता और कर्म के भेद का कारण सगुण ईश्वर (सगुण ब्रह्म)-मेरी माता ही-है। समाधि में यह अहंकार नष्ट करके वही (मेरी माता ही) ब्रह्म का ज्ञान करा देती है।

"यह वही करती है-" इस बात का ज्ञान हमें साक्षात्कार से होता है।

जिस तत्वज्ञ का साक्षात्कार पर, तथा तर्कबुद्धि पर, भी विश्वास नहीं होता वह यह कहता है कि, "सगुण ईश्वर के द्वारा जीवात्मा को मुक्ति अथवा ब्रह्मज्ञान का लाभ कदापि नहीं हो सकता"।

तत्वज्ञ या ज्ञानी पुरुष जब यह कहता है कि 'ब्रह्म का ज्ञान मैं स्वयं ही कर सकता हूं' तब वह नीचे की दशा में ही (सापेक्ष अथवा दृश्य जगत् में)-मैं और तू का भेद जिसमें बना रहता है ऐसी ही स्थिति में-रहता है। उस स्थिति में तुम्हें स्वाभाविक ही सगुण ईश्वर-मेरी सर्वसमर्थ माता-का अस्तित्व मानना ही चाहिए।

यह कथन बिलकुल विलक्षण जान पड़ता है कि जीव अपनी संकुचित बुद्धि के बल पर ब्रह्म का ज्ञान स्वयं कर सकता है; परन्तु मेरी माता में यह ज्ञान करा देने का सामर्थ्य नहीं, अथवा जीव में स्वयं मुक्ति यह प्राप्त करने का सामर्थ्य है; परन्तु मेरी सर्वसमर्थ माता में जीव को उस मुक्तिपद पर पहुंचाने का सामर्थ्य नहीं!

[illegible] यह बात भूल जाते हैं कि सगुण और निर्गुण दोनों एक ही व्यक्ति के अंग हैं। जब तक हमें अपने व्यक्तित्व अथवा अहंकार की भावना रहती है तब तक, परमेश्वर हमें [illegible] सगुणरूप ही दिखलायेगा। अर्थात् [illegible] शक्ति में ब्रह्म का ज्ञान करा देनेवाली शक्ति का ही [illegible] रहता है।

परन्तु केवल तर्क भी एक शिथिल मुसाफिर है! [illegible] सहारे से चलना यही अनिश्चितता और धोखे का काम है।

इसके अतिरिक्त जिस तर्कबुद्धि पर तत्वज्ञ पुरुष का [illegible] मदार रहता है वह भी तो सगुण ईश्वर ही से प्राप्त होती है।

अतएव, केवल अद्वैत-वादियों के मत में एक नवीन [illegible] विशेषता हुई। वह नवीन तत्व यही है कि ब्रह्म का ज्ञान ईश्वर के द्वारा होता है, अथवा सगुण ईश्वर में ब्रह्मज्ञान कराने की सामर्थ्य है।

अहंभाव का पूर्णतया लय हो जाने पर समाधि में [illegible]

चौथा उपांग.—'ब्रह्म' का नाम लेते ही सापेक्षता आ जाती है।

त्कार होना और ब्रह्म का [illegible] अथवा नास्तित्व के विषय में [illegible] प्रतिपादन न करते हुए [illegible] जाना ही शुद्ध ज्ञान है। अद्वैत [illegible] पथ में ज्योंही बात निकाली गई कि, हम, समझ लो, [illegible] क्योंकि जहां एक आया कि फिर दूसरा भी आना ही चाहिए [illegible] का उच्चारण करते ही दूसरे का अस्तित्व आप ही आप [illegible] जाता है। सारांश, जहां अद्वैत के विषय में शब्द निकला कि [illegible] उसके साथ ही द्वैत खड़ा हो जाता है। ज्योंही ब्रह्म बोला [illegible] अर्थात् ज्योंही वह वाचा का विषय हुआ- कि तुरन्त ही [illegible] सापेक्षता लगी। क्योंकि, जब तक समाधि में निरुपाधिक [illegible] ब्रह्म का अनुभव नहीं मिला तब तक वह निरुपाधिक ब्रह्म [illegible] ब्रह्म) बहुत होगा तो, 'सोपाधिक' के विरुद्ध अर्थ का [illegible] होगा; अथवा वर्णमाला के कुछ अक्षरों से बना हुआ, [illegible] शब्द होगा, बस!

नित्य के विषय में जहां हमने बात निकाली कि बस [illegible] मय (अनित्य) जग आगे आवे ही गा। 'अव्यक्त' शब्द का [illegible] रण करते ही व्यक्त की भावना अवश्य ही [illegible] उदाहरणार्थ, प्रकाश आया कि फिर उसके विरुद्ध, अन्धकार [illegible] विचार आवे ही गा; अथवा 'दुख' का नाम लेते ही [illegible] इन्हीं दुःख की याद आवे ही गी।

जगत् का अनित्य, अथवा लीलामय, भाग जिसका है, [illegible] नित्य भाग भी है, और नित्य भाग जिसका है उसीका अनित्य [illegible] (नित्य और अनित्य दोनों एक ही व्यक्ति के दो अंग हैं।)

नित्य की ओर यदि हमें जाना है तो अनित्य से-इस [illegible] से-होकर, मार्ग निकालते निकालते ही हमें जाना होगा। [illegible] नित्य से जब हम चलेंगे तब भी मार्ग ढूंढ़ते ढूंढ़ते लौट कर अनित्य में ही- दृश्य जगत् में ही-आना होगा। (परन्तु [illegible] अवश्य है कि जहां हम एक बार 'नित्य' से मिल आये [illegible] फिर यह दृश्य जगत्, पहले की तरह, मिथ्या न मालूम [illegible] नित्य का अथवा अव्यक्त का केवल व्यक्तस्वरूप [illegible] लगता है।)

यदि तुम ब्रह्म का स्वरूप बतलाने लगो तो अवश्य ही [illegible] उसका यथार्थ निरूपण या प्रतिपादन कभी नहीं कर सकोगे [illegible] द्वारा उस पर और ही किसी बात का-तुम्हारे स्वत्व का [illegible] का-अध्यास अवश्य ही होगा। तुम्हारे स्वत्व के पुट [illegible] पर चढ़े बिना कभी न रहेंगे।

तात्पर्य इतना ही कि, हमें फिर साक्षात्कार पर ही पूर्ण [illegible] रहना चाहिये। परमेश्वर ही (मेरी माता ही) कहती [illegible] 'सगुण ईश्वर मैं ही हूं, और समाधि के अनुभव में आनेवाला [illegible] ईश्वर (ब्रह्म) भी मैं ही हूं।'

इधर देखिये, कि मट्ठे का अस्तित्व स्वीकार किये बिना [illegible]

शांकरमतानुयायियों के मायावाद; और कपिलप्रणीत सांख्यमतानुयायियों के परिणामवाद का, तथा अद्वैत, और विशिष्टाद्वैत का, समन्वय।

की कल्पना [illegible] कर सकेंगे [illegible] उसका नाम [illegible] ले सकेंगे।

नेनू जिस प्रकार मट्ठे का भाग है उसी प्रकार मट्ठा भी [illegible] भाग है। नेनू का नाम लेते ही, सापेक्षता से, जैसे मट्ठे [illegible] आ ही जाती है वैसे ही मट्ठे का नाम लेने पर, मक्खन [illegible] की कल्पना आये बिना कभी न रहेगी।

व्यक्तिपन जब तक बना हुआ है—भावना जब तक [illegible] और कुछ भी विकल्प जब तक बाकी है—तब तक, नेनू [illegible] दोनों का अस्तित्व स्वीकार किये बिना, अन्य मार्ग ही [illegible]

जब तक तुम्हारा व्यक्तित्व नहीं गया, जब तक, माता [illegible] तुम्हारा अहंकार बना हुआ है, तब तक, जहां तुमने 'नित्य' [illegible]

…ा नाम लिया कि उसके साथ 'सोपाधिक' तयार ही है; 'नित्य' कहते ही 'अनित्य' सामने खड़ा रहेगा; तुम्हारे 'वस्तु' कहते ही उस 'वस्तु' के 'गुण' तुरन्त ही आगे आयेंगे, तुम 'निर्गुण' लाये कि 'सगुण' तुम्हारे पीछे लगा ही है; 'एक' का उच्चारण नहीं करने पाओगे कि 'अनेक' उसका साथी खड़ा ही रहेगा!

…र माता समाधि में तुम्हारा अहंकार (व्यक्तित्व) नष्ट कर …ी तब ब्रह्म का सम्यक् प्रत्यय आवे ही गा। फिर सम्पूर्ण शब्द और वहां जो कुछ होगा, वह, वहां का वहां! क्योंकि समुद्र …ाह लेने के लिए गई हुई नमक की पुतली जब अनन्त महासागर …प हो गई, तब फिर वह (उस समुद्र के विषय में) क्या बोले? बोल ही नहीं सकती।

…ह स्थिति यदि दृष्टान्त से वर्णन की जा सकती है, तो हम यह …सकते हैं कि, समाधि के अनुभव में आनेवाला ब्रह्म मूल दूध …स अव्यक्त ब्रह्म का व्यक्त अथवा सगुणरूप नेत् है; और …स तत्वों से युक्त यह जगत् मट्ठा है!

…री माता ने (ब्रह्म के सगुण अंग ने) यह कहा है कि, 'मैं वेदान्त का ब्रह्म हूं। ब्रह्मज्ञान देना मेरे हाथ में है। अहंकार मिटा कर और समाधि में ब्रह्मसाक्षात्कार करा कर मैं यह ज्ञान करा देती हूं।' 'पवंच,' …ो यह है कि, यदि माता की कृपा होगी तो, ज्ञानमार्ग से तुम …वह पा सकोगे। परन्तु इस से, विशेष कर इस कलियुग में, बहुत …ड़ लोग पहुँच सकते हैं। क्योंकि हममें जो देहात्म बुद्धि भरी है उसका छूटना बहुत कठिन है।*

…वां उपांग.—भक्तिमार्ग और ज्ञानमार्ग, दोनों ब्रह्मज्ञान को जाते हैं। श्रद्धा और प्रार्थना का प्रभाव।

…अथवा, माता की यह प्रार्थना,- कि 'हमें भक्ति और ज्ञान दे,' …के तुम (ब्रह्म की ओर) जा सकोगे। आत्मसमर्पण, शुद्धप्रेम, …ादि भक्ति के अनेक अंग हैं। पहले उनके (भक्ति के अंगों के-…था भक्ति के) द्वारा मेरी माता (सगुण परमेश्वर) की ओर …ओ।

मैं तुम्हें यह विश्वास दिलाता हूं कि, यदि तुम्हारी प्रार्थना शुद्ध …य की होगी तो मेरी माता उसे अवश्य सुनेगी। हां, तुम्हें धैर्य …ग्य रखना चाहिये। क्योंकि अपने लड़कों को-भक्तों को-उसने …ना साक्षात्कार ही दिया है।

अच्छा, यदि तुम उसके निर्गुण अंग का साक्षात्कार चाहते हो, …भी उसको प्रसन्न करो। यदि उसने ध्यान दिया—यदि वह तुम …कृपा करना चाहेगी (क्योंकि वह सर्वसमर्थ है) तो तुम स…धि में उसके निर्गुण अंग का भी अनुभव कर सकोगे और यही …नुभव ब्रह्मज्ञान है।

…हां, मुझे यहां यह अवश्य बतला देना चाहिये कि, जो भक्त है वह, ईश्वर का—मेरी माता का, अथवा श्रीकृष्ण, चैतन्यदेव, इत्यादि उसके अवतारों में से किसी का, अथवा उसके अनन्त …य रूपों में से किसी रूप का—केवल दर्शन हो जाने से साधारणतया बिलकुल सन्तुष्ट रहता है। साधारण तौर से भक्त की कुछ यह इच्छा नहीं होती कि उसे निर्गुण का ही अनुभव हो। उसकी यह बहुत इच्छा रहती है कि समाधि में हमारा अहंकार सब प्रकार से लुप्त न हो। उसे इसी में सन्तोष रहता है कि, हमारा अभिमान इतना बना रहे कि, जिससे हम आनन्दपूर्वक अपनी उपास्य मूर्ति के दर्शनसुख का अनुभव ले सकें। शक्कर से एकरूपता प्राप्त करने की अपेक्षा—शक्कर में मिल जाने की अपेक्षा—उससे अलग रहकर उसका मिठास लेना उसे ठीक जान पड़ता है!

…भक्त की इच्छा।

ऐसे भक्त को मेरी माता सगुण रूप में-साकार होकर-दर्शन देती है, क्योंकि भक्तों पर-अपने बच्चों पर-उसका मन बहुत रहता है।

देवता के रूप का जिसे पूर्णतया आकलन हो गया-देवता के प्रत्यक्ष दर्शसुख का जिसने अनुभव कर लिया-उसे अपरोक्षानुभूति का हठ रखना ही चाहिए; क्योंकि परमार्थ में महत्व का विषय यही है।

छठवां उपांग—अपरोक्षानुभव दिव्य दृष्टि के लक्षण।

पहले ही से इस प्रकार के वाक्य कह डालने में कोई अर्थ नहीं है कि:-"मैं ईश्वर का स्वरूप समझ गया-जो ब्रह्म भीतर-बाहर व्याप्त है उसे मैंने जान लिया। अहो! मुझे दिख पड़ने वाली प्रत्येक वस्तु-पुरुष, स्त्री, पशु, पक्षी, वृक्ष, फूल, पाषाण, सब कुछ-ईश्वर स्वरूप ही है! मैं केवल आनन्द की-सुख की-मूर्ति हूँ। मैं सुख-दुःखातीत हूं। सोऽहम्! सोऽहम्!! इत्यादि।"

पहले साधन करना चाहिये। इसके सिवाय अन्य मार्ग ही नहीं है। उसके बिना सच्ची भक्ति नहीं प्राप्त हो सकती। जब तक साधन का सम्पादन नहीं हुआ तब तक हम चाहे जितना चिल्लाया करें, तथापि ब्रह्मज्ञान का गन्ध भी नहीं मिल सकता। तब तक सब बोलना-चालना व्यर्थ है।

क्योंकि यह ब्रह्मज्ञान की सम्पत्ति सुरक्षित रीति से तहखाने में रखी हुई है और उसमें मजबूत ताला भी लगा है। उस तहखाने का ताला तुमने नहीं खोला। तुम मुख से (जब तक साधन नहीं किया तब तक) ये वचन नहीं निकाल सकते कि:-"मैंने यह ताला खोल कर तहखाने में पैर रखा। देखिये, उस सम्पत्ति पर मैंने हाथ चलाया! ये रत्न, हीरे, माणिक कितने तेजस्वी हैं! ये देखिये, सब मेरे हाथ में आगये।"

जिस पुण्यात्मा को परमेश्वर की दिव्य मूर्ति का साक्षात् दर्शन हो जाता है उसकी वृत्ति, बालक के समान सरल, और सादी बन जाती है। उसे यह जगत् कुछ निराले ही स्वरूप का भासने लगता है।

इस जगत् की नामरूपात्मक भिन्नता का भास उसे नहीं जान पड़ता। उसके आगे जो दिव्य रूप प्रकट होता है उसे देख कर, भक्ति के मद से, बहुधा उसका भान चला जाता है। पवित्रता के जीवित स्रोत में वह तदाकार हो जाता है। इस कारण बहुधा 'शुचि' और 'अशुचि' के सम्बन्ध की भेदबुद्धि उसमें नहीं रहती।

अन्त में, उसकी जागृति बीच बीच में जाने लगती है और समाधि में जड़ के सदृश उसकी अवस्था होती है।

अपरोक्षानुभव प्राप्त होने तक मनुष्य को शुद्ध रहना चाहिए और जगत् का-कामिनी और कांचन का-त्याग करना चाहिए।

* क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम्।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते ॥— गीता

अमेरिका में कृषिशिक्षा और उसके साधन।

(श्रीयुत अनन्त महादेव गुर्जर, बी० एस० सी०, अमेरिका।)

…एक दृष्टि से विचार करने पर भी मालूम हो सकता है कि …सार में मानव जाति के लिए आवश्यक सम्पत्ति प्रदान करनेवाले …दो स्रोत हैं। पहला कृषि और दूसरा खनिज …र्थों का संग्रह। खेती दो प्रकार की होती है:— …प्रकृतिनियमानुसार आप ही आप; और दूसरी …र्यात् श्रम से उत्पन्न होनेवाली खेती। खनिज पदार्थों …संग्रह, बहुधा पर्वतों में, बहुत बड़े बड़े और निय…त पाये जाते हैं। यदि हम ऐसी कल्पना करें कि …वजाति पृथ्वी पर लाखों वर्ष टिकेगी तो जान …ता है कि, उसकी जीविका की दृष्टि से, खनिज …सम्पत्ति का स्रोत बिलकुल नाशवान् है। यह स्रोत …हो है कि जैसे कोई अपने पुरखों की जमा की …पूंजी, लगातार व्यय करके फ़कीर बन जाय! …[illegible]—इंगलैंड, अमेरिका, इत्यादि देशों की उन …ले की खानों को देखिये जो शीघ्र [illegible] हो …में बिलकुल खाली पड़ गईं। 'टेक' देश के …'गो' नामक खनिज [illegible] की खानें, कुछ [illegible] ही …में खतम हो गईं! आज कल संसार की बहुत सी …ओं की खानों की [illegible] घटने लगी है। सौ-दो सौ वर्षों में ही जब यह हाल है तब फिर मानवजाति के आगे जो, अमर्याद, भविष्यकाल फैला हुआ है उसमें क्या हाल होगा?

गुर्जर महाशय।

अर्थात् यह सम्भव नहीं है कि मानवजाति की सम्पत्ति खनिज पदार्थों पर निरन्तर अवलम्बित बनी रहे। परन्तु कृषि का स्रोत अनन्त है। यह हजारों वर्षों से चल रहा है और आगे भी चलता रहेगा। चीन, जापान, [illegible], इत्यादि प्रसिद्ध पूर्वी देशों के किसान लगभग चार हजार वर्ष से खेती का व्यवसाय कर रहे हैं। तथापि मनुष्य के उदरपोषणार्थ, कामधेनुरूपी भूमि से, एक के पीछे एक फसलें निकलती ही चली जाती हैं। यही नहीं किन्तु, इस कामधेनु का मानवजाति को ज्यों ज्यों ज्ञान होता जायगा त्यों त्यों, इससे मानवी प्राणियों की, अधिकाधिक सेवा होती जायगी। अतएव, कृषिरूपी सम्पत्ति स्रोत अनन्त है। क्योंकि इस स्रोत के [illegible] द्रव्य [illegible] अधिकार में लिये हैं। इसके [illegible] हम लोग इस स्रोत से जो कुछ निकालते हैं वह [illegible] फिर लौटा देते हैं। [illegible]

न है। उदाहरणार्थ, संसार के प्राचीन इतिहास में प्रसिद्ध चीन, पान, इजिप्ट और भारत, तथा अर्वाचीन इतिहास में प्रसिद्ध स्ट्रेलिया, दक्षिण-आफ्रिका का कुछ भाग और उत्तर-अमेरिका या युनाइटेड स्टेट्स, इत्यादि देशों में सृष्टिकर्ता ने कृषि के उत्तमो- म साधन निर्माण कर रखे हैं। यह एक ही बात से सिद्ध हो ता है कि ये साधन कितने महत्व के हैं। वह यह कि, चीन, पान, इत्यादि देशों के लोग आज चार हजार वर्ष से जमीन त रहे हैं, और इसके बहुत से भागों की जनसंख्या प्रति वर्ग ल ३६०० है! इतने पर भी वहां आज प्रति एकड़ कम से कम ० रु० का वार्षिक उत्पन्न प्राप्त कर सकते हैं! इसका अर्थ यह है मानवी कृति और निसर्ग-निर्मित साधनों से अब भी जमीन में त भी सब बनी हुई है। अब यह कहने की आवश्यकता नहीं कि

रसायनशास्त्र के प्रयोगशाला की एक श्रेणी।

न दशा भावी कृषिशिक्षा से सुधरने ही जायगी। यह कहने कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि उपर्युक्त कृषि के प्रधान स्थलों र ही भविष्यकाल की सम्पूर्ण मानव जाति का उपजीवन अव- म्बित है। यही नहीं वरन् कितने ही दूरदर्शी शास्त्रज्ञ आज ही, न बात का महत्व समझ गये हैं; और उन राष्ट्रों को यह जवाब- री लेनी ही पड़ेगी। अतएव, लोगों में कृषिशिक्षा अथवा निसर्ग- यमों और सृष्टिस्वभाव के ज्ञान का बहुत विस्तार होना चाहिए। इस पर हमारे देशभाई यह प्रश्न करेंगे कि हमें सारे जगत् से थवा अन्य देशों से क्या मतलब है? हमने, अपनी ही खेती सुधार

कृषि के लिए अश्वपरीक्षा की एक श्रेणी।

, अपनी दशा सुधार ली कि बस हमारा कर्तव्य खतम हुआ। ह प्रश्न कुछ समुचित नहीं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि प्रत्येक की जो दशा सुधरने पर ही सारे जगत् का सुधार अवलम्बित है, न्तु अकाल का निवारण कैसे करना चाहिए, भारत की वर्तमान शा में फसल का सुधार कैसे किया जाय, जमीन को उत्तम बनाने कौन से उपाय हैं, तथा वैज्ञानिक रीति से थोड़े समय में बहुत काम निकालनेवाले और भारत की भूमि के लिए योग्य, कृषि त्रों का आविष्कार कैसे किया जाय, कृषिसम्बन्धी कच्चे पदार्थों के पदार्थ बनानेवाले कारखाने कैसे बनाये जायें, इत्यादि बातों में ही यदि हम उन्नति करने का प्रयत्न करें तो अवश्य ही संसार सुधार में अंशतः सहायक बनने का श्रेय हमें भी प्राप्त हो।

उत्तरी अमेरिका अथवा 'युनाइटेड स्टेट्स' में कृषि की कुछ विलक्षण ही दशा है। प्रथम तो, इस देश में, सब प्रकार का जल वायु पाया जाता है। गेहूं, फलफलहरी, तरकारी-भाजी, कपास, तम्बाकू, मक्का, इत्यादि की महत्वपूर्ण फसलों के लिए शीत, सम- शीतोष्ण और उष्ण कटिबन्धों की हवा यहां है। इस जलवायु की दशा इतनी उज्ज्वल है कि मानो भिन्न भिन्न भागों में भिन्न भिन्न फसलें पैदा करने की इसने प्रतिज्ञा ही की है। उदाहरणार्थ, पूर्व भागों में (अर्थात् जिन्हें न्यू इंगलैंड और अटलांटिक रियासतें कहते हैं उनमें) घास और आलू, दक्षिण भागों में कपास, सन-पटसन, तम्बाकू और केला; मध्य-पश्चिम में मक्का; उत्तर-पश्चिम में गेहूं और दूध (दूध के अन्य पदार्थ); पहाड़ी रियासतों में गेहूं, शक्कर, गुड़ और मांस, इत्यादि, उद्भिज सम्पत्तियों की पैदाइश होती है। इसके अतिरिक्त पैसिफिक महासागर के किनारे से मिली हुई रिया- सतें बहुत सा फल-फलहरी सामान और लकड़ी उत्पन्न करती हैं।

बीज-परीक्षा की एक श्रेणी।

कृषि के लिए उपर्युक्त प्रकार की निसर्ग-निर्मित योजना अमेरिका में है और उसके साथ ही सर्वसाधारण में कृषिशिक्षा का प्रचार भी है; तब फिर वहां, कृषि के विषय में, विशेष उत्सुकता क्यों न हो! यहां पर प्रवीण पाठकों को यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि जब अमेरिका के लोगों में कृषि-विषयक उत्सुकता और महत्वाकांक्षा है तब वहां की सरकार में भी ये गुण होने ही चाहिए, क्योंकि वहां प्रजासत्ताक राज्य है। अस्तु। आज के हमारे इस लेख से

बीज परीक्षा की एक दूसरी श्रेणी।

'चित्रमय जगत्' के पाठकों को यह मालूम हो जायगा कि वहां की सरकार और प्रजा के मेल से कृषि शिक्षा की वहां कैसी योजना हुई है और इस विषय में वहां की सरकार क्या प्रयत्न कर रही है, तथा कृषिविषयक कौन से साधन उसने, वहां की प्रजा के लिए, उपस्थित कर दिये हैं।

अमेरिका में कृषिशिक्षा के जो अनेक प्रयत्न हो रहे हैं उनके मुख्य कर दो विभाग किये जा सकते हैं। एक वह, जो राष्ट्रीय सर- कार की ओर से इकट्ठा अथवा सार्वजनिक रीति से हो रहा है और दूसरा वह जो प्रत्येक रियासत की प्रान्तिक सरकार की ओर से सिर्फ उसी रियासत की प्रजा के लिए हो रहा है। प्रस्तुत लेख में हम इन विभागों की संस्थाएं Institutions कहेंगे। इन संस्था

सूर्य का प्रकाश पहुँचता है तथा नाइट्रोजन उत्पन्न करनेवाले बैक्टीरियों में चैतन्य आता है। परन्तु इस प्रकार के वैज्ञानिक आविष्कार भारत के अपढ़ किसानों को समझाना मानो अपना ही सिर पच्ची करना है। आज कल जिस जमीन पर कम से कम वर्ष में बारह इंच वृष्टि होती है उसमें 'ड्रायफार्मिंग' की रीति से, गेहूँ और बाजरा के समान, फसलें अच्छी उपजती हैं। यह बात यहां सप्रयोग सिद्ध हो चुकी है। और इसी कारण उजाड़ प्रदेशों में भी खूब आबादी होने लगी है। परन्तु भारत के किसानों पर वैसी बातों का प्रभाव पड़ने के लिए बहुत समय चाहिए। अमेरिका के लोगों का एक और भी मत है, कि कृषिशिक्षा वा काम करनेवाले लोग

घास भिगोने का एक दूसरा " सायलो "।

'स्वदेशी' होने चाहिए। अर्थात् वे लोग जहां काम करते हों उसी [illegible] भाग के पैदा हुए, बड़े हुए, और उस भाग की उन्नति में सहानुभूति रखनेवाले होने चाहिए। अमेरिका की शिक्षा-संस्थाओं [illegible] लोग ऐसे ही होते हैं। इस कारण लोगों की आवश्यकताएं, अड़चनें, भिन्न भिन्न प्रदेशों की दशा की विशेषता, इत्यादि का उन्हें [illegible] ज्ञान होता है, इस कारण अमेरिका में कृषि शिक्षा का कार्य [illegible] सफलता से होता रहता है। कृषिशिक्षा वह शास्त्र नहीं है कि जो इतिहास, भूगोल अथवा बीजगणित की तरह सदा एक ही स्थिति

विद्यार्थी एक पौधे की कलम तैयार कर रहे हैं।

[illegible] शिक्षा रहना हो और [illegible] जिलैंड, भारत, चीन, अफ्रिका आदि [illegible] देशों में एक सा ही ढंग से सिखाया भी नहीं जा सकता। [illegible] यह शास्त्र भिन्न भिन्न देशों की भिन्न भिन्न दशा के अनुसार [illegible] भिन्न ढंग से, सिखाना पड़ता है। [illegible]

[illegible]

सकते हैं। परन्तु, जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं, भारत इस विषय में बिलकुल ही भिन्न है। सरकार की ओर से जो थोड़े से हस्तपत्रक प्रसिद्ध होते हैं उनके पढ़ने का साधन भारत के किसानों में नहीं है। इस पर स्वाभाविक ही यह महत्वपूर्ण प्रश्न उठता है कि तो फिर इस स्थिति का उपाय क्या है? अपढ़ता, प्रारम्भिक शिक्षा की दशा, लोगों की दीनावस्था, खेती की अत्यन्त निकृष्ट दशा, इत्यादि बातों पर ध्यान रखते हुए मुझे तो एक ही

विद्यार्थी अंगूर की बेल के गंडे तैयार कर रहे हैं।

उत्तम उपाय सूझता है, और वह यह कि, चारों ओर प्रयोगशालाओं, वैज्ञानिक व्याख्याताओं और डिमान्स्ट्रेटरों का फैलाव होना चाहिए। भारतीय किसान से सिर्फ यदि यही कहा जाय कि " तू यह 'हैंड-बिल' (हस्तपत्रक) पढ़ " तो उससे इसे क्या लाभ पहुँच सकता है? क्योंकि यहां तो " काला अक्षर भैंस बराबर " वाली कहावत चरितार्थ हो रही है! अतएव प्रत्यक्ष कृतियों और प्रयोगों से ही भारत के किसानों को कुछ लाभ हो सकता है। ये कृतियां और प्रयोग किसानों की झोंपड़ी से सौ दो सौ मील पर न होना चाहिए। इसके सिवाय सरकार को चाहिए कि वह कृषि के नवीन हथियार और यंत्र किसानों को बहुत कम भाड़े पर दिया करे। ऐसा करने से, भारत में, इन नवीन यंत्रों का प्रचार हो सकता है, यह आशा निस्सन्देह सहज ही में सफल हो सकती है। क्योंकि इन यंत्रों से मजदूरी की बहुत बचत होगी और पैदावार भी बढ़ेगी।

[illegible]

[illegible]

स्वर्गीय जापान-सम्राट् मुत्सुहितो ।

। २६ जौलाई को एशिया के सब से बड़े प्रभावशाली जापान-
ट् का शरीरपात होगया । इन्हींकि शासनकाल में और इन्हीं-
त्व में एशिया के जापान ने यूरप के प्रथम श्रेणी के राष्ट्रों को
रों का सन्मान प्राप्त किया । जापान को इस उन्नत दशा पर
ाले, उसके जनक, यही थे । इन्हींका महत्वपूर्ण संक्षिप्त चरित
चित्र आज हम अपने प्यारे पाठकों को समर्पण करते हैं ।

स समय जापान देश आत्म-संतुष्ट था, उसे अपना धर्म, अपना
ान, अपना रीति रवाज, अपना साहित्य, इत्यादि सब कुछ
ष्ट मालुम होता था और जिस समय बादशाह के, प्रतिनिधि की
पर, राजकाज देखनेवाले 'शृगन' दल और अपनी जमीन का
करके अपना पेट भरनेवाली प्रजा से फौजी नौकरी लेने का
ाकार रखनेवाले जमीदार-दल की श्रेष्ठता थी उस समय तीन
वर सन् १८५२ को स्व-
जापान-सम्राट् मुत्सु-
ो का जन्म हुआ । सन्
८ में, अर्थात् १६ वर्ष
अवस्था में, वे गद्दी पर
. १८६६ में एक सरदार
कन्या 'हारुको' के
थ इनका विवाह हुआ ।
ाट् मुत्सुहितो अत्यन्त
शियार और दूरदर्शी थे,
कारण इन्होंने अपने
में यह बात पूरे तौर
समझ ली कि अब अ-
ो पहले की एकदेशी
ा छोड कर जापान को,
ने में, पश्चिमी राष्ट्रों से
टक्कर लगाने का सा-
र्थ्य लाना चाहिए । इस
ेश्य की पूर्ति के लिए
होंने सैकड़ों जापानी
रुण यूरप और अमेरिका
भेजे, तथा उनके द्वारा
नेक विषयों और शास्त्रों
ा ज्ञान अपने देश में फै-
ाया । एक बार अमेरिकन
मांडर पेरी ने जापान ब-
र पर व्यापार करने के
लए जापान से अधिक
ाधिकार मांगे । परन्तु जा-
ान के 'शृगन' दल ने
ब उन अधिकारों के देने
। इन्कार किया तब कमां-
र पेरी ने तोपों के गोले
रसा कर 'शृगन' दल से
' अधिकार प्राप्त कर लिये।
स पर 'शृगन' के विरुद्ध
ापान की प्रजा ने बड़ी
लचल मचाई; अतएव,
न्त में 'शृगन' ने अपने
ाम से इस्तीफा देकर अ-
ने सब अधिकार राजा के
सुपुर्द कर दिये । इसी प्रकार जमींदार-दल ने भी अपनी
मीन और अपने सब प्राचीन अधिकार राजा को अर्पण कर दिये ।
स कारण, अब, सम्पूर्ण राष्ट्र पर जापान-सम्राट् की पूर्ण सत्ता
ो गई । परन्तु सम्राट् मुत्सुहितो ने उस सत्ता का दुरुपयोग नहीं
िया, किन्तु उन्होंने देश और प्रजा के हित के लिए अपने निज के
धिकार भी कम कर लिये । उसी समय जापान की राजधानी
यूदो से टोकियो में उठा ली गई । जापान-सम्राट ने उसी समय
ा यह नीति स्वीकार की कि जनसभा नियत करके राज्यकार्य में प्रजा
ी सम्मति अवश्य लेनी चाहिए, सारा राजकाज इस प्रकार करना
ाहिए, ताकि प्रजा को सुख और समाधान हो, राष्ट्र के कल्याण
े लिए शिक्षा का प्रचार करना चाहिए और पुरानी रीति-भांति में
ो बुराइयां हों उनका त्याग करके, सब लोगों की सहायता से, अपने
देश की उन्नति करनी चाहिए । इन सब बातों का उन्होंने अक्षरशः
पालन किया । अपराधियों को कष्ट देने की रीति उन्होंने बन्द की ।
भिन्न देशों की न्यायप्रणाली का निरीक्षण करके उचित न्यायप्रणाली
और कायदे-कानून उन्होंने अपने देश में जारी किये । सन् १८७२ में
जापान में पहली रेलवे-लाइन तैयार हुई; यूरोपियन कालमापन-
प्रणाली स्वीकार की गई; स्कूल और कालेजों के द्वारा सारे देश में
अँगरेजी, इत्यादि उन्नत विदेशी भाषाओं का प्रचार किया गया ।
भिन्न भिन्न भाषाओं का साहित्य, भिन्न भिन्न व्यवहारोपयोगी शास्त्र और
व्यवसाय, भिन्न भिन्न प्रकार के कलाकौशल, इत्यादि की भरपूर
शिक्षा जापानी लोगों को मिलने के लिए और उस ज्ञान को कार्य-
रूप में परिणत करने का सामर्थ्य लाने के लिए, जापान-सम्राट् की
ओर से, पराकाष्ठा का प्रयत्न किया गया । इस प्रयत्न में कैसी सफ-
लता प्राप्त हुई वह आज
सारे संसार को मालूम है।
इंगलैंड की जहाज बनाने
और नौसेना रखने की प्र-
णाली, जर्मनी की सैनिक
टीपटाप और वैद्यविद्या,
फ्रान्स और इटाली की
गायन और ललितकला,
इत्यादि भिन्न भिन्न प्रकार
का ज्ञान अपनी प्रजा में
फैला कर सम्राट् मुत्सुहितो
ने अपने देश का उद्धार
किया । परदेशी भाषा, पर-
देशी विचार, परदेशी रीति
रिवाज, किंबहुना परदेशी
पहनाव तक उन्होंने अपनी
प्रजा से स्वीकार कराया;
परन्तु ध्यान में रखने की
बात यह है कि इस परकी-
यता से उन्होंने स्वदेशभक्ति
और राजभक्ति में कुछ भी
धक्का नहीं लगने दिया ।
उन्होंने जापानी प्रजा को
यह सिखा दिया कि जिस
विदेशी बात का स्वीकार
किया जाय वह सिर्फ स्व-
देश के हित के लिए ही
होना चाहिए, जिस बात
से अपने राष्ट्र का हित
नहीं होता होगा उसकी
ओर देखना भी न चाहिये ।
यह बात कुछ सहज नहीं
थी, यह कुछ मामूली बात
नहीं थी कि पुराणाभिमानी
लोगों को पश्चिमी संस्कृति
का अमृत स्वीकार कराया
जाय और, पश्चिमी समाजों-
दधि से निकलनेवाली म-
दिरा से उन्हें दूर रख कर,
उनके द्वारा देशोद्धार का,
पवित्र कार्य करा लिया
जाय—नहीं, नहीं, उसमें प्रथम श्रेणी की सफलता भी प्राप्त
कर ली जाय अतएव, इसका विचार पाठकगण स्वयं कर सकते
हैं कि इस कार्य में सम्राट् मुत्सुहितो ने कितना परिश्रम किया होगा ।
पुराणाभिमानी लोगों ने सम्राट् के विरुद्ध बार बार बलवा किया;
परन्तु सब को शान्त करके उन्होंने अपने सुधार का काम बराबर
जारी रखा । वे जापान के सुदृढ़ तरुण लोगों को भिन्न भिन्न देशों
में भेज कर, भिन्न भिन्न प्रकार के विषयों का ज्ञान अपने देश में मँगाते,
घंटों घंटों उनका कथन सुन कर, उनके भेजे हुए रिपोर्ट पढ़ कर,
एकान्त में—रात के दो दो बजे तक—शान्ति के साथ विचार करते
और यह निश्चय करते, कि इनमें से जापान के लिये क्या क्या
हितकर होगा, और, इसके बाद, योग्य मनुष्यों को, उनके योग्य
कर्तव्य सौंप कर, उनके कार्यों पर स्वयं दृष्टि रखते और सम्पूर्ण

स्वर्गीय जापान-सम्राट मुत्सुहितो ।

कर्तव्य सफल करवाते थे।

मुत्सुहितो सर्वसाधारण जापानी की अपेक्षा ऊंचे-पूरे, मजबूत तथा मितभाषणी, गम्भीर विचारवान्, राजनीतिज्ञ और कर्तव्यदक्ष थे। वे बहुत पढ़ते और सुनते थे, पर बहुत ही कम बोलते थे। उनके बर्ताव-व्यवहार में अभिमान प्रकट होता था, और उनका निश्चय दृढ़ था। अपने देश और अपनी प्रजा पर उनका निस्सीम प्रेम था, और उनकी यह महत्वाकांक्षा थी कि हमारी प्रजा सुखसमृद्धि से सम्पन्न हो, तथा हमारा राष्ट्र संसार के बड़े राष्ट्रों में गिना जाय। और उनकी यह महत्वाकांक्षा, उनके गम्भीर और दूरदर्शी मंत्रियों की सलाह से, देशभक्तों की कर्तव्यदक्षता से और स्वयं उनकी कार्यकुशलता से उन्हींके शासनकाल में सफल हो गई। मुत्सुहितो की रहन-सहन बहुत ही सादी थी और वे बड़े नियमित रीति से चलनेवाले थे। पुस्तकावलोकन उनका प्रिय विषय था। प्रति दिन सुबह वे चुने हुए पौर्वात्य ग्रन्थों का परिशीलन करते थे। इसी तरह पाश्चात्य राजनीति और व्यवहार नीति का भी वे प्रति दिन मनन करते थे। वे काव्यरस के बड़े भोक्ता थे और अपनी महारानी के साथ वे सदा काव्यरचना किया करते थे। कहते हैं कि उनकी कुछ कविताएं बहुत ही उत्कृष्ट हुई हैं। वे घोड़े पर बैठने में बड़े प्रवीण और बन्दूक का निशाना मारने में बहुत ही कुशल थे। इनके सिवाय जापानी मल्लविद्या में भी उन्होंने अच्छी पटुता सम्पादन की थी। वे सुबह बहुत जल्द उठते और पांच बजे घोड़े पर बैठ कर हवा खाने के लिए जाते हुए देख पड़ते थे। इसके बाद कुछ जलपान करके वे काम में लगते थे। इसी समय वे प्रधान और पार्लिमेंट के पास से आये हुए रिपोर्ट, परदेश से आये हुए तार; इत्यादि, हजारों कागजपत्र, पढ़ते और उन पर हुक्म चढ़ाते थे। कितने ही लोगों ने देखा कि आधी रात के समय, जब सम्पूर्ण जापानी राष्ट्र निद्रावश है तब, सम्राट् मुत्सुहितो सादे पहनाव में राजमहल के बाहर निकल कर हाते में, गूढ़ विचार में निमग्न हुए, घूम रहे हैं। ऐसे समय में कभी कभी उनकी महारानी भी उनके साथ रहती थीं; पर कहते हैं कि, अपने पति के विचार में विघ्न न पड़े, इस लिए वे स्वयं तब तक चुप बैठतीं जब तक कि स्वयं सम्राट उनसे न बोलने लगते। अपने सैनिक लोगों पर भी मुत्सुहितो का बड़ा प्रेम था। उनके खाने पीने आदि के प्रबन्ध पर वे स्वयं ध्यान रखते थे। यह देखने के लिए कि हमारी सेना के सिपाहियों के कपड़े और बूट कैसे हैं, वह सामान कैसा है जो उन्हें ढोना पड़ता है और उनके पास रहनेवाली बन्दूकें वजनदार तो नहीं हैं, मुत्सुहितो स्वयं साधारण सिपाही के कपड़े और बूट पहन कर, सामान और बन्दूक लेकर, राजमहल के बाहर निकलते थे और घंटों तक रास्ते रास्ते में घूम कर प्रथम स्वयं उस कष्ट का अनुभव कर लेते थे।

चीन-जापान और रूस-जापान के युद्ध-प्रसंग पर सम्राट् मुत्सुहितो, अपने सारे सुख-साज छोड़ कर, युद्धस्थल की छावनी में मामूली सिपाही की तरह जाकर रहे थे, और वहां से वे युद्ध के कार्यक्रम पर देखभाल रखते थे। चीन और रूस को पराजित करके जब जापान ने संसार को अपनी एकता और [illegible] का परिचय दे दिया तब इंगलैंड के समान राष्ट्र भी उसका [illegible] बन गया। यद्यपि जापान के लोग अपने राजा को ईश्वर का अवतार मानते हैं, तथापि सन् १९०६ में सम्राट् मुत्सुहितो का [illegible] के लिए प्रयत्न किया गया; परन्तु परमात्मा ने उस समय [illegible] रक्षा की।

मुत्सुहितो में दूरदर्शिता, राजनीतिज्ञता, कर्तव्यदक्षता और [illegible] त्याग, इत्यादि असाधारण गुण थे। उन्हींकी देखरेख में [illegible] के प्रोत्साहन और सहायता से जापानी लोगों का अभ्युदय [illegible] और एशिया के लोगों को महत्व प्राप्त हुआ। इसमें कोई [illegible] नहीं कि, जो उनकी मृत्यु से, सिर्फ जापानी लोगों ही को [illegible] किन्तु राष्ट्र और राष्ट्रभक्ति, सुधार और स्वतंत्रता के सब [illegible] सभी अभिमानियों को अत्यन्त दुःख हुआ। इंगलैंड के प्रधान [illegible] आस्क्विथ ने पार्लिमेन्ट में उनकी मृत्यु का उल्लेख करते समय [illegible] "जापान के सम्राट् मुत्सुहितो की मृत्यु से जगत् के [illegible] इतिहास के एक अत्यन्त संस्मरणीय शासन-काल का अन्त [illegible] है। साम्राज्याधिपति की सत्ता की दृष्टि से अथवा लोगों [illegible] की दृष्टि से इनके शासनकाल में, एक के बाद एक, जितने [illegible] हुए उतने संसार में इसके पहले कभी नहीं हुए। मुत्सुहितो [illegible] पचास वर्ष के भीतर यह अनुभव आ गया कि करीब हजारों [illegible] रूप, परन्तु बन्दोबस्त के साथ एकान्त में रही हुई, जो [illegible] ये वही हम आगे एक बलवान् और तरुण राष्ट्र के नियम [illegible] साम्राज्याधिपति हुए। इनके शासनकाल में जापान ने अपनी [illegible] एकदेशीयता का त्याग किया और स्थल तथा जल की सेना [illegible] में अपना नियमितपन और अलौकिक शौर्य दिखला कर [illegible] आज प्रमुख राष्ट्रमालिका के अग्रस्थान में आ बैठा है। [illegible] बलवान् राष्ट्रों के सब छोटे बड़े व्यवहारों में जापान का [illegible] निकट का महत्वपूर्ण सम्बन्ध हो गया है। जिसके एक ही [illegible] के शासनकाल में इतना व्यापक और, सिर्फ जापानी प्रजा [illegible] लिए नहीं, किन्तु सम्पूर्ण मानव जाति के लिए, इतना मार्ग [illegible] स्फूर्तिजनक सुधार हुआ हो, ऐसा कोई भी दूसरा राजा [illegible] में हमें नहीं देख पड़ता।"

मुत्सुहितो के बाद, उनके युवराज, योशीहितो अब जापान के सम्राट् (मिकाडो) हुए हैं।
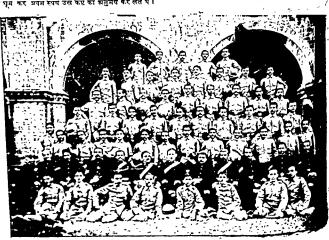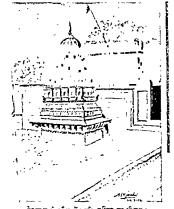
बम्बई के गान्धी वालंटियर्स।

पूने की मूठा नदी में बाढ़ !

श्री ओंकारेश्वर मन्दिर का अगला द्वार ।

देवालय के चौक में नन्दी-मन्दिर का शिखर ।

जुलाई को यहाँ की मुठा नामक नदी में बड़ी भारी बाढ़ आई। है कि १९११ वर्ष से ऐसी बाढ़ इस नदी में नहीं आई । यह शहर के निकट ही है, अतएव इस बाढ़ के कारण अनेक लोगों के घरों में पानी भर गया था । लोगों ने पहले ही से अपने अपने घर खाली कर दिये थे । इस लिए कोई हानि नहीं हुई । ओंकारेश्वर महादेव का एक प्राचीन मन्दिर भी इसी नदी के किनारे है । उसमें भी पानी भर गया था । जिस दिन यह बाढ़ आई उस दिन उक्त मन्दिर के आसपास बाढ़ का दृश्य देखने के लिए एक प्रकार का बड़ा भारी मेला ही लग गया था । अतएव, हम अपने पाठकों के मनोविनोदार्थ बाढ़ के समय के उस मन्दिर के दो दृश्य यहां पर देते हैं ।

कुमारी डा० नागूबाई जोशी।

कु० डा० नागूबाई अमरावती के प्रसिद्ध वकील श्रीयुत मोरो विश्वनाथ जोशी की ज्येष्ठ कन्या हैं । जोशी महाशय ने अपनी सब लड़कियों को उच्च श्रेणी की शिक्षा दे कर अपनी स्त्री शिक्षा विषयक प्रशंसनीय सहानुभूति को कार्यरूप में परिणत कर के दिखला दिया है । उसमें भी डा० नागूबाई ने उनके परिश्रम को और भी सार्थक कर दिया है । कुमारी नागूबाई अमरावती में प्रवेशिका की परीक्षा उत्तीर्ण हो कर डाक्टरी का अभ्यास करने के लिए बम्बई के ग्रांट मेडिकल कालेज में भरती हुई । यहां ४।। वर्ष रह कर उन्होंने सन् १९०७ में बम्बई विश्वविद्यालय की एल० एम० एण्ड एस० की परीक्षा पास की । इसके बाद सन् १९०८ में आप विलायत को चली गई । वहां लंडन और डबलिन के विश्वविद्यालयों में ४ वर्ष डाक्टरी का अभ्यास कर के आपने एल० आर० सी० पी०, एल० आर० सी० एस० और एल० एम० की बहुमान-सूचक पदवियां प्राप्त कीं । इसके लिए हम आपको और आपके पिता को हृदय से अभिनन्दन करते हैं ।

कुमारी डा० नागूबाई ६ अगस्त को स्वदेश लौट आई हैं और कुछ दिन विश्रान्ति करने के बाद आप शीघ्र ही बम्बई में डाक्टरी का व्यवसाय आरम्भ करनेवाली हैं । परमात्मा करे आपको अपने व्यवसाय में सफलता प्राप्त हो और सदैव आपके द्वारा स्वदेश और स्वधर्म की सेवा होती रहे ।

…के बाद मंगोल घराने के राजाओं का शासन-काल आया। …श के राजाओं ने ८० वर्ष राज्य किया। इस समय छापने की …ती दो प्रकार की थी। प्रदर्शिनी के नम्बर ६ में प्रसिद्ध और …त विद्वान् प्रकाशक हेनयू के प्रकाशित किये हुए ग्रन्थों का … है। इन ग्रन्थों की सम्पादकता च्यूसी नामक प्रख्यात विद्वान् …थ में थी। सन् १२०० में इस ग्रन्थकार की मृत्यु हुई। इन …में जो जगद की कोताही देखी जाती है वह उस समय की …का विशेष स्वरूप है। नम्बर ७ में जिन पुस्तकों का संग्रह है … अक्षर बड़े मोटे हैं और वे संग प्रणाली के अनुसार छपी … है। यह एक विस्तृत ऐतिहासिक ग्रन्थों का भाग है। यह सन् …२ में अर्थात् योरप में, मुद्रणकला प्रारम्भ होने के एक शतक … का छपा हुआ होगा।

…गोल लोग जब चीन देश से भगाये गये और तद्देशीय मिंग… का जब चीन में प्रवेश हुआ तब कुछ काल तक गिरी हुई चीनी …णकला का पुनरुज्जीवन हुआ और कैक्स्टन तथा युर्कान डीवार्ड …क प्रख्यात मुद्रणकला के आविष्कारकों के समय में अथवा … समय के लगभग चीनी मुद्रणकला उच्च दशा में थी। चीन …के विस्तृत इतिहास की एक पुस्तक च्यूसी नामक ग्रन्थकार …सिद्ध ग्रन्थों में है। यह पुस्तक सन् १४५६ में छाप कर इम्पी…ल पैलेस के पुस्तकालय के लिए प्रसिद्ध की गई। नम्बर ६ के …ों का मूल भाग मोटे अक्षरों में छपा हुआ है और उनकी टीका … अक्षरों में है। नम्बर १० की पुस्तक सन् १४८६ की छपी हुई … इसकी छपाई विशेष अच्छी नहीं। तथापि चीनी लाइब्रेरी की … एक, अत्यन्त प्राचीन, सचित्र पुस्तक है; अतएव यह बड़ी मनो…क है। इस पुस्तक के प्रत्येक पत्रे पर शाक्यमुनि बुद्ध के चरित्र-…यक कुछ प्रसंगों का एक एक 'वुडकट' दिया हुआ है और …के नीचे, उसके अनुसार, मूल ग्रन्थ का मुख्य भाग दिया है। …नम्बर १७ की पुस्तक सन् १६८१ की प्रकाशित हुई और बड़ी …चीन है। यह ग्रन्थ पहले पहल सन् १३३१ में छापा गया है। …में बहुत से 'वुड-कट्स' दिये हुए हैं। ये वुडकट्स् सद्धर्म पुंड-…क सूत्र के, चित्ररूप से स्पष्ट किये हुए, कुछ भाग हैं।

…टाइप का उपयोग चीन देश में ग्यारहवीं शताब्दी से होने लगा। …र उस समय पीशेंग नामक एक व्यक्ति ने, टाइप की सहायता …कुछ ग्रन्थ छापे। वुडब्लाक की प्रणाली का प्रचार नष्ट करने में …इप की नवीन प्रणाली का कुछ उपयोग नहीं हुआ। इस नवीन …णाली का प्रचार सिर्फ कोरिया में हुआ। अस्तु। सन् १६०० में …दैआमलिन का संस्मरणीय कोश प्रकाशित हुआ और यहीं इस …र्शनी की १३ वें नम्बर की पुस्तक है। नम्बर १२ की पुस्तक में धान लगाने और बुनावट के काम का सचित्र वर्णन है। यह उसकी पहली आवृत्ति है। यह ग्रन्थ राजा कंगसी ने स्वयं तैयार करके प्रकाशित किया है। इसी प्रकार का एक दूसरा ग्रन्थ यमपरर यन लंग के नाती का लिखा हुआ है। इसमें सूती कपड़े तैयार करने की रीति के विषय में कुछ चित्र दिये हैं।

कपड़े पर भिन्न भिन्न रंग चढ़ाने की कला के आविष्कार करने का श्रेय जापानी लोगों को है। इस काम में जापानी लोगों ने खूब उन्नति की। नम्बर १६ से २४ तक चीनी लोगों की ड्राइंग की पुस्तकें हैं। इन पुस्तकों के अगले भाग सन् १६७१ से १७०१ तक प्रसिद्ध हुए हैं। इन पुस्तकों में पक्षी, वनस्पति, इत्यादि भिन्न भिन्न रंगों में बहुत ही मनोरंजक रीति से दिखलाये गये हैं। जापान का पहला, भिन्न भिन्न रंगों में चित्र छापनेवाला, चित्रकार 'कीओनोबू' है। यह सन् १७१० से १७६१ तक प्रसिद्ध रहा।

इससे पाठकों को मालूम हो जायगा कि रंगीन काम छापने की कल्पना पहले पहल चीन में निकली। चीनी लोगों से, फिर यह कल्पना, यूकीयोई-पंथ के जापानी चित्रकलामिज्ञों ने ग्रहण की। नम्बर २० की पुस्तक एक बड़ा कोश है। यह पुस्तक सन् १७२६ में, दो लाख ताँबे के टाइप ढाल कर, उनकी सहायता से छापी गई है। साधारण अनुमान है कि इन्साइक्लोपीडिया की अर्वाचीन आवृत्ति का विषय इस प्रचण्ड ग्रन्थ में है। इस ग्रन्थ के बड़े भाग, बहुत से चित्र देकर, स्पष्ट किये गये हैं। इस ग्रन्थ की दूसरी आवृत्ति की एक जिल्द ब्रिटिश म्युज़ियम में है। यह आवृत्ति सन् १८६४ में अथवा उसके करीब, वुडनब्लाक्स् बना कर, प्रकाशित की गई है।

प्रदर्शिनी में जापानी सचित्र ग्रन्थों का भी संग्रह किया गया है। इनमें से पहला ग्रन्थ सन् १६०८ में लिखा हुआ 'ईसेमनो गतरि' नामक एक उपन्यास है। इसमें मध्यकालीन वीरता का वर्णन है। सन् १७३० और १७७१ में प्रकाशित हुई पुस्तकों से, रंगीन छपाई की पुस्तकों के प्रकाशित करने का काम आरम्भ होता है। जब टोरियामा, सेकियेन और उसके प्रसिद्ध शिष्य उतामारो की रंगीन छपाई की तुलना की जाती है तब बड़ा कौतुक होता है। उसमें भी जब यह मालूम होता है कि ये दोनों चित्रकार बाप-बेटे हैं तब तो और भी कौतूहल होता है। नम्बर १६ की पुस्तक में येडो प्रान्त के दृश्य दिखलाये गये हैं। ये दृश्य टोयोक्यूनी नामक चित्रकार ने, अपनी बिलकुल तरुणावस्था में, बनाये हैं। नम्बर २१ और २२ की पुस्तकों में कुनीशादा नामक चित्रलेखक ने चित्रकला की कुशलता उत्तम रीति से दिखलाई है।

परलोकवासी ह्यूम महोदय।

भारत के हित-चिन्तक और राष्ट्रीय सभा के एक उत्पादक मि० …गत ३१ जौलाई को परलोकवासी हुए। …का संक्षिप्त चरित आज हम अपने पाठकों … समर्पण करते हैं।

मि० ह्यूम का जन्म सन् १८२९ में हुआ। इनके … डा० जोसेफ ह्यूम 'आर० एम० एस०' की …रक्षा पास करके भारत के सरकारी वैद्यक वि…ग में नौकरी करने के लिए आये। नौकरी की …वधि समाप्त करके, स्वदेश लौट जाने पर, वे …उस आफ़ कामन्स' के सभासद हुए। वे … उदार मत के थे। उनकी राय थी कि सब …गों का सुधार हो, उदार मतों का प्रचार हो … राज्य-कार्य में कम व्यय किया जाया करे। …ने निर्भीक थे कि उन्होंने पार्लिमेंट के सभा-… की हैसियत से यह सूचना भी कर दी कि …रानी विक्टोरिया के पति प्रिंस अल्बर्ट की … पेंशन बहुत कम कर देना चाहिए। डा० … अध्याय से बहुत चिढ़ते थे, और स्वयं … करके भी वे दीन दुःखों की सहायता …ते थे। स्वर्गीय ह्यूम महोदय ऐसे पिता के पुत्र … अतएव उनमें सद्गुणों का वास होना स्वाभा… ही था।

…न के 'युनिवर्सिटी कालेज-स्कूल' और …र इंडिया कम्पनीज़ कालेज' में हमारे चरि… एक मि० ह्यूम ने शिक्षा प्राप्त की। बाद … बीस वर्ष की उम्र में अर्थात् १८४९ में … भारत की सिविलसर्विस में भरती हुए। …त वे बहुत बड़े पदाधिकारी … [illegible] ने … [illegible] … [illegible]

[illegible]

[illegible] … तिगा, थानेदार, इत्यादि के काम किये। इसके बाद वे 'असिस्टंट मैजिस्ट्रेट एंड डिप्टी-कलेक्टर' की जगह पर नियत किये गये। बलवे के साल में वे इटावा के 'ज्वाइंट मैजिस्ट्रेट एंड डिपुटी-कलेक्टर' थे। बलवे में इनका वध करने के लिए बलवाई लोग इन्हें ढूँढ़ते फिरते थे, पर उस समय कई देशी सरदारों और एक ग्रामीण पुरुष ने इनके प्राण बचाये। मि० ह्यूम को इस आपत्ति से बचने के लिए भारतीय कपड़े पहनने पड़े थे। इटावा से भागने के बाद वे छः महीने आगरे में रहे। तत्पश्चात् लार्ड केनिंग के हुक्म से दिसम्बर मास में वे फिर इटावा में आये और राजभक्त रहे हुए भारतीय लोगों की एक पैदल और घुड़सवार सेना तैयार करके उन्होंने उनकी राजभक्ति से अच्छा लाभ उठा लिया। इसके उपलक्ष में इन्हें कमांडर आफ़ बाथ (C. B.) की पदवी मिली। सन् १८६३ में वे … प्रान्त, पञ्जाब और मध्यप्रान्त के 'कमिश्नर आफ़ कस्टम्स' हुए और सन् १८७०-७१ में वे भारत सरकार के रेवन्यू डिपार्टमेण्ट के सेक्रेटरी बनाये गये। इसके बाद … [illegible] … [illegible] … [illegible] … [illegible] हुए। सन् १८८२ में इन्होंने … [illegible] … वर्ष की उम्र में पेंशन प्राप्त की। … [illegible] … [illegible] … [illegible] … [illegible]

[illegible]

ोग सिर्फ गप्प समझते थे। परन्तु अब कई विश्वसनीय प्रमाणियों ने उसका यह जलसा प्रत्यक्ष देखा है, अतएव अब उसमें शंका करने की जगह नहीं रही।

जंगली शिंपजी का इससे अधिक हाल अभी तक नहीं जाना गया। परन्तु पली हुई दशा में ये बन्दर, जो कुछ कर सकते हैं वह बहुत कुछ बतलाया जा सकता है। शिंपजी बन्दर ताले में चाभी ––र कर ताला खोलते हैं; गीले कपड़े निचोड़ते हैं, मालिक के

ख

रों से बूट निकाल कर उन्हें नियत स्थान पर रखते हैं; गीले कपड़े से खिड़कियों के शीशे पोंछ कर स्वच्छ करते हैं और भी इसी प्रकार के अनेक घर के काम काज शिंपजी बन्दर, सिखाने पर, कर सकते हैं। इस जाति के बन्दर ज़मीन पर उताने या करवट लेकर सोते हैं। ये लोग सोते समय तकिया भी लगाते हैं। इस जाति का बन्दर

(ग)

–र फीट तक बड़ा होता है। (ख) नम्बर का चित्र इसी जाति का है।

ओरंगउटन बन्दर का आकार साढ़े चार फीट से कुछ अधिक होता है। इसकी छाती का घेर करीब साढ़े तीन फीट होता है। शिंपजी के कान बड़े होते हैं और उसके शरीर के बाल काले रंग के होते हैं; परन्तु ओरंगउटन के कान छोटे और बाल भूरे रंग के होते हैं। इसी भेद से इन दो जातियों के बानर पहचाने जाते हैं। ओरंग-

उटन जाति के बन्दर हिन्द महासागर के सुमात्रा और बोर्नियो के टापुओं में पाये जाते हैं। ये बन्दर वृक्षों की डालियों पर अपना बहुत सा समय व्यतीत करते हैं। सिर्फ पानी पीने के लिए इन्हें पृथ्वी पर उतरना पड़ता है।

ये बन्दर वृक्षों की डालियां तोड़ कर उन्हें वृक्षों के दुभागों पर, पलँग के आकार में, रख कर उस पर उताने सोते हैं। (ग) नम्बर के चित्र में, एक लड़के के साथ, इस बन्दर का दृश्य दिखलाया जाता है।

घ

पली हुई दशा में ये बन्दर बड़े प्रेमी होते हैं और मनुष्यों के बीच में रहना इन्हें पसन्द भी आता है। खेल करके धन कमानेवाले लोग इन्हें नाना प्रकार के काम सिखाते हैं और ये बन्दर कोई १८।२० ही दिन में बड़ी सफाई के साथ खेल के बहुत से काम करने लगते हैं।

गिबन बन्दर के हाथ बड़े लम्बे होते हैं। इसके शरीर का रंग काला होता है; परन्तु हाथों और पैरों के तलवे तथा मुहँ अवश्य ही सफेद होता है। (घ) नम्बर का चित्र इसी बन्दर का है।

पं० प्रतापनारायण मिश्र की

कहावतें।

१

बिन व्यवहार कुसलता सीखे,
होइहि कछु न पढ़े औ लिखे।
हँसिहैं बात बात पर लोग,
"ब्राह्मन साठ बरस लग पोंग॥"

२

काम निकासिय साम दाम भय भेद से,
सह सँग इक से रहन सहन सब खेद से।
पर कस सखि चलिहो चतुरन की चाल है,
"आँधर बैल भँवाय के जोता जात है"॥

३

आपन चरित सुधारत नाहीं,
जग कहँ उपदेसत न लजाहीं।
धिक पंडितपन धिक चतुराई,
"बाभिन के जोगी माई माई॥"

साहित्य-चर्चा।

१ सत्यग्रन्थमाला—हमारे पाठकों को मालूम होगा कि यह ग्रन्थमाला महाशय सत्यदेवजी ने निकाली है। प्रति मास इस ग्रन्थमाला का कोई न कोई सुन्दर ग्रन्थ-पुष्प आर्यभाषा-संसार को सौरभित करने के लिए विकसित होता है। अब तक इस ग्रन्थमाला के कुल पांच ग्रन्थ निकल चुके हैं:- (१) अमरीकापथप्रदर्शक; (२) आश्चर्य-जनक घंटी और अन्य रोचक कथाएं, (३) अमरीका दिग्दर्शन; (४) अमेरिका के निर्धन विद्यार्थियों के परिश्रम, और (५) जातीय शिक्षा। छठवां ग्रन्थ "मनुष्य के अधिकार" निकलने वाला है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि ये सभी ग्रन्थ प्रायः अपने अपने ढँग में अनूठे हैं। कर्तव्यजागृति और स्वदेशाभिमान की शिक्षा से ये पुस्तकें परिप्लुत हैं। परन्तु श्रीयुत सत्यदेवजी को, पुस्तक लिखते समय, अपने देश की सामाजिक, राजनैतिक और शिक्षाविषयक दशा पर विशेष ध्यान रखना चाहिए; क्योंकि अमेरिकन स्थिति के जोश में आकर, कभी कभी आप स्वकीय देशदशा से बहुत दूर निकल जाते हैं। अस्तु। प्रत्येक देशभक्त स्त्री-पुरुष को इस ग्रन्थमाला का प्रचार करके सत्यदेवजी का उत्साह बढ़ाना चाहिए। वार्षिक मूल्य ४) रु०। मिलने का पता - मैनेजर सत्यग्रन्थमाला काशी।

२ लिपिबोध—(१) आकृति खण्ड, और (२) विवरण खण्ड-लेखक पं० गौरीशंकरजी भट्ट। मूल्य दोनों भागों का मिल कर १।≡)। भट्टजी नागरी अक्षरों को सुन्दरता के साथ लिखने में बहुत प्रसिद्धि पा चुके हैं। आपके इसी गुण पर लुब्ध होकर गुरुकुल काँगड़ी ने आपको अपने यहां सुलेखाध्यापक के पद पर नियत किया है। आपने लिपिबोध के आकृतिखण्ड में रेखाओं से लेकर अलंकृत अक्षरों तक की आकृतियां वैज्ञानिक रीति से दिखलाई हैं। प्रत्येक अक्षर की बनावट-उसकी मोड़ इत्यादि-[illegible] दिखला कर उसके बनाने का ढँग बतलाया है। अलंकृत अक्षरों की आकृतियां देखते ही बनती हैं। लिपिबोध के विवरण-खण्ड को आकृतिखण्ड की कुंजी कह सकते हैं। इस खण्ड में प्रत्येक आकृति को अच्छी तरह समझाया है। भट्टजी महाशय ने "ओ३म्," "स्वागतम्," "वर्णमाला," "ज्ञानमय," इत्यादि भी रंगीन कागज पर अलंकृत अक्षरों में बहुत सुन्दर बनाये हैं। भट्टजी के पास ये सब चीजें गुरुकुल, कांगड़ी, [illegible] के पते पर मिल सकती हैं।

३ श्रीरामकृष्ण परमहंस का चरित्र—[illegible]शक श्रीयुत आनन्दमोहन चौधरी। मूल्य [illegible] आना। इस पुस्तक में प्रस्तावना, जन्मविध[illegible], ईश्वरानुराग, साधनावस्था, ईश्वरो[illegible] और लोकशिक्षा, इत्यादि, विषय[illegible] करके परमहंसजी का अलौकिक [illegible] वर्णन किया गया है। पुस्तक के अन्त [illegible] सुन्दर कविताएं भी दी हुई हैं। एक[illegible] पं० सिद्धिनाथजी दीक्षित की और [illegible] "वि० म० ज०" सम्पादक की लिखी हुई [illegible] प्रत्येक मुमुक्षु को इस महात्मा का चरित्र [illegible] जीवन पवित्र करना चाहिए। प्रका[illegible] राम लोनावर्डी, नागपुर के पते पर [illegible] मिल सकती है।

[illegible] सम्राट पंचम जार्ज—लेखक श्रीयुत [illegible]नारायण वाजपेयी। इस पुस्तक में सम्राट [illegible] का बड़ी मनोरञ्जक [illegible] रीति से वर्णन किया गया [illegible] है मानो विषयक अवश्यक [illegible]

पचन भी बीच बीच में दिये हैं। पुस्तक उपयोगी है। इस ३५ पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य ।) आना कुछ अधिक जान पड़ता है।

५ प्राचीन भारतवासियों की विदेश-यात्रा और वैदेशिक व्यापार—लेखक पं० उदयनारायण वाजपेयी। पुस्तक का विषय उसके लम्बे चौड़े नाम ही से प्रकट है। आर्यभाषा के साहित्य में यह पुस्तक अपने ढँग की नवीन और महत्वपूर्ण है। इसके पढ़ने से आर्य पाठकों को अपने पूर्वजों का गौरव भली भांति मालूम हो सकता है। यह पुस्तक सम्भवतः किसी बंगाली ग्रन्थ के आधार पर लिखी गई है। इस ७१ पेज की पुस्तक का मूल्य भी वही ।।) आने हैं। ये, ४ और ५ नं० की, दोनों पुस्तकें "मैनेजर हिन्दी ग्रन्थप्रकाशक मंडली औरैया जि० इटावा" के पते पर मिल सकती हैं।

६ घेरण्डसंहिता—अनुवादक स्वामी रामचरण पुरी। प्रकाशक पं० धर्मदत्त त्रिपाठी केशव यंत्रालय काशी। पृष्ठसंख्या १४२। मूल्य एक रुपया। इस पुस्तक में आसन, मुद्रा, इत्यादि, योग के विषयों का संस्कृत में वर्णन है। आर्यभाषा में अनुवाद भी है। योग के प्रेमियों को अवश्य देखना चाहिए।

७ तुलसीराम स्वामी के चार व्याख्यान—आर्यसमाज के प्रसिद्ध विद्वान् पं० तुलसीरामस्वामी ने 'वैदिक देवपूजा,' 'ईश्वर और उसकी प्राप्ति,' 'मुक्ति और पुनर्जन्म' तथा 'नमस्ते,' पर जो व्याख्यान समय समय पर दिये हैं उन्हींका इस पुस्तक में संग्रह है। प्रत्येक आर्य को इन विषयों का विचार करना चाहिए। १२७ पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य ।) आने। मिलने का पता स्वामिमेशीन प्रेस मेरठ।

८ महिला प्रबोधिनी—यह पुस्तक श्रीलक्ष्मीनारायण गुप्त रईस, सिकन्दराराऊ की धर्मपत्नी श्रीमती चन्द्रावती की रची हुई है। बाबू व्रजलाल पंड्या को अलीगढ़ के पते पर मिलती है। इस छोटी सी पुस्तक में स्त्रियों के जानने योग्य अनेक बातों का समावेश हुआ है।

९ श्रीराघवगीत—श्रीयुत प्रयागनारायण मिश्रकृत। मूल्य ।-) आने। मिलने का पता-चौधरी विश्वनाथ मिश्र, दौलतगंज, लखनऊ। श्रीरामचंद्र महाराज की भिन्न भिन्न चारित्र-घटनाओं पर गीत रच कर, उन्हींको इस पुस्तक में संग्रह किया गया है। यद्यपि ग्राम्य शब्दों के बाहुल्य के कारण इन गीतों की रमणीयता में बड़ा धक्का पहुँचा है, तथापि श्रीरघुनाथ के अनन्य भक्तों को, इस पुस्तक में भी, आनन्द आ सकता है।

१० विभक्तिविचार—लेखक पं० गो[illegible]विन्द नारायण मिश्र। कुछ काल पूर्व आर्यभाषा-संसार में विभक्ति-विषयक वाद-विवाद समाचारपत्रों में हुआ था। उस समय मिश्रजी ने एक समाचारपत्र में जो लेख लिख कर अपनी लेखनी का सामर्थ्य दिखलाया था उन्हीं लेखों का इस पुस्तक में संग्रह है। हमारी सम्मति में यदि मिश्र जी अन्य किसी उपयोगी विषय में कोई ग्रन्थ लिख कर अपना लेखनकौशल दिखलाते तो आर्यभाषा-साहित्य को इससे अधिक लाभ पहुँचता। यह पुस्तक ।) आने में मिश्रजी से, नं० ११ नारायणप्रसाद [illegible] स्ट्रीट, की गली, कलकत्ता के पते पर मिल सकती है।

११ नाटक रामायण—गोस्वामी नारायण [illegible] । मूल्य ।॥)। मिलने का पता-[illegible] सुन्दर शृंगारवाचनामय [illegible]। इस पुस्तक में मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचंद्रजी महाराज का चरित्र नाटक की रीति से दिखलाया गया है। [illegible] मंडलियों [illegible]

पुस्तक बहुत उपयोगी है और [illegible] लोगों के लिए भी इसमें मनोरंजन [illegible] देश की बहुत सी सामग्री है। पु[illegible] रामलीलाविषयक चित्र भी हैं।

जैनानिबन्धरत्नाकर—इस ग्रन्थ [illegible] हैं श्रीयुत कस्तूरचन्द जवरच[illegible] । यह ग्रन्थ 'हिन्दी-जैन' के ग्राहक[illegible] उपहारस्वरूप दिया गया है। जैनहि[illegible] आकार के लगभग ३४० पृष्ठों में ग्रन्थ [illegible] हुआ है। श्वेताम्बराचार्यों और धर्म[illegible] कोई ६ चित्र भी हैं। इसमें सत्तत्वमी[illegible] केवलचन्द गणि का जीवनचरित्र, मृत्यु [illegible] तुक्ता (तेरही) तथा रात्रिभोजन का [illegible] मनोनिग्रह, जैनशब्द का महत्व, शिक्षासु[illegible] ईश्वरभक्ति, देवगुरुधर्म का स्वरूप और [illegible] विजय सूरि का चरित्र इन ९ निबन्धों का सं[illegible] है। दो तीन निबन्धों को छोड़कर शेष निबन्धों की भाषा हिन्दी नहीं, किन्तु हिन्दी, गुजराती और मारवाड़ी की खिचड़ी है। उनमें सैकड़ों शब्द ऐसे आये हैं, जिन्हें हिन्दीवाले शायद ही समझें। वाक्यरचना और मुहाविरे भी कुछ विलक्षण ढंग के हैं। कुछ नमूना लीजिये-"[illegible] बाबद नीचे की गुजराती कविता ज्यादा स[illegible] मझ में आवेगा इससे हरेक बान्धवों को [illegible] बांचने की प्रार्थना है।" (पृ० १५८) "[illegible] कौम की जाहोजलाली बिलकुल नष्ट हो [illegible] है।" (१४७) "बहोत बूमड़े बाजार में [illegible] से भरे हुए प्राणी का चित्त भंग हो जाता है। जरासा ठंडा विचार करके देखा जावे [illegible] में मनुष्य को रीतिसर चलना चाहिये, [illegible] न करते हाल की वक्त में अलग वर्ताव होता है।" (१७४) इत्यादि। प्रूफ संशोधन में भी बहुत अशुद्धियां रह गई हैं। सत्तत्त्वमीमांसा आदि दो तीन निबन्धों को छोड़कर शेष नि[illegible]बन्धों की रचना बेसिलसिले, गौरवहीन और महत्त्वहीन मालूम पड़ती है। 'जैनशब्द का महत्त्व' नामक निबन्ध अपने शीर्षक से बहुत कम सम्बन्ध रखता है। 'ईश्वरभक्ति' का निबन्ध पढ़ कर हमको केवल दुःख ही नहीं आश्चर्य भी हुआ। उसमें डंके की चोट 'एकेश्वरवाद' की पुष्टि की गई है, जो कि जैन धर्म के सिद्धान्त से सर्वथा विरुद्ध है। उसमें साफ साफ कहा गया है कि, सृष्टि की सारी बातें नियमपूर्वक होने के लिये एक [illegible] की आवश्यकता है और वह ईश्वर है। [illegible] एक ईश्वर नहीं मानते हैं, वे ईश्वर माननेवालों की अपेक्षा घाटे में रहते हैं और [illegible] होते हैं। हम नहीं कह सकते, सम्पादक महाशय ने यह लेख आंख बन्द करके कैसे प्रकाशित कर दिया। आपको सोचना चाहिए कि, साधारण बुद्धि के जैनियों पर [illegible] कितना बुरा प्रभाव पड़ेगा। कहां तो जैनी [illegible] उद्योग कर रहे हैं कि, दूसरे लोगों के [illegible] से कर्त्तावाद की भ्रमवासना निकल [illegible] और कहां एक जैनपत्र के सम्पादक के द्वारा [illegible] लेख प्रकाशित होते हैं, जिससे जैनी भी [illegible]वादी बन जावें।

—[illegible]

प्राप्तिस्वीकार।

मेरठ के प्रसिद्ध वैद्य पं० सूर्यप्रसाद [illegible] कृपापूर्वक, हमारे पास "हिमसागर [illegible]" "नयनामृत अंजन" और "[illegible] यन" नामक तीन औषधियां भे[illegible] उनकी हमने स्वयं परीक्षा की और [illegible] गुणकारी पाया। पं० सूर्यप्रसादजी [illegible] वर्षों से अपनी आयुर्वेदिक [illegible] से संसार का उपकार कर रहे हैं। [illegible] आप को बहुत दिन से जानते हैं। [illegible] आपके [illegible]

वार्षिक मूल्य

मामूली कागज़ की प्रति–सवा तीन रुपये।
एक प्रति का मूल्य–साढ़े चार आने।
मोटे और चिकने कागज़ (आर्टपेपर) की
प्रति–साढ़े पांच रुपये।
एक प्रति का मूल्य आठ आने।

वर्ष २ अंक ९

भाद्रपद, सम्वत १९६९ विक्रमी–सितम्बर, सन् १९१२ ई०।

चित्रशाळा
स्टीमप्रेस
फोटोएनग्रेव्हर्स पूनासिटी
आणि

सूची।

चित्रमयजगत् के नियम।

ग्राहकों के लिये।

१. प्रति मास इस पत्र के दो संस्करण निकलते हैं। एक साधारण मोटे और चिकने कागज पर और दूसरा बहुत मोटे और चिकने कागज (आर्टपेपर) पर। साधारण कागजवाले का अग्रिम वार्षिक मूल्य डाकव्यय सहित ३।) रु० और एक संख्या का मूल्य ।)॥ तथा आर्टपेपरवाले संस्करण का वार्षिक मूल्य ५॥) और एक संख्या का मूल्य ॥) है।

२. ग्राहकों को अपना नाम और पता स्पष्ट देवनागरी अक्षरों में लिखना चाहिये। दो एक मास के लिए पता बदलवाने को डाकघर से प्रबन्ध कर लेना चाहिये और यदि अधिक समय के लिये पता बदलवाना हो तो हमें सूचना देनी चाहिये। ग्राहक-नम्बर अवश्य लिखना चाहिये।

लेखकों के लिए।

१. इस पत्र में बहुधा छोटे छोटे शिक्षाप्रद मनोरंजक और सचित्र ही लेख प्रकाशित होते हैं। इस लिए लेखकों को चाहिए कि उक्त गुणों से विहीन लेख भेजने का कष्ट न उठावें। किसी लेखक का कोई लेख किस अंक में प्रकाशित होगा-इसका कोई निश्चय नहीं।

२. लेखों के घटाने-बढ़ाने, लौटाने अथवा न लौटाने, और प्रकाशित करने या न करने का सब अधिकार सम्पादक को है। जो लेखक अपने लेख वापस चाहें उन्हें डाकव्यय अवश्यही भेजना चाहिए। पत्र का उत्तर टिकट या जवाबी कार्ड मिलने पर दिया जाता है, अन्यथा नहीं।

विज्ञापनदाताओं के लिए।

१. एक मास	चार पंक्ति	१) रु०
तीन „	„	२॥) „
छै „	„	४) „
बारह „	„	६) „
एक वर्ष एक कालम=१२×३(रु१००)		„
छै मास	„	६०) „
तीन „	„	३५) „

२. विज्ञापन छपाई का रुपया अग्रिम लिया जाता है। अधिक जानने के लिए पत्रव्यवहार कीजिए।

मैनेजर-हिन्दी-चित्रमयजगत्, पूना सिटी।

पण ने क्या दिया? उन्होंने एक पत्ते में चुपके से राम-नाम लिख कर उसे वह पत्ता दे दिया और कहा, "इसे चुपके अपने कपड़े में मजबूती के साथ बांध लो। इसके योग से तुम निश्चिन्त समुद्र को पार कर सकोगे। परन्तु यह ध्यान में रखना कि यह पत्ता खोल कर देखना न चाहिए। जहां तुमने उसे खोल कर देखा कि बस गये पाताल को!"

उस भक्त ने अपने मित्र के वचनों पर विश्वास (श्रद्धा) रखा। और सुरक्षित रीति से वह कुछ देर तक समुद्र में चलता गया। परन्तु पीछे से, दुर्भाग्यवश, उसे दुर्बुद्धि सूझी। और उसके सिर में यह कल्पना उठी कि जिसके सामर्थ्य से इतना बड़ा समुद्र सहज ही पार किया जा सकता है वह कौन सी ऐसी चीज है, उसे देखना चाहिए। उसने वह पत्ता खोला और तुरन्त ही समुद्र के पेट में वह चला गया!

अतएव, श्रद्धा कर्तुमकर्तुं समर्थ है। उसके सामने सृष्टि के सम्पूर्ण बल लड़खड़ा कर लँगड़े हो जाते हैं! उसके बल पर आप, बिना किसी डर के और सुरक्षित रीति से, मेरु का उल्लंघन कर सकते हैं, समुद्र पार कर सकते हैं। यही नहीं; किन्तु पाप, अन्याय, अज्ञान, संसारासक्ति, इत्यादि सब उसके सामने से डर कर भागते हैं।

देखिये, श्रद्धा के बल का आश्रय मिले बिना धर्ममार्ग का आक्रमण कदापि नहीं हो सकता। चाहे और कुछ न हो, केवल श्रद्धा चाहिए।

परमात्मा पर श्रद्धा रखना चाहिए, इससे तत्काल ही सम्पूर्ण पाप भस्म हो जाते हैं।

मेरी माता का—विश्वेश्वरी का—भक्त इस लोक में भवबन्धन से छूटता है—जीवन्मुक्त होता है। वह केवल आनन्दस्वरूप ही रहता है।

मुख्य श्रद्धा चाहिए। वैसी ही भक्ति भी। ईश्वर की सहायता बिना—साक्षात्कार बिना—सिर्फ विचार के—सदसद्विवेक के—बल पर माता की प्राप्ति होना, विशेषतः इस कलियुग में, अत्यन्त कठिन है।

इतना कह कर महाराज ने एक गीत गाया। उसे सब लोग तद्रूप वृत्ति से सुनने लगे। प्रत्येक का हृदय भर आया। गीत समाप्त होने पर कोई कुछ नहीं बोला। बिलकुल स्तब्धता छाई हुई थी। महाराज का मन बड़ी देर तक माता के पदकमलों में लगा रहा।

× × × ×

महाराज—(विद्यासागर से) अच्छा, देवता के सम्बन्ध में आपका क्या विचार है?

पंडित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर।

विद्यासागर—(सब लोगों की ओर एक बार दृष्टि डालकर)—माफ कीजिए, महाराज, इस विषय में आप से बातचीत करने के लिए मुझे अकेले ही कभी न कभी कोई मौका निकालना चाहिए। (हँसी)

महाराज—आपको यह सब अवश्य ही मालूम होगा। परन्तु, सिर्फ आपको उसकी कुछ बहुत कीमत नहीं जान पड़ती। सागराधिपति वरुण की सम्पत्ति अगणित होती है—न जाने कितना सोना, हीरे, माणिक, इत्यादि उसके अधिकार में होते हैं। पर, यह थोड़े ही है कि उस सागराधिपति को अपने साम्राज्य के—अपने रत्नाकर के—सम्पूर्ण रत्नों की जानकारी हो! (हँसी)

अच्छा, किसी धनवान् जमींदार ही का लीजिए। कभी कभी तो उसे अपने नौकरों के ठीक ठीक नाम भी मालूम नहीं रहते! (हँसी) यह जमींदार समझता है कि ऐसे हलके लोगों से परिचय रखना अपने बड़प्पन में बट्टा लगाना है! (हँसी)

× × × × ×

महाराज—(विद्यासागर से) आप क्या एक बार दक्षिणेश्वर के बाग में न आवेंगे? वह रम्य स्थान है, बहुत ही भव्य और सुन्दर है।

विद्यासागर—अवश्य! आप, कृपा करके, जब हमारे यहां पधारे, तब आपकी भेंट के लिए आना क्या मेरा कर्तव्य ही नहीं?

[महारा]ज—(हँस कर) यह देखिये, पंडितजी, मैं आपको बतलाये देता हूँ। हम ठहरे मछुआरों की डोंगियां, छोटी हलकी—चाहे जहां जाने के लिए तैयार हैं! (हँसी) और आप बड़ी नाव की तरह! आप यदि नदी में इधर उधर आने लगें तो कौन कह सकता है, आप कदाचित् बालू की किसी रेती में हम धर रहें! (हँसी)

विद्यासागर—(हँस कर)—हाँ, ठीक ही है। मैं पानी खाल ही में बसता हूँ! (हँसी)

प्रयाण।

रात के आठ बजने आये। दक्षिणेश्वर के मन्दिर में महाराज को ले जाने के लिए गाड़ी तैयार हुई। महाराज कुछ देर के लिए ... हुए। उन्होंने माता का ध्यान किया होगा। अपने यजमान (... जी)पर कृपादृष्टि रखने के लिए उन्होंने माता की प्रार्थना तो नहीं ...

यह श्रावण महीने का कृष्ण पक्ष था। महाराज चलने के ... उठे। विद्यासागर हाथ में लालटेन लेकर महाराज के आगे ... जीने से उतर कर अपने हाते से फाटक तक आये। वहीं ... और उनके शिष्यों को ले जाने के लिए गाड़ी खड़ी थी।

ये लोग जब फाटक के पास आये तब उन्हें वहां एक विचित्र दृश्य देख पड़ा। करीब ४० वर्ष के घर-बारवाला एक मनुष्य ... खड़ा था। वह अपने दोनों हाथ जोड़े हुए था। वह सब सफेद ... पहने हुए था और सिक्खों का सा साफा बांधे हुए ... हास्ययुक्त, रंग गोरा और नेत्र तेजस्वी थे। महाराज को ... वह, भारी साफा से युक्त अपना शिर पृथ्वी पर लचा कर ... चरणों में लीन हुआ।

महाराज—कौन? बलराम, क्या तू है? अरे, तू यहां ...

बलराम—(हँस ...) महाराज, आपके दर्शन के लिए मैं इस ... पास, बड़ी देर से खड़ा ...

महाराज—अरे, फि[र] क्यों नहीं आया?

बलराम—(हँस ...) देर से आया, इसलिए उचित नहीं समझा कि ... ही आकर आपको कष्ट ... लिए यहीं खड़ा रहा।

× ×

महाराज शिष्यवर्ग के ... गाड़ी में बैठे।

विद्यासागर (धीमे ...) गाड़ीवाले को मैं भाड़ा ...

एम्—अहँ! पंडितजी ... तकलीफ न कीजिए। भा[ड़ा] ... एक ने पहले ही दे दिया ...

इसके बाद पंडितजी ... जोड़ कर और कई बार ... कर महाराज को प्रणाम ... अन्य लोगों ने भी ऐसा ... किया। गाड़ीवाले ने चाबुक लगा कर घोड़े छोड़ दिये, और ... उत्तर की ओर जाने लगा।

हाथ में लालटेन लिए हुए पंडित विद्यासागर, फाटक के पास ... हुए अन्य लोगों के साथ कुछ देर तक उसी तरफ देखते रहे। ... रे चकित उनके मन में ऐसे विचार आये,—देखिये तो ... कफन में रँगे हुए मनुष्यों को! इतना ज्ञानी है, पर ... सरल है! कितना मृदुल! कितना आनन्दी! कितना ... परायण है!

गृहस्थी का भार ढोते हुए सूख कर भूनवत् हो ... के लोगों में संजीवनी भर कर उन्हें तेजःसम्पन्न बनाने ... क्या प्रत्यक्ष विधाता ने ही तो इसके रूप में अवतार नहीं ... मनुष्य के शुष्क और तृषाक्रान्त हृदय में ओस के ... लाने के लिए क्या स्वयं प्रेम ने ही तो मूर्तस्वरूप धारण नहीं ... हताश और आतुर होनेवाले मनुष्य से यह कहने के लिए ... "बेटा, पुनर्जन्म लेकर तुम्हें शुरू से फिर प्रेम (अर्थात् ... करना सीखना चाहिए" यह आकाशवाणी तो नहीं ... अथवा आधुनिक विचित्र सुधार के मद्य से उन्मत्त होनेवालों ... आंखों में नया अंजन लगाने के लिए परलोक से यह कोई ... आया है? अथवा, ब्रह्माण्ड का कूटक हल करके समझानेवाला ... कोई विभूति है? हम इसे क्या कहें?

अमेरिका में कृषि-शिक्षा और उसके साधन।

नं० २

(श्रीयुत अनंत माधव गुर्जर, बी० एस० सी०, अमेरिका।)

राष्ट्रीय और प्रान्तिक सरकारों के मेल से जो कृषि-कालेज खोले गये हैं वे कृषिशिक्षा का प्रचार करनेवाली दूसरी महत्वपूर्ण संस्थाएं हैं। ये कालेज प्रत्येक रियासत में राष्ट्रीय राजनियम से स्थापित हुए हैं। कई रियासतों में ये कालेज स्वयं रियासत की युनिवर्सिटी में शामिल हैं। जिस प्रमाण से रियासत की सरकार इन कालेजों को आर्थिक सहायता करती है उसी हिसाब से उनकी उन्नति भी होती है। अमेरिकन राष्ट्र में कुल ६९ कृषि-कालेज हैं। सन् १९१० में इन कालेजों में ६१८४ लोग शिक्षक का काम करते थे। सब कालेजों में ४५१५० विद्यार्थी थे। इनके सिवाय कालेजों की देखरेख में, अपने घर पर ही रह कर, कृषिशास्त्र सीखनेवाले लोगों के सहित कुल १,२८,१५० विद्यार्थी कृषिविद्या का अध्ययन करते थे। सन् १९१० में, कृषिशास्त्र में, बी० एस० सी० का अध्ययन करने वाले ३६९४ उम्मेदवार थे। इस प्रकार की विस्तृत कृषिशिक्षा का कर्तव्य पूर्ण करने में इन कालेजों के लिए सन् १९०९ में कितना राष्ट्र का धन व्यय हुआ, यह बात नीचे दिये हुए अंकों से मालूम होगी।

एक श्रेणी सुअरों की परीक्षा कर रही है।

नकद

राष्ट्रीय सरकार		प्रांतिक सरकार	लोगों का दिया हुआ स्थिर कोश
२८६८२० डालर	चलतू खर्च	६४६११२	१०८५८०४० डालर।
	नवीन इमारतें	२६४४७१३	
	स्थिर कोश का व्याज	७८३३२०	
	फीस	११३६६६७	
	अन्य	१०२००५२	
	फुटकर	२३२५५६८	
	मीज़ान	१८०८२८१४ डालर।	

सन् १९०९ में निम्नलिखित स्थायर सम्पत्ति कालेजों के अधिकार में थी। प्रत्येक सम्पत्ति के सामने उसकी कीमत भी दी हुई है।

	डालर।	
खेती की जमीन और कालेज मैदान	९५९८९९९८	मीज़ान ६६८१८६४८
इमारतें	३८३८६९२८ "	
शिक्षण-सामग्री	३५०३९८६ "	
हथियार	२८०३६३० "	
पुस्तकालय	४१३६३२६ "	
पशु	३४५२४६ "	
फुटकर सामान	४११६३१८ "	

यही बात यदि थोड़े में कही जाय तो सन् १९०९ में राष्ट्रीय सरकार ने २९ लाख डालर सब कृषिकालेजों को दिए। इसी काम में

कालेज के खेत में उत्पन्न की हुई मक्का की प्रदर्शिनी।

प्रान्तिक सरकारों ने उक्त साल में दो करोड़ डालर खर्च किये। और कालेजों के अधिकार में कुल स्थावर सम्पत्ति ७ करोड़ डालर की थी!

उपर्युक्त अंकों से कितने ही महत्वपूर्ण अनुमान निकल सकते हैं। यूनाइटेड स्टेट्स् में जोती बोई जानेवाली खेतियों की संख्या ५७,३७,३७२ है। उपर्युक्त अंकों के अनुसार कुल नकद रकम ३,९०,५६,०९६ थी। अब यदि यह कल्पना की जाय कि सरकार ने कृषिशिक्षा के लिए जो यह खर्च किया वह खेती का उद्धार करने के लिए किया तो प्रति खेती के लिए सन् १९०९ में साढ़े छः डालर खर्च हुआ। और इस खेती पर कुल ५६९८९०९ कुटुम्ब रहते थे। तथा उनके मनुष्यों की संख्या २४७,८४८३४ था। यद्यपि इसमें सन्देह नहीं, कि ये सभी लोग अलग अलग कालेजों में नहीं जा सके, तथापि यदि यह मान लिया जाय कि कालेजों की शिक्षा का फायदा, एक प्रकार से सभी ने उठाया तो यह कहा जा सकता है कि अमेरिकन सरकार ने सिर्फ कृषिशिक्षा के लिए सन् १९०९ में प्रति मनुष्य डेढ़ डालर खर्च किया।

कालेजों की कृषिशिक्षा का मुख्य हेतु यह है कि नवयुवक लोगों को कृषि और उससे सम्बन्ध रखनेवाले भौतिक शास्त्रों की शिक्षा

विद्यार्थियों के श्रम से उत्पन्न की गई तरकारी-भाजी की प्रदर्शिनी।

दी जाय। इस शिक्षा के फल से तीन प्रकार के लोग निकलते हैं। प्रथम तो वे लोग जो कृषिशास्त्र का उद्धार करने के लिए अपना जीवन अर्पण करते हैं, दूसरे वे लोग जो अपनी शिक्षा समाप्त करके खेती के व्यवसाय में पड़ते हैं और अपने देशभाइयों को अपनी कृति से हित का योग्य मार्ग दिखलाते हैं, तथा तीसरे लोग वे हैं

इस प्रकार की शिक्षा को यहां 'शार्ट कोर्स' नाम दिया गया है। इस विषय का चित्र अन्यत्र दिया गया है। इस शार्ट कोर्स की प्रणाली में कृषिसम्बन्धी भिन्न भिन्न चालू शिक्षा के अतिरिक्त, भिन्न

सम्बन्धी पशुओं की परीक्षा, कालेज का [illegible] प्रदर्शन, आस पास के महत्वपूर्ण कृषिप्रयोग, इत्यादि बातों में भी बहुत समय देते हैं। उसी प्रकार भिन्न भिन्न कृषिक्रिया सम्बन्धी प्रत्यक्ष प्रयोग (Demonstration) भी कर दिखलाते हैं।

जाड़े में दूसरी तरह की जो शिक्षा कालेजों में दी जाती है वह सिर्फ वयस्क किसानों के लिए है। यह शिक्षा दो अठवाड़े तक चलती है। इस शिक्षा को एक स्वतंत्र व्याख्यानमाला अथवा 'कृषीवलपरिषद' कह सकते हैं। सुबह किसी न किसी विषय पर तीन घंटे तक व्याख्यान होता है और शाम को उसी विषय पर आवश्यक प्रयोग कर दिखलाये जाते हैं। उदाहरणार्थ, [illegible] यदि 'फल वृक्षों के कीटक और उनके रासायनिक छिड़काव' (The Fruit tree insects and chemica-spraying for the same) इस विषय पर [illegible] हुआ तो शाम के [illegible] कालेज के बाग में 'यह कैसे करना चाहिए,' रासायनिक द्रव्य कैसे मिलाना चाहिए, इत्यादि के सम्बन्ध में प्रत्यक्ष कृति करके दिखलाई जाती है। इस प्रकार [illegible] वयस्क किसानों के लिए जो व्याख्यानमाला यहां होती है उसे [illegible] (Farmers round up) कहते हैं। इस [illegible] ही व्याख्यान नहीं [illegible] और यशस्वी लोगों [illegible] करने से उसके विशिष्ट [illegible]

कालेज के अन्तर्गत कपास के खेत में विद्यार्थी काम कर रहे हैं।

[illegible] स्त के मुख्य स्थान पर, निश्चित तारीख को, पहुँच कर किसानों की सभा करते हैं और इस सभा के द्वारा उपर्युक्त प्रकार से अपना शिक्षा-प्रचार का कार्य करते हैं। इस प्रकार की सभाओं में 'मैजिक लेन्टर्न' की सहायता से सचित्र व्याख्यान होते हैं।

सम्पूर्ण राष्ट्र की उपर्युक्त प्रकार की शिक्षा का सन् १९१० का वृत्तान्त अंकों के सहित प्रसिद्ध हुआ है। उक्त साल में इस प्रकार की शिक्षा के काम में एक हजार से अधिक शिक्षक लगे थे, और इस काम में कुल ४,३२,००० डालर खर्च हुआ। किसानों की कुल ४६५१ सभाएं हुईं और उनमें कुल २३ ९४,९०० किसान श्रोता उपस्थित थे। सन् १९०९ में इन सभाओं में करीब २२,४०,००० किसान उपस्थित थे। अर्थात् १९१० में डेढ़ लाख किसान बढ़ गये; तथा १९०९ में ३,४४,६०० डालर खर्च हुआ था। अर्थात् १९१० में यह खर्च [illegible]६४०० डालर बढ़ गया।

इस लेख को समाप्त करने के पहले यदि हम एक दो बातों की ओर भी चर्चा करें तो कोई हर्ज नहीं देख पड़ता। पहली बात यह है कि अमेरिका में इन कृषि-कालेजों में ही स्त्री-शिक्षा की भी दिन पर दिन [illegible] हो रही है और दूसरी बात यह है कि अमेरिकन जनसंख्या में जो कुछ नीग्रो लोगों का भाग है उसमें भी कृषिशिक्षा का प्रचार हो रहा है।

मानव जाति की उन्नति कभी रुक नहीं सकती। बराबर उसका पग आगे ही बढ़ता जायगा, इसमें कोई सन्देह नहीं। इस उन्नति का कुछ यह हाल नहीं है कि अमुक एक स्थल या बिन्दु पर पहुँच कर इसकी 'इति श्री' हो जाय। आज तक जो मानवी उन्नति और सुधार हुआ है उसका यदि कोई सब से बड़ा कारण है तो वह समाज की स्त्री-शिक्षा ही है। उन्नति-सुधार और शिक्षा में वही सम्बन्ध है जो कि धुआँ और अग्नि में है। जहां शिक्षा का प्रचार होगा वहां उन्नति और सुधार होगा ही। गत दस पन्द्रह वर्ष से भारतीय समाज की, सब प्रकार से, बराबर उन्नति हो रही है।

पाकशाला में लड़कियों की एक श्रेणी।

सीना सीखनेवाली लड़कियों की एक श्रेणी।

यहां तक तो उन प्रयत्नों का वर्णन हुआ जो कृषिशिक्षा-प्रचार के लिए कालेज के बाहर किंबहुना उसकी इमारत में होते हैं। परन्तु अमेरिका की कृषिशिक्षा यहीं पर समाप्त नहीं हो गई। इससे भी अधिक महत्व के प्रयत्न कालेजों की ओर से रियासत के गवर्नमेंट [illegible] गांवों में होते हैं। प्रत्येक कालेज का एक एक एक्स्टेंशन डिपार्टमेन्ट (Extention Dipt) रहता है। यह विभाग और उसका कर्तव्य यद्यपि विशिष्ट और स्वतंत्र है, तथापि उसके शिक्षक, इत्यादि लोग स्वतन्त्र नहीं रहते। कालेज के, सदैव के, शिक्षक ही इस विभाग का कार्य सम्पादन करते हैं। इस विभाग के काम का मुख्य समय जाड़े की ऋतु है और तीन चार डब्बों की एक रेलगाड़ी तथा उन डब्बों में भरी हुई प्रदर्शिनी के पदार्थ, इत्यादि इसका मुख्य सामान है।

और इस में शिक्षा भी बढ़ रही है। आज तक हमारी, किंबहुना सम्पूर्ण जगत् की, जो उन्नति हुई है, उससे यह और भी अधिक वेग से हुई होती; परन्तु यह ध्यान में रखना चाहिए कि देश की राजकीय परिस्थिति जिस प्रकार कई तरह से मदद करती है वैसे ही वह कई प्रकार से विघ्न भी डालती है।

मानवी समाज की उन्नति में स्त्री-शिक्षा का विषय भी बड़े महत्व का है। स्त्री और पुरुष दोनों को यदि बराबर शिक्षा नहीं मिलती है तो वही हाल होता है जैसे किसी सुधारकर्ता गाड़ी के जुए में एक ओर बछड़ा और दूसरी ओर बैल जोता जाय। ऐसी दशा में इस गाड़ी की जो दशा होती है उसे सभी जानते हैं। भारतवर्ष में [illegible] स्त्री-शिक्षा का जो हाल है वही हाल अमेरिका में भी [illegible]

जो कृषिशिक्षा की संस्थाओं में या सरकारी कृषिविभाग में काम करके अपने देश की सेवा करते हैं। यद्यपि इन तीनों प्रकार के लोगों का महत्व बराबर ही है, तथापि कृषिशिक्षा और उसकी संस्थाएं ज्यों ज्यों अधिकाधिक पुरानी होती जाती हैं त्यों त्यों दूसरे प्रकार के लोगों की ही अधिक चाह होती जाती है। इधर कुछ दिनों से अमेरिकन कालेजों से निकलनेवाले पदवीधरों में से बहुत लोग दूसरे ही प्रकार के निकलते हैं। सन् १९१० में 'आयोवा' नामक रियासत के कृषिकालेज से एक शाखा में ३८ पदवीधर निकले। उनमें से ३० कृषि के निजी व्यवसाय में प्रविष्ट हुए।

कालेजों के द्वारा कृषि-शिक्षा-प्रचार करने का मुख्य उद्देश्य यह होता है कि कृषि-व्यवसायी लोगों को योग्य और उपयोगी शिक्षा दी जाय, ताकि वे देशहित-तत्पर नागरिक बनें। कृषिकालेज से

एक विद्यार्थी ने अपने खेतों की दलदली जगह में मक्का तैयार की है।

निकलनेवाले पदवीधरों में सरकारी नौकरी या शिक्षक का व्यवसाय करने की स्वाभाविक ही रुचि होती है और समाज-हित की दृष्टि से कितने ही पदवी-धरों का उपर्युक्त व्यवसाय में प्रवेश होना आवश्यक भी है। परन्तु इन सबों पर एक [illegible] तथा यहां के [illegible] है, वह यह कि [illegible] "कला और शास्त्र" (Domestic [illegible] Science) नाम के विभाग स्थापित हुए हैं। अतएव, आज कल यहां के कृषिकालेजों में लड़कों के समान ही लड़कियों की भी भरती देखी जाती है।

[illegible] के बच्चे बाग में काम कर रहे हैं।

[illegible] विद्यार्थियों की तरह "[illegible] कला और [illegible]" विभाग की [illegible] को भी [illegible] [illegible]

[illegible]

पदवीधरों को कालेज में जो शिक्षा मिलती है उसमें [illegible] बॉटनी, फिज़िक्स, इत्यादि शास्त्रों को विशेष महत्व दिया जाता है क्योंकि इन शास्त्रों पर ही सम्पूर्ण कृषिशास्त्र की इमारत खड़ी है। ये शास्त्र सिखलाते समय प्रयोगशालाओं की ओर विशेष [illegible] रखा जाता है। कितने ही लोग समझते हैं कि कृषिकालेजों में [illegible] यही सिखलाया जाता है कि "हल कैसे पकड़ना चाहिए" [illegible] वास्तव में अमेरिका के कृषिकालेजों में इतिहास, भाषा, [illegible] अर्थशास्त्र, व्यापार, आदि विषय भी सिखलाये जाते हैं। [illegible] कृषि से सम्बन्ध रखनेवाले, बागों के काम और [illegible] इत्यादि विषयों में भी स्वतंत्र रीति से शिक्षा दी जाती है।

फलवृक्षों के कृमि मारने के लिये विषारी छिड़काव का प्रयोग किया जा रहा है।

कृषिशिक्षा [illegible] से व्यवसाय करने की स्त्रियों में [illegible] कालेजों की उपर्युक्त शिक्षा के कारण यह प्रवृत्ति दिन दिन [illegible] रही है और आज दस-पांच एकड़ की जमीन में खेती का [illegible] करनेवाली और अच्छा लाभ उठानेवाली बहुत सी स्त्रियां [illegible] करने पर देखी जाती हैं। फल फलवृक्ष उत्पन्न करना, मुर्गियां [illegible] कर उनके अंडे उत्पन्न करना, दूध दही बना कर बेचना, [illegible]

लड़कियों को [illegible] के मूलतत्त्व सिखाये जाते हैं।

[illegible] तैयार करना, इत्यादि अनेक [illegible] है। [illegible] व्यवसाय [illegible] हाथ में आ गया है और इस विषय की [illegible] कालेजों में मिलने लगी है।

सामाजिक दृष्टि से जब हम अमेरिका की [illegible] [illegible]

स प्रकार की शिक्षा को यहां 'शार्ट कोर्स' नाम दिया गया है। स विषय का चित्र अन्यत्र दिया गया है। इस शार्ट कोर्स की णाली में कृषिसम्बन्धी भिन्न भिन्न सामान्य शिक्षा के अतिरिक्त, भिन्न भिन्न कालेज प्रान्तिक महत्वपूर्ण विषयों पर विशिष्ट पाठ माला देते हैं। उदाहरणार्थ, दक्षिण-भाग की रियासतों में कपास की पैदावार अधिक होती है, और यहां के कालेज अपने शार्ट कोर्स में कपास के विषय में विशिष्ट (Special) कोर्स देते हैं। उसी मौके पर कृषि-सम्बन्धी पशुओं की परीक्षा, कालेज की भिन्न भिन्न प्रदर्शिनी, आस-पास के महत्वपूर्ण कृषिप्रयोग, इत्यादि बातों में भी बहुत समय देते हैं। उसी प्रकार भिन्न भिन्न कृषिक्रिया सम्बन्धी प्रत्यक्ष प्रयोग (Demonstration) भी कर दिखलाते हैं।

जाड़े में दूसरी तरह की जो शिक्षा कालेजों में दी जाती है वह सिर्फ वयस्क किसानों के लिए है। यह शिक्षा दो अठवाड़े तक चलती है। इस शिक्षा को एक स्वतंत्र व्याख्यानमाला अथवा 'कृषीवलपरिषद' कह सकते हैं। सुबह किसी न किसी विषय पर तीन घंटे तक व्याख्यान होता है और शाम को उसी विषय पर आवश्यक प्रयोग कर दिखलाये जाते हैं। उदाहरणार्थ, सुबह यदि 'फल वृक्षों के कीटक और उनके रासायनिक छिड़काव' (The Fruit tree insects and chemica-spraying for the same) इस विषय पर ... हुआ तो शाम को ... के बाग में 'वह कैसे करना चाहिए,' रासायनिक द्रव्य कैसे मिलाना चाहिए, इत्यादि के सम्बन्ध में प्रत्यक्ष कृति करके दिखलाई जाती है। इस प्रकार गया उनके आतारके सेकंडि प्रारम्भिक ... यहां होती है उसे संस्थाओं में भी, विद्यार्थियों की शारीरिक और मानसिक शक्ति के अनुसार, कृषि के मूलतत्व सिखलाये जाते हैं। बाहरी सृष्टि-निरीक्षण (Nature study) के द्वारा भी छोटे छोटे लड़कों को खेतों पर ले जाकर कृषि का प्राथमिक पाठ सिखलाते हैं। इसी तरह कन्या-पाठशालाओं की लड़कियों को भी थोड़ी थोड़ी कृषिशिक्षा दी जाती है। पाठशालाओं के पास यहां जो छोटे छोटे बाग होते हैं उनके द्वारा इस शिक्षा का बहुत सा कार्य होता है। इसके सिवाय रियासतों के छोटे छोटे परगनों में केवल कृषिशिक्षा की प्रारम्भिक पाठशालाएं खोली गई हैं। ऐसी एक पाठशाला का चित्र अन्यत्र दिया जाता है। इन प्रारम्भिक पाठशालाओं में लड़के लड़कियों को

... स्थल के मुख्य स्थान पर, निश्चित तारीख को, पहुंच कर किसानों की सभा करते हैं और इस सभा के द्वारा उपर्युक्त प्रकार से अपना शिक्षा-प्रचार का कार्य करते हैं। इस प्रकार की सभाओं में 'मैजिक लेन्टर्न' की सहायता से सचित्र व्याख्यान होते हैं।

सम्पूर्ण राष्ट्र को उपर्युक्त प्रकार की शिक्षा का सन् १९१० का वृत्तान्त अंकों के सहित प्रसिद्ध हुआ है। उक्त साल में इस प्रकार की शिक्षा के काम में एक हजार से अधिक शिक्षक लगे थे, और इस काम में कुल ४,३२,००० डालर खर्च हुआ। किसानों की कुल ४६५१ सभाएं हुईं और उनमें कुल २३,९४,९०० किसान श्रोता उपस्थित थे। सन् १९०९ में इन सभाओं में करीब २२,५०,००० किसान उपस्थित थे। अर्थात् १९१० में डेढ़ लाख किसान बढ़ गये; तथा १९०९ में ३,५५,६०० डालर खर्च हुआ था। अर्थात् १९१० में यह खर्च ...६५०० डालर बढ़ गया।

कालेज के अन्तर्गत कपास के खेत में विद्यार्थी काम कर रहे हैं।

इस लेख को समाप्त करने के पहले यदि हम एक दो बातों की ओर भी चर्चा करें तो कोई हर्ज नहीं देख पड़ता। पहली बात यह है कि अमेरिका में इन कृषि-कालेजों में ही स्त्री-शिक्षा की भी दिन पर दिन ... हो रही है और दूसरी बात यह है कि अमेरिकन जनसंख्या में जो कुछ नीग्रो लोगों का भाग है उसमें भी कृषिशिक्षा का प्रचार हो रहा है।

मानव जाति की उन्नति कभी रुक नहीं सकती। बराबर उसका पग आगे ही बढ़ता जायगा, इसमें कोई सन्देह नहीं। इस उन्नति का कुछ यह हाल नहीं है कि अमुक एक स्थल या बिन्दु पर पहुंच कर इसकी 'इति श्री' हो जाय। आज तक जो मानवी उन्नति और ... प्रचार हुआ है उसका यदि कोई सब से बड़ा कारण है तो वह ... है। उन्नति-सुधार और शिक्षा में वही की जा सकती है। ऐसे ही ... शिक्षा का प्रचार और किसानों में खेती के ज्ञान का प्रचार होगा। ... है और सरकारी खजाने पर प्रजा का अधिकार नहीं है, इस ... अमेरिका की तरह कृषिशिक्षा की भारी भारी संस्थाएं नहीं स्थापित हो सकतीं। परन्तु "खाऊंगा तो घी शक्कर ही, नहीं तो भूखा मरूंगा" ऐसा कह कर आत्मघात करना ठीक नहीं है। वर्तमान दशा में जितना कुछ हो सकता है उतना ही यदि किया जाय तो भी हमारा बहुत सा कल्याण हो सकता है।

दक्षिण अमेरिका के आदिम निवासी।

ऊपर के चित्रों में यह दिखलाया गया है कि अपर एमेजन (दक्षिणी अमेरिका) भाग के आदिम निवासी वृक्षों के तनों की डोंगियों में बैठ कर नदी में घूम रहे हैं। इन लोगों की ऊंचाई योरोपियन लोगों से कुछ कम होती है, और इनका मुख्य व्यवसाय मछली मारना है। ... है। इस व्यसन से इनकी और भी हानि ... नाक में छोटे छोटे पत्तों के लटकन पह- ... करते। इनकी चेष्टा से इनका भोलापन ... के विषय में इन का हृदय जिज्ञासापूर्ण ... ही इनके नाश का कारण हुआ है। महा-

जो कृषिशिक्षा की संस्थाओं में या सरकारी कृषिविभाग में काम करके अपने देश की सेवा करते हैं। यद्यपि इन तीनों प्रकार के लोगों का महत्व बराबर ही है, तथापि कृषिशिक्षा और उसकी संस्थाएं ज्यों ज्यों अधिकाधिक तरक्की होती जाती हैं त्यों त्यों दूसरे प्रकार के लोगों की ही अधिक चाह होती जाती है। इधर कुछ दिनों से अमेरिकन कालेजों से निकलनेवाले पदवीधरों में से बहुत लोग दूसरे ही प्रकार के निकलते हैं। सन १९१० में 'आयोवा' नामक रियासत के कृषिकालेज से एक साल में ३८ पदवीधर निकले। उनमें से ३० कृषि के निजी व्यवसाय में प्रविष्ट हुए।

कालेजों के द्वारा कृषि-शिक्षा-प्रचार करने का मुख्य उद्देश यह होता है कि कृषि-व्यवसायी लोगों को योग्य और उपयोगी शिक्षा दी जाय, ताकि वे देशहित तत्पर नागरिक बनें। कृषिकालेज से

एक विद्यार्थी ने अपने खेतों की दलदली जगह में मका तैयार की है।

निकलनेवाले पदवीधरों में सरकारी नौकरी या शिक्षक का व्यवसाय करने की स्वाभाविक ही रुचि होती है और समाज-हित की दृष्टि से कितने ही पदवी-धरों का उपर्युक्त व्यवसाय में प्रवेश होना आवश्यक भी है; परन्तु इन सबों पर एक [illegible] तथा यहां के दारी है; वह यह कि [illegible] कला और शास्त्र" (Domestic [illegible] science) नाम के विभाग स्थापित हुए हैं। अतएव, आज कल यहां के कृषिकालेजों में लड़कों के समान ही लड़कियों की भी भरती देखी जाती है।

आरम्भिक स्कूल के बच्चे बाग में काम कर रहे हैं।

कृषिकालेज के अन्य विद्यार्थियों की तरह "घराऊ कला और शास्त्र" विभाग की छात्राओं को भी सर्वसाधारण-शिक्षा, अर्थात् भिन्न भिन्न शास्त्रों के मूल तत्व, भाषा, इतिहास, साहित्य, अर्थ-शास्त्र, इत्यादि की-शिक्षा मिलती है। इसके सिवाय, विद्यार्थियों को जिस प्रकार खेती में विशिष्ट प्रकार की [illegible]
लड़कियों को " [illegible]
है। लड़कों को [illegible]
पदवियां (Deg [illegible]
काम और भोजन बनाना, इत्यादि सिखलाया जाता है। इन विषयों के चित्र अन्यत्र देखिये।

कालेज की ओर से जाड़े के दिनों में जिस प्रकार अन्य गावों में शिक्षा के लिए प्रयत्न किया जाता है वैसे ही उपर्युक्त प्रकार की स्त्री-शिक्षा के सम्बन्ध में भी प्रयत्न होता है। जाड़े में स्त्रियों को

पदवीधरों को कालेज में जो शिक्षा मिलती है उसमें [illegible] बॉटनी, [illegible], इत्यादि शास्त्रों को विशेष महत्व [illegible]
नहीं [illegible]
है। [illegible]
इसी [illegible]
यहां सिखलाया जाता है कि " [illegible]
अमेरिका में [illegible] के कृषिकालेजों में इतिहास, भाषा, [illegible]
अर्थशास्त्र, व्यापार, आदि विषय भी सिखलाये जाते हैं। [illegible]
कृषि से सम्बन्ध रखनेवाले, यन्त्रों के काम और [illegible]
इत्यादि विषयों में भी स्वतंत्र रीति से शिक्षा दी जाती है।

फलवृक्षों के कृमि मारने के लिये विषारी छिड़काव का प्रयोग किया जा रहा है।

कृषिशिक्षा [illegible] व्यवसाय करने को स्त्रियों में [illegible]
कालेजों की उपर्युक्त शिक्षा के कारण यह प्रवृत्ति दिन पर दि[illegible]
रही है और आज दस-पांच एकड़ की ज़मीन में खेती का व्य[illegible]
करनेवाली और अच्छा लाभ उठानेवाली बहुत सी स्त्रियां [illegible]
करने पर देखी जाती हैं। फल फलहरी उत्पन्न करना, मुर्गियां [illegible]
कर उनके अंडे उत्पन्न करना, दूध दही बना कर बेचना, [illegible]

लड़कियों को कृषिशास्त्र के मूलतत्त्व सिखाये जाते हैं।

लिए पुष्पवृक्ष तैयार करना, इत्यादि अनेक कृषिसम्बन्धी [illegible]
हैं। अंडे उत्पन्न करने का व्यवसाय अब बिलकुल स्त्रियों [illegible]
हाथ में जा रहा है और इस विषय की विशिष्ट शिक्षा भी [illegible]
कालेजों में मिलने लगी है।

सामाजिक दृष्टि से जब हम अमेरिका की जनसंख्या का [illegible]
लोकन करते हैं तब हमें उसमें अनेक अत्यन्त भिन्नभिन्न भेद दि[illegible]
देते हैं। नागरिकता की दृष्टि से जनसंख्या के भेदों का [illegible]
करने पर उन भेदों का सम्बन्ध हाथ की उँगलियों के [illegible]
देख पड़ता है। हाथ की उँगलियां एक दूसरे से भि[illegible]
भिन्न हैं; परन्तु उन सब का मिलाप तलवे में हुआ है। [illegible]
की जनसंख्या के भेदों का भी यही हाल है। जनसंख्या के [illegible]
को राजकीय अधिकार, राज्य नियमों की समानता [illegible]
स्थान, इत्यादि चाहे बराबर न हों, तथापि शिक्षा-

शेक्सपियर और उसके ग्रन्थ।

(२)

केवल यही नहीं कहा जा सकता कि शेक्सपियर और उसकी पत्नी से बनती नहीं थी, इसी कारण वह ग्राम त्याग करके गया होगा। किन्तु कदाचित् उसने यह भी समझा होगा कि जीविका-निर्वाह के लिए उसे लंडन का आश्रय करना ही चाहिए; और इसी कारण कदाचित् उसने सन् १५८५ में अपना गाँव छोड़ दिया हो। सन् १५९६ तक फिर स्ट्राटफर्ड गाँव को उसके लौट जाने का कोई प्रमाण नहीं मिलता।

चाहे शेक्सपियर स्ट्राटफर्ड गाँव को बहुत दिन पहले से छोड़ने की इच्छा रखता हो, तथापि उसके छोड़ते समय एक तात्कालिक कारण भी उपस्थित हो गया था। वह यह कि हरिन चुराने की से चोरी लगी। सर टामस् ल्यूसी नामक एक धनवान् मनुष्य सके गाँव के पास ही रहता था। इस धनवान् पुरुष ने अपने गल में कुछ हरिन शिकार के लिए रखे थे। उस समय शेक्सपि-र के कई साथी बड़े व्यसनी और विचित्र थे। इन्हींकी बातों में ाकर सर टामस ल्यूसी के हरिनों में से एक हरिन उसने चुरा लया। इस पर ल्यूसी ने शेक्सपियर पर नालिश की, और शेक्स-ायर पकड़ा गया। इतना ही नहीं, बलिक, कहते हैं कि, कुछ मय तक उसे कारागृह-वास भी करना पड़ा। उस समय बड़े बड़े रदार लोग शिकार के लिए जंगल रक्षित रखते थे और उनमें रिन आदि जानवर भी खास तौर पर रखवा लेते थे। उन जान-रों का शिकार कभी कभी शौकीन और गरीब लोग भी चुरा-छिपा र कर लेते थे। शेक्सपियर ने भी इसी तरह अपने चार छै नव-ुवक मित्रों के साथ यह हाल किया होगा और इसी कारण उस क्षित जंगल के मालिक सर टामस ल्यूसी ने उसे पकड़ कर लाया। इस पर सहज ही उस कवि को ल्यूसी पर बड़ा क्रोध गया।

शेक्सपियर के समय के लंडन की रंगभूमि का आदर्श।

महाकवि जिन पर प्रसन्न होते हैं उनको अथवा जिन पर क्रुद्ध होते हैं उनको भी अपनी स्तुति अथवा निंदा से अजरामर कर डालते हैं। वे जिन लोगों की स्तुति करते हैं वे लोग प्रशंसनीय और सम्माननीय होते हैं तथा जिनकी निन्दा करते हैं वे निन्दनीय और असम्माननीय होते हैं। यदि कुछ लोग उनके प्रेमपात्र होते हैं तो कुछ अन्य लोग उपहास के पात्र भी होते हैं। शेक्सपियर कवि को सतानेवाला सर टामस ल्यूसी उसके ही नाटकों में जस्टिस शालो '[illegible]' के नाम से अजरामर हो रहा है, क्योंकि कवि ने उसकी खूब ही खबर ली है। शेक्सपियर ने सर टामस ल्यूसी के नाम का और उसकी निशानी के ल्यूस का (बिरद-चिन्हों-वाली किनारियों का) खास तौर पर उल्लेख किया है, जिससे नाटक के प्रेक्षकों और वाचकों को पूर्णतया पर मालूम हो जाय कि 'शालो' नामक पात्र सर टामस ल्यूसी ही है। यह उल्लेख "विंडसर की विनोदी स्त्रियाँ" नामक नाटक के बिलकुल आरम्भ के ही प्रवेश में है। वह इस प्रकार है—* सर जोन फालस्टाफ नामक एक पुरुष ने जास्टिस 'शालो' के आखेट-वन में जाकर विना आज्ञा लिए हिरन का शिकार किया, इस कारण जस्टिस शालो क्रोधित हुए और उस पर नालिश करके उसे नीचा दिखाने के लिए विंडसर को आये। जस्टिस 'शालो' का ही पहला भाषण है। वे खूब अकड़ अकड़ कर कहते हैं-"हम यह मामला

एक होटल के महाते में नाटक हो रहा है।

बिलकुल अन्त तक पहुँचायेंगे। एक नहीं, बीस सर जॉन फालस्टाफ, क्यों न आ जायँ! उसे नीचा दिखाना ही चाहिए। मैं अपने गाँव का रईस हूँ, मुखिया हूं। हमारा घराना बहुत बड़ा है। हमारे घर में 'जामा' है। उस पर तीन ल्यूस् का—भालेदार किनारियों का-बिरुद-चिन्ह है।"

---

* Shallow Sir Hugh, persuade me not, I will make a Star-Chamber matter of it If he were twenty Sir Jhon Falstaffs, he shall not abuse Robert Shallow Esquire.

Slender In the county of Gloucester, Justice of peace. ..... and a gentleman born, master parson who writes himself Armigero in any bill, warrant quittance or obligation Armigero.

Shallow, Ay that I do and have done any time these three hundred years.

Slender All his successors gone before him, have done it and all his ancestors that come after him, may they may give the dozen white luces in their coat

Shallow It is an old coat

Evans The dozen white louses do become an old coat well it agrees well passant it is a familiar beast to man and signifies love

उपर्युक्त अवतरण के coat इस अंगरेजी शब्द का भेद हिन्दी में करना असम्भव है। अतएव उसका 'जामा' शब्द से काम निकाल लिया गया है। मुख्य बात यही है कि शेक्सपियर ने यह दिखलाने के लिए कि [illegible] Lucy है, उसके नाम का और उसके चिन्हों का उल्लेख [illegible] के समान [illegible] दिखलाते हुए सर टामस ल्यूसी की [illegible] दिखलाई है। इसके सिवा एक [illegible] किम्वदन्ती भी है कि शेक्सपियर ने इस सरदार की हँसी उड़ाने के लिए एक कविता रच कर उसके आखेट-वन के दरवाजे पर लिखा दी थी। वह सम्पूर्ण कविता अब नहीं मिलती। किन्तु उसका कुछ अंश एक वृद्ध पुरुष के पास मिला है। वह यहाँ पर पाठकों के मनोरंजन के लिए दिया जाता है—

A Parliament member, a justice of peace,
At home a poor scarecrow, at London an asse,
If lowsie is Lucy, as some folk [illegible] it,
Then Lucy is lowsie whatever befall it.
He thinks himself great
Yet an asse in his state
We allow by his ears [illegible] asses to mate
If Lucy is [illegible] some folke mistake it
[illegible] Lucy whatever befall it.

इसमें L[illegible] ([illegible]) [illegible]
[illegible]

मा तुलसीदासजी ने कहा ही है। —"कबहुँ [illegible] ।" इस प्रकार करने के लिये जो पुलिस [illegible] नियत हुए हैं उनके एजेंट तथा एजेंटों के सहकारी इन गरीब लोगों से काम लेने समय ऐसे जो कष्ट देते हैं उनका वर्णन पढ़ने से शरीर पर रोंगटे खड़े हो जाते हैं: —वे बिचारे, बिना अन्न पानी के भूखे रखे जाते हैं, उनके [illegible] कर बहुत [illegible] हो जाते हैं, मुँह पर मारों और मुक्कों की इतनी मार देते हैं कि रक्त बहने लगता है, बन्दूक की [illegible] मालूम [illegible] मारते मारते बेदम कर देते हैं; [illegible] देते हैं, शरीर पर मिट्टी का तेल डाल कर जला देते हैं, शरीर के भाग [illegible] काट कर [illegible] प्राण लेते हैं, छोटे बच्चों के हाथ तोड़ कर भेजा निकालते हैं, गोली मार कर, सिर काट कर या फाँसी देकर मार डालते हैं—कहाँ तक बतलाया जाय अनेक प्रकार के अत्याचार, अपने को सभ्य कहलानेवाली जाति के लोग, इन गरीबों पर करते हैं। इतना ही नहीं, किन्तु स्त्रीपुरुषों पर ऐसे ऐसे भयंकर [illegible]कार ये लोग करते हैं जो अनुच्चरणीय हैं। इस अत्याचार का परिणाम यह हुआ है कि जिस प्रान्त में रबर उत्पन्न होता है उस प्रान्त के इंडियनों की जनसंख्या १२ वर्ष में ४०००० से घट कर ८००० पर आ रही है! इस अत्याचार की जाँच करने के लिए ब्रिटिश सरकार एक अधिकारी को नियत किया था, उन्होंने इस सारे अत्याचार का वृत्तान्त संसार के सामने प्रकट किया है। [illegible] कि ब्रिटिश सरकार को यह भूमिका सफल हो और यह अत्याचार शीघ्र ही [illegible] हो?

गरुड़-वाहन विष्णु।

(१)
यह छवि जग-लोचन-सुखदायी,
मेरे मन को अतिशय भाई।
बैठ गरुड़ पर श्रीविश्वम्भर,
व्योम-मार्ग में सैर रहे कर।

(२)
मुख प्रसन्न है, हिय विकसित है,
वक्षःस्थल भूषण-भूषित है।
है शृंगार श्रीश का सुन्दर,
गले बीच है हार मनोहर।

(३)
श्रुति-कुंडल ये सुहा रहे हैं,
तिलक, मुकुट, छवि बता रहे हैं।
दो हाथों में गदा पद्म हैं,
दो हाथों में शंख चक्र हैं

(४)
देव-सुताएं चंवर डुलातीं,
फूली तन में नहीं समातीं।
मधुर मधुर मन में मुसकातीं,
दर्शन कर लोचन फल पातीं।

(५)
जिनको हरि ने अपनाया हो,
अपने ही सँग बिठलाया हो,
दायें बायें, बैठ गरुड़ पर,
होवें मुदित नहीं वे क्यों कर?

(६)
दोनों ही ये सुर-कन्यायें,
अपनी २ दृष्टि लगायें।
पीती हैं हरि रूप-सुधारस,
वारे हो देती हैं सरवस।

(७)
देहभान तक भूल गई हैं,
ऐसी तन्मय बनी हुई हैं।
हरि के कर का पाय सहारा
इनने निज को धन्य विचारा।

(८)
हरि-निदेश जैसा पाता है,
गरुड़ उड़ा वैसा जाता है।
दृश्य अनोखा दिखलाता है,
सो सब के जी को भाता है।

श्रीगिरिधर शर्मा।

(१)
सुकवि सुप्रेमी साधुवर,
शीलवान गुणधाम।
सत्यप्रिय स्वर्गीय ये,
पंडित अनन्तराम।

(२)
मध्यदेश के ये बड़े,
हिन्दी-सेवक एक।
अब भी रखनी चाहिये,
इनको वह शुभ टेक।

लोचनप्रसाद पाण्डेय।

पंडित प्रतापनारायण मिश्र की कहावतें।

(१)
जनसमूह महँ आदर लहै,
सांचहुँ परतिष्ठित सो अहै।
मृषा अहंकृति रतवडकन है,
"अपने घर के राजा सब हैं"।

(२)
इष्ट-सिद्धि महँ परै जु विघ्न,
तवहूं मन न करौ उदविग्न।
होइहि अवसि अटुट श्रम करौ,
"सेतुवा बांधि के पाछे परौ।"

(३)
सत्य योग्यता-हित चित देहु,
छांड़हु मृषा ख्याति कर नेहु।
झूठी पदवी सुख केहि ठाम?
"चलै न पावैं कूदन नाम!"

(४)
देस काल गति के अनुसार,
बरतैं सदा सुबुद्धि उदार।
हठी सुजन सुख सकत न पाय,
"बांधे मरै कि ढका बिकाय"

शेक्सपियर और उसके ग्रन्थ।

(२)

केवल यही नहीं कहा जा सकता कि शेक्सपियर और उसकी पत्नी से बनती नहीं थी, इसी कारण वह ग्राम त्याग करके गया होगा। किन्तु कदाचित् उसने यह भी समझा होगा कि जीविका-निर्वाह के लिए उसे लंडन का आश्रय करना ही चाहिए; और इसी कारण कदाचित् उसने सन् १५८५ में अपना गाँव छोड़ दिया हो। सन् १५९६ तक फिर स्ट्राटफर्ड गाँव को उसके लौट जाने का कोई प्रमाण नहीं मिलता।

चाहे शेक्सपियर स्ट्राटफर्ड गाँव को बहुत दिन पहले से छोड़ने की इच्छा रखता हो, तथापि उसके छोड़ते समय एक तात्कालिक [illegible]ण भी उपस्थित हो गया था। वह यह कि हरिन चुराने की चोरी लगी। सर टामस् ल्यूसी नामक एक धनवान् मनुष्य [illegible]के गाँव के पास ही रहता था। इस धनवान् पुरुष ने अपने [illegible]ल में कुछ हरिन शिकार के लिए रखे थे। उस समय शेक्सपि[illegible]के कई साथी बड़े व्यसनी और विचित्र थे। इन्हींकी बातों में [illegible]र सर टामस ल्यूसी के हरिनों में से एक हरिन उसने चुरा[illegible]ा। इस पर ल्यूसी ने शेक्सपियर पर नालिश की, और शेक्स[illegible]र पकड़ा गया। इतना ही नहीं, बल्कि, कहते हैं कि, कुछ [illegible]य तक उसे कारागृह-वास भी करना पड़ा। उस समय बड़े बड़े [illegible]दार लोग शिकार के लिए जंगल रक्षित रखते थे और उनमें [illegible]न आदि जानवर भी खास तौर पर रख लेते थे। उन जान[illegible] का शिकार कभी कभी शौकीन और गरीब लोग भी चुरा-छिपा कर लेते थे। शेक्सपियर ने भी इसी तरह अपने चार छः नव[illegible]क मित्रों के साथ यह काम किया होगा और इसी कारण उस [illegible]न जंगल के मालिक सर टामस ल्यूसी ने उसे पकड़ कर [illegible]ाया। इस पर सहज ही उस कवि को ल्यूसी पर बड़ा क्रोध [illegible]या।

शेक्सपियर के समय के लंडन की रंगभूमि का आदर्श।

महाकवि जिन पर प्रसन्न होते हैं उनको, अथवा जिन पर क्रुद्ध होते हैं उनको भी अपनी स्तुति अथवा निंदा से अजरामर कर डालते हैं। वे जिन लोगों की स्तुति करते हैं वे लोग प्रशंसनीय और सम्माननीय होते हैं तथा जिनकी निन्दा करते हैं वे निन्दनीय और अपमाननीय होते हैं। यदि कुछ लोग यश के प्रेमपात्र होते हैं तो कुछ अन्य लोग उपहास के पात्र भी होते हैं। शेक्सपियर कवि को सतानेवाला सर टामस ल्यूसी उसके दो नाटकों में [illegible] 'शेलो (शालो)' के नाम से अजरामर हो गया है, क्योंकि कवि ने उसकी खूब ही खबर ली है। शेक्सपियर ने सर टामस ल्यूसी के नाम का और उसकी निशानी के ल्यूस का (विरद-चिन्ह-[illegible]) [illegible] तौर पर उल्लेख किया है, जिससे [illegible] के प्रेमियों और पाठकों को पूर्णतया पता लग जाता है [illegible] 'शालो' नामक एक सर टामस ल्यूसी ही है। यह उल्लेख 'विंडसर की विनोदी स्त्रियाँ' नामक नाटक के बिलकुल प्रारम्भ के ही प्रवेश में है। वह इस प्रकार है—* सर जोन फालस्टाफ नामक एक पुरुष ने जस्टिस 'शालो' के आखेट-वन में जाकर बिना आज्ञा लिए हिरन का शिकार किया, इस कारण जस्टिस शालो क्रोधित हुए और उस पर नालिश करके उसे नीचा दिखाने के लिए विंडसर को आये। जस्टिस 'शालो' का ही पहला भाषण है। वे खूब अकड़ अकड़ कर कहते हैं—"हम यह मामला

एक होटल के अहाते में नाटक हो रहा है।

बिलकुल अन्त तक पहुँचायेंगे। एक नहीं, बीस सर जोन फालस्टाफ क्यों न आ जायँ! उसे नीचा दिखाना ही चाहिए। मैं अपने गाँव का रईस हूँ, मुखिया हूँ। हमारा घराना बहुत बड़ा है। हमारे घर में 'जामा' है। उस पर तीन ल्यूस् का—भालेदार किनारियों का—विरद-चिन्ह है।"

---

* Shallow Sir Hugh, persuade me not. I will make a Star-Chamber matter of it If he were twenty Sir Jhon Falstaffs, he shall not abuse Robert Shallow Esquire

Slender In the county of Gloucester, Justice of peace... ...... and a gentleman born master parson who writes himself Armigero in any bill warrant quittance or obligation Armigero.

Shallow. Ay that I do and have done any time these three hundred years.

Slender All his successors gone before him have done it and all his ancestors that come after him, may they may give the dozen white luces in their coat

Shallow It is an old coat

Evans The dozen white louses do become an old coat well it agrees well, passant it is a familiar beast to man and signifies love

उपर्युक्त अवतरण के [illegible] इस अंगरेजी शब्द का ठीक हिन्दी में [illegible] है। [illegible] 'जामा' [illegible] है। [illegible] Luce है, [illegible]

[illegible]

इस पर दूसरे एक पात्र ने 'जामा' शब्द पर फोटिक्रम करके कहा है, " इनका जामा अब बिलकुल पुराना हो गया है। उसमें चिलटे (ल्यूस = लाउसेस्= चिलटे या जूं) हो गये हैं। यह ठीक ही है।"

सारांश, युवावस्था में जिस आदमी ने शेक्सपियर को, सिर्फ एक हरिन चुरा कर मार लेने पर इतना कष्ट दिया उसका उस महाकवि ने खूब ही बदला लिया है।

कई लोग इस आख्यायिका को बनावटी समझते हैं; परन्तु इसे वैसा कभी न समझना चाहिए। क्योंकि सन् १७०८ में बिलकुल बुढ़ापे में मरे हुए एक पादरी महाशय की नोटबुक में यह आख्यायिका लिखी हुई मिली है। इस पादरी ने लिखा है कि, " सर टामस ल्यूसी ने शेक्सपियर को पकड़ कर चाबुक से पीटा। शेक्सपियर ने भी इसका अच्छा बदला दिया। उसने अपने एक नाटक में जास्टिस 'पाले-सिर' नाम का पात्र रख कर सर टामस ल्यूसी की इस प्रकार किरकिरी की है कि उसका बिरुद Iouses rampant (भुकातुर तीन जुएं) था।" एक बात और भी ध्यान में रखने योग्य है कि सन् १५८५ में सर टामस ल्यूसी ने ही पार्लिमेन्ट में बहुत ज़ोर देकर कहा था कि, " शिकार की चोरी के अपराध के लिए सख्त सज़ा देनेवाला कायदा चाहिए।"

अस्तु। कुछ भी हो; किसी न किसी कारण से सन् १५८५ में शेक्सपियर ने स्ट्राटफर्ड अवश्य छोड़ा। गाँव छोड़ कर शेक्सपियर एकदम लंडन को ही नहीं गया, किन्तु, कहते हैं कि, उसने बीच में कुछ दिन किसी गाँव में स्कूल-मास्टरी का काम भी किया। कोई कहते हैं, उसने कुछ दिन कोनलवर्थ के मालिक अर्ल आफ लीस्टर के यहाँ सिपहगीरी की नौकरी भी की। तात्पर्य यह जान पड़ता है स्ट्राटफर्ड से चल कर लंडन पहुँचने तक के मध्य में शेक्सपियर ने कहीं न कहीं कोई व्यवसाय किया होगा, और यह साधारण बात है। क्योंकि लंडन में पहुँचते ही तुरन्त किसीने थाली नहीं परोस रखी होगी। जब तक कोई न कोई योग्य व्यवसाय लग कर निर्वाह के लिए द्रव्यप्राप्ति न होने लगे तब तक महीना-पन्द्रह दिन निर्वाह तो होना चाहिए। इस निर्वाह भर के लिए, शेक्सपियर ने उपर्युक्त कोई न कोई व्यवसाय करके, अवश्य ही द्रव्य प्राप्त किया होगा।

स्ट्राटफर्ड छोड़ने के तीन कारण तो स्पष्ट दिख रहे हैं। एक दरिद्रता, दूसरा, सर टामस ल्यूसी का सताना और तीसरा कौटुम्बिक सुख का अभाव। परन्तु इनके सिवाय सीधा बड़ा कारण यह होना चाहिए कि, शेक्सपियर को स्ट्राटफर्ड में चैन ही न पड़ती होगी। शेक्सपियर की बुद्धि और प्रतिभा विलक्षण थी, इस कारण, बीस इक्कीस वर्ष की उम्र होने के बाद, स्ट्राटफर्ड में उसकी ऐसी दशा हो गई होगी जैसी कटघरे में बन्द किये हुए किसी सिंह की हो जाती है। ऐसे प्रतिभावान् पुरुष का तेज एक छोटी सी जगह में कितने दिन तक दबा रह सकता है? लंडन के समान नगर की ओर उसको दौड़ जाना ही चाहिए। जिनके शरीर में अणुरेणु मात्र भी गुण और कर्तृत्वशक्ति है वे संकुचित जगह में कभी नहीं रह सकते। गरुड़पक्षी का छौना घोंसले में कब तक बैठा रहेगा? पंख फूटते ही वह आकाश में फड़फड़ाने का प्रयत्न अवश्य ही करेगा।

सन् १५८६ में शेक्सपियर पैदल चल कर लंडन को आया। लंडन आते समय बीच में वह एक भोजनगृह में विश्रान्ति लेने के लिए ठहरा था। इस भोजनगृह की जगह आक्सफर्ड में बहुत वर्षों तक दिखलाई जाती थी।

यह कहा जा सकता है कि लंडन में शेक्सपियर की पहचान का विशेष कर कोई नहीं था। सिर्फ उसके पिता के मित्र फील्ड का लड़का था। वह सन् १५७९ में लंडन आकर एक छापेखाने में [illegible] (apprentice) के तौर पर रहता था। बाद को उसने उसका [illegible] छापाखाना मोल लिया। शेक्सपियर लंडन में आकर स्वाभाविक ही सबसे पहले उसीके पास गया, क्योंकि वे दोनों एक ही गाँव के थे। फील्ड ने उसको उसी एक छापेखाने में नौकरी दिलाई। इसके बाद शेक्सपियर एक वकील के यहाँ मुहर्रिर रहा। ऐसा कई इतिहासकारों का कहना है, परन्तु वे आधार नहीं जान पड़ते।

सन् १५९६ का ' स्वान ' नामक नाटकघर।

शेक्सपियर के समय का लंडन।

अब हम यहाँ पर शेक्सपियर के समय के लंडन का कुछ [वर्णन] करते हैं, ताकि पाठकगण वर्तमान लंडन का वर्णन सुन क[र उस] समय के लंडन का कल्पना-चित्र अपने नेत्रों के सामने [...]

उस समय के लंडन की आबादी करीब तीन लाख थी, वर्तमान् बम्बई का तीसरा हिस्सा लंडन था। उसके मुख्य मार्गों पर फर्शबन्दी थी; परन्तु मार्गों में दीपक लगाने की [प्रथा] बिलकुल ही न थी। रात को बाहर निकलनेवाले लोग [घर] से लालटेन इत्यादि लेकर निकलते थे। शहर के [चारों] ओर कोट था; भिन्न भिन्न नामों के दरवाजे थे। घर बहुधा लकड़ी के बने हुए थे और लाल रंग के छप्परों से आच्छादित [थे]। उनके भीतर, दरियों और कालीनों की जगह, चटाइयाँ [बिछी रहती] थीं। कुर्सियाँ बिलकुल ही न रहती थीं, बेंच रहती थीं। [आज कल] के वाहन, अर्थात् श्रीमन्ती साज से सजी हुई घोड़े-गाड़ियाँ [उस] समय लंडन में बिलकुल ही न थीं। गरीब लोग पैदल, [मध्यम] लोग घोड़ों पर और धनवान् लोग मियाने के समान वाहन [पर] चलते थे। टेम्स नदी में हजारों छोटी छोटी डोंगियाँ और [नावें] पड़ी रहती थीं और उनके मालिक " ईस्टवर्ड हो! " " वे[स्टवर्ड] हो! " (कोई पूर्व की तरफ आनेवाला है? कोई पश्चिम की [तरफ] आनेवाला है?) चिल्ला चिल्ला कर मुसाफिरों को बुला[ते थे]। उनके इस व्यापार से नदी के घाट सदा भरे हुए देख प[ड़ते थे]। नदी में जगह जगह सीढ़ि[याँ और] घाट बने हुए थे। उन्हीं में न[ावें] लगती थीं। उनसे उतर कर [लोग] घाट चढ़ कर शहर में अ[पना काम] होता वहाँ जाते थे। बस्ती के [रास्ते] बिलकुल तंग, उनके फर्श टू[टे हुए] और बिलकुल दरिद्र थे। इस[लिए इन] रास्तों से जाने की अपेक्षा डोंगियों से ही जाना अधिक [पसन्द] करते थे। लंडन के एक सि[रे से] दूसरे सिरे को जाने में रास्[ते की] अपेक्षा नदी का अधिक उ[पयोग] होता था। लंडन में उस [समय] टेम्स नदी में सिर्फ एक ही पु[ल था]। इस पुल के दोनों ओर घर थे। [...] जिन्हें शिरच्छेद का दण्ड [दिया] जाता उनके शिर काट लेने के [बाद] वे शिर, पुल के मुहरे के ऊप[र और] दरवाजे के बुर्ज पर लगा दिये [जाते] थे, ताकि सब कोई उन्हें देख स[कें]। चोरी-छिनारे इत्यादि के स[ाधारण] अपराधों के लिए भी शिरच्छे[द का] दण्ड दिया जाता था।

आज कल जहाँ लंडन का [...] निदर है वहीं उस समय लंडन [...] का मुख्य चौक था। वहीं [...] (Exchange) था। वहीं [...] लोग काम-धंधा मिलने की [...] से जमा होते थे। यहाँ [...] भर की नाना प्रकार की [...] उड़ा करती थीं। सारे संसार की विचित्र घटनाओं की [...] नहीं था और [...] [...] के अनुसार, [...] चाहे फौजी हो, [...] नदी में अपनी [...] नौका के द्वारा घूमती थी, कभी अपनी गाड़ी में बैठ कर घूम[ती थी]। [...] इसीके ज़माने में पहली घोड़ा-गाड़ी इंगलैंड में आई। और [...] यह गाड़ी [...] ही गाड़ी बस लंडन में कई वर्ष तक थी। यह [...] पुराने रथ की सी थी।

स्त्रीपुरुषों के कपड़े रंगबिरंगे देख पड़ते थे। स्त्रियाँ [...] रंग लगाती थीं। रानी एलिजाबेथ अपने बालों में [...] जाब लगाती थी। यह एक फैशन था। [...] की चाल पड़ रही थी। कोई कोई अँगीठियाँ [...] पलंग कहीं कहीं देखे जाते थे। घास की गद्दियाँ [...] कर उन्हीं में लकड़ी के बोटे रख लिए जाते [...] से नहीं पाली जाती थी, किन्तु कपड़े के पर्दों से [...] सुबह ११ बजे मुख्य भोजन का समय था। [...] शिष्टाचार का लक्षण समझा जाता था। [...] आने; लकड़ी की तश्तरी, लकड़ी के चमचे, लकड़ी [...] का उपयोग होता था। भोजन में [...] और [...] न था। हाथ से ही भोजन करते थे। [...]

हो रहा था और वह कैसे खाना तथा पीना चाहिए, इसकी शिक्षा देनेवाली दुकानें खुल रही थीं।

नाटक, नाटकवाले और नाटकघर।

शहर में नाटकघर बनाने की आज्ञा बिलकुल ही न मिलती थी। नाटक का व्यवसाय बिलकुल ही हलका माना जाता था। लोग समझते थे कि इससे तो मुर्गों और बैलों की लड़ाई ही अच्छी! इस कारण शहर के बिलकुल बाहर-टेम्स नदी के पार-नाटकघर बनाये जाते थे। नाटक लिखना कोई बड़ा ग्रन्थकर्तृत्व नहीं माना जाता था। 'नाटक' की साहित्य के भाग में गणना नहीं थी और न साहित्य में उसकी कोई योग्यता थी; अर्थात् नाटक-कार कोई बड़ा सम्मान्य पुरुष नहीं समझा जाता था।

'रेडबुल' नामक नाटकघर की रंगभूमि।

नाटक-पात्रों की दशा तो कुछ पूछिये ही नहीं। उन्हें कोई न कोई बड़े और धनवान् पुरुषों के आश्रित रहने का सार्टिफिकेट अथवा लाइसेन्स रखना पड़ता था। यदि इनके पास ऐसा लाइसेन्स नहीं रहता तो पकड़ लिये जाते थे। यह कायदा था! सन् १४७१ में पार्लिमेन्ट ने यह कायदा बनाया था, परन्तु यह अच्छी तरह जारी न होता था, इस कारण, अथवा उसे अधिक कठोर करने के लिए, सन् १४११ ई० में यह फिर एक बार पास किया गया। इस कारण प्रत्येक नट-नाटकी किसी न किसी उमराव अथवा किसी बड़े सरदार के स्वाधीन रहने लगा। ऐसे नाटकपात्रों की मण्डलियां होती थीं और वे मंडलियां किसी न किसी उमराव के नाम से प्रसिद्ध रहती थीं। मंडलियां बना कर नाटक करने की प्रणाली पहले पहल रानी एलिज़ाबेथ के ही ज़माने में पड़ी। अर्ल आफ लीस्टर, इत्यादि पांच बड़े बड़े उमराव थे। उनके आश्रय में-उन्हींके नाम पर प्रसिद्ध-पांच मंडलियां थीं, और एक स्वयं रानी एलिज़ाबेथ के आश्रय में उसके नाम की थी। उस समय स्त्रियों का पार्ट लड़के लेते थे। स्त्रियां नहीं लेती थीं। कभी कभी स्त्रियों का पार्ट बड़े बड़े मुछन्दर भी लेते थे। परन्तु वे स्त्रियों के कपड़े पहन कर मुहँ में चेहरा लगाते थे! शेक्सपियर के नाटकों में इस विषय के स्पष्ट उल्लेख मिलते ही हैं। "As you like it" नामक नाटक की नायिका रोज़ालिंड नाटक समाप्त होने पर दर्शकों को सम्बोधन करके एक भरतवाक्य कहती है, उसमें एक वाक्य यह है:—

If I were a woman, I would kiss as many of you as had beards. मैं सचमुच स्त्री होती तो तुम में से जितने दाढ़ीवाले हैं उन सब का मैंने चुम्बन लिया होता!

इसी प्रकार "Antony and Cleopatra"* "अन्टनी और क्लीओपात्रा" नामक नाटक में रानी क्लीओपात्रा स्वप्न में अपनी दुर्दशा पर दुःख करते हुए कहती है —

" बनावटी नाटकी लोग अपना नाटक बनावेंगे और फिर कोई चेंचें चिल्लानेवाला छोकरा मेरा पार्ट लेकर मेरा तमाशा करेगा!

शेक्सपियर जिस समय लंडन आया उस समय सिर्फ़ वहां दो ही इने-गिने नाटकघर थे। लंडन को छोड़ कर अन्य किसी शहर में कोई भी नाटकघर नहीं थे। सरायों के अहातेवालों के चौक में अक्सर बनाते थे, खुली जगह में नाटक होते थे। अहातेवाले के एक सिरे दीवारों से सट कर बनाने का प्रबन्ध रहता था। इससे लम्बे

इत्यादि बांध कर एक चबूतरा बनाते थे। उस पर बीचों बीच एक पड़दा रहता था। इसी पड़दे से निकल कर पात्र अपना अभिनय करते थे। कितनी ही कम्पनियों के तो बड़े बड़े दुमंजिले गाड़े रहते थे। नीचे के खंड में पार्ट बनाते और ऊपर जाकर नाटक करते थे! ऊपर आकाश की छत रहती और नीचे गाड़े का दृश्य रहता!! जब नाटकघरों ही का यह हाल था तब 'सीनसीनरी' इत्यादि का तो नाम ही न लीजिए। दर्शकों के तीन दर्जे रहते थे:—१ खड़े रह कर देखनेवाले; २ अपने घर से स्टूलें लाकर उन पर बैठनेवाले। खड़े रह कर देखनेवालों के लिये रंगभूमि के आगे की खुली जगह रहती थी। इसे पिट कहते थे। इन दो के सिवाय एक तीसरा बड़े आदमियों का वर्ग रहता था। ये दर्शक उपर्युक्त दो वर्गों में न बैठते थे। ये महाशय रंगभूमि के दोनों ओर स्टूलें डाल कर बैठते थे!

यह हम ऊपर कह ही चुके हैं कि शेक्सपियर जिस समय लंडन में आया, उस समय सिर्फ दो ही स्वतंत्र नाटकघर पहले के बने हुए मौजूद थे। पुराने घरों में कुछ फेरफार करके ही नवीन नाटकघर बना लिये जाते थे। उन दो नाटकघरों में से एक का नाम दि थियेटर ही था और दूसरे का नाम The curtain पड़दा था। सन् १५९२ के प्रारम्भ में 'Rose' रोज नाम का एक तीसरा नाटकघर बनाया गया! इसी प्रकार फिर नाटक खेलने की ही गरज से नाटकघर बनने लगे। रानी एलिज़ाबेथ के शासनकाल के अन्त तक कुल १८ नाटकघर हो गये। ये नाटकघर कुछ अच्छे थे। साधारण तौर पर ये तिमंजिले होते थे। नीचे के भाग को पिट कहते थे। वास्तव में पिट, चौक या आंगन की खुली हुई जगह को कहते हैं। इसमें इतने लोग खड़े होते थे कि बिलकुल रंगभूमि तक उनकी भीड़ जम जाती थी। दूसरे और तीसरे मंजिल पर साधारण लोग तथा बोर्ड पर दोनों तरफ धनवान् लोग स्टूल डाल कर बैठते थे। खड़े रहने की जगह के लिए एक पेनी या दो पेन्स दर और इसी हिसाब से बढ़ते बढ़ते शिलिंग, दो शिलिंग के भीतर दर रहता था। नाटकघरों का आकार चौकोना, षट्कोना, अठकोना, और गोल भी रहता था। जितनी देर नाटक होता रहता उतनी देर नाटक-घर के ऊपर एक पताका फहराता रहता था। नाटक दिन को खेले जाते थे। शाम के पहर दो तीन बजे से प्रारम्भ होकर ५ बजे खतम होते थे। यह प्रकट करने के लिए, कि अब नाटक शुरू होता है, एक आदमी सहनाई बजाता था। नाटक होते समय, स्टेज पर आजुबाजू की ओर "यह वेनिस शहर है" "यह वेरोना का मुख्य चौक है" इत्यादि के बोर्ड लगा देते थे! इससे दर्शकों को यह मालूम हो जाता था कि अब कौन सा प्रवेश हो रहा है। सब नटों के वस्त्र भड़कीले होते थे।

नाटक के पात्र लोग सिर्फ़ अपनी अपनी नकलें याद कर लेते थे और इतने ही से उनका काम चल जाता था, पर आज कल इतने से कुछ नहीं हो सकता। अब तो, जिस समय का नाटक होता है, उस समय की, और नाटक में वर्णन किये हुए प्रसंगों की, सब परिस्थिति दर्शकों के सामने ज्यों की त्यों खड़ी करने के लिए पड़दे और दृश्य तैयार करने में हजारों रुपये नाटकवाली मंडलियों को खर्च करने पड़ते हैं। नाटक दृश्यकाव्य है। काव्य ही नहीं है, यह बात मन में लाकर सब दृश्य बिलकुल प्रसंगोचित और कालोचित दिखलाने का नाटकवालों को हौसला होता है। हेतु यह कि दृष्टि के सामने आये हुए दृश्य से और पात्रों के वस्त्रादि से दर्शकों की वृत्ति एकदम तल्लीन होनी चाहिए। दर्शकों को पूर्णतया यह मालूम होना चाहिए कि जिस काल का नाटक हम देख रहे हैं उस काल में हम अपनी देह के सहित जा रहे हैं और उसी स्थिति में सब बातें हम अपने सामने देख रहे हैं। यही आज के नाटकवालों की दृढ़ इच्छा रहती है।

परन्तु करीब ५० वर्ष पहले हमारे यहां के नाटकों की, नाटकवालों की और उनके सामान आदि की जो दशा थी, वही दशा शेक्सपियर के समय इंग्लैंड में थी।

शेक्सपियर के समय में नाटक का सम्पूर्ण निर्भर गीतिभाषण पर, भाषणों पर और अभिनय पर था। उसमें परिस्थिति और वस्त्रादि की ओर नहीं थी। नाटकवालों के सामान में सिर्फ़ थोड़े से कपड़े, तलवारें, चमरखड़ें, एक आध ढाल हो तो, इत्यादि चीज़ें रहती थीं। कोई कभी बाग का दृश्य दिखलाना होता तो किसी के

* [illegible]

श्रीरंगपट्टन के प्रसिद्ध स्थल।

दक्षिणी भारत में धार्मिक और ऐतिहासिक दृष्टि से जो प्रख्यात नगर हैं उनमें श्रीरंगपट्टन की योग्यता बहुत बड़ी है। वैष्णवपंथानुयायी मदरासी लोगों में 'आदिरंग, मध्यरंग और अन्तरंग' नामक तीन स्थान अत्यन्त पवित्र माने जाते हैं। यहां प्रतिवर्ष बड़े बड़े मेले लगते हैं। ये तीनों स्थान क्रमशः श्रीरंगपट्टन, शिवसमुद्र और

(१) कावेरी की बाढ़।

(२) श्रीरंगनाथ का मन्दिर।

(३) श्रीरंगपट्टन के किले का कावेरी नदी की ओर का द्वार। टीपूसुलतान अन्तिम लड़ाई में यहीं मारा गया।

श्रीरंगम में हैं। और ये सब कावेरी नदी के तीन टापुओं में ही स्थापित किये हुए हैं। इन तीनों जगहों में श्रीरंगनाथ के बड़े बड़े मन्दिर हैं और उनमें पड़ी हुई बालकृष्ण की मूर्तियाँ हैं। कावेरी नदी में प्रति वर्ष बाढ़ आती है, उस समय इन तीनों पवित्र स्थलों की शोभा अपूर्व देख पड़ती है। नम्बर १ का चित्र देखिये।

श्रीरंगपट्टन क्षेत्र के सम्बन्ध में पौराणिक कथा ऐसी है:—गौतम ऋषि टापू के पास ही एक छोटी सी गुफा में रह कर श्रीरंगनाथ की उपासना करते रहे थे। श्रीरंगपट्टन के पश्चिम ओर वह छोटा सा स्थान "गौतम क्षेत्र" के नाम से अब भी प्रसिद्ध है। इस छोटे से टापू में दो बड़ी शिलाओं के नीचे गौतम की गुप्त तपोभूमि थी।

(४) दर्या-दौलत-बाग।

अब उसे मैसूर सरकार ने बन्द कर दिया है। मुख्य श्रीरंगनाथ का मन्दिर (नं० २ का चित्र देखिये) कावेरी के टापू में श्रीरंगपट्टन के किले में है। सन् ८९४ के करीब, जब कि यहां गंग नाम के वंश

(५) दर्या-दौलत बाग का भीतरी भाग।

का राज्य था, 'तिरुमलैया' नामक एक सज्जन ने यह मन्दिर पहले पहल बनवाया। कहते हैं कि वैष्णवों पंथ के प्रसिद्ध आचार्य श्री रामानुज, धर्मसंकट के डर से, सन् १११७ के करीब इसी मन्दिर में छिप कर बैठे थे। इसी समय होयसलवंशीय बिट्टिदेव नामक जैन राजा को उपदेश करके उक्त आचार्य ने उसे वैष्णवधर्मानुयायी बनाया। और उस राजा ने गुरुदक्षिणा के तौर पर आचार्य महाराज

घर से चार छै कुंडे माँग कर रंगभूमि को सुशोभित कर लेते थे। जहाँ एक बार नाटक शुरू हो गया कि फिर बीच में अवकाश नहीं मिलता था। एक के बाद एक प्रवेश जारी रहते थे। बीच बीच में गाना बजाना भी होता जाता था। उसीमें मुख्य और अन्य नटों को कुछ विश्रान्ति मिल जाती थी। अभिनय बहुत अतिशयोक्त होते थे। खूब हाथ पैर हिला कर आः ऊः करके चिल्लाते अथवा शृंगारादि रसों के आविर्भाव की पराकाष्टा कर देते थे। हास्य के लिए भद्दकीली और अश्लील युक्तियों तथा उल्लेखों की* सहायता लेकर स्वयं अभिनय करते थे। शेक्सपियर के समान कु नट-नाटककारों को यह स्वयं का अभिनय पसन्द नहीं था, और उन्हें अभिनय का मर्म भी मालूम था। यह बात शेक्सपियर के नाट कों में दो चार जगह के कथनों से प्रकट होती है। परन्तु साधा रण नटों के अभिनय उपर्युक्त प्रकार के ही होते थे।

* जान पड़ता है कि उस समय के लोगों की रुचि के लिए ऐसा करना था। शेक्सपियर के अनेक नाटकों में ऐसे अश्लील उल्लेख हैं।

जनरल बैरन नोगी।

प्रसिद्ध रूसी सेनापति जनरल स्टोसेल के समान महावीर पुरुष का मुकाबला करके पोर्ट आर्थर का किला हस्तगत करनेवाले जापानी देशभक्त जनरल नोगी ने, अपने स्वर्गीय सम्राट् के प्रति भक्ति व्यक्त करने के लिए तलवार के द्वारा आत्महत्या कर ली। उनके पीछे उनकी धर्मपत्नी ने भी अपने हृदय में खंजर भोंक कर अपनी पतिनिष्ठा व्यक्त की। जापान में इस प्रकार की आत्महत्या को "हाराकिरी" कहते हैं। जापानी वीर की इस आत्महत्या को संसार के समालोचक चाहे जैसा कहा करें; परन्तु इससे यह अवश्य सिद्ध होता है कि अपने राष्ट्र के लिए-अपने राजा के लिए-जापान के ऐसे ऐसे महा पुरुष भी अपने प्राणों की आहुति देने के लिए हमेशा तैयार रहते हैं। अस्तु।

सन् १८४९ में जनरल नोगी का जन्म हुआ। उनके पिता मोरेत्सुगा जापान के सामुराई वंश के एक प्रसिद्ध पुरुष थे। वे चीनी साहित्य के बड़े निपुण ग्रन्थकर्त्ता थे। जनरल नोगी सन् १८७१ में जापान के सेना विभाग में प्रविष्ट हुए। इसके कुछ ही काल बाद आपको मेजर की पदवी प्राप्त हुई। 'सुहगो' के बलवे में उन्होंने बड़ी वीरता प्रगट की। उसके उपलक्ष में सन् १८८० में उन्हें 'कर्नल' की पदवी मिली और सन् १८८५ में जापानी सरकार ने उन्हें 'मेजर जनरल' बनाया। चीन और जापान के युद्ध में जनरल नोगी ने बड़ा पराक्रम दिखलाया था। उस लड़ाई के खतम होने पर उन्हें 'बैरन' की उपाधि प्राप्त हुई। सन् १८९६ ई० में जापानी सरकार ने उन्हें फार्मोसा टापू का गवर्नर नियत किया। रूस-जापान युद्ध में जापानी सेना के तीसरे कैम्प के अधिपति जनरल नोगी ही थे। उस युद्ध में उन्होंने जिस साहस और वीरता का परिचय दिया उसके कारण इनका नाम संसार के इतिहास में अमर हो गया है। 'पोर्ट आर्थर' के नाम के साथ साथ जनरल नोगी की शूरता, दृढ़ता और विलक्षण स्वार्थत्याग का स्मरण संसार को सदा बना रहेगा।

जनरल बैरन नोगी।

जनरल नोगी के समान महा योद्धा संसार में बहुत कम मिलेंगे। वे जैसे शूरवीर थे; वैसे ही उनका हृदय भी नवनीत की तरह कोमल था। "वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि" की तरह उनका हाल था। हमारे इस कथन का प्रत्यय इस बात से हो सकता है कि पोर्ट आर्थर के युद्ध में दोनों ओर के असंख्य सैनिकों को धराशायी होते हुए देख कर उनके नेत्रों से अनर्गल अश्रुधारा बहा करती थी। यद्यपि वे उस प्राणहानि से होनेवाले मानसिक कष्ट को अपने सैनिकों के सामने प्रकट नहीं होने देते थे, परन्तु रात को, लड़ाई बन्द होने पर, अपने को अकेला समझ कर, वे अपने शिर पर दोनों हाथ रख कर, बहुधा शोक करते हुए देखे जाते थे। रूस जापान युद्ध में उनके दो पुत्र काम आये। इस दुःख को बड़े धैर्य के साथ सहते हुए वे बराबर अपने राष्ट्र के गौरव के लिए युद्ध में डटे रहे। समय उनके विषय में एक अँगरेज लेखक ने कहा था:—

"Indomitable in the field Nogi literally was ideal of his men" अर्थात् जनरल नोगी रणक्षेत्र में दि अजित हैं और उनके सैनिक देवता के समान उनका गौरव है।

पोर्ट आर्थर हस्तगत होने के बाद, जापान का विजय होने पर, [illegible]

"After so many months and sacrificing many lives in the taking Port Arthur, I feel worthy praise. But kno ing the sympathy of people of England, not o myself, but my soldie heartly rejoice. its rep senting the army, I des to send heartust thanks

अर्थात् पोर्ट आर्थर हस्तगत क में कई महीने लगे और न जाने ति तने जीवों की बलि देनी पड़ी अतएव मैं अपने को प्रशंसा यो नहीं समझता। इंगलैंड के लोगों सहानुभूति जानकर, केवल मैं नहीं किन्तु मेरे सैनिक भी हृदय प्रसन्न हुए हैं। सेना के प्रतिनि की हैसियत से मैं आप लोगों हृदय से धन्यवाद देता हूं।

इससे जनरल नोगी की विनयशी लता का अच्छा परिचय मिल है। ऐसे उदारमनस्क लोगों इस संसार का भूषण ही समझ चाहिए। और ऐसे पुरुष जिस दे में जन्म लेते हैं उस देश को जगतीतल पर धन्य कहना चाहिये।

जनरल नोगी ने आत्मघात करने पहले जो मृत्युपत्र लिख रखा उससे जान पड़ता है कि उन पत्नी ने उनकी सम्मति से आत्म घात नहीं किया है; किन्तु अपनी इच्छा से अपने पति का सहगमन करके 'सती' हो जाने को ही उसने अपना श्रेय माना है। जनरल नोगी ने अपनी सम्पत्ति को अपनी पत्नी, अपने मित्रों और परोपका री संस्थाओं में बांट देने का उल्लेख अपने मृत्युपत्र में किया है। म के बाद उन्होंने लिखा है कि "मेरा शव वैद्यक विद्यालय के विद्यार्थि यों को शस्त्रक्रिया के प्रयोग सीखने के लिए दे दिया जाय और सिर्फ मेरे दांत, बाल तथा नख भस्म किये जायें।" इससे जनरल नोगी के स्वार्थत्याग की परमावधि हो जाती है। सम्पूर्ण जीवन स्वदेश उपकार में खर्च करके मृत्यु के बाद भी अपनी देह देशहित में लगा ना जहां के महापुरुष अपना धर्म समझते हैं यह राष्ट्र क्यों न संसार का मुकुट-मणि समझा जाय?

ते हैं वे अब भी यहां की उत्तमोत्तम भव्य इमारतें देख कर मोहित जाते हैं। इन इमारतों में "दर्या-दौलत-बाग" नामक इमारत (४४) सब से अच्छी गिनी जाती है। गर्मियों में टीपू सुलतान ी महल में रहता था। उसके मरने के बाद सुप्रसिद्ध अँगरेज ापति डयूक आफ वेलिंगटन भी यहीं रहता था। इस इमारत प्रमाणबद्धता, सौन्दर्य तथा उसकी रँगाई और नकाशी का काम यन्त मनोमोहक है। अनेक मार्मिक योरोपियन यात्रियों ने इसकी ी प्रशंसा की है। प्रसिद्ध अँगरेज यात्री मि० रीस लिखते हैं— स इमारत के नख से लेकर शिख तक जो नकाशी और रँगाई, ादि का उत्कृष्ट कौशलयुक्त काम किया हुआ है उसकी जोड का य काम भारत में नहीं है। यह इमारत देख कर ईरान के इस्प-न-राजमहल की याद हो आती है।" इस नकाशी और रंग के म में जो कौशल दिखलाया गया है वह यही है कि टीपू सुल-ा ने अँगरेजों के जो पराभव किये—विशेषत कर्नल बेली का जो भव किया—उसके भिन्न भिन्न सैकड़ों प्रसंगों के विस्तृत और [illegible] ये गये हैं। इसके सिवाय [illegible] हैं—जैसे टीपू के जमाने [illegible] के कबरिस्तान, मसजिद

रन्तु श्रीरंगपट्टन का यह वैभव शीघ्र ही नष्ट होने लगा। इस [का क्षेत्रफल कुल ४४० वर्ग मील है, पर उसमें से सिर्फ २६७ एकड़ में बस्ती है। जब यह राजधानी अपने पूर्ण वैभव में थी तब इसकी जन-संख्या डेढ़ लाख थी। यही जनसंख्या, किला और शहर अँगरेजों के अधीन होने के एक ही वर्ष बाद, सिर्फ ३२ हजार रह गई! इसके बाद तो फिर चूंकि मैसूर का महत्व बढ़ने लगा और पट्टन का जलवायु भी बिगड़ने लगा, इस कारण इस शहर के ह्रास में विलम्ब नहीं लगा। सन् १८९७ की मर्दुमशुमारी में इस शहर की जन-संख्या सिर्फ १०६७४ थी। पिछली दस दस वर्ष की चार मर्दुमशुमारियों में यह संख्या क्रमशः और और घट कर अब सिर्फ ७३७२ रह गई है! इसमें से खास श्रीरंगपट्टन की ३४२४ है। बाकी गंजम नामक, समीप के गांव की है। श्रीरंगपट्टन में पानी के जो नल लगे हुए हैं वे फूटे हुए हैं; खँडहरों में जंगल बढ़ रहा है, पूरे हुए खंदक के मैदान में गन्दे पानी के डाबर भरे हुए हैं, मैला और गन्दा पानी बहा लेजानेवाले अच्छे नाले यहां नहीं हैं; पाखाने महा गन्दे हैं; इत्यादि अनेक कारणों से श्रीरंगपट्टन का जलवायु अत्यन्त दूषित हो रहा है और यहां का प्रवासी दो ही तीन दिन में मलेरिया ज्वर का निशाना बन जाता है। मैसूर-दरबार के नवीन चीफ इंजिनियर श्रीयुत विश्वेश्वरैया ने शहर के सुधार के लिए साढ़े चार लाख रुपये के खर्च की सूचना दी है। यह सूचना कार्य-रूप में परिणत हो जाने पर, आशा है, इस प्राचीन और इतिहास-प्रसिद्ध नगर के जलवायु में अच्छा सुधार होगा और इसकी दशा बहुत सुधर जायगी। तथास्तु।

मनोपदेश *

(१)

मनो धार्यमार्येषु मार्गेषु धैर्यं।
मनो हीनपुंसो वचः क्षाम्यमेव ॥
मनोऽहिरत्वया शीतलैर्वाग्भिरन्यैः।
मनः सर्वदा सज्जनास्तोषणीयाः ॥

(२)

मनो देहपातेऽपि कीर्तिः स्थिरास्या—।
यया तां क्रियां सर्वदैवाऽऽरभस्व ॥
मनश्चन्दनं सद्गुणं सम्प्रगृह्य।
त्वया सर्वथा सज्जनाः संमनोज्याः॥

(३)

मनो रामचन्द्रे तव प्रीतिरस्तु।
यत्नाद्धृतं दुःखजालं निवार्यं ॥
त्वया देहदुःखं सुखत्वेन मान्यं।
रमस्वात्मरूपे विचारेण नित्यं ॥

(४)

समस्तैः सुखैः संयुतः कोऽस्ति लोके।
मनः सद्विचारैः शनैर्निश्चिनु त्वं ॥
मनो यत्त्वया संचितं कर्म पूर्वं।
तदेवेह भोग्यं शुभं वाऽशुभं वा ॥

(५)

मनः पश्य ये संस्थिता मृत्युभूमौ।
वदन्त्यामृतिं तेऽहमेवाहमित्यं ॥
चिरं जीवितं मानयन्त्यात्मनोऽज्ञाः।
क्षणात्ते परित्यज्य सर्वं प्रयान्ति ॥

(६)

मनो रामनाम्नस्त्वयाऽन्यन्न वाच्यम्।
वृथावाक्प्रबन्धात्सुखं नैति कश्चित् ॥
क्षणेनाऽऽयुरुग्रे हरत्येव कालः।
यमागवमानेऽप्य को मोचयेत्त्वाम् ॥

(७)

विना रामसेवां श्रमो व्यर्थ एव।
जनस्य प्रलापो यथा निद्रितस्य ॥
मनो ब्रूहि वाचा हरेर्नाम नित्य—।
महन्तां महापापिनीं संहरासु ॥

—

(१)

मना! नित्य जी में धरे धैर्य भारी।
सहे नीच बातें, वरन् खेदकारी ॥
स्वयं सर्वदा नम्र ही बैन बोले।
सभी मानवों को सुखी राख डोले ॥

(२)

मना! कार्य ऐसे करे सौख्यदायी;
रहे मौत के बाद भी कीर्ति छाई ॥
घिसे देह श्रीखंड की भांति प्यारे!
रखे पै सदा ही सुखी सन्त सारे ॥

(३)

सदा सर्वदा राम में प्रीति राखे।
न जी में कभी दुःख की भीति राखे ॥
महा दुःख भी मान तू सौख्य-सार।
सखे! आत्मरूप स्वयं तू विचार ॥

(४)

सुखी कौन संसार में सर्व भांति?
लखे क्यों न तू खोज के सर्व जाति ॥
किये हैं अरे! पूर्व में कर्म जैसे;
मिले हैं यहां भोग भी मित्र! वैसे ॥

(५)

सदा मौत के दूत तो घूमते हैं;
सभी जीव पै गर्व से भूमते हैं॥
चिरंजीव वे सर्व ही मानते हैं,
अकस्मात सर्वस्व भी त्यागते हैं ॥

(६)

बिना 'राम' किंचित् नहीं बोल भाई!
जगत् में वृथा बोलना दुःखदायी ॥
घड़ी पै घड़ी आयु है काल खाता।
तुझे अन्त में कौन है रे! छुड़ाता?

(७)

मना! 'राम' को छोड़ क्यों व्यर्थ धावे?
वृथा स्वप्न की भांति क्यों बर्र लावे?
सदा सर्वदा 'राम' के नाम गावे।
अहंता महा पापिनी को भगावे ॥

—

* संस्कृत और हिन्दी दोनों अनुवाद श्री समर्थ रामदास स्वामी के "मनाचे श्लोक" नामक [illegible] से [illegible] गये हैं। [illegible] इन दोनों अनुवादों के [illegible] कहीं कहीं [illegible] [illegible] है। सम्पादक।

साहित्य-चर्चा।

१ पश्चिमी तर्कः—लेखक प्रो० दीवान चन्द एम० ए०। पृष्ठ-संख्या १६६। मू० १ रु० मिलने का पता—आत्माराम एंड सन्स बुक-सेलर लाहौर। पारितोषिक ही के लालच से क्यों न हो; किन्तु एक पंजाबी विद्वान् का आर्यभाषा में ग्रन्थ लिखना सौभाग्य की ही बात है। इस ग्रन्थ के लिए पंजाब-विश्व-विद्यालय ने ग्रन्थकर्ता को १½ हजार रुपया पारितोषिक दिया है। सुकरात के पूर्व से लेकर अर्वाचीन काल तक के पश्चिमी देशों के तर्क का इतिहास, संक्षिप्त रीति से, इस पुस्तक में आ गया है। इस प्रकार की पुस्तकों की आर्यभाषा में बड़ी आवश्यकता है। ग्रन्थ-कर्ता ने अपने गहन विषय को बड़ी योग्यता से समझाया है। इसकी भाषा परिमार्जनीय है।

२ भागवत परीक्षा—लेखक पं० छुट्टन-लाल स्वामी। पृ० सं० १६। मूल्य २) रु० सैकड़ा। मिलने का पता—घसीलाल आर्य कानपुर। इसमें शुकदेवजी के जीवनचरित पर, भिन्न भिन्न पुराणों के परस्पर विरोधी वचनों को देकर, विचार किया गया है। भागवत की परीक्षा से इसमें कोई सम्बन्ध नहीं है। प० छुट्टनलाल स्वामी या अन्य कोई आर्यसामाजिक पंडित भागवत की परीक्षा पर विस्तृत ग्रन्थ लिखें तो बड़ा उपकार हो। भागवत इत्यादि पौराणिक ग्रन्थों को बिलकुल त्याज्य और बेकाम बतलाना दुराग्रह कहा जायगा। सच तो यह है कि उक्त ग्रन्थों के संशोधन की बड़ी आवश्यकता है। उनके ऐतिहासिक और आध्यात्मिक महत्वपूर्ण भाग को रख कर अन्य सब कूड़ा-कचरा निकाल देना चाहिए। इस प्रकार की आवृत्तियां प्रकाशित करने का भार यदि आर्य-समाज अपने ऊपर ले तो उन ग्रन्थों से, क्या आर्यसमाजी और क्या सनातनधर्मी, सभी लोग विशेष लाभ उठा सकते हैं।

३ प्रश्नपत्रविधिः—यह संध्या की पुस्तक भी ऊपर के पते पर ?।) रु० सैकड़ा के हिसाब से मिल सकती है। मन्त्रों के अर्थ भी दिये हुए हैं। आज कल प्रायः देखा जाता है कि सर्वसाधारण लोग बिना अर्थ जाने ही संध्या के मन्त्र रट लेते हैं, पर इससे विशेष लाभ नहीं होता। सार्थ संध्या का बड़ा काम है।

४ वैद्य सम्मेलन की नियमावली—प्रकाशक मंत्री आयुर्वेद महासम्मेलन प्रयाग।

को ८ गावँ इनाम दिये। सन् १४५४ के करीब हेब्बर जाति के थिम्मणा नामक एक मनुष्य को भूमिगत द्रव्य का एक बडा खजाना एकदम मिल गया; उस समय उसने यह सारा द्रव्य खर्च करके श्रीरंगनाथ का मन्दिर दुरुस्त कराया और उसमें नवीन स्थान बनवाये। तिरुमलराय नामक सूबेदार के रहते समय, विजयानगर के दूसरे राजवंश के मूलपुरुष नरसा-नरसिंह-ने श्रीरंगपट्टन पर अधिकार कर लिया। परन्तु फिर सन् १६१०के करीब यह टापू और किला दोनों, उसे मैसूर के वोडियार राजवंश के अधीन कर देने पड़े। बाद को, मैसूर रियासत के साथ ही, हैदरअली और टीपू सुलतान ने श्रीरंगपट्टन को किले-सहित पुराने राजवंश से ले लिया।
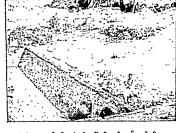
(६) काल कोठड़ियां; जिनमें टीपू ने कर्नल बेली तथा अंगरेजों को बन्द किया था। अन्य

और वहां सन् १७९९ तक केतु के समान दैदीप्यमान प... थिक राजसत्ता का भोग कि... उपर्युक्त साल में टीपू सुलतान... लड़ाई में मारा गया और शहर... किला अंगरेजों के हाथ... अगले ही वर्ष इन्होंने कि... भीतरी दीवालें गिरा कर... पास का खंदक भी पूर... और उस पर... के पेड़ों की पंक्ति लगा... बस इसी समय से श्रीरं... के ऐहिक वैभव का बराबर... होता गया। तथापि उसका... मार्थिक वैभव अब भी बना... है। श्रीरंगपट्टन, हैदर और... के जमाने में और उनके पहले... पीछे भी कुछ वर्ष अच्छी... में रहा। ऐहिक आनन्द पाने... इच्छा से जो यात्री इस शह...

(७) झूलता पुल।

(८) हैदर और टीपू के कब्रिस्तान। यहां प्रतिवर्ष मुसलमानों का मेला लगता है।

(९) किले का बुर्ज, जिस पर टीपू का निशान फहराता था।

(१०) टीपू की प्रार्थना की मसजिद।

(११) सन् १[illegible]०७ में बनाया हुआ उन सिपाहियों का स्मारक जो टीपू की अन्तिम लड़ाई में, किले के [illegible] छिद्र से भीतर प्रवेश करते हुए, मारे गये।

नियम बहुत व्यापक हैं। इसके अनुसार कार्य होने से, आशा है, महामंडल का उद्देश्य सफल होगा। वैद्यक-सम्मेलन के आगामि अधिवेशन में भारत के भिन्न भिन्न प्रान्तों के सुयोग्य वैद्यों का खास तौर निमंत्रण देने का प्रबन्ध करना चाहिए।

५ वर्णविचारः—लेखक बाबू अयोध्याप्रसाद वर्मा, २३।११ वाराणसी घोष सेकेण्ड लेन, जोड़ा सांकू, कलकत्ता। बिना मूल्य वितरित। इस निबन्ध में नागरी लिपि को सार्वभौमिक वर्णमाला बनाने के सम्बन्ध में विचार किया गया है। लेखक ने यह दिखलाया है कि नागरी वर्णों के साथ कुछ चिन्हों का प्रयोग करने से अँगरेजी, आदि विदेशी भाषा भी इसी लिपि में सरलता से लिखी पढ़ी जा सकती हैं। आपने कुछ चिन्हों की सृष्टि भी की है। आपका उद्योग प्रशंसनीय है। परन्तु हमारी सम्मति है कि नागरी अक्षरों के ऊपर, नीचे, चारो ओर, चिन्हों के लग जाने से उनकी स्वाभाविक सुन्दरता नष्ट हो जाती है और इसमें सन्देह होने लगता है कि अन्य जातियां उस दशा में इस लिपि को कैसे स्वीकार करलेंगी। पहले इस लिपि को इसी रूप में भारत-व्यापी ही बनाने का उद्योग करना चाहिए।

६ वीर होरेशसः—रोम के इतिहास में इस महावीर का नाम अमर रहेगा। इसने जिस धीरता से अपने राष्ट्र की स्वाधीनता की रक्षा ... साहब ... उसी ...

बाबू रघुनाथप्रसाद कपूर ने किया है। अनुवाद खड़ी बोली के छन्द में है। इस अनुवाद के पहले हमने इस पुस्तक के दो अनुवाद आर्यभाषा में और पढ़े हैं। उन दोनों से यह उत्तम और सरस हुआ है। मूल काव्य के भाव की रक्षा करने का अच्छा प्रयत्न किया गया है। परन्तु अनुवादक महाशय को कविता रचने का अभी अच्छा अभ्यास नहीं है। इस पुस्तक में जगह जगह छन्दोभंग बहुत खटकता है। शब्दों को तोड़ मरोड़कर बहुत विकृत कर दिया है। उदाहरणार्थ—

> सम्मती सब ने यही दी सेतु को तोड़ो तुरत,
> कौन जानें देर होने से हो क्या अपनी कुगति।
> ठीक उसी क्षण शब्द हूआ "त्यार हो जाओ सभी
> पोरसीना पार होना चाहता है पुल अभी।"

मिलनेका पता—व्यवस्थापक सि० भ०मण्डली, नं० १०, हाथरस सिटी। मूल्य दो आना।

७ संस्कृत-प्रबोधः—(प्रथमभाग)—लेखक पं० बदरीदत्तशर्मा, आर्यसमाज, ठंढी सड़क, कानपुर। मूल्य ≡) आने। इस पुस्तक में वर्णोपदेश से लेकर कृदन्त तक संस्कृत व्याकरण के विषय आर्यभाषा में समझाये गये हैं। उदाहरण और उपपत्ति भी दी गई है। संस्कृत सीखनेवालों के लिए बड़ी उपयोगी पुस्तक है।

८ सम्राट् शुभागमनः—सम्राट् के भारतवर्ष में पधारने पर अँगरेजी, हिन्दी, मराठी, गुजराती, इत्यादि पत्रों में जो कविताएं प्रकाशित हुई थीं उन्हींको श्रीयुत राजेन्द्रनाथ पंडित ने इस पुस्तक में संग्रह किया है। तीन

चित्र भी दिये हैं। १७६ पृष्ठ की। मूल्य १) रुपया। "साधकालय" के पते पर पुस्तक मिल सकती है।

९ कलियुग की कुलदेवीः—मूलचन्द किसनदास कापड़िया, दक "दिगम्बर जैन," सूरत। मू... वर्तन"। इस पुस्तक में वेश्या-प्रन... निषेध किया गया है। सब को ... लाभ उठाना चाहिए और अपने इस घृणित कर्म से पराङ्मुख करने करना चाहिए।

१० पिण्डपितृयज्ञः ... का लेखबद्ध ४ थां व्याख्यान। अनेक आर्यग्रन्थों का प्रमाण देकर ... लाया गया है कि पिण्डपितृयज्ञ ... नहीं है। विषय विचारणीय है। मू... मिलने का पताः—स्वामि ...

११ विचार-परिणामः ... अमृतलाल, सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस, ... पुर (मेवाड़)। पृष्ठसंख्या ६१। ... आने। यह जेम्स एलन साहब की ... पुस्तक का अनुवाद है। इसमें यह ... गया है कि विचार-शक्ति का ... सिर्फ उस मनुष्य के ही मन और ... आदि पर होता है, किन्तु बाह्य ... होता है। पुस्तक वैज्ञानिक और ... की है। मानस-शास्त्र की अनेक ... बातें इसमें भरी हुई हैं। पुस्तक की ... है। नागरी अक्षरों में प्रकाशित करने ... हम अनुवादक महाशय को धन्यवाद ...

[illegible] गायकवाड़ की पांचवीं वर्षगांठ के दिन लिया हुआ फोटो।

([illegible])

नियम बहुत व्यापक है। इसके अनुसार कार्य होने से, आशा है, महामंडल का उद्देश्य सफल होगा। वैद्यक-सम्मेलन के आगामि अधिवेशन में भारत के भिन्न भिन्न प्रान्तों के सुयोग्य वैद्यों का खास तौर निमंत्रण देने का प्रबन्ध करना चाहिए।

५ वर्णविचार:—लेखक बाबू अयोध्याप्रसाद वर्मा, २३।१, वाराणसी घोष सेकेण्ड लेन, जोड़ा सांकू, कलकत्ता। बिना मूल्य वितरित। इस निबन्ध में नागरी लिपि को सार्व्वभौमिक वर्णमाला बनाने के सम्बन्ध में विचार किया गया है। लेखक ने यह दिखलाया है कि नागरी वर्णों के साथ कुछ चिन्हों का प्रयोग करने से अँगरेजी, आदि विदेशी भाषा भी इसी लिपि में सरलता से लिखी पढ़ी जा सकती हैं। आपने कुछ चिन्हों की सृष्टि भी की है। आपका उद्योग प्रशंसनीय है। परन्तु हमारी सम्मति है कि नागरी अक्षरों के ऊपर, नीचे, चारो ओर, चिन्हों के लग जाने से उनकी स्वाभाविक सुन्दरता नष्ट हो जाती है और इसमें सन्देह होने लगता है कि अन्य जातियां उस दशा में इस लिपि को कैसे स्वीकार करेंगी। पहले इस लिपि को इसी रूप में भारत-व्यापी ही बनाने का उद्योग करना चाहिए।

६ वीर होरेशस:— रोम के इतिहास में इस महावीर का नाम अमर रहेगा। इसने जिस वीरता से अपने राष्ट्र की स्वाधीनता की रक्षा की उसका प्रभावशाली वर्णन मेकाले साहब ने अपने अँगरेजी काव्य में किया है। उसी काव्य का अनुवाद यह आर्यभाषा में बाबू रघुनाथप्रसाद कपूर ने किया है। अनुवाद खड़ी बोली के छन्द में है। इस अनुवाद के पहले हमने इस पुस्तक के दो अनुवाद आर्यभाषा में और पढ़े हैं। उन दोनों से यह उत्तम और सरस हुआ है। मूल काव्य के भाव की रक्षा करने का अच्छा प्रयत्न किया गया है। परन्तु अनुवादक महाशय को कविता रचने का अभी अच्छा अभ्यास नहीं है। इस पुस्तक में जगह जगह छन्दोभंग बहुत खटकता है। शब्दों को तोड़ मरो ड़कर बहुत विकृत कर दिया है। उदाहरणार्थ—

> सम्मती सब ने यही दी सेतु को तोड़ो तुरत,
> कौन जानें देर होने से हो क्या अपनी दुगति।
> ठीक उसी क्षण शब्द हुआ "त्यार हो जाओ सभी
> पोरसीना पार होना चाहता है पुल अभी।"

मिलनेका पता—व्यवस्थापक सि० भ०मएडली, नं० १०, हायरस सिटी। मूल्य दो आना।

७ संस्कृत-प्रबोध:—(प्रथमभाग)—लेखक पं० बदरीदत्तशर्मा, आर्यसमाज, ठंढी सड़क, कानपुर। मूल्य ≡) आने। इस पुस्तक में वर्णोपदेश से लेकर कृदन्त तक संस्कृत व्याकरण के विषय आर्यभाषा में समझाये गये हैं। उदाहरण और उपपत्ति भी दी गई है। संस्कृत सीखनेवालों के लिए बड़ी उपयोगी पुस्तक है।

८ सम्राट् शुभागमन:—सम्राट् के भारतवर्ष में पधारने पर अँगरेजी, हिन्दी, मराठी, गुजराती, इत्यादि पत्रों में जो कविताएं प्रकाशित हुई थीं उन्हींको श्रीयुत राजेन्द्रनाथ पंडित ने इस पुस्तक में संग्रह किया है। तीन चित्र भी दिये हैं। १७६ पृष्ठ की मूल्य १) रुपया। "साधुकार्यालय" के पते पर पुस्तक मिल सकती है।

९ कलियुग की कुलदेवी मूलचन्द किसनदास कापड़िया, दक "दिगम्बर जैन," सूरत। वर्तन"। इस पुस्तक में वेश्या-निषेध किया गया है। सब को लाभ उठाना चाहिए और अपने इस घृणित कर्म से पराङ्मुख करना चाहिए।

१० पिण्डपितृयज्ञ: का लेखबद्ध ५ वां व्याख्यान। अनेक आर्यग्रन्थों का प्रमाण देकर लाया गया है कि पिण्डपितृयज्ञ नहीं है। विषय विचारणीय है। मिलने का पता.-स्वामि

११ विचार-परिणाम:— अमृतलाल, सुपरिन्टेन्डेन्ट पुर (मेवाड़)। पृष्ठसंख्या आने। यह जेम्स एलन साहब पुस्तक का अनुवाद है। इसमें गया है कि विचार शक्ति का सिर्फ उस मनुष्य के ही मन आदि पर होता है, किन्तु बाह्य होता है। पुस्तक वैज्ञानिक और की है। मानस-शास्त्र की बातें इसमें भरी हुई हैं। पुस्तक है। नागरी अक्षरों में हम अनुवादक महाशय को धन्य

[illegible] सम्राट् के पांचवीं वर्षगांठ के दिन लिया हुआ फोटो।
([illegible])

यह मासिक पत्र रामचंद्र वासुदेव जोशी ने 'चित्रशाला' प्रेस, पूना से छापकर प्रकाशित किया।

सन् १९१२ ईसवी। [अंक १०

पता चलता; वहीं मैं नियम से जाने लगा। कृष्णकि-
अध्यात्मरामायण पढ़ते थे। वहां मैं नित्य जाने लगा।
शोर बाबू की श्रद्धा भी बड़ी अपूर्व थी! एक बार वे
वृन्दावन की यात्रा को गये। रास्ते में एक
जगह उन्हें एक बार प्यास लगी। वे पास
ही के एक कुएं पर गये। वहां एक मनुष्य
खड़ा था। उससे उन्होंने कहा कि हमें

बाबू और श्रद्धा।

ानी पिलाओ। उस मनुष्य ने कहा, मैं शूद्र हूं; आप
अतएव मेरे हाथ का पानी आप कैसे पियेंगे! किशोर
ा "तू एक बार 'शिव' कह दे; बस तू पवित्र हो जा-
स मनुष्य ने वैसा ही किया और इसके बाद पानी कुएं से
वह पानी किशोर बाबू ने-ब्राह्मण होकर भी-पी लिया!
का भी कहीं ठिकाना है!

'कोई साधु पुरुष नदी के किनारे अर्थात् घाट पर कुछ
रहते थे। हमने उनके दर्शन के लिए जाने का विचार
ह दिन हलधारी (महाराज के चचेरे भाई) से मैंने
[किशोर और मैं उस साधु के दर्शन करने जाता हूँ। क्या
मारे साथ आते हो?" हलधारी ने उत्तर दिया "पार्थिव
कीमत मृण्मय पिंजरे से कुछ अधिक नहीं। अतएव ऐसे
धारण करनेवाले प्राणी के दर्शन को जाने से क्या मत-

हलधारी नित्य गीता का पारायण करते और जिस वेदान्त
पादन किया गया है कि सिर्फ एक ईश्वर ही सत्य है
सब मिथ्या है उसीका वे नित्य परिशीलन करते रहते।
उत्तर जब मैंने कृष्णकिशोर से बतलाया तब वे क्रोध
[कर बोले, "क्या हलधारी ऐसा कहते थे? सत्पुरुष
ा—उस सत्पुरुष के शरीर को, जो ध्यान में, मन में, स्वप्न
में, शयन में, पान में, एक ईश्वर के सिवाय अन्य कुछ
नहीं और जिसने ईश्वर के लिए संसार को और तदंगभूत
को तिलांजलि दे दी है—क्या वे केवल मृण्मय पंजर
क्या उन्हें इतना भी ज्ञान नहीं है कि सच्चे भक्त का
म मनुष्य की तरह मृण्मय नहीं होता, किन्तु चिन्मय
" पूजा के लिए फूल तोड़ने जब वे दूसरे दिन देवी के
ये तब उन्होंने हलधारी की ओर आंख उठा कर देखा
इतना वे उन पर क्रुद्ध हुए!
न उन्होंने मुझ से यह प्रश्न किया कि "तुमने अपना
जनेऊ क्यों निकाल डाला?" सिद्धेश्वर आ-
श्विन (१८५४) में गंगा की बाढ़ में जिस
प्रकार सभी कुछ बहा लिया उसी प्रकार
इसमें ही मानो बाढ़ से मेरी बुद्धि में
म परिवर्तन हो गया तब मेरा सब कुछ ध्यान ही ध्यान
[illegible]
है धोती का पता किसे लगता है!
[मैं कलकत्ता से आने के कारण किस रूप में बहुत दिन तक
[illegible]

(के बाद की स्थिति।)

[illegible]

श्रीरामकृष्ण काशी जाते हैं, यात्रा का महत्व।

उस समय कुछ मेरी वृत्ति ही ऐसी हो गई थी कि भगवत्कथा को छोड़ कर अन्य शब्द मेरे कानों को बहुत बुरे लगते थे। जब कभी मैं लोगों को संसार की रूखी कथायें कहते हुए देखता तभी मैं स्वयं एकान्त में जाकर रोया करता। ...बार मथुर बाबू अपने साथ मुझे उत्तर-भारत की यात्रा को ले ...। हमने अनेक तीर्थ किये। काशी पहुँचने पर हम लोग कुछ दिन ...बाबू के मकान पर ठहरे। एक दिन मैं कमरे में बैठा था। मथुर ...भी वहीं थे। वे राजा बाबू तथा उनके अन्य साथियों के साथ ...चीत करते थे। उनकी कोरी संसार की गप्पें हो रही थीं। ...कुछ बातें हो रही थीं कि "अमुक व्यवहार में इतने इतने रुपये कमाये अथवा गमाये।" इधर मैं आप ही आप मन माना रोया और माता से कहा, "मा! तूने कहां यहां लाकर मुझे डाल दिया? इस तीर्थ से तो मैं अपने दक्षिणेश्वर के मन्दिर में ही अधिक सुखी था! ये लोग तीर्थ में आये तो देवदर्शन के लिए हैं; पर माता, अब तू ही देख ले, ये 'कामिनी और कांचन' को छोड़ कर अन्य कोई बात ही नहीं करते! इससे तो हमारा वह मन्दिर का ही स्थान अच्छा था। क्योंकि वहां कम से कम ऐसे शब्द तो मुझे न सुनने पड़ते थे।"

इसके बाद महाराज ने नरेन्द्र से थोड़ी देर सोने के लिए आग्रह किया; और स्वयं भी क्षणभर विश्रान्ति लेने के लिए छोटे पलँग पर जा पड़े

स ज्ज न ता।

१

श्री महात्मा वायुजित् के भाव मंगलमूल थे।
 वे मनीषी साधु विद्या-कल्पतरु के फूल थे॥
एक दिन की बात है; वे जा रहे थे पाथ में।
 एक गायक आ मिला ले तानपूरा हाथ में॥

२

वायुजित् ने कहा उससे "हे सखा, कुछ गाइये।
 आप श्रीमुख से कृपा कर ब्रह्म-गीत सुनाइये"॥
दुष्ट ने उत्तर दिया—"रे मूढ़! क्या तेरे लिये—।
 सीखने को गान के हमने परिश्रम है किये?"॥

३

वायुजित् ने कहा "भैया, क्रोध करना पाप है।
 लाभ कुछ होता न इससे बल्कि बढ़ता ताप है॥
ब्रह्म-कीर्तन से सहज में दोष दुख खो जायगा।
 शुद्ध जीवन यह सदन आनंद का हो जायगा"॥

४

दुष्ट ने फिर कहा "रे शठ! ज्ञान तू सिखला नहीं;
 दूर हट जा सामने से मूर्ख! मुँह दिखला नहीं॥
तू न राजा है, न बाबू है; नहीं सरदार है।
 गान सुनने का हमारा क्या तुझे अधिकार है?"

५

वायुजित् ने नम्रता से-शान्ति से उत्तर दिया।
 "आपने यह क्रोध तो हे विप्रवर! नाहक किया॥
ब्रह्म व्यापक और उसमें व्याप्त सब संसार है।
 क्यों न उसका सुयश सुनने का मुझे अधिकार है?

६

"आप जिस प्रभु की कृपा से लोकप्रिय गायक हुए।
 गानद्वारा मुग्धकारी वश के नायक हुए॥
चाहिये तो थे-कहें यश कथन उस कर्तार का
 क्या उचित है आप को फिर पूछना अधिकार का?"

७

दुष्ट सुनते ही इसे तो लाल पीला हो गया।
 क्रोध की ज्वाला जगी तो ज्ञान सारा खो गया॥
आँख कर अंगार सी खल हृदय में दहने लगा।
 धर्म-मुख करके अधर्मी दुर्वचन कहने लगा॥

८

हो गया उन्मत्त मद में, चित्त में अभिमान कर।
 माथ में मारा अचानक तानपूरा तान कर॥
तानपूरा टूटने से सैकड़ों दीं गालियाँ।
 रक्त से तर वायुजित् को देख पीटीं तालियाँ॥

९

वायुजित् का रक्त क्षत से अरुण मुखमंडल हुआ।
 दुष्टता अपनी दिखा यों शान्त तब वह खल हुआ॥
व्यंग बातें कर अधम ने मार्ग निज घर का लिया।
 साधु के उपदेश का फल वायुजित् ने पा लिया॥

१०

चाहते जो वायुजित् तो दंड दे सकते उसे।
 सहनशील उदार थे पर वे सुजनता से लसे॥
इस लिये घर जा उन्होंने मौन हो सब दुख सहा।
 दूसरे ही दिन बुला कर दास से ऐसा कहा—॥

११

"साथ दो मुद्रा तथा लेकर मिठाई थाल-भर—
 दुष्ट को देकर हमारी बात कहना ध्यान कर—॥
"आपने जो वायुजित् को दुर्वचन कल था कहा।
 हो गया होगा कदाचित् आपका मुख कटु महा॥

१२

"तो दया करके मिठाई थाल भर यह लीजिये।
 और खा करके सुमुख को मित्र! मीठा कीजिये॥
मारने से तानपूरा नष्ट था जो होगया।
 लीजिये मुद्रा इसीसे फिर मँगा लेना नया॥"

१३

थाल में भर कर मिठाई और ले दो रूपया।
 दास वह तत्काल ही उस दुष्ट को देने गया॥
कह सुनाया सब संदेशा वायुजित् का प्रेम से।
 फिर कहा—"पूछा उन्होंने"—"आप तो हैं क्षेम से?"

१४

सोच कर कल की कथा आश्चर्यमय होने लगा।
 वेदना चित में हुई वह पातकी रोने लगा॥
आँख से आंसू निकल कर गाल पर झरने लगे।
 कंठ से उसके निकल ये शब्द सुन पड़ने लगे—॥

१५

"हाय! मैं हूँ दुष्ट, दुर्जन, मूढ़, मानी, पातकी।
 कुटिल, क्रूर, कठोर, कपटी, महा क्रोधी, घातकी॥
हाय! मैंने बिना कारण वायुजित् को दुख दिया।
 सभ्यता को छोड़ दुर्जन-भाव को अपना लिया॥

१६

क्या रहेगा सुखी करके पुरुष खोटे काम को?
 भोगना होगा मुझे इस पाप के परिणाम को॥
हाय! मेरे हृदय में अब हो रही पीड़ा घनी।
 और पश्चात्ताप की प्राबल्यता है सौगुनी॥

१७

श्री महात्मा वायुजित् सब सद्गुणों के मूल हैं।
 शीलवान्, उदार, विद्या-कल्पतरु के फूल हैं॥
साथ उनके काम मैंने क्षुद्रता का है किया।
 पर सहज ही में उन्होंने जीत आज मुझे लिया॥

१८

सत्य है, संसार में हैं पुरुष तीन प्रकार के।
 श्रेष्ठ बदले में करें उपकार अत्याचार के॥
करें मध्यम बुरा बदले में बुरे व्यवहार के।
 नीच करते हैं बुराई साथ शिष्टाचार के॥

१९

यह महा अपराध मेरा क्षमा हे प्रभु! कीजिये।
 दूर करके सब कलुषता शान्ति मन में दीजिये॥"
कर सका इतना अधम बस कंठ उसका भर गया।
 दौड़ता रोता हुआ वह वायुजित् के घर गया॥

२०

लपट कर पग से क्षमा माँगी बुरे व्यवहार की।
 शिष्ट के सत्संग से सुधर वो गया वह नारकी॥
युद्ध में यदि जीतना माना न श्रेष्ठ उदार को।
 किन्तु सज्जन सद्गुणों से जीतते संसार को॥

श्रीरामनरेश त्रिपाठी।

जयपुर-नगर-वर्णन ।

भारतवर्ष में चार जयपुर हैं । पहला राजपूताने में, दूसरा बंगाल में, तीसरा आसाम में, और चौथा मद्रास प्रान्त में है। इनमें दूसरे तीसरे और चौथे की अपेक्षा पहला "जयपुर" भारत के अत्युत्तम शहरों में से एक, अन्य जयपुरों में शिरोमणि और राजपूताने में सर्वोत्तम, शहर है । इसी सवाई जयपुर का सचित्र वर्णन आज हम पाठकों को अर्पण करते हैं ।

यह जयपुर फुलेरा जंक्शन से १८ कोस पूर्व, सवाई, माधवपुर जंक्शन से ४० कोस उत्तर, और बांदीकुई जक्शन से २६ कोस पश्चिम में संस्थित है । महाराज सवाई जयसिंह ने संवत् १७८४ मार्गशीर्ष [illegible] ४ बुधवार सन् १७२८ के जनवरी मास में प्रातः १० बजे धन लग्न में इसकी नींव डाली थी । यह शहर पूर्व से पश्चिम तक २ मील लम्बा और करीब १॥ मील चौड़ा है । इसके चारो तरफ औसतन २० फीट ऊंचा और ६ फीट मोटा सुन्दर शहरपनाह है । इसमें शहर के अन्दर जाने के लिए ७ दरवाजे और ७ खिड़कियां हैं ।

(चि. नं. १) [illegible] का चित्र है । [illegible] "हवा महल" है । [illegible]

शहर के बीच में पश्चिमी चांदपोल दरवाजे से पूर्व के सूर्यपोल दरवाजे तक [illegible] मील लंबी और एक सौ ग्यारह फीट चौड़ी सीधी सड़क गई है । और इसीको काटती हुई, मध्य के समानान्तर में दो जगह दो सड़कें दक्षिण से उत्तर की ओर चली गई हैं, जिनसे शहर के बीच में दो चौपड़ें बन गई हैं । पहले इन दोनों चौपड़ों

[illegible]

[illegible]

नामी धर्मशाला, तथा दूसरे प्रकार के और भी मकान हैं। [illegible] आने के लिए स्टेशन पर इक्के, बग्घी, आदि सवारियां [illegible] और वहीं पर राज्य की राहदारी है । उसमें अपना [illegible] दिखला कर शहर में आना होता है । सीधे शहर में [illegible] चाँदपोल दरवाजा आता है । दरवाजे में घुसते ही [illegible] मानजी का एक सुविख्यात मन्दिर है । इसमें सैकड़ों [illegible] करने आते हैं। यह मूर्ति प्रभावशाली और राजा मानसिंह [illegible] पित है । इसके आगे चान्दपोल बाजार है। इसमें [illegible] अधिक हैं, जिनमें राजकुमार सूर्यबख्श की दुकान [illegible] यहीं पर रामचन्द्रजी का सुविशाल मन्दिर है। [illegible] दूर आगे गोविन्दराम उदयराम फोटोग्राफर का [illegible] खाना है । उसमें चित्र-विद्या का उत्तम काम होता है [illegible] कला का काम भी बहुत अच्छा बनाया और सिखाया [illegible] इस लेख में जो चित्र दिये गये हैं वे इसी कारखाने के [illegible]

(चि. नं. २) यही सुप्रसिद्ध इमारत "हवा महल" है।

युत सेठ रामप्रतापजी सोमानी के द्वारा हमें उपलब्ध हुए हैं।

इसके आगे पहली चौपड़ आती है । चौपड़ के [illegible] तरफ राज्य का मोदीखाना, एक तरफ कोतवाली [illegible] तरफ मेडिकलहाल और एक तरफ [illegible] [illegible] ईश्वरलाट है । इसके आगे त्रिपोलिया बाजार [illegible] बाजार में बायें हाथ की लाइन में राज्य का बड़ा [illegible] दाहने हाथ की लाइन में राज्य का बड़ा पुस्तकालय [illegible] त्रिपोलिया है । यह राज्य का प्रथम द्वार है । [illegible] सामने महाराज के महल देख पड़ते हैं ।

[illegible]

[illegible]

ला और 'यन्त्रशाला' (ग्रहादिदर्शन-स्थान) अर्थात् ज्योतिषशास्त्र है। दूसरे सवाई जयसिंह ने काशी, मथुरा, दिल्ली, उज्जैन र में वेधशालायें बनवाई थीं। उनमें यह सब से बड़ा है। [ला हुआ आंगन ज्योतिष यंत्रों से पूर्ण है। वर्तमान महाराज ा ने बेकाम यंत्रों का सुधार और उद्धार भी अब कुछ है। इसीसे लगा हुआ भारी सम्बन्ध है।

बाद हवामहल नामक प्रसिद्ध इमारत है। (चि० नं० ३) एक आंगन में राज्यप्रेस का आफिस, यहीं का पुर्ज और लड़ाई-सामान है। किन्तु प्रेस अब जेल में चला गया है। दीवान-ए-आम [ ] वर्ड की भूमि है और उसके पीछे कानून की कचहरियां] होकर ही सुप्रसिद्ध गोविन्ददेवजी के मन्दिर का रास्ता। यद्यपि शहर में गोविन्दजी, गोकुलनाथजी, गोपीनाथजी जी, मदनमोहनजी, राधादामोदरजी और रामचन्द्रजी आदि के सुविशाल सुन्दर देवमन्दिर हैं, तथापि गोविन्दजी, गोपी और राधादामोदरजी के यात्री अधिक आते हैं। उनमें भी जी के दर्शनार्थ हजारों नरनारी प्रतिदिन आते हैं। न्दजी के दर्शनों से लौट कर 'त्रिपोलिया बाजार' में हवा- के सामने महाराजाकालेज है। यह सम्वत् १९०१ में स्थापित ा। उस समय इसमें केवल ४० लड़के पढ़ते थे। इस समय १३०० लड़के पढ़ते हैं। अन्यत्र की अपेक्षा यहाँ पढ़ाई का गम होता है। यहाँ पर दूसरी चौपड़ है। इसे 'मानकचौक' ते हैं। इस चौपड़ के चारों ओर पहले सराफ लोग, सोना के ढेर के ढेर तथा रुपये, पैसे, मुहर, आदि बेचते थे और पास सब्जीवालों का जमाव था। इससे शहर निवासियों को, सोने के साथ, रुपये, पैसे जुहाने-तुहाने, और निम्बू, नारंगी, आदि सब प्रकार के रसाल फल लेने देने और साग-भाजी-

(चि० नं० ५) यह "रामनिवासबाग का महल" है। इसे 'आलबर्ट' हाल भी कहते हैं। संसार की विविध वस्तुओं का संग्रह इसीमें है। अढ़ाई हजार वर्ष की एक स्त्री की लाश भी यहीं है। इस महल के देखने से जयपुरीय शिल्पियों की सब प्रकार की सुन्दर कारीगरी स्पष्ट विदित होती है।

री खरीदने बेचने का अच्छा संयोग जँच रहा था। किन्तु अब सब दूकानें तितर-बितर कर दी गई हैं। इस कारण लेनेवालों [ ]र जाकर लाने में कष्ट, बेचनेवालों की बिक्री न होने से हानि, चौपड़ की स्वाभाविक सुन्दरता का तिरोभाव हो गया है। यदि मार्केट चौपड़ के चारों ओर बनाया जाता तो सुभीते-स- दूनी शोभा और अधिक बिक्री होने का संयोग अच्छा बन [ ]। अस्तु।

स चौपड़ को पार करके सूर्यपोल दरवाजे से बाहर, शहर से मील पर, समीपीय मैदान से साढ़े तीन सौ फीट ऊंचे पहाड़ सूर्य का मन्दिर है। उसके आगे के अधोभाग में यहीं पर ता स्थान है। गलता से फिर वापस इसी चौपड़ में आइये।

[चि]० नं० ४) इस चौपड़ से दक्षिण-तरफ जौहरी बाजार और [सां]गानेर-दरवाजा है। दरवाजे के बाहर 'सिटीपोस्ट,' 'पुरानाघाट' तोडूंगरी,' 'मेयो-हास्पिटल,' रामनिवास बाग,' 'गैसघर' और [चिड़िया]खाना' हैं। अस्पताल में रोगियों की सेवा का सर्वोत्तम प्रबन्ध [ ] और इसीमें अन्धे रोगियों का इलाज भी अच्छा होता है। यदि [ ]ी स्वीकार करता है तो उसके खानपानादि का सब खर्चा राज्य मिलता है।

रामनिवासबाग महाराजा रामसिंह के नाम से ४ लाख रुपये खर्च से बना है और ३० हजार रुपये प्रतिवर्ष अन्य खर्च होता [ ]। बाग में विविध प्रकार के पशुपक्षी, जलजन्तु, वनपशु वृक्षलता [औ]र अन्य प्रकार के अनेकों अद्भुत दृश्य हैं। एक जगह "सावन- [भा]दव" नाम का विचित्र बँगला है। इसमें चौमासे की कृत्रिम [बहा]र सदैव वर्तमान रहती है। कहीं मेघ की झड़ी, कहीं पहाड़ों से पानी की लड़ी और कहीं नाना प्रकार के चातुर्मासिक पुष्पों की हरियाली है। यह स्थान मनुष्य के सूने मन को हरा कर देता है। (चि० नं० ४) इसीमें एक सुन्दर और सुविशाल महल है। उसमें देशदेशान्तर की विविध वस्तुएं भले प्रकार सुव्यवस्थित हैं। इस महल का एक एक कमरा ध्यानपूर्वक देखने योग्य है। शहर में अजमेरी दरवाजे की सड़क पर "अजबघर" नाम का जो भारी मकान है उसमें भी शिल्पकला का उत्तमोत्तम काम, सिखाया, दिखाया और बनाया जाता है। रामनिवास बाग के अजायबघर में बहुत सी वस्तुएं यहीं से बन कर जाती हैं।

गैसघर से शहर में रोशनी पहुँचाई जाती है। उसमें राज्य का चार पांच सौ रुपया रोज व्यय होता है। शहर से बाहर पोस्ट-आफिस, तारघर, रेजीडेन्सी, जेलखाने, पागलघर, राजा-रईसों की कोठियां, ट्रामवेवर्कशाप, काटनमिल, और 'पंपिंग स्टेशन' अर्थात् जलनल की कल आदि हैं।

रेजीडेन्सी में यहां के रेजीडेन्ट रहते हैं। सेन्ट्रलजेल में कैदियों से दरी, कालीन, कपड़े बनाने और पुस्तकें छापने आदि के अनेकों उत्तमोत्तम काम करवाये जाते हैं। इससे जेलखाना जी दुखानेवाला नहीं रहा है और निरपराधी भले आदमी भी इस जेल में नित्य जाने लगे हैं।

रईसों की कोठियों में "चांमूँनेरश की कोठी" सुन्दर, मनोहर और दर्शनीय है। बाग की बनावट, महलों की मनोहरता, रोशनी की चमक-दमक और कार्य की बाहुल्यता आदि सब बातें अच्छी हैं।

काटनमिल में रुई के गट्ठे बांधे जाते हैं और कपास से बिनौले भी निकाले जाते हैं। पंपिंग स्टेशन से शहर में पीने का पानी पहुँचाया जाता है। यहीं पर नयाघाट है। यह वृक्षों की अधिकाई,

(चि० नं० ६) यह "आम्बेर" शहर है। चारों ओर से पहाड़ों से घिरा हुआ है। महल, मकान, मंदिर सब प्राचीन हैं। यहीं पर 'मावठा' नामक बड़ा जलाशय है। दूसरे चित्र में आम्बेर के पहाड़ी किले और महलों का दृश्य है। वह इस चित्र का ऊर्ध्व दक्षिणी भाग है।

जल की सिंचाई और दर्शकों के आवागमन से आदरणीय हो गया है। बस, अब शहर की उसी दूसरी चौपड़ में चलिये।

चौपड़ में खड़े होकर देखिये, पहाड़ की पश्चिमी शिखा पर "नाहरगढ़" नाम का नामी किला है। उत्तरी शिखा पर "आमा-गढ़" नाम का पुराना और बड़ा किला है। और पूर्वी शिखा पर "रघुनाथगढ़" नाम का किला है। इनके अतिरिक्त और भी किले हैं। परन्तु किसीमें कोई दर्शक नहीं जा सकता है।

चौपड़ से उत्तर की ओर शहर से बाहर ४ मील की दूरी पर जयपुर की पुरानी राजधानी "आम्बेर" है। (चि० नं० ६) इसमें पहाड़ के ऊपर राज्य का किला, कैदखाना, खजाना, देवमन्दिर और राजप्रासाद आदि हैं। राजमहल राज्य की आज्ञा से देखे जाते हैं। इनमें पुराना महल एक बड़ी इमारत है। इसका काम सम्वत् १६५१ के लगभग राजा मानसिंह ने आरम्भ किया था। पुराने महल से ४०० फीट ऊपर पहाड़ी पर बड़ा किला है। एक बड़े आंगन से सीढ़ियों-द्वारा प्रवेश करने पर सुन्दर दीवानखाना आता है। इसके दाहने भाग में कालीजी का मन्दिर है। इस मूर्ति को 'शिलादेवी' कहते हैं और यह राजा मान की संस्थापित है। (चि० नं० ७) एक ऊंचे स्थान पर सवाई जयसिंह का खास कमरा है। इसके सिवाय मार्बल के काम के मनोहर मकान और सुन्दर कमरे और भी बहुत हैं। यहां पर महलों से घिरा हुआ एक सरस और शीतल छोटा सा बाग है। इसकी सिंचाई में सैकड़ों रुपये लगते हैं। आम्बेर देखने के लिए अंग्रेज लोग अक्सर आया करते हैं। अत यहां की सड़क का इस समय सुधार हो रहा है।

बस, देखने योग्य प्रधान प्रधान स्थानों का उल्लेख हो चुका। अब परिशिष्ट में यहाँ के धर्माचरण, रीतिनीति, आदि का उल्लेख करते हैं।

यहाँ के वर्तमान महाराज माधवसिंह बहादुर प्राचीन रीतिनीति के पक्षपाती, प्रजा-पालक, उदार, गुणज्ञ और धर्मात्मा हैं। अतः प्रजा में भी सदाचरण और धार्मिकता का संचार सदैव बना रहता है। यहाँ शिक्षा का प्रबन्ध सर्वोत्तम होने पर भी यहाँ के लोग 'गोट घूघरी,' 'नुकता' और व्याह शादी में अधिक रुपया व्यय करते हैं; परन्तु सन्तति शिक्षा में समुचित ध्यान नहीं देते। भगवान जैन समिति को धन्यवाद देना चाहिए। इसके प्रधान श्रीयुत अर्जुनलाल बी० ए० ने जैन जाति में शिक्षा फैला कर उसे समुज्वल कर दिया है।

आमेर के महल।

(चि० न० ७) यह आमेर के 'पहाड़ी किले और राजप्रासाद' हैं। नीचे 'मौटा,' नामक जलाशय भरा हुआ है।

यहाँ 'गोट घूघरी' जिमनारें सदैव हुआ ही करती हैं। इसमें हजारों मन खाण्ड जैपुरी जिमकड़ों के पेट में प्रति वर्ष चली जाती है। यहाँ रामनवमी, श्रावण, भाद्रपद और आश्विन शुक्ल ६।१०।११ के बड़े मेले होते हैं। किसी भी मेले को देखिये, सुसज्जित स्त्रियों का जमघट ही वहां अधिक होता है। यहां की स्त्रियों में कवित्वशक्ति, गायन-प्राबल्य और स्वच्छन्दविचरण अधिक है। यह जब चाहें तब ही छोटे-बड़े किसीकी भी कीर्ति अपकीर्ति के समुचित वर्णन का गीत बना कर शहर भर में बिजली की तरह फैला देती हैं!

यहाँ का कलाकौशल अच्छा और प्राचीन है। मूर्तियाँ, पीतल के बर्तन, हस्तलिखित चित्र और रंगाई छपाई आदि काम सर्वत्र विख्यात हैं। यहां सब प्रकार के कारीगर सस्ते और अच्छे हैं। पीतल के ... मीनाकार काम, गोटा किनारी, कपड़े की रँगाई, और मोड़ी हुई चीज़ें, चुनरी और बाँधनू इत्यादि यहाँ से विदेशों में भी जाते हैं।

नाटाणियों की हवेली। (प्रस्तुत कोतवाल!

जयपुर में 'नाटाणी' बड़े नामी प्रभावशाली और श्रीमान् हु... उनके बनाये हुए बड़े सुविशाल, सुन्दर और मुहकार मकान उनका महत्व प्रगट कर रहे हैं। यह चित्र भी उन्हीं की ए... गा है। नाम हवेली है; परंतु सैकड़ों मकानों का बड़ा और ... बड़ा रास्ता रोकने वाली है।

यह सब कुछ होने पर भी यहाँ व्यापार-व्यवसाय शहर को देखते हुए, बहुत ही कम है। इस कमी ... राज्यकृत उपेक्षा, अल्पविद्या और लोगों का अनुत्साह ... भी होना बतलाया जाता है। जो कुछ हो, राज्यकृत उ... प्रशंसनीय है, और शहर अवश्य ही सुन्दर तथा दर्शनीय है।

श्रीहनुमान शर्म्मा, जयपुर

शेक्सपियर और उसके ग्रन्थ।

(३)

लंडन आने पर

शेक्सपियर अपना गावँ छोड़ कर जिस समय लंडन आया उस समय के लंडन की और नटों के व्यवसाय की दशा ऊपर बतलाई गई। लंडन आने पर उसने पहले पहल किस व्यवसाय में प्रवेश किया, इसका ठीक ठीक पता उसके किसी चरित्रकार को भी नहीं मिला। हां, तर्क अनेकों ने अनेक किये हैं। उसके नाटकों में कानून का वर्णन अच्छा दिया हुआ है, इसी आधार से कई लेखकों ने यह तर्क किया है कि लंडन में आकर वह किसी वकील के पास मुहर्रिर के तौर पर रहा था। परन्तु यदि इस प्रकार के अनुमान लगाये जायँ कि उसके नाटक में अमुक एक व्यवसाय की सूक्ष्म जानकारी पाई जाती है, इस लिए उसने वह व्यवसाय किया होगा, तो बिचारे शेक्सपियर को क्या क्या बनना पड़ेगा, इसकी कुछ गणना ही नहीं की जा सकती।

कुछ भी हो; यह निश्चय है कि लंडन में आने पर शेक्सपियर ने शीघ्र ही नट के व्यवसाय में प्रवेश किया। यह आख्यायिका है कि पहले पहल उसने अपने मित्र फील्ड की सहायता से, नाटकगृह के बाहर दर्शकों के घोड़े सम्हालने का काम स्वीकार किया। उस समय मध्यम और उच्च वर्ग के लोग घोड़े पर चढ़ कर नाटक देखने आते थे। अब यह स्पष्ट ही है कि उन लोगों के नाटकघर में जाने पर बाहर कोई न कोई घोड़े सम्हालनेवाला चाहिए। अतएव बहुत से लोग यह व्यवसाय किया करते थे। कहते हैं कि शेक्सपियर ने भी पहले यही धंधा करके अपने पेट भरने का प्रबन्ध किया। इस व्यवसाय में उसे बड़ी सफलता हुई और आगे चल कर उसने दर्शकों के घोड़े सम्हालने की एजन्सी ही खोल दी और अपने यहां बहुत से मजदूर इस काम पर रख लिए। यह भी आख्यायिका है। उसके कई चरित्रकार कहते हैं कि इन दोनों आख्यायिकाओं में कुछ भी तात्पर्य नहीं। यह सम्भव नहीं कि उसने एजंसी खोल कर और नौकर रख कर घोड़े सम्हालने का इतना बड़ा व्यवसाय किया हो। परन्तु इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि लंडन आते ही शेक्सपियर के ... के मन में यह बात आई हो कि अपने गरीब मित्र पर ... का भार डालना ठीक नहीं और इसी कारण ... से, कि जो व्यवसाय पहले सामने आवेगा वही करूंगा, चार दिन नाटक-दर्शकों के घोड़े सम्हाल कर कुछ रुपया कमा लिया हो और हां, आगे चल कर, नाटकगृह में प्रवेश करने की सन्धि मिलते ही उसने यह कार्य सिद्ध ... क्योंकि थोड़े ही दिनों में नट की हैसियत से वह ए... नौकरी करने लगा; इसका उल्लेख कागजपत्रों में पाया ...

कहते हैं कि घोड़े पकड़ने का काम छोड़ कर पहले ... नटों के मदद देने के काम पर थियेटर नामक नाटकग... इसके बाद प्राम्टर को मदद करने पर रहा। उसका काम ... जिस नट को जिस मौके पर रंगभूमि में जाना होता उ... ध्यान रख कर उसे वह तुरन्त ही इशारा करता। बा... स्वयं नट हो गया। सन् १५९२ में वह लार्ड चेम्बरलेन ... मंडली में था; और १६०३ में तो वह उस मंडली के मुखि... यह कागजपत्रों से सिद्ध होता है। अतएव यह अनुमान ... सकता है कि वह लंडन में आकर इसी कम्पनी में प्र... और नट का कार्य करता रहा। शेक्सपियर की कम्पनी ने ... नामक नाटकगृह में और फिर रोज नामक नाटकगृह में ... रोज नाम का थियेटर उसकी मंडली ने सन् १५९२ में ... इसीमें वह पहले नट और नाटककार के नाते से प्रसि... इसमें कोई सन्देह नहीं। इस रोज नामक नाटकघर में सन् ... तक उसके खेल हुए। बाद को उसके मित्र उस समय के प्रसिद्ध करुणरसाभिनयी नट रिचर्ड बार्बेज ने पुराना ... नामक नाटकघर गिरा कर उसकी जगह पर ग्लोब नामक ... बनाया। यह अठपहलू बनाया गया था। इसी नाटकगृह में ... पियर ने अपने पाँचवें हेनरी नाटक का पहला प्रयोग किया ... इस नाटक के आरम्भ में जो दर्शक प्रार्थना है उसमें यह क... है.—'दर्शको! बड़े बड़े ऐतिहासिक प्रसंगों के दृश्य ... दरिद्री मुर्गलड़ाई के अखाड़े में आपको कल्पित करने पड़ें, ... लिए आप लोग क्षमा करें। तथा जिन शूरवीरों ने आजि... रणभूमि में भिड़ करके अपने शत्रुओं का सत्यानाश किया ... हम अपने लकड़ी के "O" में हम प्रदर्शन करनेवाले ... लिए क्षमा दो।

Can this cockpit hold the vasty fields of France? or may we cram within this wooden O the very casqtues that did offright the air at Agincourt?

बहुतों का मत है कि इन पंक्तियों का लकड़ी का O शेक्सपियर का ग्लोब थियेटर ही है। यह ग्लोब थियेटर शीघ्र ही बहुत लोकप्रिय हो गया।

शेक्सपियर की नाटक मंडली सिर्फ लंडन में ही रह कर अपना व्यवसाय नहीं करती थी। उस समय की सभी कंपनियाँ आज कल की कम्पनियों की तरह-इँगलैंड के भिन्न भिन्न शहरों में जा कर अपने नाटक दिखलाया करती थीं। परन्तु यह दिखलाने के लिए कहीं आधार नहीं है कि इन कंपनियों के साथ शेक्सपियर भी घूमता था। कितने ही लोगों का कथन है कि वह स्काटलैंड गया था; और कई लोग तो कहते हैं कि वह फ्रांस, जर्मनी, इत्यादि देशों में भी गया था, उनके इन विधानों के लिए आधार क्या है? यही कि उसने स्काटलैंड देश के जलवायु का कहीं कहीं वर्णन किया है; और अन्य देशों के रीतिरवाजों का भी उसने वर्णन किया है; और यह वर्णन स्वानुभव-ज्ञान के बिना वह कैसे कर सकता था? परन्तु यह आधार कुछ सबल नहीं जान पड़ता और शेक्सपियर के उक्त देशों में घूमने का वाद भी कुछ बहुत महत्वपूर्ण नहीं है। हमारे कोई प्रवासी मित्र जब कहीं से घूम कर आते हैं तब हम स्वाभाविक ही उनके प्रवासवाले देशों का हाल पूछ लेते हैं। उपन्यास और नाटक लिखनेवाले कवि उस वृत्तान्त का उपयोग भी करते हैं। उनके वर्णन अथवा उल्लेखों से यह अनुमान करना कि उन्होंने वे देश देखे ही होंगे, ठीक नहीं हो सकता। शेक्सपियर के समान महा प्रतिभावान् कवि के वर्णनों से यह समझना बहुत कठिन है कि विशिष्ट विषयों का उसका ज्ञान स्वानुभवजन्य है या परानुभवजन्य है। पाठक लोग यदि ऐसे ही अनुमान निकालने लगें तो कवियों को किन किन रूपों में वे अपने सामने देखेंगे, इसका कोई ठिकाना नहीं। शेक्सपियर स्काटलैंड देश में चाहे कभी गया भी हो, परन्तु इटली इत्यादि देशों में वह कभी न गया होगा। क्योंकि उन देशों के शहरों की वास्तविक दशा के विषय में उसका अज्ञान कहीं कहीं प्रकट भी हो गया है। टेम्पेस्ट नाटक में उसने उल्लेख किया है कि मिलन समुद्र के किनारे है। टू जेंटलमेन आफ वेरोना नाटक में, वेरोना से मिलन को एक शख्स के जलमार्ग से जाने का उल्लेख है। यह उन शहरों की वास्तविक स्थिति से बिलकुल विरुद्ध है।

यह सच है कि शेक्सपियर नट था, इसमें सन्देह नहीं, परन्तु यह कहने के लिए कोई विश्वसनीय आधार नहीं कि उसने स्वयं [illegible] के नाटकों में अमुक पात्रों के [illegible] के उल्लेखों से यह स्पष्ट [illegible] अपने नाटकों और अपने मित्रों के नाटकों के पार्ट अवश्य लिये हैं। बेनजानसन के एक दो नाटकों के प्रारम्भ में नाटक कर दिखानेवाले नटों की सूची दी हुई है। उसमें शेक्सपियर का नाम मुख्य नटों में दिया हुआ है। तथा शेक्सपियर का पहला चरित्रकार रो कहता है कि हैम्लेट नाटक में शेक्सपियर हैम्लेट के बाप के पिशाच का पार्ट लेता था। पुराने कागज-पत्रों में ऐसे भी उल्लेख मिलते हैं कि शेक्सपियर बहुत अच्छा नट था। उसके नाट्य से लोगों के मन पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता था। तथा शेक्सपियर का छोटा भाई गिल्बर्ट अपने भाई का नाट्य देखने के लिए खास तौर पर लंडन को आता था। वह बुढ़ापे में अपने मित्रों से कहा करता कि हमारा भाई As you like it नामक अपने नाटक के Adam नामक अत्यन्त सच्चे और स्वामिभक्त नौकर का काम बहुत ही उत्तम रीति से करता। सन् १६२३ में शेक्सपियर के ग्रन्थों की जो फोलियो प्रति छप कर प्रकाशित हुई उसके प्रारम्भ में मुख्य नटों की फिहरिस्त दी हुई है। इस सूची में शेक्सपियर का नाम है। शेक्सपियर के समकालीन जान डेवीज नामक एक पुरुष ने लिखा है कि शेक्सपियर राजाओं के पार्ट लेता था। तात्पर्य, इसमें कोई सन्देह नहीं कि शेक्सपियर नट का काम करता था। उसने अपने हैम्लेट नाटक में हैम्लेट के ही मुख से इस विषय में अपना मत दिखलाया है कि नटों को अपने काम कैसे करना चाहिए और उन्हें अपने वचन कैसे कहना चाहिए। उस भाषण में यह भी सूचित किया गया है कि नटों के दोष किस प्रकार सुधर सकते हैं।

शेक्सपियर ने नट की दृष्टि से अच्छा नाम कमाया; इस बात के लेखकों से उपर्युक्त विधान किये गये हैं। परन्तु उसके काव्यों में अत्यन्त सुप्रसिद्ध काव्यों की कुछ पंक्तियों से ज्ञात पड़ता है कि नट के व्यवसाय में पड़ते ही कुछ उसने इतनी लोकमान्यता न प्राप्त कर ली होगी। जब कोई तेजस्वी पुरुष देखता है कि उसमें गुण हैं और उनका पूरा पूरा आदर नहीं होता, यही नहीं कि लोग उन गुणों का आदर न करते हों; किन्तु वे उलटे उसका उपहास भी करते हैं, तब वह कभी कभी बहुत खिन्न होता है और उसके मुख से दुःखोद्गार निकलते हैं, ऐसे उद्गार शेक्सपियर के "Sonnets (चौदहचरणी वृत्त में लिखे हुए काव्य) के ११० व १११ सॉनेट में हैं।

Alas, 'tis true I have gone here and there
And made myself motley to the view,
Gor'd mine own thoughts, sold cheap
what is most dear.
Sonn: 110

O for my sake do you with fortune chide,
The guilty goddess of my harmful deeds,
That did not better for my life provide
Than puplic means which public manners breeds.

११० वें सॉनेट में कवि ने कहा है—"इधर उधर खटपट करके मैंने लोगों में विदूषक की तरह अपनी हँसी करा ली; मैंने अपने निज के विचार दूर करके जो वस्तुतः महँगा बिकना चाहिए उसे सस्ता बेचा, यह सब सत्य है।"

और १११ वें सॉनेट में कहा है कि "साधारण लोगों के मनोरंजन के लिए जो व्यवसाय उत्पन्न हुआ है वही मैंने किया है, और कुछ नहीं किया; यह मेरा दुर्भाग्य है-मेरी मूर्खता ही का यह परिणाम है। अतएव तुम मेरे इस दुर्भाग्य को दोष दो।"

चौदहचरणी वृत्तों में लिखे हुए इस काव्य-समूह में शेक्सपियर ने अपने हृदय की बातें खोल कर कही हैं। यह बात उसके बहुत से भक्त मानते हैं, और इसी विचार से उपर्युक्त दो उद्गारों का ऐसा अर्थ किया जाता है कि अपने व्यवसाय से घृणा करके ही शेक्सपियर ने उपर्युक्त वचन कहे होंगे। जान पड़ता है कि जब वह अपने व्यवसाय में पड़ा तब पहले पहल लोगों को उसकी सच्ची कीमत न मालूम हुई होगी और इसी कारण उनकी ओर से उसका उपहास हुआ होगा; और इसी लिए शेक्सपियर को जान पड़ा होगा कि मैं इस व्यवसाय में क्यों पड़ा, और उतने ही समय में खिन्नता के कारण उसके मुख से वैसे वचन निकल गये होंगे। नटों के काम के विषय में और नाटक-रचना के विषय में शेक्सपियर के विचार उस समय के साधारण नटों और नाटककारों के विचारों से बिलकुल भिन्न थे; अतएव वे विचार जब तक लोगों में मान्य न हो गये होंगे तब तक उसके व्यवसायबन्धुओं अथवा सर्वसाधारण लोगों के द्वारा उसका उपहास होना और उसके लिए स्वयं उसे खेद होना स्वाभाविक है।

सॉनेटों के विषय में शीघ्र ही बहुत सा लिखना है, उससे पाठकों को उनका महत्व मालूम हो जायगा और उनके दिव्य रस का आस्वाद भी पाठकों को मिलेगा; अतएव उनके विषय में यहां विशेष लिखने की आवश्यकता नहीं। यहां पर सिर्फ इतना ही कह देना है कि उन काव्यों के अर्थ के विषय में बहुत ही विलक्षण मतभेद है।

शेक्सपियर जब नट के कामों में उच्च श्रेणी तक पहुँच कर स्थिर हो गया; तब उसके मुखियों ने शीघ्र ही उसे उससे भी श्रेष्ठ दर्जे का काम देना प्रारम्भ किया। यह काम उसकी कम्पनी के स्वामित्व के नाटकों में सुधार करना है।

उस समय यह चाल थी कि जहाँ कोई कवि नाटक लिखता कि तुरन्त ही वह नाटक कोई कम्पनी मोल ले लेती और फिर कवि का उस नाटक पर कोई अधिकार न रहता। ऐसे नाटकों पर उन नाटककम्पनियों की ही पूर्ण सत्ता चलती थी। इस कारण नाटककम्पनियां समय समय पर अपने स्वामित्व के पुराने नाटक नवीन बुद्धिमान नाटककारों के द्वारा अथवा अपने बुद्धिमान् नटों के द्वारा दुरुस्त करवाती थीं। उनमें सुधार करवाती थीं अथवा उनमें चाहे जो न्यूनाधिक करवाती थीं।

ज्योंही यह देख पड़ा कि शेक्सपियर की बुद्धिमत्ता और प्रतिभा इस काम के लिए बहुत अच्छी है त्योंही उसकी मंडलियों ने उसके द्वारा अपने स्वामित्व के पुराने नाटक सुधरवाने अथवा बदलवाने का काम शुरू किया, और यह देख पड़ा कि उस काम में उसे अच्छी सफलता हुई और इस कारण कम्पनियों को भी फायदा होने लगा। यह मालूम होते ही पुराने प्रसिद्ध नाटककारों के मन में उसके विषय में मत्सर भी उत्पन्न होने लगा। ग्रीन नामक एक बड़ा नाटककार सन् १५९२ में दरिद्रता से पीड़ित होकर मरा। मरने के पहले-अपने व्यवसायबन्धुओं को अन्तिम उपदेश देने के लिए उसने एक छोटी सी पुस्तक लिख रक्खी थी। यह पुस्तक उसके पीछे चेटल नामक एक महाशय ने प्रकाशित की। मार्लो, नाश, और पील नाम के तीन नाटककार शेक्सपियर के कुछ पहले हुए। इन्हीं को ग्रीन ने यह उपदेश किया है कि, "मित्रो, मेरी तंगी और सारी दरिद्रता का कारण ये धूर्त नट और नाटककम्पनियां हैं! मैंने उन पर अनन्त उपकार किये, परन्तु उन्होंने मुझे धोखा देकर मुसीबत के धोखों बैठा दिया! अतएव यदि तुम अपनी भलाई चाहते हो तो इनके फिकार में न आना। ये तुम्हारी भी दुर्दशा करेंगे!"

इस प्रकार की प्रस्तावना करके फिर वह आगे लिखता है:—

"Yes, trust them not; for there is an upstart crow beautified with our feathers, that with his tiger's heart wrapped in a player's hide, supposes he is as well able to bombast out as blank verse as the best of you; and being an absolute Johannes Factotum, is in his own conceit the only SHAKE-SCENE in a country.

"हां, तुम से कहे देता हूं कि तुम उन पर कभी विश्वास न रखना। क्योंकि उनमें आज कल एक हमारे ही पंखों से सुन्दर [illegible] उस दुष्ट [illegible] से उत्तम [illegible] डालेंगे; [illegible] है। अत- [illegible] नट और [illegible]!"

उपर्युक्त अवतरण के Shake-Scene शब्द से बिलकुल स्पष्ट हो जाता है कि यह सब शेक्सपियर के ही ऊपर उपरोध से लिखा गया है। ग्रीन की यह पुस्तिका जब प्रकाशित हुई तभी यह बात सब लोग समझ गये। परन्तु पीछे से उस पुस्तक के प्रकाशक को बहुत बुरा लगा। उसने साफ तौर पर शेक्सपियर से माफी मांग ली और ग्रीन के लिखे हुए लेख के प्रकाशित करने पर खेद प्रदर्शित किया।

इस खेदप्रदर्शन के समय चेटल ने जो कुछ लिखा उससे शेक्सपियर के नाट्य-कौशल और स्वभाव-सारल्य का अच्छा पता चलता है, अतएव उससे कुछ वाक्य यहां पर दिये जाते हैं —

With neither of them that take offence was I acquainted; and with one of them [Marlowe] I care not [illegible] professes; besides divers of worship have reported his honesty, and his facetious grace in writing that approves his art'

"ग्रीन की जो पुस्तक मैंने प्रकाशित की उसके उल्लेखों से जिन दो सज्जनों के मन बहुत दुःखित हुए हैं उन दोनों से मेरी प्रत्यक्ष पहचान न थी। उनमें से एक की (मार्लो की) पहचान फिर कभी नहीं हुई, तथापि उसको मुझे कोई परवा नहीं। परन्तु दूसरे के मन को न दुखाया होता तो अच्छा हुआ होता-ऐसा मुझे आज जान पड़ता है। क्योंकि वह जिस व्यवसाय में है उसमें वह उत्तम है और बर्ताव में बहुत सभ्य है। यह मुझे स्वयं देख पड़ा है। इसके सिवाय कई सन्मान्य लोगों ने मुझ से कहा भी है कि वह व्यवहार में बहुत अच्छा है। इससे उसकी सच्चाई प्रकट होती है। तथा उसका सुलभ सुन्दर लेखन-कौशल देख कर विश्वास हो जाता है कि उसकी विद्वत्ता बड़ी है।"

जान पड़ता है कि शेक्सपियर ने यह सोच कर, कि दूसरे कवियों के लिखे हुए नाटक सुधार कर रंगभूमि में लाने से बिना कारण आपस में मत्सर बढ़ता है, आगे चल कर बहुत जल्द अपने स्वतंत्र नाटकों का लिखना प्रारम्भ किया होगा। यह विश्वासपूर्वक कहने के लिए कोई प्रमाण नहीं है कि उसने अपना अमुक नाटक अमुक वर्ष में ही लिखा होगा। परन्तु शेक्सपियर के काव्यनाटकों का अभ्यास जिन्होंने वर्षानुवर्ष बड़ी मिहनत से किया है उनके अनुमानों के आधार से तथा शेक्सपियर की मृत्यु से [illegible] उसके विषय में जो कुछ वृत्तान्त उपलब्ध हुआ है उसके [illegible] से विद्वानों ने उसके ग्रन्थों की रचना का जो कालक्रम किया है वह नीचे दिया जाता है। इसी क्रम से आगे हमें ग्रन्थों का निरीक्षण करना है। उसके ग्रन्थों का विवेचन करते हुए प्रथमतः उसके काव्य लेने का विचार है, अतएव उन्हीं के सन् दिये जाते हैं।

काव्य।

काव्य का नाम	सन्	काव्य का नाम
वीनिटस (कुछ) *	१५९२	ए लवर्स कंप्लेंट
वीनस व आडोनिस्	१५९३	दी प्याशोनेट् पिल्ग्रिम
रेप आफ् ल्यूक्रेस	१५९४	फीनिक्स व टर्टल

नाटक।

नाटक का नाम,	सन्	नाटक का नाम,
१ छठवाँ हेनरी भाग २ (यार्क और लेंकास्टर वंशों का झगड़ा)	१५९१	१९ पाचवाँ हेनरी
		२० जूलियस सीजर
		२१ मेरी वइव्ज आफ विण्डसर
२ छठवाँ हेनरी भाग ३	१५९२	२२ ऐज यू लाइक इट्
३ छठवाँ हेनरी भाग १		२३ हैम्लेट
(इस वर्ष जून से दिसम्बर तक प्लेग के कारण नाटकघर बन्द रहे)		२४ ट्वेल्फ्थ नाइट आर व्हाट यू विल
		२५ ट्रायलस् व क्रेसिडा
४ तीसरा रिचर्ड	१५९३	२६ आल्स् वेल दैट एण्ड्स् वेल्
५ तीसरा एडवर्ड † (कुछ भाग शेक्सपियर का।)		(मार्च सन् १६०३ में रानी एलिज़बेथ मरी, इस लिए शोकप्रदर्शनार्थ नाटकघर बन्द रहे। परन्तु प्लेग के कारण [illegible] बन्द रखने पड़े।)
६ कामेडी आफ एरर्स (फेब्रुअरी से दिसम्बर तक प्लेग के कारण नाटक बन्द)		
७ टायटस् अंड्रोनिकस (फेब्रुअरी और मार्च में प्लेग के कारण नाटक बन्द)	१५९४	२७ मेजर फार मेजर
		२८ ऑथेल्लो
८ टेमिंग आफ दी श्रू		२९ मैक्बेथ
९ लव्ज् लेबर्स लॉस्ट		३० किंग लियर
१० रोमियो और जूलियट		३१ एंटनी और क्लिओपात्रा
		३२ केरियोलेनस्
११ ए मिड्समर नाइट्स ड्रीम	१५९५	३३ टायमन् आफ एथेन्स (अपूर्ण)
१२ टू जंटलमेन आफ वेरोना*		
१३ किंग जान		
१४ दूसरा रिचर्ड	१५९६	३४ पेरिक्लीज़ (कुछ भाग)
१५ दि मर्चंट आफ वेनिस		३५ सिंबेलइन्
१६ चौथा हेनरी (भाग १) (इस वर्ष के प्रारम्भ में नटों की कुचाल से जुलाई से अक्टूबर तक नाटकघर बन्द)	१५९७	३६ दि विंटर्स टेल्
		३७ दि टेम्पेस्ट
		३८ दि टू नोबल किन्समेन् † (कुछ भाग)
१७ चौथा हेनरी (भाग २)	१५९८	३९ आठवाँ हेनरी † (कुछ भाग)
१८ मच् अडो अबाउट नथिंग		

* 'कुछ' शब्द कोष्टक में रखने का कारण यह है कि कुल सॉनेट्स एकदम [illegible] लिखे गये। वे सन् १५९२ से १६०९ तक धीरे धीरे लिखे गये। यह [illegible] मत है।

† इस चिन्हवाले नाटक सम्पूर्ण शेक्सपियर के लिखे हुए नहीं हैं; किंतु [illegible] भाग उसका लिखा हुआ है।

भिन्न भिन्न कवियों के समानार्थवाची पद्य।

(शरद्वर्णन)

पतंति नास्मिन् विशदाः पतत्रिणो।
धृतेन्द्रचापा न पयोदपंक्तयः॥
तथापि पुष्णाति नभः श्रियं परां।
न रम्यमाहार्यमपेक्षते गुणम्॥

—महाकवि भारवि—किरातार्जुनीय।

—Loveliness.
Needs not the foreign aid of ornament,
But is, when unadorned,
adorned the most—*Thomson autumn.*

न उड़ती अब है बकमालिका,
न घन इन्द्र-शरासन शोभित,
तदपि व्योम सदा रमणीय है,
न धरता गुण कृत्रिम रम्य है।—पं॰ [illegible] शर्मा।

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]—एक मराठी-कवि।

(दृष्टिसौन्दर्य)

प्रवातनीलोत्पलनिर्विशेष—
मधीरविप्रेक्षितमायताक्ष्या।
तया गृहीतं नु मृगांगनाभ्य—
स्ततो गृहीतं नु मृगांगनाभिः॥

म॰ क॰ कालिदास—कुमारसम्भव।

Too nicely Jonson knew the critics part.
Nature in him was almost last in art.
— Collins.

वायुवेग से कम्पित सुन्दर नील कमल की छबिवाली,
उस विशाल नयनों की चञ्चल चितवनि की मैं बलिहारी!
ऐसी चपल दृष्टि क्या उसने मृग-किशोरियों से ली!
अथवा मृग किशोरियों ही को यही स्वयं है दे डाली!
—पं॰ महावीरप्रसाद द्विवेदी—कुमारसम्भव।

खिले हुए नील सरोज का सा—
है देखना चंचल सुन्दरी का।
सीखा इसीने मृगनारियों से,
किया सिखा है इसने उन्हीं से।
[illegible]

जापान की नवीन सम्राज्ञी।

[जा]पान की नवीन सम्राज्ञी का नाम 'नागाको' है। सम्राट् की तरह आपको भी अंगरेजी रीति से शिक्षा मिली है। आप टोकियो के [illegible] कालेज में पढ़ती थीं। सब विषयों में आपका नम्बर सदा पाँच के अन्दर रहता। बचपन ही से आपकी प्रकृति शान्त और [illegible] साधारण तथा सर्वप्रिय है। अन्य लड़के-लड़कियों की तरह आप भी पैदल ही स्कूल को जातीं और सब विद्यार्थियों के साथ हिल[मिल] कर बातचीत करतीं। अपने गुरु पर आपकी बहुत भारी श्रद्धा है और अब भी मौका आने पर आप उन्हें बुलातीं और उनका आदर-[सत्कार] करती हैं। अपने बच्चों को आप स्वयं शिक्षा देती हैं। आपकी शिक्षाप्रणाली अत्यन्त सरल और सुबोध है। राजकुमार [illegible] को [illegible] घंटे के लिए स्कूल जाते हैं। बाकी सब समय वे अपनी माता के साथ पढ़ने और खेलने में व्यतीत करते हैं। इन राजकुमारों को अनेक [illegible] चित्र देखने का बड़ा उत्साह रहता है।

है। सेब, नाशपाती, नारंगी, इत्यादि फल बहुत समय तक टिक सकते हैं, परन्तु आम, अमरूद, शरीफा, केले की फलियां, इत्यादि ल बहुत दिन नहीं टिकते। यह बात सदा ही देखी जाती है। सी जाति के भी दो फल ठीक ठीक एक ही समान मिलना कठिन । इसका मुख्य कारण सजीव वस्तुओं के विभेदीभवन का नियम । यह नियम सब वनस्पतियों और प्राणिमात्र में सर्वव्यापी है। भिन्न भिन्न जाति के फलों में तो विभेदीभवन पाया ही जाता है, न्तु एक ही जाति के फलों में भी यह देखा जाता है। सेवफल गुणों के अनुसार बहुत से अन्तर्भेद हैं और उनका टिकाऊपन भिन्न भिन्न प्रमाण का होता है। यही नियम अन्य फलों के लिए लग सकता है। निम्बू के भी अनेक छोटे छोटे भेद हैं; उनमें [illegible] इत्यादि प्रसिद्ध [illegible] जातियों के ही [illegible] जातीय विभेदी- [illegible] भिन्न जाति के म्बू के विभेदीभवन का विचार यदि न भी किया जाय, तो भी एक जाति के अथवा एक ही वृक्ष के निम्बू में भी यह विभेदीभवन या जाता है और ऐसे विभेद को व्यक्तिविषयक विभेदीभवन Individual Variation) कहते हैं। केलिफोर्निया में परीक्षा रने पर यह जान पड़ा कि एक वृक्ष के भिन्न भिन्न निम्बू का टि- काऊपन भिन्न भिन्न है। विभेदीभवन के विवेचन से बहुतों को ऐसा लूम होगा कि परमेश्वर ने सजीव वस्तुओं के पीछे यह व्यर्थ की पदा लगा दी है। परन्तु वास्तविक दशा ऐसी नहीं है। विभेदी- वन का नियम तो मानो मनुष्यमात्र के लिए परमात्मा का दिया आ एक वरदान ही है।

यह विभेदीभवन का नियम फलवृक्षों अथवा फलों के लिए यदि होता तो फलों में बहुत सा सुधार हो ही न सकता था। पाश्चा- ों ने फलों के व्यापार में जो उन्नति की है वह उक्त नियम के अनु- र फलों में सुधार करके ही की है। इस नियम का पूर्ण ज्ञान दाचित् अभी लोगों को न हुआ होगा, तथापि शास्त्रज्ञों को, प्रयोग रने पर यह मालूम हो गया है कि उसका श्रोत अन्तस्थ और ह्य (Internal and external influences) संस्कारों के ग से बदलता रहता है। अन्तस्थ संस्कारों में चैतन्यकेन्द्र Nucleus) आद्य पिंडांश (Protoplasm) इत्यादि से जो गुण वृक्षों में आते हैं उनका समावेश होता है। अन्तस्थ संस्कार था अनुवंशिक (Hereditary) होते हैं, और इस कारण, जिन जों से नववृक्षों की उत्पत्ति होती है उनके गुणों पर ही भावी ल का निर्भर रहता है। यही कारण है कि प्रत्येक जाति के वृक्ष ो लगाते समय उत्तम बीज की आवश्यकता होती है। यह अन्त- स्थ संस्कार व्यक्ति (Individual) अथवा जाति (Race) दोनों े लिए बराबर लगता है। फलों में सुधार करने का विचार मन में आने पर पहले इस बात का निर्णय करना चाहिए कि किसी विशिष्ट फलवृक्ष में सुधार किया जाय अथवा उस जाति के फल- वृक्षों में कोई उपयोगी गुण लाया जाय। व्यक्ति और जाति दोनों में दि सुधार करना है तो पहले आवश्यक गुण रखनेवाले वृक्षों का नाव करना आवश्यक है और इन चुने हुए वृक्षों से सर्वोत्तम वृक्ष र चुनना चाहिए। इन सर्वोत्तम वृक्षों में बीज, कलम, इत्यादि ोजना से अनेक वृक्ष चुनना चाहिए और जब तक आवश्यक गुण क वृक्ष में चिरस्थायिक न हों तब तक यह काम बराबर जारी खना चाहिए। जहां एक वृक्ष में आवश्यक चिरस्थायिक गुण आ ये कि बस फिर उससे उसी वृक्ष की एक नवीन अन्तर्जाति बनाई ा सकती है। ऐसी ही क्रिया से निर्बीज सन्तरे, लाल-पीले गुलाब े फूल, इत्यादि नवीन नवीन प्रकार के वृक्ष उत्पन्न किये गये हैं। अमेरिका में मि० बरबैंक महाशय नवीन नवीन वृक्षों की उत्पत्ति रके बहुत ही प्रसिद्धि पा चुके हैं। यूरप में भी ऐसे बहुत से प्रसिद्ध पुरुष हैं। सारांश, फलों में यदि सुधार करना है तो पहले एक ही फलवृक्ष में अच्छे आनुवंशिक गुणों का एकीकरण करना चाहिए। यह काम कृत्रिम वृक्षोत्पादन (artificial plant bree- ding) क्रिया से सफल होता है। कृत्रिम वृक्षोत्पादन क्रिया का विस्तृत वर्णन इस लेख की मर्यादा से बाहर है। इस बात की कुछ कल्पना आने के लिए, कि अन्तस्थ संस्कारों का फलों पर कैसा परिणाम होता है, उपर्युक्त वर्णन बस है। भारतवर्ष के निम्बू के टिकाऊपन में परदेश के निम्बू के वृक्षों की सहायता से सुधार किया जा सकता है, परन्तु पहले इस बात का यथार्थ निर्णय हो जाना आवश्यक है कि भारतवर्ष का निम्बू आनुवंशिक अन्तस्थ संस्कारों के कारण टिकाऊ नहीं है या अन्य बाह्य संस्कारों के कारण वह टिकाऊ नहीं है। हम अनुमान करते हैं कि भारतवर्ष का निम्बू कदाचित् बाह्य संस्कारों के कारण ही खराब होता होगा।

इस बात का विचार करने के लिए, कि बाह्य संस्कारों का फलों के टिकाऊपन पर क्या परिणाम होता है, यह जानना चाहिए कि, विभेदीभवन पर उसका क्या परिणाम होता है, क्योंकि टिकाऊपन विभेदीभवन का ही एक गुण है। यह सभी को मालूम है, कि भिन्न भिन्न प्रकार की जमीन में भिन्न भिन्न फसलें होती रहती हैं। जमीन का बाह्य परिणाम वृक्षों की बाढ़ पर और पोषण पर होता है, इस कारण भिन्न भिन्न तरह की फसल भिन्न भिन्न प्रकार की जमीन में होती रहती है। उष्णता का भी परिणाम वृक्षों पर होता रहता है और इसी कारण उष्ण और शीत प्रदेशों के वृक्ष भिन्न भिन्न तरह के होते हैं। सूर्यप्रकाश, वायु, पानी, प्रदेश की ऊँचाई, इत्यादि बाहरी परिस्थितियों का भी परिणाम वृक्षों पर होता रहता है। उपर्युक्त परिस्थितियों का प्रभाव जैसा वृक्षों पर होता है वैसा ही फलों पर भी होता है। शास्त्रीय ज्ञान से यह जाना जाता है कि उन परि- स्थितियों का प्रभाव भिन्न भिन्न वृक्षों पर कैसा पड़ता है, और इससे यथासम्भव प्रत्येक परिस्थिति में सुधार किया जा सकता है। पाश्चा- त्यों ने उपर्युक्त ज्ञान का लाभ उठा लिया और हमारे किसान अथवा माली लोग ही नहीं, किंतु सुशिक्षित लोगों में भी उक्त ज्ञान का लवलेश नहीं है। यह हमारी वर्तमान अधोगति का एक कारण है। जैसे काले मनुष्य अभ्यास से बिलकुल शीत प्रदेश में रह सकते हैं और गोरे लोगों को भी धीरे धीरे अति उष्ण देश का जल- वायु सहन हो सकता है उसी प्रकार वृक्षों में भी यह गुण धीरे धीरे लाया जा सकता है। भिन्न जलवायु और परिस्थितिवाले देशों के वृक्ष यदि हमें अपने देश में लगाना है तो कृत्रिम रीति से अन्तस्थ और बाह्य संस्कार, दोनों देशों की परिस्थितियों के अनुसार थोड़े- बहुत प्रमाण पर स्थित रख कर पहले बिलकुल थोड़े वृक्ष लगाना चाहिए। इसके बाद उन थोड़े वृक्षों से भिन्न भिन्न अधिक वृक्ष पैदा करने चाहिए। भारतवर्ष के आम अमेरिका में उपर्युक्त रीति से ही लगाये गये हैं और लगाये जा रहे हैं। अमेरिका की संयुक्त रियासतों (U. S. A.) के फ्लोरिडा, आदि स्थानों में आज आम की थोड़ी बहुत फसल भी होती है। केलिफोर्निया और दक्षिण की कुछ रियासतों में इटली के निम्बू भी उपर्युक्त रीति से ही लगाये गये हैं। इस रीति से वृक्ष उत्पादन करने के लिए अनुभव, शास्त्रीय ज्ञान और द्रव्य का मेल जमना चाहिए।

तोड़े हुए फलों का टिकाऊपन अथवा खराब होना।

वृद्धावस्था प्राप्त होने पर जैसे मरण प्राप्त होता है, वैसे ही फल पक कर जब उतर जाते हैं तब वे खराब होते ही हैं। कुछ कच्चे (थोड़े) फल अधिक दिन टिकते हैं। इसका कारण यह है कि उनकी बाढ़ की शक्ति उनमें भरी रहती है। फलों की जीवनशक्ति (टिकाऊपन) आनुवंशिक कैसी है सो ऊपर लिखा ही जा चुका है। अब इसका विचार करना है कि जितनी जीवनशक्ति फलों में है उतनी स्थिर कैसे रखी जा सकती है। फल तोड़ने के बाद उस पर हवा, उष्णता, प्रकाश, वाष्पसंचय (Humidity) इत्यादि वायु- मंडल की शक्तियों का प्रभाव शुरू हो जाता है। हवा में सर्वत्र फैले हुए सूक्ष्मजन्तु (Micro-organism) भी फलों पर आक्रमण करते रहते हैं। ये बाहर के कारण हुए, परन्तु स्वयं फलों में भी योग्य परिस्थिति मिलते ही रासायनिक क्रिया (Chemical change) अथवा निर्जीव परिवर्तकों (Enzymes) का कार्य प्रारम्भ हो जाता है और फल खराब होते रहते हैं। इन अन्तस्थ और बाह्य विनाशक शक्तियों से झगड़ने में फलों की मूल जीवनशक्ति कम होती जाती है। भिन्न भिन्न रोग उन पर अपना अधिकार जमाते जाते हैं, और फलों पर उनका चिन्ह देख पड़ने लगता है। इसी स्थिति के अधिक बिगड़ जाने पर लोग कहते हैं कि अब फल सड़ने [illegible] जैसे मनुष्य को किसी [illegible] विषैला भोजन दिया [illegible] है और वह मृत्युपथ की ओर चल देता है, इसी प्रकार बहुत अच्छे अच्छे फलों को, लोगों की अज्ञानता से कच्चे अथवा लापरवाही से पके-सड़ने की नौबत आ पहुँचती है। उपर्युक्त विकारी शक्तियों से फलों को बचाना ही उनको अधिक दिन टिकाना है। इससे किसी को यह न समझना चाहिए कि स्वाभाविक ही शीघ्र खराब होनेवाले फल अपनी आयुर्मर्यादा से भी अधिक दिन टिकाए जा सकते हैं। फलों की यदि आयुर्मर्यादा ही बढ़ाना हो तो 'टिकाऊ फलों की उत्पत्ति' शीर्षक में वर्णन किये हुए दीर्घ प्रयत्न के किये बिना काम नहीं चल सकता। यहां पर हमें केवल इसी बात का विचार करना है कि फलों की स्वाभाविक आयुर्मर्यादा स्थिर कैसे रखी जा सकती है। परन्तु निरोगी फलों पर आक्रमण करनेवाली विकारी शक्तियों का कुछ न कुछ वर्णन किये बिना उक्त प्रश्न नहीं हल किया जा सकता।

कालरा, मलेरिया, प्लेग, क्षय, इत्यादि रोगों के जन्तु (Micro organisms) पानी, हवा, अन्न इत्यादि पदार्थों के द्वारा जैसे सर्वत्र फैल जाते हैं वैसे ही फलों पर आक्रमण करने वाले जन्तु फैले रहते हैं। इनमें से उद्भिज जन्तु (Bacteria) सजीव परिवर्तक जन्तु (Fermenting yeast या Sacharomyces इत्यादि) और तन्तुवाले जन्तु (Hyphomycetes या moulds, fungi इत्यादि) फलों के टि- काऊपन के प्रधान शत्रु हैं। इनका निवासस्थान बहुधा सर्वत्र ही पाया जाता है। सूक्ष्मावस्था में ये आंखों से तो किसी तरह भी नहीं, किन्तु कम शक्तिवाले सूक्ष्मदर्शक यन्त्र से भी नहीं, दिख सकते। इनकी परीक्षा करना बड़ी झंझट का वैज्ञानिक काम है। मनुष्य की जिन्दगी के लिए जैसे भोजन, पानी, हवा, इत्यादि पदार्थों की आव-

निम्बू आदि फल टिकाऊ कैसे किये जायँ ?

(श्रीयुत पांडुरंग सदाशिव सानगोरे बी० एस० सी० अमेरिका।)

भारतवर्ष में यद्यपि निम्बू बहुत उत्पन्न होते हैं, तथापि यहाँ विदेशी निम्बू की ही खपत अधिक होता है। इसका कारण विदेशी निम्बू का टिकाऊपन ही है। इटली, सिसली, अमेरिका, इत्यादि देशों का निम्बू छै से आठ महीने तक टिकता है, इसी लिए इन देशों के निम्बू की खपत संसार के अन्य देशों में भी होती है। पश्चिमी विद्वान् और वनस्पतिशास्त्रियों का मत है कि भारतवर्ष के निम्बू के वृक्षों से ही अन्य देशों के निम्बू के वृक्षों की उत्पत्ति हुई है और यह मत सच्चा भी मालूम पड़ता है। यह बात हमारे पूर्वजों की कीर्ति को बढ़ानेवाली है; परन्तु हमने अपने पूर्वजों की इस कीर्ति में उन्नति करने का कितना प्रयत्न किया है? इटली, अमेरिका, इत्यादि देशों के निम्बू के व्यापार से टक्कर लगाना तो दूर ही रहा, परन्तु भारत के निम्बू का व्यापार क्या उसकी बराबरी ही कर सकता है? हमारे देश का निम्बू टिकाऊ नहीं होता; अतएव स्वदेश में ही उसका बिकना कठिन हो जाता है। पश्चिमी देशों के निम्बू का टिकाऊपन देख कर हमारे देश के विद्वान् लोग भी चकित हो जाते हैं! बाजीगर जिस हिकमत और हाथ की सफाई से मिट्टी का रुपया बना देता है और दर्शकों को उस पर आश्चर्य मालूम होता है, यही हाल परदेशी निम्बू के टिकाऊपन का है। पश्चिमी लोग अपने शास्त्रीय (वैज्ञानिक) ज्ञान से निम्बू का सच्चा गुण लोगों के सामने प्रकट कर देते हैं और इसी कारण लोग चकित हो जाते हैं। वास्तव में कुछ यह हाल नहीं है कि परमेश्वर ने भारत का निम्बू जल्दी सड़ने वाला और परदेश का निम्बू अधिक दिन टिकनेवाला बनाया हो। निम्बू के टिकाऊपन का प्रश्न दैव पर अवलम्बित नहीं है। किन्तु वह लोगों के प्रयत्न पर ही अवलम्बित है। पश्चिमी लोगों ने अपने दीर्घोद्योग से निम्बू के उत्तम गुण उसमें रक्षित रखने का प्रयत्न किया, इसी कारण उनका निम्बू हमारे निम्बू से उत्तम है। भारत के सुशिक्षित लोगों का ध्यान ऐसे व्यापार की ओर यदि जाय तो हमारे देश के फलों की भी उन्नति हो सकती है; परन्तु जब तक अशिक्षित, अज्ञानी लोगों के हाथ में हमारे उद्योग धंधे हैं; तब तक उन्नति की कोई आशा न रखनी चाहिए। भारत का निम्बू जो अधिक दिन नहीं टिकता इसका सच्चा कारण शास्त्रीय ज्ञान का अभाव ही है।

केलिफोर्निया–निम्बू के टिकाऊपन का इतिहास।

आधुनिक शास्त्रों का पठन कुछ पुराण-पठन नहीं है, अथवा सुगा-रटन रट कर अपने नाम के आगे पदवियों की पूँछ लगाना भी नहीं है; किन्तु शास्त्र-पठन का मूल उद्देश यही है कि ज्ञान सम्पादन करके उसके योग से संसार की उन्नति की जाय। जो राष्ट्र आज वैज्ञानिक और व्यावहारिक ज्ञान में बढ़ा हुआ है वही राष्ट्र वर्तमान प्रतियोगिता के काल में उन्नत होता है। आज कल पश्चिमी लोग जो फलों के व्यापार में बढ़े हुए हैं, उसका सच्चा कारण उपर्युक्त सिद्धान्त ही है। केलिफोर्निया के निम्बू के टिकाऊपन का और व्यापार का इतिहास उपर्युक्त सिद्धान्त को अधिक स्पष्ट करेगा।

अमेरिका में निम्बू की खेती भारतवर्ष की तरह पुरातन काल से नहीं होती; वह बिलकुल ही इधर की है। कोई ३० वर्ष पहले से ही अमेरिका में निम्बू का व्यापार शुरू हुआ है। केलीफोर्निया में तो उस समय तक निम्बू के व्यापार का नाम निशान भी न था। केलिफोर्निया में पहले निम्बू के वृक्ष शौक के लिए, शोभा के लिए अथवा घराऊ उपयोग के लिए लगाये जाते थे। भारत के लोगों का जैसा आज भ्रम है कि देशी निम्बू अधिक दिन तक टिक नहीं सकते उसी प्रकार उस समय केलीफोर्निया के लोग भी अपने देश के निम्बू के विषय में समझते थे। केलीफोर्निया के निम्बू की यह बुराई अमेरिका की अन्य रियासतों में भी बहुत फैली हुई थी। क्योंकि यहाँ का निम्बू जल्दी ही सड़ कर खराब हो जाता था। निम्बू के बहुत से व्यापारी हताश हुए और बहुत लोग निराशा से अन्य फलों के उद्योग में लगे। सन् १८८७ में तो निम्बू के कितने ही व्यापारियों ने निम्बू के वृक्ष तोड़ कर उन पर सन्तरों के कलम बाँध कर सन्तरों का ही व्यापार हाथ में लिया। सन् १९०१ से सन् १९०५ तक तीस सैकड़ा निम्बू सड़ने लगा। कई जगह तो निम्बू की फसल की फसल सड़ गई। लोग निराश होकर यह कहने लगे कि 'निम्बू का व्यापार करना मानो अपने रुपये को कुएँ में

फेंकना है, इस कारण निम्बू का व्यापार दिन दिन हास
उन्हीं दिनों, अर्थात् १९०४-१९०५ में, परदेशी ...
ही मन्द पड़ गई, इस कारण कीमत बढ़ी और कमीशन
लोगों को कुछ अधिक लाभ हुआ। थोड़े फायदे में ही
होकर इस उद्योग में सुधार करने की ओर लोगों का मन
थोड़े ही दिनों में सुधार के विचार को मूर्तस्वरूप प्राप्त हुआ
फोर्निया भर में व्यापार की लहर उठने लगी। जगह
के भवन स्थापन किये गये। निम्बू की कम्पनियों ने तो निम्बू
पार के फायदे का नगाड़ा जोर से बजाना शुरू कर दिया
विज्ञापनों के द्वारा ही स्तुति स्तोत्र गा कर व्यापारी लोग चु
हुए। क्योंकि वे जानते थे कि उपर्युक्त प्रकार का कलंक
सर्वदा ही हाथ में नहीं आया करता। वे यह अच्छी तरह
थे कि जब तक निम्बू का टिकाऊपन नहीं बढ़ेगा तब तक
व्यापार से लाभ नहीं होगा। इसी लिए उन्होंने कैलि
विश्वविद्यालय के विद्वान् वैज्ञानिकों से यह सलाह पूछी कि
का टिकाऊपन बढ़ाने के लिए क्या उपाय करना चाहिए।
विद्यालय की सरकारी प्रयोगशाला में अन्वेषण का कार्य
हुआ। इतने ही से लोग सन्तुष्ट नहीं हुए, किन्तु निम्बूवा
सभा (The Lemon men's Club) ने निम्बू के टिका
उन्नति करने के लिए एक निजी प्रयोगशाला भी खोली, और
सा रुपया खर्च करके सब प्रकार की अन्वेषण-सामग्री खरी
भारी भारी वेतनवाले विद्वान् अन्वेषकों को अन्वेषण (Rese
का काम सौंपा। 'लिमोनेरिया लेमन कम्पनी' और 'सि
सिड्स एसोसियेशन' के बगीचों में भी अन्वेषण का काम
हुआ। सन् १९०५ की बरसात में विटियर में एक अन्वेषण-
शाला (Research laboratory) स्थापन की गई। मि०
एम० एस० ई० बी० बाबकाक, बी० ए० और सी० ओ० स्मि
एस० नामक विद्वान् वृक्षरोगचिकित्सक सज्जनों ने बागों में
... स्मिथ, एम० एस०
कों का पर्यवेक्षण
... न रसोईघर के
... अत्यन्त विशु

... हा कि केलीफो
... आनुवंशिक गुण न
... उसका कारण
... तनी नहीं रही
... विचारी रोग
... निम्बू पर आते हैं और इस
... प्रयोगों से ही जानी
... ए सम्हालने का गु
... म्भव है और यदि
... और भी अधिक
... उसी राष्ट्र पर हो
... र में भिड़ गया है।
... खलाई, परन्तु इसमें
वाले लोग कुछ उन पर नाराज नहीं हुए; किन्तु उलटे उनको
धन्यवाद देकर उन्होंने अपनी भूल को सुधार लिया। इसका परि
यह हुआ कि केलीफोर्निया का निम्बू उत्तम और टिकाऊ ह
इटली और सिसली के निम्बुओं को लजा रहा है; यही क्यों,
वे अन्य देशों के निम्बुओं की अपेक्षा कीमती भी अधिक
जाते हैं। शिक्षित विद्वान् लोगों ने यदि इस व्यवसाय में वै
रीति से सुधार न किया होता तो केलिफोर्निया को निम्बू के
पार में सफलता प्राप्त होना असम्भव था। भारतवर्ष में भी
के व्यापार में सफलता मिल सकती है, परन्तु माली लोगों के
खोले बिना सफलता का कोरा जप करना व्यर्थ है। पहले
ठीक कारण ढूँढना चाहिए कि देशी निम्बू खराब क्यों होता
मैं तो समझता हूँ कि भारत का निम्बू जो अधिक दिन तक
टिकना, इसका सच्चा कारण केलिफोर्निया की भाँति होगा।

टिकाऊ फलों की उत्पत्ति।

विभेदी भवन (Variation)–यह तो सब को मालूम ही
भिन्न भिन्न प्रकार के फलों का टिकाऊपन भी भिन्न ही भिन्न

है। बेर, नासपाती, नारंगी, इत्यादि फल बहुत समय तक टिक सकते हैं, परन्तु आम, अमरूद, अनंनास, केले की फलियां, इत्यादि फल बहुत दिन नहीं टिकते। यह बात सदा ही देखी जाती है। किसी जाति के भी दो फल ठीक ठीक एक ही समान मिलना कठिन [इस]का मुख्य कारण सजीव वस्तुओं के विभेदीभवन का नियम [य]ह नियम सब वनस्पतियों और प्राणिमात्र में सर्वव्यापी है। भिन्न जाति के फलों में तो विभेदीभवन पाया ही जाता है, [पर]न्तु एक ही जाति के फलों में भी यह देखा जाता है। सेवफल [जाति]यों के अनुसार बहुत से अन्तर्भेद हैं और उनका टिकाऊपन [भि]न्न भिन्न प्रमाण का होता है। यही नियम अन्य फलों के लिए [ल]ग सकता है। निम्बू के भी अनेक छोटे छोटे भेद हैं; उनमें [यु]रेका, एवरबेअरिंग, जिनोआ, लिस्बन, सिसली, इत्यादि प्रसिद्ध [हैं], परन्तु इनमें युरेका, जिनोआ, लिस्बन, इत्यादि जातियां के ही [निम्बू] टिकाऊ हैं। जाति जाति के विभेदीभवन को जातीय विभेदी[भव]न (Racial Variation) कहते हैं। भिन्न भिन्न जाति के [वृक्ष] के विभेदीभवन का विचार यदि न भी किया जाय, तो भी एक [ही] जाति के अथवा एक ही वृक्ष के निम्बू में भी यह विभेदीभवन [पाया] जाता है और ऐसे विभेद को व्यक्तिविषयक विभेदीभवन [(I]ndividual Variation) कहते हैं। कैलिफोर्निया में परीक्षा [कर]ने पर यह ज्ञात पड़ा कि एक वृक्ष के भिन्न भिन्न निम्बू का टि[का]ऊपन भिन्न भिन्न है। विभेदीभवन के विवेचन से वाचकों को ऐसा [मा]लूम होगा कि परमेश्वर ने सजीव वस्तुओं के पीछे यह व्यर्थ की [ब]खेड़ा लगा दी है। परन्तु वास्तविक दशा ऐसी नहीं है। विभेदी[भव]न का नियम तो मानो मनुष्यमात्र के लिए परमात्मा का दिया [हु]आ एक वरदान ही है।

[illegible] अथवा फलों के लिए यदि [illegible] हो न सकता था। पाश्चा[illegible] है यह उक्त नियम के अनु[सा]र फलों में सुधार करके हो की है। इस नियम का पूर्ण ज्ञान [क]दाचित् अभी लोगों को न हुआ होगा, तथापि शास्त्रज्ञों को, प्रयोग [कर]ने पर यह मालूम हो गया है कि उसका स्रोत अन्तस्थ और [बा]ह्य (Internal and external influences) संस्कारों के [यो]ग से बदलता रहता है। अन्तस्थ संस्कारों में चैतन्यकेन्द्र [(]Nucleus) आद्य पिंडांश (Protoplasm) इत्यादि से जो गुण [न]ववृक्षों में आते हैं उनका समावेश होता है। अन्तस्थ संस्कार [ब]हुधा अनुवंशिक (Hereditary) होते हैं, और इस कारण, जिन [वृक्ष]ों से नववृक्षों की उत्पत्ति होती है उनके गुणों पर ही भावी [वृक्ष] का निर्भर रहता है। यही कारण है कि प्रत्येक जाति के वृक्ष [क]ो लगाते समय उत्तम बीज की आवश्यकता होती है। यह अन्त[स्थ] संस्कार व्यक्ति (Individual) अथवा जाति (Race) दोनों [के] लिए बराबर लगता है। फलों में सुधार करने का विचार मन [मे]ं आने पर पहले इस बात का निर्णय करना चाहिए कि किसी [वि]शिष्ट फलवृक्ष में सुधार किया जाय अथवा उस जाति के फल[वृ]क्षों में कोई उपयोगी गुण लाया जाय। व्यक्ति और जाति दोनों में यदि सुधार करना है तो पहले आवश्यक गुण रखनेवाले वृक्षों का चुनाव करना आवश्यक है और इन चुने हुए वृक्षों से सर्वोत्तम वृक्ष फिर चुनना चाहिए। इन सर्वोत्तम वृक्षों से बीज, कलम, इत्यादि योजना से अनेक वृक्ष चुनना चाहिए और जब तक आवश्यक गुण एक वृक्ष में चिरस्थायिक न हो तब तक यह क्रम बराबर जारी रखना चाहिए। जहां एक वृक्ष में आवश्यक चिरस्थायिक गुण आ [illegible]

[illegible]

करके बहुत ही प्रसिद्धि पा चुके हैं। यूरप में भी ऐसे बहुत से प्रसिद्ध पुरुष हैं। सारांश, फलों में यदि सुधार करना है तो पहले एक ही फलवृक्ष में अच्छे आनुवंशिक गुणों का एकीकरण करना चाहिए; यह काम कृत्रिम वृक्षोत्पादन (artificial plant breeding) क्रिया से सफल होता है। कृत्रिम वृक्षोत्पादन क्रिया का विस्तृत वर्णन इस लेख की मर्यादा से बाहर है। इस बात की कुछ कल्पना आने के लिए, कि अन्तस्थ संस्कारों का फलों पर कैसा परिणाम होता है, उपर्युक्त वर्णन बस है। भारतवर्ष के निम्बू के टिकाऊपन में परदेश के निम्बू के वृक्षों की सहायता से सुधार किया जा सकता है; परन्तु पहले इस बात का सप्रयोग निर्णय हो जाना आवश्यक है कि भारतवर्ष का निम्बू आनुवंशिक अंतस्थ संस्कारों के कारण टिकाऊ नहीं है या अन्य बाह्य संस्कारों के कारण वह टिकाऊ नहीं है। हम अनुमान करते हैं कि भारतवर्ष का निम्बू कदाचित् बाह्य संस्कारों के कारण ही खराब होता होगा।

इस बात का विचार करने के लिए, कि बाह्य संस्कारों का फलों के टिकाऊपन पर क्या परिणाम होता है, यह जानना चाहिए कि, विभेदीभवन पर उसका क्या परिणाम होता है, क्योंकि टिकाऊपन विभेदीभवन का ही एक गुण है। यह सभी को मालूम है कि भिन्न भिन्न प्रकार की जमीन में भिन्न भिन्न फसलें होती रहती हैं। जमीन का बाह्य परिणाम वृक्षों की बाढ़ पर और पोषण पर होता है, इस कारण भिन्न भिन्न तरह की फसल भिन्न भिन्न प्रकार की जमीन में होती रहती है। उष्णता का भी परिणाम वृक्षों पर होता रहता है और इसी कारण उष्ण और शीत प्रदेशों के वृक्ष भिन्न भिन्न तरह के होते हैं। सूर्यप्रकाश, वायु, पानी, प्रदेश की ऊंचाई, इत्यादि बाह्य परिस्थितियों का भी परिणाम वृक्षों पर होता रहता है। उपर्युक्त परिस्थितियों का प्रभाव जैसा वृक्षों पर होता है वैसा ही फलों पर भी होता है। शास्त्रीय ज्ञान से यह जाना जाता है कि उन परिस्थितियों का प्रभाव भिन्न भिन्न वृक्षों पर कैसा पड़ता है, और इससे यथासम्भव प्रत्येक परिस्थिति में सुधार किया जा सकता है। पाश्चात्यों ने उपर्युक्त ज्ञान का लाभ उठा लिया और हमारे किसान अथवा माली लोग ही नहीं, किन्तु सुशिक्षित लोगों में भी उक्त ज्ञान का लवलेश नहीं है। यह हमारी वर्तमान अधोगति का एक कारण है। जैसे काले मनुष्य अभ्यास से बिलकुल शीत प्रदेश में रह सकते हैं और गोरे लोगों को भी धीरे धीरे अति उष्ण देश का जलवायु सहन हो सकता है उसी प्रकार वृक्षों में भी यह गुण धीरे धीरे लाया जा सकता है। भिन्न जलवायु और परिस्थितिवाले देशों के वृक्ष यदि हमें अपने देश में लगाना है तो कृत्रिम रीति से अन्तस्थ और बाह्य संस्कार, दोनों देशों की परिस्थितियों के अनुसार थोड़े बहुत प्रमाण पर स्थित रख कर पहले बिलकुल थोड़े वृक्ष लगाना चाहिए। इसके बाद उन थोड़े वृक्षों से भिन्न भिन्न अधिक वृक्ष पैदा करने चाहिए। भारतवर्ष के आम अमेरिका में उपर्युक्त रीति से ही लगाये गये हैं और लगाये जा रहे हैं। अमेरिका की संयुक्त रियासतों (U. S. A.) के फ्लोरिडा, आदि स्थानों में आज आम की थोड़ी बहुत फसल भी होती है। कैलिफोर्निया और दक्षिण की कुछ रियासतों में इटली के निम्बू भी उपर्युक्त रीति से ही लगाये गये हैं। इस रीति से वृक्ष उत्पादन करने के लिए अनुभव, शास्त्रीय ज्ञान और द्रव्य का मेल जमना चाहिए।

तोड़े हुए फलों का टिकाऊपन अथवा खराब होना।

वृद्धावस्था प्राप्त होने पर जैसे मरण प्राप्त होता है, वैसे ही फल पक कर जब उतर जाते हैं तब वे खराब होते ही हैं। कुछ कच्चे (थोड़े) फल अधिक दिन टिकते हैं। इसका कारण यह है कि उनकी बाढ़ की शक्ति उनमें भरी रहती है। फलों की जीवनशक्ति (टिकाऊपन) आनुवंशिक कैसी है सो ऊपर लिखा ही जा चुका है। अब इसका विचार करना है कि जितनी जीवनशक्ति फलों में है उतनी स्थिर कैसे रखी जा सकती है। फल तोड़ने के बाद उस पर हवा, उष्णता, प्रकाश, बाष्पसंचय (Humidity) इत्यादि वायुमंडल की शक्तियों का प्रभाव शुरू हो जाता है। हवा में सर्वत्र फैले हुए सूक्ष्मजन्तु (Micro-organism) भी फलों पर आक्रमण करते रहते हैं। ये बाहर के कारण हुए, परन्तु स्वयं फलों में भी योग्य परिस्थिति मिलते ही रासायनिक क्रिया (Chemical change) अथवा निर्जीव परिवर्तकों (Enzymes) का कार्य प्रारम्भ हो जाता है और फल खराब होते रहते हैं। इन अन्तस्थ और बाह्य विनाशक शक्तियों से झगड़ने में फलों की मूल जीवनशक्ति कम होती जाती है। भिन्न भिन्न रोग उन पर अपना अधिकार जमाते जाते हैं, और फलों पर उनका चिह्न देख पड़ने लगता है। इसी स्थिति के अधिक बिगड़ जाने पर लोग कहते हैं कि अब फल सड़ने [illegible]

[illegible]

श्यकता है उसी प्रकार जन्तुओं को भी उनकी आवश्यकता है। मनुष्य के खाने के पदार्थ धान्य, तरकारीभाजी, फलफलहरी, इत्यादि उच्च रासायनिक द्रव्यों के बने हुए हैं; परन्तु जन्तुओं के खाद्य बिलकुल ही सादे रासायनिक द्रव्यों का बना हुआ है। मनुष्य का जो खाद्य है वह तो जन्तुओं का भी खाद्य है ही, किन्तु इसके सिवाय, हवा, पानी, नाली, तालाब, कुएं, इत्यादि में भी उन्हें खाद्य मिलने में बहुत कठिनाई नहीं पड़ती। जिन पदार्थों में नाइट्रोजन अधिक रहता है उन पदार्थों में उनका प्रवेश जल्दी हो जाता है और उन पदार्थों को खाकर उनके पोषणद्रव्य से वे पुष्ट होते हैं। इसी कारण दूध, भात, दाल, तरकारी-भाजी, इत्यादि पदार्थ शीघ्र ही खराब हो जाते हैं। पका हुआ अन्न गर्मी में जो शीघ्र ही खराब होकर महँक उठता है उसका कारण भी ये जन्तु ही हैं। पके हुए पदार्थों के अन्न-पानी और ग्रीष्म ऋतु की तपन से इनकी वृद्धि में उत्तेजना आती है। वही अन्न यदि बिलकुल ठंढी जगह में रखा जाता है तो जल्द खराब नहीं होता। क्योंकि इन जीवाणुओं की वृद्धि बहुत ठंढी जगह में अच्छी तरह नहीं होती। अन्न की तरह फल भी जीवाणुओं का खाद्य है, परन्तु फलों में शर्करा (Sugars) आम्ल (Acids) अथवा लवण (Salts), इत्यादि होने के कारण उनमें उद्भिज जन्तुओं (Becteria) की वृद्धि जल्द नहीं होती, परन्तु सजीव परिवर्तक जन[illegible]

भिन्न[illegible]

लता से[illegible]

होती है। जहां एक बार सजीवपरिवर्तक जन्तु अथवा जीवाणुओं का प्रवेश फलों में हो गया कि बस फिर धीरे धीरे [illegible]द्भिज जन्तुओं का भी आक्रमण उन पर होता है। निम्बू, इत्यादि फलों में आम्ल (Acid) अधिक होने के कारण [illegible]

[illegible] और फि[illegible]

धीरे वे भीतर प्रविष्ट होते हैं।

उपर्युक्त जीवाणुओं में से बहुत से २१२ (फारेन हाइ[illegible] की उष्णता से मर जाते हैं और ३२ अंश उष्णता में उनकी [illegible] बन्द हो जाती है। इन दो बातों का फायदा उठा कर पाश्[illegible] फलों के व्यापार में फलसंरक्षा (Fruit preserving) और [illegible] दिन फल टिकने के लिए शीतगृह (cold storoage pl[illegible] इन दो उपायों की योजना की है। फल रखने के स्थानों की [illegible] और उनके योग्य प्रबन्ध के विषय में पाश्चात्य लोग जितनी [illegible]टारी रखते हैं उतनी यदि भारतवर्ष के लोग रखें तो फलों के [illegible]पार में भारत का नम्बर संसार के सब देशों में प्रथम रहे। [illegible] व्यापार में हमारे देश के सुशिक्षित लोग जब तन, मन, धन [illegible]कर परिश्रम करेंगे वह भारत के सौभाग्य का दिन होगा। *

* यह उपयोगी विषय अगली संख्या में पूर्ण होगा और वर्णन के अनु[illegible] सादे तथा रंगीन चित्र भी उसमे दिये जायँगे। सम्पादक।

द्वितीय श्वेताम्बर-जैन साधु-परिषद् झालरापाटन।

अभी थोड़े समय पहिले झालरापाटन में यह सभा तीन दिन तक हुई। और उसमें १ ठहराव पास हुए। साधु श्रीनन्दलालजी, साधु श्रीगजमलजी और साधु श्रीप्रतापमलजी क्रमशः तीनों दिन सभापति हुए थे। श्री गिरिधर शर्मा।

तरणकौशल।

इस चित्र में [illegible] पानी [illegible] है वह [illegible] देख पड़ता है। [illegible] पर कोई [illegible] देख पड़ता। यह दृश्य झालरापाटन के [illegible] है। [illegible]

पं० प्रतापनारायण मिश्र की

कहावतें।

(१)

तजि निज तन मन धन कर लोभा,
पर-उपकार पुरुष के सोभा।
को न चतुर केवल निज हेत,
'अपन पेट गदहौ भर लेत'।

(२)

केवल धन-मद के मतवार,
बिन विद्या बिन बुद्धि विचार।
तिन सपनेहु न प्रेमपथ छुआ,
'हिजड़ों के कब लड़का हुआ।'

(३)

जो कछु लाजि न परै निज हानि,
तौ समाज की तजौ न कानि।
क्यों बिन स्वारथ सहिये खिल्ली,
'पंच कहैं बिल्लो तौ बिल्ली।'

(४)

समय को अपने जो सतसंग में बिताता है,
हरेक बात में वह दक्ष हो ही जाता है।
किसीको क्या कोई शिक्षा सदैव देता है!
'चौतरा आप ही कुतावली सिखा लेता है।'

(५)

मिश्रहि' सरल भाव अनुसरी,
रिपु सन कल बल छल सब करी।
जग महँ सुख निबाह विधि ये है,
'भीत देखि कै चित्र उरे है'।

(६)

दुरबल के निज होहु सहाय,
हरि तुंदे जग जसु है जाय।
[illegible] मनाये धमहु अकाय,
'बगुला मारे पखना हाय।'

(७)

करन [illegible] श्रम निज दिन रैन,
काम कर्म कहँ दूषन दैन।
बुद्धि [illegible] न [illegible] गई बैर,
'नाचि न आवै आँगन टेढ़।'

बालकन युद्ध।

युद्धस्थल दिखलानेवाला नक्शा।

यूरप के आग्नेय ओर का भाग योरोपियन तुर्किस्तान है। तुर्की साम्राज्य का यह भाग
न चालीस पचास वर्ष से क्रिश्चियन राष्ट्रों की आंखों में चुभ रहा है। दो तीन शताब्दियों
पहले यूरप का बहुत भाग मुसलमानों ने घेर लिया था। आस्ट्रिया और रूस के राष्ट्रों से
की लोगों के कई युद्ध हुए और बालकनपर्वत के आसपास का भाग क्रिश्चियन राष्ट्रों ने
अपरिहार्य अर्थ" कह कर तुर्की सुलतान के अधिकार में रखा। रेलगाड़ियां, तारयंत्र,
यादि नवीन आविष्कारों से और यंत्रसामर्थ्य से जब क्रिश्चियन राष्ट्र वैभवशाली हुए तब
रो ओर यह कोलाहल मचा कि अब यूरप में मुसलमानों का अड्डा क्यों चाहिए? तुर्की
जधानी कान्स्टन्टीनोपल के आसपासवाले आड्रियानोपल जिलों में सिर्फ मुसलमानों की
शेष आबादी रह गई; अन्य जगहों में मुख्य बस्ती क्रिश्चियन लोगों की हो गई,
ौर अमल मुसलमानों का रहा, यह दशा वैभवशाली क्रिश्चियन राष्ट्रों को कैसे सहन हो?
ीस वर्ष पहले इंगलैंड के मुख्य प्रधान ग्लाडस्टन साहब ने तो, क्रिश्चियन लोगों पर के इस
की शासन के विरुद्ध इंगलैंड में बड़ी हलचल मचा दी। परन्तु स्वधर्मियों का कल्याण करने
लिए स्फुरण पानेवाली शक्ति की अपेक्षा अन्य राजकीय विषय लार्ड बिकन्सफील्ड को
धिक महत्व के मालूम हुए, इस कारण वह कोलाहल वहां का वहीं ठंढा पड़ गया! आ-
्ट्रिया की यह महत्वाकांक्षा थी, और है, कि तुर्की राज्य में अपने पैर फैला कर भूमध्यसागर
े किनारा आस्ट्रिया की सत्ता में मिला लिया जाय, और रूस की भी यही अभिलाषा है।
ूस की विस्तृत सत्ता को यह चाहना स्वाभाविक है कि ब्लाकसी और भूमध्यसागर को
िलानेवाली बास्फरस की सामुद्रधुनी अपने अधिकार में आ जाय, जिससे ब्लाकसी के रूसी
हाजों को भूमध्यसागर में स्वच्छन्दतापूर्वक संचार करने में अड़चन न पड़े। तीस वर्ष
हले लार्ड बिकन्सफील्ड ने, भूमध्यसागर में इंगलैंड की जलशक्ति की प्रबलता रखने के
िए ऐसा उद्योग किया था कि जिसमें भूमध्यसागर में उक्त दोनों राष्ट्रों का प्रवेश न रहे।
ौर इंगलैंड के राजनीतिज्ञ पुरुषों की नीति उक्त उद्योग के अनुसार ही आज तक स्थिर
ही है। इसी नीति के कारण जीर्ण हुए तुर्की साम्राज्य का अस्तित्व अभी तक स्थिर रहा।
ीन वर्ष पहिले जिस समय तुर्किस्तान ने केंचल डाल दी और नवीन राज्यपद्धति तथा यंत्र-
... यह शंका उत्पन्न हुई
... स्थिर हो जायगी,
... यसागर को मिला
... आफ्रिका के तुर्की
ाम्राज्य का त्रिपोली प्रान्त छीन ही लिया! इटली के युद्ध से तुर्की त्रस्त हुई ...
ालकनपर्वत के आसपास के बलगेरिया, सर्विया, माउटनिग्रो, ग्रीस इत्यादि ...
शों ने अपना संघ बना कर, बालकनपर्वत के दक्षिण ओर के मैसीडोनिया प्रान्त ...
ी प्रजा की ओर से, अक्टूबर के दूसरे अठवाड़े में युद्ध का प्रारम्भ कर दिया ...
ान ने १५ तारीख के करीब इटली से सुलह करके इन छोटे छोटे देशों को ...
वरूप दिखलाने का निश्चय किया। बलगेरिया, सर्विया, माउटनिग्रो और ग्रीस ...
कि तुर्किस्तान मैसेडोनिया को यदि पूर्ण स्वतंत्रता न दे तो एक प्रकार का स्वतं...
ासन्य दे। तुर्किस्तान को यह कहना अनुचित मालूम हुआ। वहां के सुलतान ...
ो बहुत से महत्वपूर्ण अधिकार देने को तैयार हैं; परन्तु उनका कहना है ...

साम्राज्य के राजकाज में हस्तक्षेप करनेवाले ये छोटे छोटे पड़ोसी कौन हो सकते हैं? ये छोटे देश यद्यपि सैनिक सामर्थ्य में तुर्किस्तान से बहुत नीचे दरजे के हैं तथापि मैसीडोनिया के क्रिश्चियन निवासियों के सहारे से और योरोपियन राष्ट्रों की सहानुभूति के बल पर सफलता प्राप्त करने की उन्हें आशा है। गत पखवाड़े में माउटनिग्रो की सेना ने दो तीन साधारण लड़ाइयों में विजय प्राप्त किया है। अब बलगेरिया, सर्विया और ग्रीस की सेना का मुख्य तुर्की सेना से जब तक सामना नहीं होता तब तक यूरोपियन सहानुभूति की सच्ची कीमत और आस्ट्रिया तथा रूस की नीति का सच्चा स्वरूप नहीं प्रकट हो सकता—अर्थात् तब तक यह नहीं कहा जा सकता कि यूरप के आग्नेय कोण में लगी हुई इस चिनगारी से कितनी बड़ी आग उत्पन्न होगी। यह आग की चिनगारी ज्वालाग्राही पदार्थों की बखारी के समीप ही पड़ गई है; अतएव योरोपियन राष्ट्रों के प्रधान मंडल भयग्रस्त होकर आज कल अत्यन्त सावधानी से चलते हैं।

श्रीयुक्त श्रीरंग मोरेश्वर साने
बी० ए०, बी० एससी० (प्रयाग)
पीएच० डी० (बर्लिन)

पेशवाई राज्य में जो महाराष्ट्र कुटुम्ब उत्तर भारत में जाकर स्थायिक हुए उन्हींमें से श्रीयुक्त साने का घराना अभी तक प्रयाग में बसा हुआ है। साने महाशय प्रयाग-विश्वविद्यालय से बी० ए० और बी० एससी० की परीक्षा पास करके, अब से पांच वर्ष पहले, रसायनशास्त्र का—विशेष कर औद्योगिक रसायनशास्त्र का—अधिक अभ्यास करने के लिए जर्मनी गये थे। बर्लिन युनिवर्सिटी में उक्त विषय का मई सन् १९१० तक अभ्यास करने पर और आगे भी कुछ और शर्तें पूरी करने पर आपको उक्त विषय की पीएच० डी० की पदवी मिली। इसके बाद फ्रांकफर्ट के रंग के तीन कारखानों में आपने आठ महीने स्वयं काम करके उक्त विषय का अनुभव प्राप्त किया। चार्लटनबर्ग की टेकनिकल [illegible]

वर्ष २] कार्तिक, सम्वत् १९६९ विक्रमी—नवम्बर, सन् १९१२ ईसवी। [अंक ११

परमपिता का आदेश।

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः ।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सु सहासति ॥

अथर्व० कां० ६ सू० ६४ मं० ३।

सम बहुत तुम्हारा बुद्धि का हो विधान,
सम हृदय तुम्हारा प्रेम का हो निधान।
अतिशय समता हो चित्त में भी तुम्हारे,
समुचित जिससे हों पूर्ण कर्तव्य सारे ॥

रामकृष्ण-वाक्सुधा।

बिन्दु १४।

(नरेन्द्र आदि शिष्यों के साथ कीर्तनानन्द में)

तीसरा पहर हुआ। नरेंद्र कुछ भक्तिपूर्ण पद गाने लगा। राखाल, लाटू, ... नरेंद्र का ब्रह्मसमाज-बन्धु प्रिय और हाजरा इत्यादि लोग उपस्थित

...नरेन्द्र गाने लगा, मृदंग ठनकने लगीः—

पद

ध्याइये मन! आतमाराम, भक्त विश्राम! ॥ ध्रु० ॥
सच्चिद्घन जो भवभयभंजन,
पूर्ण परात्पर निखिल निरंजन,
सुन्दर मूर्ती निजजनरंजन,
कमलनयन मेघश्याम, रूपललाम! ॥ १ ॥
राग सुरंजित रूप चमकता,
कोटि-चन्द्रसम तेज विलसता,
चपला भी नहिं करती समता,
लखकर हो निष्काम, तेजोधाम ॥ २ ॥
हृदय-कमल में सोज्वल रूप—
रखकर पाओ मोद अनूप,
बनो सर्वथा पुण्यस्वरूप,
पूज रे मन! आठो याम; पूरणकाम ॥ ३ ॥
चिदानन्द-सरसिज मकरन्द-
सेवन कर पाओ आनन्द,
बनो मुक्त तोड़ो भवबन्ध,
गाइये शुभ गुण अभिराम; पावन नाम ॥ ४ ॥

नरेन्द्र दूसरा पद गाने लगाः—

पद

उस जगदीश को हो! मूर्ती मन मन्दिर में लाओ ॥ ध्रु० ॥
प्रशान्त सोज्वल नयन मनोहर सौन्दर्यादधिरूप,
मज्जन करिये उसमें सज्जन! हो आनन्द अनूप ॥ उस० ॥ १ ॥
अखिल इन्द्रियां नयन बना कर आतुरता से मित्र!
देखो उसको भक्तिपूर्ण हो तन मन करो पवित्र ॥ उस० ॥ २ ॥
जैसे रवि प्रकाश से सारा होता है तम दूर,
वैसे ही प्रभु के दर्शन से होगा सब भ्रम दूर ॥ उस० ॥ ३ ॥
चकोर शशि में, भ्रमर कमल से रखता है ज्यों प्रेम,
अनन्य होकर प्रभु में त्यों ही रक्खो निश्चल नेम ॥ उस० ॥ ४ ॥

पद

पावन हरि का नाम ॥ जप जप० ॥ ध्रु० ॥
महा मधुर है सेवन कर लो, खर्च न एक छदाम ॥ १ ॥
प्रेमानंद से नाम सुमिर लो, हो जाओ निष्काम ॥ २ ॥
रे मन क्यों चिन्ता है करता? है समर्थ वह राम ॥ ३ ॥
हरिस्मरण से पाप कटेंगे होगा सुख अभिराम ॥ ४ ॥

मृदंग और करताल बज रही थीं। कीर्तन का घोष हो रहा था। कीर्तन के रंग में नरेंद्र और अन्य शिष्य महाराज के पास आनन्द से नाचने लगे। नाचने के साथ साथ यह पदखंड भी सब मिलकर गाते जाते थे —

चिदानन्द सरसिज-मकरन्द-
सेवन कर पाओ आनन्द,
बनो मुक्त तोड़ो भवबन्ध,
गाइये शुभ गुण अभिराम, पावन नाम ॥

इसके बाद फिर वे एक दूसरा पद खंड गाने लगेः—

उस जगदीश की हो! मूर्ती मन मन्दिर में लाओ।

अन्त में, नरेंद्र ने कीर्तन-रंग में बेभान हो मृदंग को अपने गले में लटका लिया और महाराज के साथ यह पद खंड गाने लगा —

पावन हरि का नाम। जप जप० ॥ ध्रु० ॥
महा मधुर है सेवन करलो, खर्च न एक छदाम ॥ १ ॥

कीर्तन के अन्त में महाराज ने नरेंद्र का बार बार आलिंगन करके कहा —" बेटा, तुझे अखंड शान्ति और सदानन्द की प्राप्ति हो! तू ने आज जो अनिर्वचनीय आनन्द मुझे दिया है उसका कहां तक वर्णन करूं!"

महाराज के हृदय का भक्तिसागर आज जोर से उमड़ आया और स्वच्छन्दगति से वह अपनी मर्यादा के बाहर उछलने लगा।

रात के आठ बजने आये। तथापि भक्तिसुख के मद से उन्मत्त हो कर वे उत्तरवाली दालान में बराबर डोल रहे थे। किसी नवयुवक की तरह वे दालान के एक सिरे से दूसरे सिरे तक सरपट के साथ घूम रहे थे। बीच बीच में वे माता से बोलने भी जाते थे। किसी पागल हुए मनुष्य की तरह वे एक बार अचानक जोर से बोल उठे, " तू मेरा क्या करेगी!"

महाराज के उपर्युक्त उद्गार का यही अर्थ तो न होगा कि माता ने जिसे अपनी कृपा की शाल ओढ़ा दी है उसे माया का जादू कैसे लगेगा?

उस दिन रात को सब लोग वहीं रहनेवाले थे। इसलिये श्रीराम कृष्ण के आनन्द की सीमा नहीं रही। यह जान कर, कि आज नरेन्द्र भी यहीं रहेगा, उन्हें बहुत हर्ष हुआ।

रात को भोजन की तैयारी हुई। महाराज की मा भी यहीं रहती थीं। उन्होंने रोटी दाल आदि तैयार करके भोजन के लिए सब को बुलाया। शिष्य लोग दक्षिण की ओर बर्मा रह जाते थे। यहां का प्रायः बहुत सा खर्च ... चलाता था।

महाराज की कोठरी के आसपास और दालान में पलंग बिछे गये थे। नरेंद्र और अन्य शिष्य कोठरी के पूर्व ओर वाले दरवाजे में खड़े हुए बातचीत कर रहे थे।

पण्डित गणपति शर्मा ।

दुःख का विषय है कि आर्यसमाज के सुप्रसिद्ध विद्वान पण्डित गणपतिशर्मा का, गत २७ जून को, ३१ वर्ष की अवस्था में स्वर्गवास हो गया। प्रशंसित पण्डितजी दर्शनों के बहुत अच्छे ज्ञाता थे। व्याकरण और साहित्य का भी आपको असाधारण ज्ञान था। बड़े निर्लोभ, स्पष्टवक्ता सरलस्वभाव और दबंग ब्राह्मण थे।

पण्डितजी राजपुताना बीकानेर-राज्यान्तर्गत 'चूरू' नामक प्रसिद्ध नगर के निवासी थे। आप पाराशरगोत्री, पारीक ब्राह्मण थे। पिता का शुभ नाम श्री पं० भानीराम वैद्य था। पण्डित भानीरामजी ईश्वर के सच्चे भक्त और पक्के आस्तिक ब्राह्मण थे। पिता का यह प्रधान गुण पण्डित गणपतिजी में भी मुख्यतया वर्तमान था। वह ईश्वरभक्त और आस्तिक पहले दर्जे के थे। भगवद्भक्ति उनके व्याख्यानों का मुख्य विषय था। इस विषय पर बोलते हुए वह स्वयं भी गद्गद हो जाया करते थे और श्रोताओं को भी पुलकित और चित्रलिखित सा बना देते थे। नास्तिकता वाद को वह परिहास में भी सहन नहीं कर सकते थे। 'वेदों की अपौरुषेयता' और 'ईश्वरसिद्धि' पर भाषण करते हुए उनकी वाणी में अलौकिक बल का संचार और प्रतिभा में अद्भुत विकास होने लगता था। इन विषयों का प्रतिपादन वह बड़े ही हृदयङ्गम प्रकार से युक्तिप्रमाणद्वारा सफलतापूर्वक किया करते थे। अनेक बार कई प्रसिद्ध साइन्टिस्ट नास्तिकों के साथ इनका शास्त्रार्थ हुआ और विजयी हुए।

व्याख्यानशक्ति इनमें गजब की थी। बड़े बड़े गहन विषयों पर, १४-१५ सहस्र श्रोताओं की उपस्थिति में, चार चार घन्टे तक हृदयहारिणी ओजस्विनी भाषा में, धाराप्रवाह भाषण करना, इनके लिए साधारण बात थी। व्याख्यान में फ़ेल होना वह जानते ही न थे। उत्सवों पर व्याख्यान के लिए इन्हें प्रायः ऐसा अवसर दिया जाता था कि जब सभाभंग होने का समय हो; श्रोता बैठे बैठे और सुनते सुनते उकता चुके हों, और उठने की फ़िक्र में हों, परन्तु ज्यों ही पण्डितजी उठते, सब लोग फिर जम कर बैठ जाते, और घन्टों तक सुनते रहते। पण्डितजी के व्याख्यान के पश्चात् फिर किसी दूसरे वक्ता का रंग जमना ज़रा मुश्किल होता था!

शास्त्रार्थ करने का प्रकार भी इनका बड़ा विचित्र और प्रभावशाली था। भाषण में अपने प्रतिपक्षी के प्रति किसी प्रकार कटुप्रयोग या असद् व्यंग्य न करते थे, किन्तु उस समय भी इनका व्यवहार बड़ा प्रेमपूर्ण और सद्भावभरित रहता था। इस सौजन्य के कारण भिन्नधर्मी प्रबलप्रतिपक्षी भी इनके मित्र बन जाते थे। गत वर्ष महाविद्यालय ज्वालापुर के उत्सव पर, रुड़की के सुप्रसिद्ध पादरी रेवरेन्ड जे० सी० फ्रेन्क साहब बी० ए० से पण्डितजी का शास्त्रार्थ हुआ। पादरी साहब अपना पक्ष समर्थन नहीं कर सके, पर पण्डितजी के मधुरभाषण सद्व्यवहार और पाण्डित्य का पादरी साहब पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि वह उनके गाढ़े मित्र बन गये। पण्डितजी की मृत्यु पर पादरी साहब ने एक अंगरेज़ी पत्र में बड़ा ही शोक, समवेदना और करुणापूर्वक पत्र प्रकाशित कराया है, जिसके प्रत्येक शब्द से प्रेम और प्रतिष्ठा का भाव प्रकट हो रहा है।

शास्त्रार्थ में पण्डितजी अपने प्रतिपक्षी को छल, जाति या निग्रहस्थान द्वारा निगृहीत करने की कभी चेष्टा न करते थे। परन्तु यदि कोई वैतण्डिक विवादी धूर्तता से अपना सिक्का बिठाना चाहता तो फिर उसकी ख़बर भी ऐसी लेते थे कि आयु भर याद करे।

जिन्हें रात दिन व्याख्यान देने और शास्त्रार्थ करने का काम रहता है, ऐसे कई प्रसिद्ध उपदेशकों को भी देखा गया है कि किसी प्रबल प्रतिपक्षी से सामना होने पर लम्बी लम्बी नियमावली निर्माण करके, या पूरी न होनेवाली कोई शर्त लगा कर, शास्त्रार्थ टालने की कोशिश किया करते हैं, परन्तु पण्डितजी उलटा ऐसे शिकार की तलाश में रहते थे। जितने ही प्रबल प्रतिपक्षी का सामना हो, उतना ही उनका उत्साह और जोश बढ़ता था, स्मरणशक्ति तीव्र और प्रतिभा प्रदीप्त हो उठती थी। वास्तव में उनकी गुणगरिमा, अगाध वैदुष्य और प्रत्युत्पन्नमतिता का परिचय ऐसे समय मिलता था जब कि किसी प्रबल प्रतिभट का मुकाबला हो।

एक बार वह काश्मीर (श्रीनगर) में गये हुए थे, दैवात् उन्हीं दिनों वहाँ काशी के सुप्रसिद्ध वावदूक और असाधारण-संस्कृत-भाषणपटु, पादरी "जानसन" साहब भी जा पहुँचे। पादरी साहब ने अपने स्वभावानुसार काश्मीर के पण्डितों को शास्त्रार्थ के लिए ललकारा और 'हिन्दूधर्म की निःसारता" तथा "संस्कृत भाषा की अपूर्णता" का पुराना राग अलापना शुरू कर दिया।

शास्त्रार्थ की नई प्रक्रिया से अनभिज्ञ, काश्मीर के पुराने फ़ैशन के पण्डित लोग, पादरी साहब को परास्त करने का साहस न कर सके, मजबूरी समझ कर चुप हो रहे, इस पर पादरी साहब की और बन आई, और वह महाराजाधिराज काश्मीर (जो उन दिनों श्रीनगर में ही विराजमान थे) के पास पहुँचे कि "या तो अपने पण्डितों से मेरा शास्त्रार्थ कराइए, नहीं मुझे विजयपत्र प्रदान कीजिए"।

परन्तु महाराजसाहब की प्रेरणा से भी पण्डितमण्डल शास्त्रार्थ करने को उद्यत न हुआ और प्रतिज्ञानुसार, महाराजा साहब पादरी को विजयपत्र देने का वचन दे चुके, और इसकी ख़बर पण्डित गणपतिजी को मिली, तब वह काश्मीर के प्रधान पण्डितों से मिले, और कहा कि "मुझे महाराज साहब के पास ले चलिए, आप सब का प्रतिनिधि बन कर मैं पादरी से शास्त्रार्थ करूंगा"—जब पादरी साहब को इसका पता चला तो बहुत सटपटाये, क्योंकि वह पण्डितजी को अच्छी तरह जानते थे, और कहने लगे कि "मेरा शास्त्रार्थ तो काश्मीर के पण्डितों से ठहरा है, इन से नहीं," पर पादरी साहब की यह चालाकी चल न सकी, और उन्हें महाराजा साहब के सभापतित्व में, एक बड़ी भारी सभा के बीच, पण्डितजी से शास्त्रार्थ करना ही पड़ा। पादरी साहब को पण्डितजी ने ऐसा छकाया कि अब तक याद करते हैं। शास्त्रार्थ के समय पा० सा० ऐसे घबराये कि संस्कृत भूल कर हिन्दी बोलने लगे। यह लीला देख कर सभापति और सभ्यजन अपने हास्य को रोक न सके! पादरी जी न अपना पक्ष समर्थन कर सके, न पण्डितजी के प्रश्नों का ही कुछ समाधान कर सके! निदान "विजयपत्र" की जगह विशुद्ध "पराजय" पादरी साहब के पल्ले पड़ी और आशा के विरुद्ध क्षणभर में "विजेता" के स्थान पर "विजित" बन कर साहब बहादुर को काश्मीर से कूच करना पड़ा! सुना है, इस बने बनाये खेल के बिगड़ने का उन्हें अब तक अफ़सोस है। गुणज्ञ महाराजा साहब ने अपने यहां के नियमानुसार बड़े आदर-सत्कार-पूर्वक पण्डितजी को विदा किया, और अनुरोध किया कि कभी फिर भी यहां पधारिए।

बहुत दिनों के बाद, १ बार फिर पण्डितजी काश्मीर जाने का

घनाक्षरी ।

भारत का रत्न भारती का बड़भागी भक्त,
"शंकर" प्रसिद्ध सिद्ध सागर सुमति का ।
मोह-तम-हारी ज्ञान-पूषण प्रतापशील,
दूषण-विहीन शिरोभूषण विरति का ॥
लोकहितकारी पुण्य-कानन विहारी वीर,
धीर धर्मधारी अधिकारी शुभगति का ।
देख लो विचित्र चित्र बाँच लो चरित्र मित्र,
नाम लो पवित्र स्वर्गगामी गणपति का ॥

पण्डित गणपति शर्मा ।

दुःख का विषय है कि आर्यसमाज के सुप्रसिद्ध विद्वान् पण्डित गणपतिशर्मा का, गत २७ जून को, ३६ वर्ष की अवस्था में स्वर्गवास हो गया। प्रशंसित पण्डितजी दर्शनों के बहुत अच्छे ज्ञाता थे। व्याकरण और साहित्य का भी आपको असाधारण ज्ञान था। बड़े निर्लोभ, स्पष्टवक्ता सरलस्वभाव और दबंग ब्राह्मण थे।

पण्डितजी राजपूताना बीकानेर-राज्यान्तर्गत 'चूरू' नामक प्रसिद्ध नगर के निवासी थे। आप पाराशरगोत्री, पारीक ब्राह्मण थे। पिता का शुभ नाम श्री पं० भानीराम वैद्य था। पण्डित भानीरामजी ईश्वर के सच्चे भक्त और पक्के आस्तिक ब्राह्मण थे। पिता का यह [illegible] स्पष्टतया वर्तमान था। यह [illegible] । भगवद्भक्ति उनके व्या- [illegible] बोलते हुए वह स्वयं भी [illegible] को भी पुलकित और चित्र लिखित [illegible] सा बना देते थे। नास्तिकता वाद को [illegible] परिहास में भी सहन नहीं कर सकते थे। 'वेदों की अपौरुषेयता' और 'ईश्वरसिद्धि' पर भाषण करते हुए उनकी वाणी में अलौकिक बल का सञ्चार और प्रतिभा में अद्भुत विकास होने लगता था। इन विषयों का प्रतिपादन वह बड़े ही हृदयङ्गम प्रकार से युक्तिप्रमाणद्वारा सफलतापूर्वक, किया करते थे। अनेक बार [illegible] प्रसिद्ध साइन्टिस्ट नास्तिकों के साथ इनका शास्त्रार्थ हुआ और विजयी हुए।

व्याख्यानशक्ति इनमें गजब की थी। बड़े बड़े गहन विषयों पर, १४- [illegible] सहस्र श्रोताओं की उपस्थिति में, चार चार घण्टे तक हृदयहारिणी ओजस्विनी भाषा में, धाराप्रवाह [illegible] करना, इनके लिए साधारण [illegible]

[illegible] का समय हो, श्रोता बैठे बैठे और सुनते सुनते उकता चुके हों, और उठने की फ़िक्र में हों, परन्तु ज्यों ही पण्डितजी उठते, सब लोग फिर जम कर बैठ जाते, और घण्टों तक सुनते रहते। पण्डितजी के व्याख्यान के पश्चात् फिर किसी दूसरे वक्ता का रंग जमना ज़रा मुश्किल होता था!

शास्त्रार्थ करने का प्रकार भी [illegible] बड़ा विचित्र और प्रभावशाली था। भाषण में अपने प्रतिपक्षी के प्रति किसी प्रकार कटुप्रयोग या असद् [illegible] न करते थे, किन्तु उस समय भी इनका व्यवहार बड़ा प्रेमपूर्ण और सद्भावभरित रहता था। इस सौजन्य के कारण विधर्मी प्रबलप्रतिपक्षी भी इनके मित्र बन जाते थे। गत वर्ष [illegible] महाविद्यालय ज्वालापुर के उत्सव पर, रुड़की के सुप्रसिद्ध पादरी [illegible] जे० सी० फ्रेंक साहब सी० ए० से पण्डितजी का शास्त्रार्थ हुआ। पादरी साहब अपना पक्ष समर्थन नहीं कर सके, पर पण्डितजी के मधुरभाषण सद्व्यवहार और पाण्डित्य का पादरी साहब पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि वह उनके गाढ़ मित्र बन गये। पण्डितजी की मृत्यु पर पादरी साहब ने एक अंगरेज़ी पत्र में बड़ा [illegible] शोक, समवेदना और आदर-पूर्वक एक प्रस्ताव छपाया है, [illegible] प्रत्येक शब्द से प्रेम और श्रद्धा का भाव प्रकट हो रहा है। शास्त्रार्थ में पण्डितजी अपने प्रतिपक्षी को छल, जाति या निग्रहस्थान द्वारा निरुत्तर करने की कभी चेष्टा न करते थे। परन्तु [illegible] [illegible] विचारी प्रशंसा से अपना सिद्ध [illegible] [illegible] फिर उसकी [illegible] भी [illegible] [illegible]।

जिन्हें रात दिन व्याख्यान देने और शास्त्रार्थ करने का काम रहता है, ऐसे कई प्रसिद्ध उपदेशकों को भी देखा गया है कि किसी प्रबल प्रतिपक्षी से सामना होने पर लम्बी लम्बी नियमावली निर्माण करके, या पूरी न होनेवाली कोई शर्त लगा कर, शास्त्रार्थ टालने की कोशिश किया करते हैं, परन्तु पण्डितजी उलटा ऐसे शिकार की तलाश में रहते थे। जितने ही प्रबल प्रतिपक्षी का सामना हो, उतना ही उनका उत्साह और जोश बढ़ता था, स्मरणशक्ति तीव्र और प्रतिभा प्रदीप्त हो उठती थी। वास्तव में उनकी गुणगरिमा, अगाध वैदुष्य और प्रत्युत्पन्नमतिता का परिचय ऐसे समय मिलता था जब कि किसी प्रबल प्रतिभट का मुकाबला हो।

एक बार वह काश्मीर (श्रीनगर) में गये हुए थे, दैवात् उन्हीं दिनों वहाँ काशी के सुप्रसिद्ध वावदूक और असाधारण-संस्कृत-भाषणपटु, पादरी "जानसन" साहब भी जा पहुँचे। पादरी साहब ने अपने स्वभावानुसार काश्मीर के पण्डितों को शास्त्रार्थ के लिए ललकारा और 'हिन्दूधर्म की निःसारता' तथा "संस्कृत भाषा की अपूर्णता" का पुराना राग अलापना शुरू कर दिया। शास्त्रार्थ की नई प्रक्रिया से अनभिज्ञ, काश्मीर के पुराने फ़ैशन के पण्डित लोग, पादरी साहब को परास्त करने का साहस न कर सके, मजबूरी समझ कर चुप हो रहे, इस पर पादरी साहब की और बन आई, और वह महाराजाधिराज काश्मीर (जो उन दिनों श्रीनगर में ही विराजमान थे) के पास पहुँचे कि "या तो अपने पण्डितों से मेरा शास्त्रार्थ कराइए, नहीं मुझे विजयपत्र प्रदान कीजिए"।

परन्तु महाराजसाहब की प्रेरणा से भी पण्डितमण्डल शास्त्रार्थ करने को उद्यत न हुआ और प्रतिज्ञानुसार, महाराजा साहब पादरी को विजयपत्र देने का वचन दे चुके, और इसकी ख़बर पण्डित गणपतिजी को मिली, तब वह काश्मीर के प्रधान पण्डितों से मिले, और कहा कि "मुझे महाराज साहब के पास ले चलिए, आप सब का प्रतिनिधि बन कर मैं पादरी से शास्त्रार्थ करूँगा"—जब पादरी साहब को इसका पता चला तो बहुत घबराये, क्योंकि वह पण्डितजी को अच्छी तरह जानते थे, और कहने लगे कि "मेरा शास्त्रार्थ तो काश्मीर के पण्डितों से ठहरा है, इन से नहीं," पर पादरी साहब की यह चालाकी चल न सकी, और उन्हें महाराजा साहब के सभाभवन में, एक बड़ी भारी सभा के बीच, पण्डितजी से शास्त्रार्थ करना ही पड़ा। पादरी साहब को पण्डितजी ने ऐसा छकाया कि अब तक याद करते होंगे, शास्त्रार्थ के समय पा०सा० ऐसे घबराये कि संस्कृत भूल कर हिन्दी बोलने लगे। यह दशा देख कर सभापति और सभ्यगण हँसने [illegible] को रोक न सके! पादरी जी न अपना पक्ष समर्थन कर सके, न पण्डितजी के प्रश्नों का ही कुछ समाधान कर सके! निदान "विजयपत्र" की जगह [illegible] [illegible] 'पादरी साहब के पल्ले पड़ी और [illegible] के [illegible] [illegible] में "विजय" के स्थान पर 'विजित' बन कर साहब बहादुर को काश्मीर से कूच करना पड़ा! सुना है, इस बार [illegible] [illegible] के [illegible] [illegible] [illegible] है। तदनन्तर महाराजा साहब ने अपने यहाँ के नियमानुसार बड़े आदर-सत्कार-पूर्वक पण्डितजी को विदा किया, और अनुरोध किया कि कभी फिर भी यहाँ पधारिए।

बहुत दिनों के बाद, [illegible] बार फिर पण्डितजी काश्मीर जाकर [illegible]

घनाक्षरी।

भारत का रत्न भारती का बड़भागी भक्त,
"शंकर" प्रसिद्ध सिद्ध सागर सुमति का।
मोह-तम-हारी ज्ञान-पूषण प्रतापशील,
दूषण-विहीन शिरोभूषण विरति का॥
लोकहितकारी पुण्य-कानन विहारी धीर,
धीर धर्मधारी अधिकारी शुभगति का।
देख लो विचित्र चित्र सोच लो चरित्र मित्र,
नाम लो पवित्र स्वर्गगामी गणपति का॥

विचार कर रहे थे, कि उस बड़े काश्मीर (स्वर्गलोक) की महायात्रा ने यह विचार बीच में ही दबा दिया।

पण्डित गणपतिशर्मा, आर्यसमाज के अनुयायी थे, इस लिए उन्हें कभी कभी सनातनी पण्डितों के साथ भी शास्त्रार्थ करना पड़ता था, इस प्रकार के कई शास्त्रार्थ, महाराजाधिराज झालरापाटन, धार और देवास आदि के सभापतित्व में समय समय पर हुए हैं।

पण्डितजी में प्रतिभा और स्मरणशक्ति बड़ी विचित्र थी, पहले से बिना किसी विशेष प्रकार की तयारी किये या नोट लिए, निर्दिष्ट गहन विषयों पर, अव्याहतगति से बहु घन्टों बोल सकते और शास्त्रार्थ कर सकते थे।

स्वभाव के वे बहुत सरल और निरभिमान थे, परन्तु मक्कार और दुरभिमानी जनों के, श्रीभारतेन्दु के शब्दों में, वे " नक़द दामाद " थे। चाहे कोई कितना ही बड़ा आदमी हो, वह यदि उन पर अपनी श्रीमत्ता या लीडरी का प्रभाव डाल कर दबाने की कोशिश करता तो वे बेतरह उसकी खबर लेते थे। प्राचीन भावों के पोषक और अपने विचारों के बड़े दृढ़ थे। समय के प्रवाह में तृण की तरह बहनेवाले, प्राचीनता-विनिन्दक, नई रोशनी के बाबूसम्प्रदाय से उनकी अक्सर नहीं बनती थी। वह एक प्राचीनआदर्श के स्पष्टवक्ता ब्राह्मण थे। आज कल सभासोसाइटियों में काम करनेवाले लोगों को प्राय जिस विसर्प-रोग ने ग्रस रखा है उस 'लीडर बनने की लालसा' और 'शोहरत पसन्दी' के रोग से वह रहित थे। अपने नाम की धूम मचाने और टका कमाने से उन्हें घृणा थी। ग्रामोफोन की तरह पेट में भरे हुए दो एक पेटेन्ट लेक्चर सुनानेवाले कई लेक्चरार देखते देखते थोड़े ही दिनों में हजारों के स्वामी और श्रीमान् बन बैठे, और वह वैसे के वैसे ही बने रहे!

कष्ट उठाया, पर आमरण अपने अयाचित व्रत को न छोड़ा, पर-गुणासहिष्णु, प्रभुताप्रिय, लीडरम्मन्य दुर्जनों के निन्दावाद और मिथ्यापवाद का लक्ष्य बने, पर पाखण्डियों की हाँ में हाँ [illegible] अपने कारोबार को दाग़ नहीं लगाया, दुःख उठाया पर [illegible] के आगे हाथ नहीं फैलाया!

पण्डितजी का चरित्र अपने उदात्त उदाहरण से भर्तृहरि की सूक्ति की सत्यता का प्रमाण दे रहा है —

> " अधिगतपरमार्थान् पण्डितान् मावमंस्था-
> स्तृणमिव लघुलक्ष्मीर्नैव तान् संरुणद्धि।"

खेद है कि एक ऐसा विद्वद्रत्न आर्यजाति से असमय में [illegible] गया, जिसकी जगह को पूरा करनेवाला, मुश्किल से पैदा होगा।

पण्डितजी के कोई सन्तान नहीं। उनकी धर्मपत्नी और [illegible] का देहान्त कई वर्ष हुए, हो गया था। वृद्धा माता और [illegible] भाई, 'चूरू' में हैं।

[illegible]

महाविद्यालयसभा ने पण्डितजी की यादगार में दसहज़ार (१०,[illegible]) रुपये की लागत से एक " गणपतिभवन " [illegible] है और उनकी वृद्धा माता तथा असहाय भाई [illegible] फन्ड खोला है। " गणपतिभवन " के लिए केवल दो मा[illegible] थोड़े से प्रयत्न से तीन (३) सहस्र से अधिक धन एकत्र [illegible] है। आशा है शेष की पूर्ति भी नियत समय तक हो जायगी। पण्डित जी के मित्र और भक्त महाशयों को पण्डितजी की कीर्ति[illegible] इस पुण्यकार्य में सहायक होकर अपनी उदारता और कृ[illegible] पालनता का परिचय देना चाहिए।

पद्मसिंह शर्मा।

मनोपदेश।

१

मनो धारयाशां सदा राघवस्य।
ततोऽन्यं नरं नैव संकीर्तय त्वम्॥
पुराणानि वेदाश्च यं वर्णयन्ति।
नरः श्रूयतामिति तद्वर्णनेन॥

मना! राम को छोड़ आशा न राखे,
कभी मानवों की न तू कीर्ति भाखे।
बखानें जिसे वेद औ शास्त्र भाई!
उसीकी स्तुती से सदा है भलाई।

२

मनो रामभक्तेः पथा यास्यसि त्वम्।
तदा श्रीहरिं प्राप्स्यसे सत्स्वभावात्॥
जनैर्निन्दितं यत्त्वया तन्न कार्यम्।
नरैः श्लाघितं कर्म यत्नेन सेव्यम्॥

मना! भक्ति का मार्ग जो तू चलेगा;
तुझे राम तो शीघ्रता से मिलेगा।
तजे ते सभी कार्य जो निन्दनीय;
करे यत्न से कार्य जो वन्दनीय।

३

मनो दुःखजालं समस्तं विसृज्य।
तथा शोकचिन्ते विनाशैकमूले॥
ततो देहबुद्धिं परित्यज्य दूरात्।
विदेहस्थिर्तो सर्वदा संरमस्व॥

नहीं चित्त में चाहिए दुःख पाना,
मना! सर्वथा शोक चिन्ता न लाना।
तजे देहबुद्धी करे तू विचार,
विदेही बने; मुक्ति भोगे अपार।

४

भवस्यास्य भीत्या मनः किं बिभेषि।
जहीमां धियं धैर्यमेवावलम्ब्य॥
प्रभौ रक्षके रामचन्द्रे शिरस्थे।
भयं किन्नु ते दण्डहस्तात्कृतान्तात्॥

जगत्-भीति से चित्त! क्यों रे डरे तू?
तजे धाक, औ धीर क्यों ना धरे तू?
मिला राम-सा स्वामि है रक्षपाल;
तुझे काल भी भीति क्यों है कराल?

५

मनो मास्तु ते क्लेशदः क्रोधलेशो।
मनो मास्तु कामो विकारस्य मूलम्।
मनो नो मदं दुष्टसंगीकुरु त्वम्।
मनो मास्तु ते मत्सरो मा च दम्भः॥

तजे तू मना! 'क्रोध' है खेदकारी,
न राखे कभी 'काम' है जो विकारी।
'मद' त्यागना चाहिए दुःखदायी,
नहीं 'दम्भ' औ 'मत्सर' ग्राह्य भाई!

एकता पर शरीर का दृष्टान्त

हम को पहिले अपने शरीर से एकता [illegible] पाठ सीखना चाहिए। जैसे जब हम को [illegible] काटने दौड़ता है तब सब से प्रथम कान उ[illegible] पैरों की आहट या उसके भूँकने का शब्द [illegible] कर मन को सचेत कर देते हैं। फिर [illegible] उसके पास या दूर होने का समाचार म[illegible] देती हैं। इन दो दूतोंद्वारा जब मन को [illegible] आकस्मिक विपत्ति का पता लगता है [illegible] वह सामना करने या भाग जाने का नि[illegible] करने लगता है। यदि वह सामना करने [illegible] भला समझता है तो हाथों को आज्ञा देता [illegible] कि वे पत्थर या लकड़ी से कुत्ते को मारें। [illegible] हाथ ऐसा करने में असमर्थ हुए तो मन तब [illegible] पैरों को आज्ञा देता है कि वे इस सारे श[illegible] को लेकर किसी रक्षित स्थान में भागें। [illegible] पैर भागने लगते हैं और हम कुत्ते के क[illegible] से बच जाते हैं। देखिये एक शरीर के र[illegible] लिए वे इंद्रियां कितना उद्योग करती हैं। [illegible] इंद्रियाँ विपत्ति के समय पर अपना क[illegible] छोड़ दें तो शरीर को अवश्य आघात [illegible] सकता है। यही दशा जाति की है। [illegible] शरीर के समान है और हम लोग, [illegible] जाति संगठित हुई है, इंद्रियों के समान [illegible] जाति पर विपत्ति आने पर यदि हम [illegible] उसकी रक्षा न करेंगे तो जाति छिन्न भि[illegible] जायगी। हम सब को उचित है कि इंद्रियों [illegible] समान शरीररूपी जाति की रक्षा करें। [illegible] के किसी भाई के दुख में दुखी और सु[illegible] सुखी होना सीखें। जैसे जब पैर चलते च[illegible] थक जाते हैं तब सब इंद्रियाँ उनके दुःख [illegible] दुखी हो कर उनके साथ विश्राम लेती हैं। [illegible] हम लोगों में जातीयता की बड़ी ज़रूरत [illegible]

मदनलाल नेवटिया, [illegible]

निम्बू इत्यादि फल टिकाऊ कैसे किये जायँ ?

(२)

निम्बू का टिकाऊपन।

निम्बू के टिकाऊपन का प्रश्न बहुत ही कठिन है। क्योंकि 'टिकाऊपन' शब्द केवल निम्बू के एक दो गुणों का दर्शक नहीं है। साधारण लोग समझते हैं कि यदि निम्बू सड़ गये तो वे टिकाऊ नहीं, सड़े कि उठे तो वे टिकाऊ नहीं अथवा तोड़नेवाले की लापरवाही से खराब हुए तो भी वे टिकाऊ नहीं। अतएव लोगों की समझ के अनुसार ही हमें इस विषय का विचार करना चाहिए। ऊपर के इन चार जगहों में निम्बू के खराब होने की सम्भावना है—१ बाग में रहते समय, २ निम्बू जमा रखने की जगह में—गोदाम में या शीतगृह में; ३ आने जाने में-रेल में या अन्य सवारी में और ४ दूसरे गाँव के बाजार में या दुकान में।

१ बाग में निम्बू खराब होने के कारण।

बीमारी जीवाणुओं की बाग में एक बार प्रबलता हुई कि समझ लेना चाहिए कि अब निम्बू का बचना बहुत कठिन है। जीवाणु छोटी अवस्था (Shore) में ही निम्बू पर अपना घर बना लेते हैं। बहुत समय तक तो ये अदृश्य स्वरूप में रहते हैं, दृष्टि में भी नहीं आते। फल एकत्रित कर रखने के बहुत बाद इनका उग्र स्वरूप प्रकट होता है। कभी कभी तो बिलकुल भिन्न निम्बू पर इनकी प्रजोत्पत्ति होती है और क्रमशः परिस्थिति प्राप्त होते ही ये लोग अपने परिवारसहित निम्बू पर धावा उड़ाते हैं और फल वृक्ष में लगे ही लगे खराब होने लगते हैं। समय पर ओषधिसिंचन (Spraying) और अन्य

निम्बू का बाग और निम्बू तोड़ने की रीति-निम्बू हाथ से तोड़ कर पहले थैले में भरते हैं। ये थैले ऐसे अच्छे बने होते हैं कि इनमें रखने जाने से फल खराब नहीं होते। हाथ जब उच्च स्थानपर नहीं पहुँचता तब सीढ़ियों पर चढ़ कर फल तोड़ते हैं, परन्तु वृक्ष पर नहीं चढ़ते। (चि० नं० २)

उपाय करने से इन जीवाणुओं से बचाव हो सकता है। रोग यदि भयंकर स्वरूप न होगा तो उक्त उपाय से अगला नुकसान न होगा। परन्तु सभी जीवाणु एक जाति के नहीं होते; इस लिए उनसे रक्षा करने में भी भिन्न भिन्न उपाय करने पड़ते हैं। केलिफोर्निया में निम्बू ... उन्हें (निम्बू का ... '(Brown rot) ... "पिथियासिस्टिस ... है। इस 'बादामी ... नुकसान हुआ; इस ... न होगा। यह सन्तरा, मीठा निम्बू, निम्बू, इत्यादि फलों पर होता रहता है। ... से अधिक हानि इसके कारण निम्बू ही की होती है। बन्द किए हुए फल बकस में यदि एक भी रोगी फल होता है तो उसके संसर्ग से सारे सन्दूक के फल खराब हो जाते हैं। जहां यह रोग होता है वहां छोटी छोटी मक्खियां भी बहुत रहती हैं। सड़े फलों में वे अपनी प्रजोत्पत्ति (Breeding) करती रहती हैं। मक्खियां दूसरे अच्छे फलों की सन्दूकों में भी यह रोग फैलाया करती हैं। फलों में जब यह रोग बढ़ता है तब उनमें एक विचित्र प्रकार की गंध आने लगती है। मक्खियों के झुंड और यह विचित्र गन्ध, इत्यादि चिन्ह निम्बू के उक्त रोग के दर्शक हैं। इस रोग के अणु (Spores) गीली जमीन पर रहते हैं। वहां से वे उड़ कर वृक्ष की नीचली डालियों के फलों पर आकर धीरे धीरे फैल जाते हैं। निम्बू पर आक्रमण होते ही यह रोग दृष्टि में नहीं आता; पर कुछ काल बाद, (चित्र नं० १ देखो) रंगीन पीले चित्र में जैसा कि दिखलाया गया है, उस पर बादामी दाग देख पड़ने लगता है। रोगदूषित वृक्ष के नीचेवाली जमीन पर बिछौना-घास अथवा अन्य कोई आच्छादन- डालने से इस रोग का फैलाव वृक्ष पर बहुत नहीं होता; क्योंकि जीवाणु आच्छादन के नीचे पड़ जाते हैं और ऊपर नहीं आ सकते। इसके सिवाय, रोगपीड़ित वृक्ष के नीचे की जमीन को अच्छी तरह जोतना इस रोग के रोकने का दूसरा उपाय है। इससे जमीन में जलसंचय होता है और जीवाणु भी नीचे दब जाते हैं। यह दूसरा उपाय बागों के लिए उत्तम है; पर इसकी पूर्ण सफलता जोतनेवाले पर अवलम्बित है। सिर्फ ऊपर ही ऊपर जमीन जोत देने से कुछ बहुत लाभ नहीं हो सकता। इस रोग से बचने का तीसरा उपाय पृथ्वी पर लटकनेवाली डालियों का छेदन करना है। इस उपाय से निम्बू जमीन में रहने वाले जीवाणुओं का स्पर्श नहीं करता। जीवाणु का प्रत्यक्ष स्पर्श हुए बिना फल खराब नहीं होता। चौथा उपाय जमीन पर चना, मटर, इत्यादि प्रकार के अनाजों का बो देना है। इस उपाय से निम्बू के बगीचे में दूसरी लाभदायक फसल पैदा होगी और रोग से भी कुछ बचाव होगा। ये सब उपाय केलिफोर्निया में किये गये हैं, और अनुभव हो जाने पर इनकी उपयुक्तता के विषय में कोई शंका नहीं रही है। भारत के निम्बू के बाग का रोग कदाचित् दूसरा होगा; तथापि अमेरिका के इस अनुभव से हमारे देशभाई उचित लाभ उठा सकते हैं।

एक ही वृक्ष के भिन्न भिन्न निम्बुओं का टिकाऊपन भी भिन्न भिन्न होता है। उत्तम, सतेज, और अच्छे आकार के निम्बू का टिकाऊपन

केलिफोर्निया में निम्बू धोने का यंत्र-और कैनवास के टेबल पर निम्बुओं की छाट करके भिन्न भिन्न प्रकार के निम्बू भिन्न भिन्न सन्दूकों में रखने की रीति।
(चि० नं० ४)

भी अधिक रहता है और भद्दे, छोटे तथा सूर्यप्रकाश में बढ़े हुए या पके हुए निम्बू टिकाऊपन में भी खराब होते हैं। यह केलिफोर्निया के लोगों का मत है। थोड़े ही अनुभव से उन्होंने यह मत बना लिया है, परन्तु इसको पुष्टि देनेवाला सन्तोषप्रद प्रमाण अभी तक किसीने नहीं प्रकट किया। उपर्युक्त मत में यदि कोई सत्यांश है तो वह विभेदीकरण के नियम के कारण है। इस दृष्टि से निम्बू का टिकाऊपन, निम्बू की घटना (Structure) और रचना (Texture) पर अवलम्बित है; अतएव इन दोनों बातों का भिन्न भिन्न विचार करना ठीक होगा।

(१) निम्बू की छाल की घटना:—निम्बू की छाल, (त्वचा अथवा ऊपर का आवरण Rind) निम्बू के टिकाऊपन की दृष्टि से महत्व की है। यह सभी को मालूम है कि निम्बू की साधारण कच्ची अवस्था में इस आवरण का रंग हरा और पक्की अवस्था में पीला होता है। इसके सिवाय यह भी सबको मालूम होगा कि छाल के दाबने पर उससे निम्बू का तेल और अन्य द्रव पदार्थ बाहर निकल पड़ते हैं। इस तेल से निम्बू के टिकाऊपन में एक प्रकार की सहायता मिलती है। छाल के भीतरी ओर स्पंज की तरह मुलायम परन्तु सफेद रंग का जाल फैला हुआ देखा जाता है। यह जाल कुछ बहुत रोगप्रतिबन्धक नहीं होता, परन्तु छाल के ऊपर का पृष्ठभाग बहुत कुछ रोगप्रतिबन्धक है, छाल का बिलकुल बारीक टुकड़ा यदि छुरी से काट कर देखा जाय तो उसमें हरे अथवा पीले रासायनिक द्रव्य और तेल के बिन्दु पाये जायँगे। निम्बू की छाल के भीतरवाले तैलबिन्दुओं और रासायनिक द्रव्यों के कारण भीतर पानी का प्रवेश नहीं होता। परमेश्वर ने निम्बू की छाल में ऐसी

विचार कर रहे थे, कि उस बड़े काश्मीर
यात्रा से यह विचार बीच में ही रहा ...
पण्डित गणपतिशर्मा, आर्यसमाज ...
उन्हें कभी कभी सनातनी पण्डितों के सा...
था, इस प्रकार के कई शास्त्रार्थ, मद्रा...
धार और देवास आदि के सभापतित्व में

पण्डितजी में प्रतिभा और स्मरणशक्ति...
से बिना किसी विशेष प्रकार की तय...
निर्दिष्ट गहन विषयों पर, अव्याहतगति ...
और शास्त्रार्थ कर सकते थे।

स्वभाव के थे बहुत सरल और निरभि...
दुरभिमानी जनों के, श्रीभारतेन्दु के शब्द...
थे। चाहे कोई कितना ही बड़ा आदमी ह...
श्रीमत्ता या लीडरी का प्रभाव डाल कर
तो वे बेतरह उसकी खबर लेते थे। प्राची...
अपने विचारों के बड़े दृढ़ थे। समय के
बहनेवाले, प्राचीनता विनिन्दक, नई रो...
उनकी अक्सर नहीं बनती थी। वह ए...
वक्ता ब्राह्मण थे। आज कल सभासोसा...
लोगों को प्राय जिस विसर्प-रोग ने ग्रस...
की लालसा ' और ' शोहरत पसन्दी ' के
अपने नाम की धूम मचाने और डंका ...
ग्रामोफोन की तरह पेट में भरे हुए रटे एव...
कई लेक्चरार देखते देखते थोड़े ही दिनों...
श्रीमान् बन बैठे, और वह वैसे के वैसे ही...
कष्ट उठाया, पर आमरण अपने अयाचि...
गुणासहिष्णु, प्रभुताप्रिय, लीडरम्मन्य दु...

मनो...

१

मनो धारयाशां सदा राघवस्य।
ततोऽन्यं नरं नैव संकीर्तय त्वम्।
पुराणानि वेदाश्च यं वर्णयन्ति।
नरः श्रूयतामेति तद्वर्णनेन॥

२

मनो रामभक्तेः पथा यास्यसि त्वम्।
तदा श्रीहरिं प्राप्स्यसे सत्स्वभावा...
जनैर्निन्दितं यत्त्वया तन्न कार्यम्।
नरः श्लाघितं कर्म यत्नेन सेव्यम्

३

मनो दुःखजाले समस्तं विमृज्य।
तथा शोकचिन्तां विनाशैकमूले।
ततो देहबुद्धिं परित्यज्य दूरात्।
विदेहस्थितौ सर्वदा संरमस्व॥

४

भवस्यास्य भीत्या मनः किं बिभेषि।
इहैमां धियं धैर्यमेवावलम्ब्य॥
प्रभौ रक्षके रामचन्द्रे स्थिरस्ये।
भयं किन्नु ते दण्डहस्तान्कृतान्तात्

५

मनो मास्तु ते रे मदः कोपलेशो।
मनो मास्तु कामो विकारस्य मूलम्
... त्वम्।

नि॰ टि॰ चि॰ सं॰ १
' बादामी सड़न ' नामक रोग से दूषित होनेवाला निम्बू-निम्बू के ...
उसके रंग पर ध्यान देने से उपर्युक्त नाम सार्थ जान पड़ता है।

नि॰ टि॰ चि॰ स॰ २
(अ)
A इस निम्बू-डाल में लगे हुए निम्बू का इसी चित्र की तरह ...
निम्बू का दूषितकरण नहीं हुआ; और इस कारण इसके ...
से किये हुए आधे निम्बू के चित्र से मालूम हो
(ब)
B दूषितकरण की ... से बचाया हुआ ...
रहा है। निम्बू चिकना और ...
... का अनुमान ...

समय बहुत ही सावधानी रखनी पड़ती है। आवश्यकता से अधिक वाष्पसमय अथवा अधिक उष्णता शुद्धीकरण के गृह में यदि दी जाती है तो निम्बू क्रमशः नरम होकर सड़ने लगते हैं। संचयगृह में शुद्धीकरण के समय निम्बू खराब होने का जो डर है वह इसी कारण है। यह जानना कि निम्बुओं का शुद्धीकरण उत्तम हुआ या नहीं, कुछ कठिन नहीं है। (चि० नं० 3 B पीला निम्बू देखिये।) उत्तम शुद्धीकरण किये हुए निम्बुओं के ऊपर के डंठल, जो तोड़ते समय रख लिये जाते हैं, निम्बू के ऊपर की त्वचा में खूब चिपके रहते हैं। और यदि निम्बू के शुद्धीकरण में विशेष सावधानी नहीं रखी जाती तो ये डंठल अशक्त होकर अपनी जगह से गिरने लगते हैं और ऐसे निम्बू टिकाऊपन में भी हलके दरजे के हो जाते हैं। भारतवर्ष में शुद्धीकरण के लिए यदि उपर्युक्त रीतियों में से रीति उपयोगी हो सकती है तो वह तीसरी (घर की) रीति हो सकती है। सारसी महाशय यदि ऊपर की सूचना के अनु- कुछ प्रयोग कर देखेंगे तो भारतवर्ष में उन्हें भी सब प्रकार योग्य कोई शुद्धीकरण की रीति मिल सकती है और उससे रे देश के निम्बू के व्यापार में बहुत उन्नति हो सकती है।

निम्बू का शीतगृह में रखना (Storage) (चित्र नं० ८ देखिये) – ों का शुद्धीकरण हो चुकने पर, यदि बाजारभाव ठीक हो तो सन्दूकों में बन्द करके शीघ्र बेच डालना ही सर्वोत्तम मार्ग है। तु बहुधा योग्य कीमत आने तक अथवा अन्य कारणों से नि ओं को रख छोड़ने का मौका आ जाता है। यह रख छोड़ने का सावधानी से ही करना उचित है; शुद्धीकरण से निम्बुओं टिकाऊपन बढ़ जाने से यह न समझ लेना चाहिए कि वे अब ों के सब रोगों से बच । फल खराब होने के ण जो बाहरी बाग की स्था में होते हैं वे शीत- में भी होते हैं। शीत- यदि गन्दे, गीले और नाकारक जीवाणुओं से हुए होते हैं तो उनमें रक्षित रखे हुए निम्बू भी वश्य ही खराब हो जाते । इस लिए शीतगृह च्छे, हवादार और सब ार से सुविधाजनक ने चाहिए।

मुख्य दो प्रकार से फल ना कर रखे जाते हैं। , स्वच्छ और सूखे रखाने में और दूसरे त्रिम रीति से तैयार किये ए शीतगृह में। भारतवर्ष ं पर कुछ काल से घरों ं नीचे तहखाने बनाने का वाज बहुत ही कम हो गया है, परन्तु अमेरिका में यह रवाज अधिक बढ़ रहा है। प्रायः बहुत से अमेरिकन घरों में तह- खाने पाये जाते हैं। तहखाने की जगह सदा ठंडी रहती है और इस कारण वहां रखे हुए फल, पकाया हुआ अन्न, इत्यादि पदार्थ अधिक दिन तक अच्छे रह सकते हैं। खराब होनेवाली वस्तुएं अधिक दिन रखने के लिए यह उपाय कम खर्चवाला है। अमेरिका में बर्फ के योग से भीतर कृत्रिम ठंडक उत्पन्न करके खराब होने वाली वस्तुएं अधिक काल तक अच्छी दशा में रखने के लिए एक प्रकार की सन्दूकें खास तौर पर तैयार रहती हैं। ये सन्दूकें अधिक मूल्य की होती हैं, अतएव गरीब लोग इन्हें मोल नहीं ले सकते। घर में यदि तहखाना नहीं होता और पदार्थ ठंडक में रखने की सन्दूक लेने का सामर्थ्य भी यदि नहीं होता तो अमेरिकन लोग [illegible] में एक गड्ढा खोद कर एक ऐसा कृत्रिम तहखाना बना लेते हैं कि जिसके भीतर सामान आदि रखा जा सकता है। वे लोग [illegible] के पदार्थ उसी गड्ढे में अच्छी तरह रख देते हैं। भारत- वर्ष में भी ऐसा ही कोई न कोई प्रबन्ध किया जा सकता है।

अमेरिका में छोटे बड़े शहरों में भी शीतगृह बने हुए हैं। इन शीत- गृहों में ऐसा प्रबन्ध रहता है कि भिन्न भिन्न वस्तुओं को खराब न होने देने के लिए जितनी सर्दी की जरूरत होती है उतनी ही [illegible] विशिष्ट जगह में रह सकती है। शीतगृह में सर्दी उत्पन्न करने के लिए भिन्न भिन्न मार्ग हैं। बर्फ के योग से अथवा [illegible] अमेरिका की रीति से घर में कृत्रिम सर्दी उत्पन्न की जाती है। शीतगृह में भिन्न भिन्न कोठरियां बना कर भीतर [illegible] [illegible] जाती है। ऐसे शीतगृह बनाने में खर्च ज्यादा पड़ता है,

परन्तु चूंकि उनकी उपयुक्तता अमेरिकन लोगों को मालूम है; इस लिए इस व्यवसाय में शीतगृहवालों को सहसा हानि नहीं होती। शीतगृह नियमपूर्वक बनाये जाते हैं, इस लिए उनमें फल भी अधिक दिन तक अच्छे बने रहते हैं। संतरों को अधिक दिन रखने के लिए ३६° फा० उष्णता की जरूरत होती है और निम्बू रखने के लिए ३४° से ४०° तक उष्णता चाहिए। साधारण तौर पर यह नियम समझ लेने पर, कि पानी जमा देने भर के लिए जहां सर्दी हो वहां निम्बू रखना अच्छा है, कोई धोखा नहीं हो सकता, क्योंकि ३४ फा० उष्णता उस सर्दी से बहुत अधिक नहीं होती। कृत्रिम सर्दी से निम्बू अधिक दिन टिकाना बहुत ही सुलभ है। और हमारे देश के लोग यदि निम्बू इस रीति से रखेंगे तो शुद्धीकरण के बिना भी वे इससे अधिक टिकेंगे। गड्ढा खोद कर तहखाना बना लेना किसी भी उद्योगी मनुष्य के लिए बहुत कठिन नहीं होगा। तथा थोड़े से अनुभव से ही चाहे जितनी सर्दी सदा तहखाने में रखना भी बहुत कठिन नहीं होगा।

बिक्री के लिए निम्बुओं को सन्दूक में रखना (Packing) :– बाजार में बिक्री के लिए जो निम्बू भेजना हो वे पत्थर या मिट्टी की तरह चाहे जिसमें भर कर न भेज देना चाहिए। (चित्र नं० ६ देखिये) इस प्रकार की लापरवाही से निम्बुओं की जो हानि होती है उसका जिक्र ऊपर हो चुका है। यह जानबूझ कर भी जो लोग खड़खड़ी डालियों या बोरों में भर कर निम्बू बिक्री के लिए भेजते हैं वे मानों जानबूझ कर सड़ाते हैं। अच्छी तरह सन्दूकों में भर कर निम्बू बेचने का यह एक कारण हुआ। दूसरा कारण यह है कि ग्राहक जब देखते हैं कि स्वयं मालिक या दूकान- दार ही अपने माल को सावधानी से नहीं रखता तब वे लोग भी उसकी कीमत हलकी समझ लेते हैं। और दूकानदार जब किसी पदार्थ को खूब पोंछ पाछ कर किसी सुशो- भित आच्छादन में बेचने के लिए रखता है, तब ग्राहक भी समझते हैं कि यह माल कीमती होना चाहिए–अन्यथा दूकान- दार इसके लिए इतना खर्च और कष्ट क्यों सहता? इसके सिवाय एक बात और भी है, कि पदार्थों का अच्छी तरह से बांधना या रखना एक प्रकार का विज्ञापन भी है। इटली के निम्बू परदेश के व्यापार में बहुत ही प्रसिद्ध हो गये हैं। इटली के निम्बु- ओं का टिकाऊपन सब को मालूम हो गया है, पर इससे यह न समझना चाहिए कि इटली के सभी निम्बू उत्तम और टिकाऊ हैं। इटली से जो निम्बू परदेश को भेजे जाते हैं वे उत्तम, ताजे काल के [illegible] हुए, अच्छे छने हुए और सावधानी से रखे हुए होते हैं। इसी से वे अधिक टिकाऊपन प्राप्त करते हैं। [illegible] हुए, अधिक पके हुए, अथवा [illegible] तरह से खराब होनेवाले निम्बू इटली से सहसा परदेश को भेजे ही नहीं जाते। वहां के लोग ऐसे निम्बुओं से अपने ही देश में सिट्रिक एसिड (Citric Acid), तेल, छिलका, इत्यादि बना कर परदेश को भेजा करते हैं। इटली के लोगों की अपेक्षा कैलिफोर्निया के लोग निम्बुओं के व्यापार में अधिक सावधानी रखते हैं। वे लोग सन्दूकों में भी निम्बुओं को बहुत उत्तम रीति से रखते हैं।

सन्दूकों में फल रखते समय इन बातों पर अवश्य ध्यान रखना चाहिए —

(१) फलों का [illegible] दोनों से [illegible] न होना, (२) फलों को इस [illegible] रखना चाहिए, कि वे [illegible] रहें और उनकी [illegible] अधिक [illegible], (३) सन्दूक के फलों के [illegible], रंग, जाति, [illegible] इत्यादि [illegible] की [illegible] (४) सन्दूक में फल इस प्रकार से रखना चाहिए कि वे [illegible] में [illegible] पर [illegible] हो [illegible]। वे [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] (५) [illegible] रखना चाहिए कि सन्दूक में [illegible] ऊपर से [illegible] बन्द कर सकें (६) सन्दूक पर [illegible] रखना चाहिए और उस पर [illegible] [illegible]

फल भर कर पेटी पर ढकन बन्द करने का यन्त्र—यह यन्त्र [illegible] और हाथ से चलाया जा सकता है। (चि० नं० ११)

शेक्सपियर के काव्य।

(श्रीयुत हरि नारायण आपटे.)

शेक्सपियर के समय में लोग यह बिलकुल ही न समझते थे कि नाटक भी साहित्य का एक भाग है। उस समय लोग सिर्फ इतना ही समझते थे कि नट का व्यवसाय बहुत हलके दर्जे का है और नाटककार का व्यवसाय उससे कुछ ऊंचे दर्जे का है। आक्सफर्ड युनिवर्सिटी में बाडलियन लायब्रेरी नामक एक पुस्तकालय है। जिन बाडले साहब के नाम से यह पुस्तकालय प्रसिद्ध है उन्होंने सोलहवीं शताब्दी में ही उस युनिवर्सिटी-लायब्रेरी को पुस्तकों का क्रम लगाया। उस समय जो नियम उसने बनाये उनमें एक यह नियम भी था कि "नाटक इत्यादि की निरुपयोगी और वाहियात ... देना चाहिए।" जो पुस्तकें ... निकाल डाला। शेक्सपियर ... परन्तु कवियों में किसीने ... शेक्सपियर के नाटकों ने उत्पन्न किया कि नाटक साहित्य का एक महत्व का अंग है ... 'काव्य' इस दिव्य शब्द में उसका भी अन्तर्भाव करना चाहिए। चूंकि नाटकों के विषय में लोगों की समझ उस समय उपर्युक्त प्रकार की थी, इस लिए प्रतिभा-सम्पन्न लोग काव्य लिखने में अपनी प्रतिभा का उपयोग करते थे। और नाटक लिखने में कुछ लोगों की सिर्फ इसी लिए प्रवृत्ति थी कि नाटक-कम्पनियों से धन की प्राप्ति रहती थी। शेक्सपियर की भी पहले काव्य ही लिखने की ओर प्रवृत्ति थी। उसका पहला ग्रन्थ "Venus and Adonis" खंडकाव्य ही है। यह काव्य उसने सन् १५९३ में प्रकाशित किया। परन्तु उसने कई वर्ष पूर्व इसे लिखा था। इस काव्य को लिख कर उसने एक ओर रख दिया और फिर बहुत से नाटक लिखे तथा रंगभूमि पर उनका प्रयोग भी कराया। परन्तु नाटककार के ... कीर्ति होने की अपेक्षा 'कवि' के नाते से अपनी कीर्ति होने की उसे स्वाभाविक ही उत्कट इच्छा थी; इस कारण उसने अपनी युवावस्था में लिखा हुआ काव्य ठीकठाक करके छपा डाला। उसके बाद सन् १५९४० में ही "Rape of Lucrece" नामक काव्य प्रकाशित हुआ।

वीनस

उसके बाद सन् १६०० में उसने अपने सानेटस्स "चौदहचरणी गीत" प्रकाशित किये।

बालपन के बाद ज्यों ही युवावस्था की छाया पड़ने लगती है त्यों ही मनुष्य का हृदय प्रेममय और काव्यमय होता है, यह अनुभव किस सहृदय को नहीं है? शेक्सपियर ने अपने एक नाटक (As you like it) में इस प्रकार का सुन्दर रूपक बांधा है कि मनुष्य का जीवन-क्रम मानो एक नाटक ही है, उसके भाग मानो सात अंक हैं। उसमें युवावस्था के विषय में ये पंक्तियां हैं —

> And then the lover,
> Sighing like a furnace, with a woeful ballad
> Made to his mistress eyebrow.
> फिर प्रेमी धौंकनी सम लेकर लम्बी सांस।
> गाता है लीला दुखद निज सुभ्रू की खास॥

शेक्सपियर ने अपना "Venus and Adonis" वीनस और अडोनिस नामक काव्य अपनी बिलकुल युवावस्था ही में लिखा था। हमने ऊपर जो यह लिखा है कि उसने यह काव्य सन् १५९३ में, अर्थात् कुछ नाटक प्रकाशित करने के बाद प्रकाशित किया, इसका प्रमाण उस काव्य की अर्पणपत्रिका ही में है। उस अर्पणपत्रिका में उसने कहा है कि, यह काव्य हमारी कल्पनाशक्ति का पहला फल है। यह काव्य उसने अपने आश्रयदाता अर्ल आफ साउथाम्पटन को अर्पण किया। अर्पणपत्रिका में उसने विनय से कहा है, "मैं नहीं कह सकता कि आपके समान महापुरुष को जो मैं ये अपनी क्षुद्र पंक्तियां अर्पण करता हूं उनसे आपको कितना क्रोध आवेगा और आपके समान समर्थ पुरुष को ऐसी निस्सत्व कृति जो मैं अर्पण करने बैठा हूं उसके लिए लोग न जाने कितना हमें दोष देंगे। परन्तु आपको यदि मेरी इस कृति के पढ़ने से कुछ आनन्द होगा तो मैं अपने को धन्य समझूंगा। मैं अपने सम्पूर्ण अवकाश के समय में किसी धीर गम्भीर विषय पर कोई दूसरा काव्य लिख कर आपको समर्पण करने की प्रतिज्ञा करूंगा। परन्तु यदि यह मेरी कल्पनाशक्ति का पहला फल बिलकुल ही निरुपयोगी ठहरेगा तो मुझे खेद होगा कि आपके समान महाशय को मैंने यह व्यर्थ ही अर्पण किया; और फिर अपने कल्पनाक्षेत्र में फल उत्पन्न करने के झगड़े में मैं बिलकुल ही न पड़ूंगा क्योंकि इसका कौन ठीक है कि वे फल इससे भी अधिक निरुपयोगी न निकलेंगे?"

स्वयं शेक्सपियर के इस लेख से तो यह स्पष्ट सिद्ध होता ही है कि "वीनस और अडोनिस" नामक उसका पहला काव्य उसकी सब से पहली कृति है। किन्तु यह काव्य पढ़नेवाले प्रत्येक रसिक को उसके पठन से ही यह स्पष्ट मालूम हो जाता है कि यह कवि की खास तरुणावस्था की पहली कृति है। जो मूल अंगरेजी पढ़ कर उस काव्य का आस्वाद लेने का सामर्थ्य रखते हों उन्हें यह

अवश्य पढ़ना चाहिए। उसमें उन्हें यह स्पष्ट देख पड़ेगा कि शेक्सपियर की प्रतिभा का स्वरूप बिलकुल ही पहले कैसा था। उसके इस खण्डकाव्य से यह अच्छी तरह मालूम हो जाता है कि उसका सृष्टिनिरीक्षण कितना सूक्ष्म तथा विस्तृत था, उसकी वर्णनशक्ति कैसी विलक्षण थी, उसका भाषाप्रभुत्व कितना प्रगाढ़ था और मानवी मनोविकारों का उसका ज्ञान कितना था। यह काव्य शृंगार-रसप्रधान है। उसमें कहीं कहीं इस रस का अत्यन्त उत्तान स्वरूप देख पड़ता है। परन्तु यह उस काल की अभिरुचि का परिणाम है। आज कल जिन वर्णनों और उपमाओं आदि का सिर्फ उल्लेख भी ... समाप, मेरा और ... थी। तथापि इस ... समय भी लोग ... हंसि और स्त्रि-... यां बहुधा देखी जाती थीं। अस्तु। अब हम इस काव्य की कथा का विचार करते हैं।

एक दिन ऐसे समय में, जब सूर्यनारायण बहुत ऊपर आगये हैं और प्रातःकाल की कोमलता नहीं रही है, तरुण अडोनिस शिकार के लिए वन को गया। अडोनिस का शिकार पर बहुत प्रेम था, परन्तु स्त्रीविषयक प्रेम का यह बहुत तिरस्कार करता था। उस उमर की ठीक अठारह वर्ष की थी और रूप में वह बहुत ही सुन्दर था। वह एक पानीदार घोड़े पर सवार होकर बड़े ठाम से जा रहा था, इस कारण उसकी सुन्दरता और भी भिन्न उठी थी। उस समय आकाश में सवार करनेवाली वीनस नामक अप्सरा उसे देख पूर्ण

शेक्सपियर के काव्य।

(श्रीयुत हरि नारायण आपटे)

शेक्सपियर के समय में लोग यह बिलकुल ही न समझते थे कि नाटक भी साहित्य का एक भाग है। उस समय लोग सिर्फ इतना ही समझते थे कि नट का व्यवसाय बहुत हलके दर्जे का है और नाटककार का व्यवसाय उससे कुछ ऊंचे दर्जे का है। आक्सफर्ड युनिवर्सिटी में बाडलियन लायब्रेरी नामक एक पुस्तकालय है। जिन बाडले साहब के नाम से यह पुस्तकालय प्रसिद्ध है उन्होंने सोलहवीं शताब्दी में ही उस युनिवर्सिटी-लायब्रेरी की पुस्तकों का क्रम लगाया। उस समय जो नियम उसने बनाये उनमें एक यह नियम भी था कि "नाटक इत्यादि की निरुपयोगी और वाहियात पुस्तकें लायब्रेरी में बिलकुल ही न आने देना चाहिए!" जो पुस्तकें थीं उन्हें उस साहब ने रद्दी समझ कर निकाल डाला। शेक्सपियर के पहले नाटककार कुछ कम नहीं हुए; परन्तु कवियों में किसीने उनकी गणना ही नहीं की। यह विचार शेक्सपियर के नाटकों ने ही उत्पन्न किया कि नाटक साहित्य का एक महत्व का अंग है और 'काव्य' इस दिव्य शब्द में उसका भी अन्तर्भाव करना चाहिए।

चूंकि नाटकों के विषय में लोगों की समझ उस समय उपर्युक्त प्रकार की थी, इस लिए प्रतिभा-सम्पन्न लोग काव्य लिखने में अपनी प्रतिभा का उपयोग करते थे। और नाटक लिखने में कुछ लोगों की सिर्फ इसी लिए प्रवृत्ति थी कि नाटक-कापनियों से धन की प्राप्ति रहती थी। शेक्सपियर की भी पहले काव्य ही लिखने की ओर प्रवृत्ति थी। उसका पहला ग्रन्थ "Venus and Adonis" खंडकाव्य ही है। यह काव्य उसने सन् १५९३ में प्रकाशित किया। परन्तु उसने कई वर्ष पूर्व इसे लिखा था। इस काव्य को लिख कर उसने एक ओर रख दिया और फिर बहुत से नाटक लिखे तथा रंगभूमि पर उनका प्रयोग भी कराया। परन्तु नाटककार के [नाते] अपनी कीर्ति होने की अपेक्षा 'कवि' के नाते से अपनी कीर्ति होने की उसे स्वाभाविक ही उत्कट इच्छा थी, इस कारण उसने अपनी युवावस्था में लिखा हुआ काव्य टीकटाक करके छपा डाला। उसके बाद सन् १५९४० में ही "Rape of Lucrece" नामक काव्य प्रकाशित हुआ।

वीनस

उसके बाद सन् १६०० में उसने अपने सानेटस "चौदहचरणी गीत" प्रकाशित किये।

बालपन के बाद ज्यों ही युवावस्था की छाया पड़ने लगती है त्यों ही मनुष्य का हृदय प्रेममय और काव्यमय होता है, यह अनुभव किस सहृदय को नहीं है? शेक्सपियर ने अपने एक नाटक (As you like it) में इस प्रकार का सुन्दर रूपक बांधा है कि मनुष्य का जीवन-क्रम मानो एक नाटक ही है, उसके भाग मानो सात अंक हैं। उसमें युवावस्था के विषय में ये पंक्तियां हैं —

> And then the lover,
> Sighing like a furnace, with a woful ballad
> Made to his mistress eyebrow.
> फिर प्रेमी धौंकनी सम लेकर लम्बी सांस।
> गाता है लीला दुखद निज सुभ्रू की खास॥

शेक्सपियर ने अपना "Venus and Adonis" वीनस और एडोनिस नामक काव्य अपनी बिलकुल युवावस्था ही में लिखा था हमने ऊपर जो यह लिखा है कि उसने यह काव्य सन् १५९३ में, अर्थात् कुछ नाटक प्रकाशित करने के बाद प्रकाशित किया, इसका प्रमाण उस काव्य की अर्पणपत्रिका ही में है। उस अर्पणपत्रिका में उसने कहा है कि, यह काव्य हमारी कल्पनाशक्ति का पहला फल है। यह काव्य उसने अपने आश्रयदाता अर्ल आफ साउथाम्पटन को अर्पण किया। अर्पणपत्रिका में उसने विनय से कहा है, "मैं नहीं कह सकता कि आपके समान महापुरुष को जो मैं ये अपनी क्षुद्र पंक्तियां अर्पण करता हूं उनसे आपको कितना क्रोध आवेगा और आपके समान समर्थ पुरुष को ऐसी निस्सत्व कृति जो मैं अर्पण करने बैठा हूं उसके लिए लोग न जाने कित[ना] हमे दोष देंगे। परन्तु आपको यदि मेरी इस कृति के पढ़ने से [कु]छ आनन्द होगा तो मैं अपने को धन्य समझूंगा। मैं अपने सम[य] अवकाश के समय में किसी और गम्भीर विषय पर कोई दूस[रा] काव्य लिख कर आपको समर्पण करने की प्रतिज्ञा करूंगा। पर[न्तु] यदि यह मेरी कल्पनाशक्ति का पहला फल बिलकुल ही निरुपयोग[ी] ठहरेगा तो मुझे खेद होगा कि आपके समान महाशय को मैं[ने] यह व्यर्थ ही अर्पण किया; और फिर अपने कल्पनाक्षेत्र में फल उत्प[न्न] करने के झगड़े में मैं बिलकुल ही न पड़ूंगा क्योंकि इसका क्या ठीक है कि वे फल इससे भी अधिक निरुपयोगी न निकलेंगे?"

स्वयं शेक्सपियर के इस लेख से तो यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि "वीनस और अडोनिस" नामक उसका पहला काव्य उसकी सब से पहली कृति है। किन्तु यह काव्य पढ़नेवाले प्रत्येक रसिक को उसके पठन से ही यह स्पष्ट मालूम हो जाता है कि यह कवि की खास तरुणावस्था की पहली कृति है। जो मूल अंगरेजी पढ़ कर उस काव्य का आस्वाद लेने का सामर्थ्य रखते हों उन्हें वह

अवश्य पढ़ना चाहिए। उसमें उन्हें यह स्पष्ट देख पड़ेगा कि शेक्सपियर की प्रतिभा का स्वरूप बिलकुल ही पहले कैसा था। उसके इस खण्डकाव्य से यह अच्छी तरह मालूम हो जाता है कि उसका सृष्टिनिरीक्षण कितना सूक्ष्म तथा विस्तृत था, उसकी वर्णनशक्ति कैसी विलक्षण थी, उसका भाषाप्रभुत्व कितना प्रगाढ़ था और मानवी मनोविकारों का उसका ज्ञान कितना था। यह काव्य शृंगार-रसप्रधान है। उसमें कहीं कहीं इस रस का अत्यन्त उत्तान स्वरूप देख पड़ता है। परन्तु यह उस काल की अभिरुचि का परिणाम है। आज कल जिन वर्णनों और उपमाओं आदि का सिर्फ उल्लेख भी अत्यन्त अप्रशस्त माना जायगा वैसे वर्णन, वैसी उपमाएं, खेल और कोटियां उस समय शिष्टसमाज में भी चल जाती थीं। तथापि हम यहां पर इतना कहे बिना नहीं रह सकते कि उस समय भी लोग कई पद्यों के कारण इस काव्य को बुरा कहते थे। रंगीले और छैल-छबीले स्त्रीपुरुषों के हाथ में ही इस काव्य की प्रतियां बहुधा देखी जाती थीं। अस्तु। अब हम इस काव्य की कथा का विचार करते हैं।

एक दिन ऐसे समय में, जब सूर्यनारायण बहुत ऊपर आकाश में और प्रातःकाल की कोमलता नहीं रही है, तरुण अडोनिस शिकार के लिए वन को गया। अडोनिस का शिकार पर बहुत प्रेम था, परन्तु स्त्रीविषयक प्रेम का वह बहुत तिरस्कार करता था। उस समय उसकी ठीक अठारह वर्ष की थी और रूप में वह बहुत ही सुन्दर था। वह एक पानीदार घोड़े पर सवार होकर वन में आ रहा था, इस कारण उसकी सुन्दरता और भी खिल उठी थी। उस समय आकाश में संचार करनेवाली वीनस नामक अप्सरा उसे देख पड़ी

शेक्सपियर के काव्य।

(श्रीयुत हरि नारायण आपटे)

शेक्सपियर के समय में लोग यह बिलकुल ही न समझते थे कि नाटक भी साहित्य का एक भाग है। उस समय लोग सिर्फ इतना ही समझते थे कि नट का व्यवसाय बहुत हलके दर्जे का है और नाटककार का व्यवसाय उससे कुछ ऊंचे दर्जे का है। आक्सफर्ड युनिवर्सिटी में बाडलियन लायब्रेरी नामक एक पुस्तकालय है। जिन बाडले साहब के नाम से यह पुस्तकालय प्रसिद्ध है उन्होंने १६वीं शताब्दी में ही उस युनिवर्सिटी-लायब्रेरी की पुस्तकों का लगाया। उस समय जो नियम उसने बनाये उनमें एक यह भी था कि "नाटक इत्यादि की निरुपयोगी और वाहियात किताबें लायब्रेरी में बिलकुल ही न आने देना चाहिए!" जो पुस्तकें थीं उन्हें उस साहब ने रद्दी समझ कर निकाल डाला। शेक्सपियर से पहले नाटककार कुछ कम नहीं हुए; परन्तु कवियों में किसीने उनकी गणना ही नहीं की। यह विचार शेक्सपियर के नाटकों ने उत्पन्न किया कि नाटक साहित्य का एक महत्व का अंग है और 'काव्य' इस दिव्य शब्द में उसका भी अन्तर्भाव करना चाहिए। चूंकि नाटकों के विषय में लोगों की समझ उस समय उपर्युक्त प्रकार की थी, इस लिए प्रतिभा-सम्पन्न लोग काव्य लिखने में अपनी प्रतिभा का उपयोग करते थे। और नाटक लिखने में कुछ लोगों की सिर्फ इसी लिए प्रवृत्ति थी कि नाटक-कम्पनियों से धन की प्राप्ति रहती थी। शेक्सपियर की भी पहले काव्य ही लिखने की ओर प्रवृत्ति थी। उसका पहला ग्रन्थ "Venus and Adonis" खंडकाव्य ही है। यह काव्य उसने सन् १५९३ में प्रकाशित किया। परन्तु उसने कई वर्ष पूर्व इसे लिखा था। इस काव्य को लिख कर उसने एक ओर रख दिया और फिर बहुत से नाटक लिखे तथा रंगभूमि पर उनका प्रयोग भी कराया। परन्तु नाटककार के . . . अपनी कीर्ति होने की अपेक्षा 'कवि' के नाते से अपनी कीर्ति होने की उसे स्वाभाविक ही उत्कट इच्छा थी, इस कारण उसने अपनी युवावस्था में लिखा हुआ काव्य टीकटाक करके छपा डाला। उसके बाद सन् १५९४ई० में ही "Rape of Lucrece" नामक काव्य प्रकाशित हुआ।

वीनस

उसके बाद सन् १६०० में उसने अपने सानेटस "चौदहचरणी गीत" प्रकाशित किये।

बालपन के बाद ज्यों ही युवावस्था की छाया पड़ने लगती है त्यों ही मनुष्य का हृदय प्रेममय और काव्यमय होता है, यह अनुभव किस सहृदय को नहीं है? शेक्सपियर ने अपने एक नाटक (As you like it) में इस प्रकार का सुन्दर रूपक बांधा है कि मनुष्य का जीवन-क्रम मानो एक नाटक ही है, उसके भाग मानो सात अंक हैं। उसमें युवावस्था के विषय में ये पंक्तियां हैं—

> And then the lover,
> Sighing like a furnace, with a woeful ballad
> Made to his mistress eyebrow
> फिर प्रेमी धौंकनी सम लेकर लम्बी सांस।
> गाता है लीला दुखद निज सुभ्रू की खास॥

शेक्सपियर ने अपना "Venus and Adonis" वीनस और अडोनिस नामक काव्य अपनी बिलकुल युवावस्था ही में लिखा था। हमने ऊपर जो यह लिखा है कि उसने यह काव्य सन् १५९३ में, अर्थात् कुछ नाटक प्रकाशित करने के बाद प्रकाशित किया, इसका प्रमाण उस काव्य की अर्पणपत्रिका ही में है। उस अर्पण-पत्रिका में उसने कहा है कि, यह काव्य हमारी कल्पनाशक्ति का पहला फल है। यह काव्य उसने अपने आश्रयदाता अर्ल आफ साउथाम्पटन को अर्पण किया। अर्पणपत्रिका में उसने विनय से कहा है, "मैं नहीं कह सकता कि आपके समान महापुरुष को जो मैं ये अपनी क्षुद्र पंक्तियां अर्पण करता हूं उनसे आपको कितना क्रोध आवेगा और आपके समान समर्थ पुरुष को ऐसी निस्सत्त्व कृति जो मैं अर्पण करने बैठा हूं उसके लिए लोग न जाने कितना हमें दोष देंगे। परन्तु आपको यदि मेरी इस कृति के पढ़ने से कुछ आनन्द होगा तो मैं अपने को धन्य समझूंगा। मैं अपने सम्पूर्ण अवकाश के समय में किसी धीर गम्भीर विषय पर कोई दूसरा काव्य लिख कर आपको समर्पण करने की प्रतिज्ञा करूंगा। परन्तु यदि यह मेरी कल्पनाशक्ति का पहला फल बिलकुल ही निरुपयोगी ठहरेगा तो मुझे खेद होगा कि आपके समान महाशय को मैंने यह व्यर्थ ही अर्पण किया; और फिर अपने कल्पनाक्षेत्र में फल उत्पन्न करने के झगड़े में मैं बिलकुल ही न पड़ूंगा क्योंकि इसका कौन ठीक है कि वे फल इससे भी अधिक निरुपयोगी न निकलेंगे?"

स्वयं शेक्सपियर के इस लेख से तो यह स्पष्ट सिद्ध होता ही है कि "वीनस और अडोनिस" नामक उसका पहला काव्य उसकी सब से पहली कृति है। किन्तु यह काव्य पढ़नेवाले प्रत्येक रसिक को उसके पठन से ही यह स्पष्ट मालूम हो जाता है कि यह कवि की खास तरुणावस्था की पहली कृति है। जो मूल अँगरेजी पढ़ कर उस काव्य का आस्वाद लेने का सामर्थ्य रखते हों उन्हें वह

अवश्य पढ़ना चाहिए। उसमें उन्हें यह स्पष्ट देख पड़ेगा कि शेक्सपियर की प्रतिभा का स्वरूप बिलकुल ही पहले कैसा था। उसके इस खण्डकाव्य से यह अच्छी तरह मालूम हो जाता है कि उसका सृष्टिनिरीक्षण कितना सूक्ष्म तथा विस्तृत था, उसकी वर्णनशक्ति कैसी विलक्षण थी, उसका भाषाप्रभुत्व कितना प्रगाढ़ था और मानवी मनोविकारों का उसका ज्ञान कितना था। यह काव्य शृंगार-रसप्रधान है। उसमें कहीं कहीं इस रस का अत्यन्त उत्तान स्वरूप देख पड़ता है। परन्तु यह उस काल की अभिरुचि का परिणाम है। आज कल जिन वर्णनों और उपमाओं आदि का सिर्फ उल्लेख भी . . . उपमाएं, . . . और . . . थीं। तथापि उस समय भी लोग कई पद्यों के कारण इस काव्य को बुरा कहते थे। रंगीले और छैल छबीले स्त्रीपुरुषों के हाथ में ही इस काव्य की प्रतियां बहुधा देखी जाती थीं। अस्तु। अब हम इस काव्य की कथा का विचार करते हैं।

एक दिन ऐसे समय में, जब सूर्यनारायण बहुत ऊपर आगये हैं और प्रातःकाल की कोमलता नहीं रही है, तरुण अडोनिस शिकार के लिए वन को गया। अडोनिस का शिकार पर बहुत प्रेम था, परन्तु स्त्रीविषयक प्रेम का वह बहुत तिरस्कार करता था। उस समय उसकी उम्र ठीक अठारह वर्ष की हो और रूप में वह बहुत ही सुन्दर था। वह एक पानीदार घोड़े पर सवार होकर वहं हौस से जा रहा था, इस कारण उसकी सुन्दरता और भी खिल उठी थी। उस समय आकाश में संचार करनेवाली वीनस नामक अप्सरा उसे देख पूर्ण

पता, सन्दूक के फलों की संख्या, सन्दूक में फल रखनेवाले मनुष्य का नाम अथवा नम्बर, इत्यादि का उल्लेख रहना चाहिए; (७) भीतर माल एक प्रकार का और ऊपर वर्णन दूसरे प्रकार का-इस प्रकार व्यवहार न होना चाहिए। यह न भूलना चाहिए कि सच्चाई से माल की प्रशंसा बढ़ती है और प्रशंसा से व्यापार बढ़ता है। इस रीति से यदि निम्बू का व्यापार भारत के लोग अपने हाथ में लेंगे तो देशी निम्बू की भारत में ही खपत बढ़ जायगी और परदेश में भी भेज सकेंगे। क्योंकि अमेरिकन और योरोपियन लोगों को ताजे निम्बू की अब बहुत आवश्यकता होने लगी है।

कैलिफोर्निया में निम्बुओं के रखने की रीति —सन्दूक में रखकर बन्द करने के पहले, बिलकुल पके हुए, मध्यम पके हुए अथवा थोड़े पके हुए निम्बू अलग अलग किये जाते हैं और वे भिन्न भिन्न सन्दूकों में रखे जाते हैं। इसके बाद सब समान आकार के अनुसार छाँटे जाते हैं। (चित्र नं० १० देखिये) यह काम यंत्र से होता है। यंत्र में डालने पर बिलकुल छोटे छोटे, मध्यम, बड़े और बहुत बड़े, इत्यादि भिन्न भिन्न आकार के निम्बू भिन्न भिन्न सन्दूकों में आप ही आप चले जाते हैं। इस देश में भारत की तरह छोटे बड़े निम्बू एक ही में मिले हुए बाजार में कभी नहीं देखे जाते। भारत के निम्बू बेचनेवालों से यदि पूछा जाता है कि ऐसा क्यों है? तो वे चट कह बैठते हैं कि, "महराज, पाँचों उँगलियाँ बराबर थोड़े ही होती हैं!" परन्तु पाश्चात्य व्यापारियों का यह हाल नहीं है। उनकी नीति ही दूसरी है। वे सदा ग्राहकों से यही बात कहते हैं:—"महाशय, ये सब निम्बू अव्वल नम्बर के हैं। इनको ले जाइये, खोल कर काम में लाइये, खराब निकले तो वापस कर जाइये और अपना मूल्य लीजिए।" इससे यह न समझना चाहिए कि उपर्युक्त पाश्चात्य व्यापारियों की ये कोरी बातें ही हैं। मैंने स्वयं नापसन्द सामान का कुछ काल तक उपयोग करके फिर उसे फेर दिया है और व्यापारी ने मुझे मेरे दाम आनन्दपूर्वक वापस दे दिये हैं। मेरे इस व्यवहार से वे किञ्चित् भी रुष्ट नहीं हुए, किन्तु उलटे मुझे श्रम होने के कारण उन्हें खेद हुआ। हमारे व्यापारी इस सच्चाई के मार्ग का क्यों न ग्रहण करें? छँटे हुए निम्बुओं को अच्छी तरह पोंछ कर और ताजे करके उन पर एक ऐसा कागज लपेटा जाता है जिस पर व्यापारी का नाम-ग्राम इत्यादि छपा रहता है। ऐसा कागज लपेटने से दो फायदे होते हैं। एक तो घर्षण इत्यादि से फलों का बचाव होता है, और अन्य फलों में भूल से आये हुए स्पर्शजन्य रोगकारक जीवाणुओं से बचाव होता है। इसके सिवाय फलों पर अपना विज्ञापन देने के लिए तो यह युक्ति बहुत ही अच्छी है। प्रत्येक सन्दूक में ९०, १२६, १५०, १७६, २००, २१६, २२६ और २५२ निम्बू भिन्न भिन्न आकार के हिसाब से भरे रहते हैं; और जिस सन्दूक में जितने निम्बू होते हैं उनकी संख्या सन्दूक पर लिखी जाती है, इसमें भूल नहीं होती। ये निम्बू जैसे तैसे जल्दी जल्दी से भरे हुए नहीं होते, किन्तु वे सब सरल पंक्ति में, एक पर्त पर दूसरे, एवं सम क्रम से, रखे हुए होते हैं। ऊपर का पर्त [illegible] अन्त में वह उसे

सफाई के साथ और सावधानीपूर्वक रखा जाता है। ऊपर सन्दूक का ढक्कन, खीलें ठोंक कर, मजबूत लगाया जाता है, भीतर के निम्बू भी ढीले होकर स्थानभ्रष्ट होने योग्य नहीं होते। ढक्कन पर नियमानुसार सुन्दर लेबल रहता ही है। सर्वोत्तम निम्बुओं पर "फैन्सी" 'उत्तम' बड़े बड़े अक्षरों में लिखा रहता है। ये अधिक कीमत पर बेचे जाते हैं। उत्तम निम्बू परदेश अथवा दूसरे शहरों में बेचने के लिए भेजे जाते हैं।

(चित्र नं० ११ देखिये) फल सन्दूक में भर कर ढक्कन खीलों से बन्द करनेवाला और हाथ से चलाया जानेवाला सादा यंत्र भी [illegible] बाजार में मिल सकता है।

निम्बू खराब होने के शेष कारणों का कुछ विचार।

ऊपर यह लिखा ही गया है कि निम्बू बाग में, संचयगृह अथवा शीतगृह में रहते समय कैसे खराब होते हैं। उनमें, [illegible] जाने के समय अथवा बाजार के विक्रीगृह में या दुकान में उनके खराब होने के कारण सहज ही ध्यान में आ जायँगे। फल ढोने के लिए अमेरिका में विशिष्ट प्रकार की रेलगाड़ियां बनी हुई हैं। गाड़ी के प्रत्येक डब्बे में बर्फ रखने का और हवा के आने जाने का [illegible] प्रबन्ध रहता ही है, किन्तु ऐसी भी व्यवस्था रहती है कि जिससे भीतर की उष्णता व्यर्थ खराब न होने पावे। यूरप और अमेरिका में फलों का व्यापार करने के लिए रेलगाड़ियों की तरह जहां जहाज में भी प्रबन्ध नहीं होता उस जगह के फल अवश्य ही खराब हो जाते हैं। अमेरिका में अच्छी सुभीतेदार रेलगाड़ियां, उद्योगधंधों के ज्ञाता, शास्त्रज्ञ, यंत्र, और धन इत्यादि सब साधनों का संगम है और इस लिए यहां के व्यवसायों की खूब उन्नति हो रही है। और भारतवर्ष में सभी बातों का अभाव है। यह बात शोचनीय अवश्य है, पर हमें निराश न होना चाहिए। अमेरिकन अथवा पाश्चात्य लोग जैसे मनुष्य हैं वैसे ही भारतवर्ष के लोग भी मनुष्य ही हैं। यह बात ध्यान में रख कर यदि हम प्रयत्न करेंगे तो हमें अवश्यमेव [illegible] लता प्राप्त होगी। प्रयत्न का प्रारम्भ करने पर धीरे धीरे सभी [illegible] अनुकूल होने लगते हैं। ऐसा न समझना चाहिए कि निम्बू [illegible] व्यापार बढ़ाना कोई असम्भव बात को सम्भव कर दिखाना है। यदि योग्य रीति से सावधानी रखी जायगी तो निम्बुओं का [illegible] पन सहज ही बढ़ाया जा सकेगा। परन्तु यह कार्य सिद्ध करने के लिए निम्बू की खेती करनेवाले, बेचनेवाले और उपयोग करनेवाले इत्यादि सभी लोगों को एकता के साथ और शास्त्रीय रीति से [illegible] निक प्रणाली से-कार्य शुरू करना चाहिए।

सारांश:—आनुवंशिक गुण, बाग के रोगों से रक्षा, तोड़ने की [illegible] और, धोना, [illegible] रीति, फलों के [illegible]

[illegible] वह मरा पड़ा था। उसके [illegible] कर उसने ऐसा विलाप किया कि [illegible] भी पसीज उठता। उस शोक में उसने प्रेम को यह शाप दिया, "प्रेम का मार्ग सदासर्वदा अत्यन्त कष्टप्रद और कंटकमय ही रहेगा। यही नहीं, किन्तु परस्पर उत्कट प्रेम करनेवाली जुगुल-जोड़ियाँ प्रेमसुख से सदासर्वदा वंचित रहेंगी।" प्रेम को इस प्रकार शाप देकर वह कुछ शान्त ही होनेवाली थी कि इतने ही में अडोनिस का मृत शरीर एकाएक, उसके देखते ही देखते, किसी बादल की तरह छिन्न भिन्न होकर बिला गया। और उसके रक्त की धारों से, जोकि वहां शेष थी, सफेद और लाल-अडोनिस के कपोलों की तरह दिखनेवाला-एक फूल उगा! उस फूल को देखते ही वीनस का प्रेम फिर उभड़ आया और उसने उस पुष्प का सुवास लिया। इसके बाद यह कह कर कि, "यह सुगन्ध मेरे प्रियतम का श्वासोच्छ्वास है," उसने वह फूल तोड़ा और उसे अपने उरःप्रदेश पर रख कर उससे कहा:—

"हे सुन्दर पुष्प! तेरे पिता की ही तरह तेरे रहनेयोग्य यही स्थान है।"

इस प्रकार उसका मनोभंग हुआ। उसे बड़ा दुःख हुआ। इसके बाद वह समझ कर, कि अब इस दुःखमय पृथ्वी पर रहना ठीक नहीं, वह अपने [illegible] पर बैठ कर स्वर्ग को चली गई। आगे के लिए उसने यह निश्चय किया कि अब मैं [illegible] आगे कभी नहीं [illegible] और स्वर्ग में अपने स्थान पर बन्द रहूँगी।

इस काव्य में कवि ने यह अच्छी तरह दिखलाया है कि काम और [illegible] को ही प्रेम समझ कर अनेक मनुष्य कैसे पागल बन बैठते हैं और सच्चा प्रेम क्या है, इस बात का उन्हें भान ही नहीं रहता। वीनस और अडोनिस का संवाद प्राय [illegible] शुक-संवाद [illegible] है। [illegible] पूर्ण [illegible] हुआ था, [illegible] के [illegible] में [illegible] भी उनके मन पर प्रभाव [illegible]। वहां अडोनिस ने वीनस के साथ भी करीब करीब वैसा

वीनस ने अडोनिस को जब घोड़े पर से नीचे खींचा उस [illegible] वह कैसी देख पड़ती थी और वह कैसा देख पड़ता था।

उसने अपने एक हाथ में उस मस्त घोड़े की डोरियां पकड़ [illegible] और दूसरे हाथ से उस नाजुक तरुण लड़के को पकड़ा था। [illegible] करने पर उसे लाज आई और उसने तिरस्कार से अपने [illegible] फुलाये। उसके मन में पूर्ण विरक्ति-अनुरक्ति जागृत होना भी [illegible] [illegible] अंगार की तरह [illegible] कि इसे [illegible] लज्जा से [illegible] आशक्त हुआ था। परन्तु इच्छा की जगह उसमें शून्य ही था।

कामातुर और विरक्त के विरोध का यह बिलकुल [illegible] परन्तु कितना विलक्षण, शब्दचित्र है!

कुरूपता और सुरूपता का विरोध दिखलानेवाले दो [illegible] दिये जाते हैं। जब जब वीनस देखती है कि हम इतनी [illegible] और अडोनिस हमारी ओर देखता भी नहीं तब वह उससे [illegible] मैं [illegible]

"मेरा चेहरा कठोर, सुकड़ा हुआ, जड़ होता; मैं [illegible] अथवा [illegible] अप्रचका, कर्कशा, घुड़ैल, लची हुई या बौनी होती, अथवा [illegible] आँखोंवाली, बेमर्दी और कालीकूट होती, तो मेरा दूर दूर [illegible] और 'नहीं' कहना स्वाभाविक था। तब तो मैं अवश्य [illegible] योग्य नहीं होती। परन्तु जब कि मैं सब प्रकार से निर्दोष [illegible] भला मेरा तिरस्कार क्यों करता है?

मेरे कपोल पर एक सिमटा तुझे नहीं देख पड़ेगा। मेरे [illegible] वर्ण, तेजस्वी और चपल हैं। मेरा सौन्दर्य [illegible] क्षण क्षण पर अधिकाधिक बढ़ता जाता है, मेरा शरीर [illegible] मुलायम, गुदगुदा और रसीला है। मेरा यह [illegible] छूलिये! इसे अपने हाथ में लीजिए, देखो यह [illegible]

इस काव्य का सब भाग रम्भा-शुक-संवाद [illegible] रम्भा की ही तरह अडोनिस में [illegible] के कारण [illegible] नहीं है। उस विनती के प्रकार में न जाने कितने भेद हैं। [illegible]

मोहित हो गई और पृथ्वी पर आकर उसे वश करने का उद्योग करने लगी। उसने उसका घोड़ा रोक लिया, उसे घोड़े पर से नीचे खींच लिया, उसका घोड़ा उसने अपने हाथ से एक वृक्ष में बाँध दिया और कभी नम्रतापूर्वक विनती करके तो कभी अभिमान के भाषण करके वह उसका मन रिझाने लगी। सारांश, वह पूर्ण कामान्ध बन गई और लज्जा, विनय, आदि स्त्रियों के नैसर्गिक गुणों को उसने बिलकुल ही त्याग दिया।

परन्तु उसके उन उत्कट भाषणों का और उनसे भी अधिक उसके उन उत्कट हावभावों का अडोनिस के मन पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। जहाँ तक हो सका उसने मौन स्वीकार करके अपनी तिरस्कारपूर्ण चेष्टाओं से यह स्पष्ट प्रकट किया कि मेरा मन केवल इसी विषय में नहीं, किन्तु स्त्री-प्रेम-विषय में ही अत्यन्त उदासीन है। यही नहीं, बल्कि जब उसने देखा कि अब स्पष्ट बोल कर इसकी निर्भर्त्सना किये बिना अन्य उपाय नहीं है तब उसने कठोर शब्द कह कर उसे फटकार दिया और शिकार को जाने के लिए उठा। उसे जंगली सुअर के शिकार में विशेष आनन्द आता था। यह शिकार यदि सध गया तब तो ठीक है, अन्यथा प्राणों पर ही आ बनती है। यह जान कर वीनस ने उससे विनती करके कहा, "पहले तो शिकार खेलना ही बड़ा भयंकर काम है और फिर उसमें जंगली सुअर का शिकार करना बहुत ही भयानक बात है। इसमें यह कुछ ठीक नहीं कि शिकार करनेवाले का प्राणघात कब होता है और यदि तुम्हारा घात हो गया तो फिर हमें यह सारा संसार उदास देख पड़ेगा।" यह कह कर उसने बहुत प्रकार से अडोनिस को शिकार खेलने का निषेध किया; परन्तु उसने एक भी नहीं सुनी। इधर घोड़ा उस वृक्ष से छूट कर एक सुन्दर घोड़ी के पीछे भग गया था, उसे पकड़ कर अडोनिस उस पर आरूढ़ हुआ और जंगली सुअर का शिकार करने के लिए वह उस घने जंगल में पैठा। कुछ देर बाद उसने एक अच्छा बड़ा सुअर उठाया और उस पर वार किया। दोनों का घोर सामना हुआ। अन्त में उस जंगली सुअर ने अडोनिस को घोड़े पर से गिरा दिया और उसे हूलों से मार मार कर जान से मार डाला!

इधर वीनस ने उसके विरह से पागल सी हो गई और उसे अडोनिस का [illegible] लग गया। [illegible] अन्त में वह उसे ढूँढते ढूँढते वहाँ आ पहुँची जहाँ [illegible] वह मरा पड़ा था। उसके सुन्दर देह की वह दुर्दशा [illegible] देख कर उसने ऐसा विलाप किया कि जिसे सुनकर वज्र [illegible] भी पसीज उठता। उस शोक में उसने प्रेम को यह शाप दिया, "प्रेम का मार्ग सदासर्वदा अत्यन्त कष्टप्रद और कंटकमय ही रहेगा। यही नहीं, किन्तु परस्पर उत्कट प्रेम करनेवाली जुगुल-जोड़ियां प्रेमसुख से सदासर्वदा वंचित रहेंगी।" प्रेम को इस प्रकार शाप देकर वह कुछ शान्त ही होनेवाली थी कि इतने ही में अडोनिस का मृत शरीर एकाएक, उसके देखते ही देखते, किसी बादल की तरह छिन्न भिन्न होकर विला गया। और उसके रक्त की धारों से, जोकि वहां शेष थीं, सफेद और लाल—अडोनिस के कपोलों की तरह दिखनेवाला—एक फूल उगा! उस फूल को देखते ही वीनस का प्रेम फिर उभड़ आया और उसने उस पुष्प का सुवास लिया। इसके बाद यह कह कर कि, "यह सुगन्ध मेरे प्रियतम का श्वासोच्छ्वास है," उसने वह फूल तोड़ा और उसे अपने उरःप्रदेश पर रख कर उससे कहा:—

"हे सुन्दर पुष्प! तेरे पिता की ही तरह तेरे रहनेयोग्य यही स्थान है।"

इस प्रकार उसका मनोभंग हुआ। उसे बड़ा दुःख हुआ। इसके बाद यह समझ कर, कि अब इस दुःखमय पृथ्वी पर रहना ठीक नहीं, वह अपने हंसवाहन पर बैठ कर स्वर्ग को चली गई। आगे के लिए उसने यह निश्चय किया कि अब मैं किसीके आगे कभी नहीं निकलूँगी और स्वर्ग में अपने स्थान पर बन्द रहूँगी।

इस काव्य में कवि ने यह अच्छी तरह दिखलाया है कि काम और भोगेच्छा को ही प्रेम समझ कर अनेक मनुष्य कैसे पागल बन बैठते हैं और सच्चा प्रेम क्या है, इस बात का उन्हें भान ही नहीं रहता। वीनस और अडोनिस का सम्वाद प्रायः रम्भा-शुक-सम्वाद की तरह है। शुक में पूर्ण वैराग्य भरा हुआ था, अतएव रम्भा के भाषणों और हेलालीलाओं से अणुमात्र भी उनके मन पर प्रभाव नहीं पड़ा। यहां अडोनिस ने वीनस के साथ भी करीब करीब वैसा ही बर्ताव किया। बहुत देर तक तो उसने वीनस के भाषणों का कुछ उत्तर ही नहीं दिया। परन्तु जब उसने उसे [illegible] ही सताया तब उसने उसकी निर्भर्त्सना की और स्पष्ट कह दिया कि, तू जिसको 'प्रेम प्रेम' कहती है वह कुछ सच्चा प्रेम नहीं, वह तो भोगेच्छा है। सच्चा सात्त्विक प्रेम ही 'प्रेम' कहलाने योग्य है। काम प्रेरित भोगेच्छा तामस प्रेम है। उसे 'प्रेम' का [illegible] और उच्च नाम देना ही मूर्खता है। इस प्रकार उसे तिरस्कार [illegible] अन्त में उससे पिण्ड छुड़ा कर वह भग खड़ा हुआ।

इस काव्य में चार प्रसंग बहुत उत्तम हैं। १ अडोनिस और [illegible] का पूर्वोक्त भाषण-प्रसंग। २ अडोनिस के शिकार को चले जाने [illegible] वनस्थिति के वर्णन का प्रसंग। ३ वीनस का विलाप-प्रसंग [illegible] ४ वीनस ने प्रेम को शाप देकर अडोनिस के रक्त से उत्पन्न [illegible] वाले पुष्प को सम्बोधन करके जो भाषण किया वह प्रसंग। [illegible] चार प्रसंगों के अतिरिक्त दूसरे भी कई प्रसंग बहुत सुन्दर हैं। [illegible] काव्य की बहुत बड़ी विशेषता कवि की वर्णनशक्ति है। भिन्न भिन्न वर्णनों में कवि ने जो शब्दचित्र खींचे हैं वे किसी अत्यन्त कुशल रंगचित्रकार के चित्रों के समान आँखों के सामने खड़े रहते हैं। शब्दसौष्ठव के लिए तो शेक्सपियर के समकालीन लोग उसकी बहुत ही प्रशंसा करते थे। "उसके काव्य मधुमय, मधुस्राव करनेवाले हैं।" इस प्रकार के वचन कितने ही लेखकों के लेखों में पाये जाते हैं। शब्दसौष्ठव की बहार जिन्हें देखना हो उन्हें मूल काव्य का ही पठन करना चाहिए। परन्तु जिनके लिए यह बात असम्भव है उनके लिए कवि के अर्थसौन्दर्य और वर्णनचातुर्य का ज्ञान होने को आगे कुछ चुने हुए अवतरण दिये जाते हैं। प्रत्यक्ष वस्तु जिसे नहीं देख पड़ती उसे उस वस्तु के फोटोग्राफ या चित्र पर ही सन्तुष्ट रहना पड़ता है। तिस पर भी फोटोग्राफर अथवा चित्रकार [illegible] ठीक न हुआ तो फिर कुछ पूछिये ही नहीं। परन्तु शेक्सपियर [illegible] मूल वस्तु में ही इतना सौन्दर्य और चातुर्य है कि उसके [illegible] बिम्ब से भी पाठकगण उसकी कल्पना कर सकेंगे।

वीनस ने अडोनिस को जब घोड़े पर से नीचे खींचा उस समय वह कैसी देख पड़ती थी और वह कैसा देख पड़ता था।

उसने अपने एक हाथ में उस मस्त घोड़े की डोरियां पकड़ रक्खी थीं और दूसरे हाथ से उस नाजुक तरुण लड़के को पकड़ा था। [illegible] करने पर उसे लाज आई और उसने तिरस्कार से अपने [illegible] फुलाये। उसके मन में पूर्ण विरक्ति—अनुरक्ति जागृत होना भी [illegible] न था। वह कामज्वर के वेग से, जलनेवाली अंगार की तरह [illegible] और संतप्त हो गई थी। यह बात मन में लाकर, कि इसे [illegible] पकड़ना चाहिए, वह किंचित् क्रोध से और लज्जा से [illegible] आसक्त हुआ था। परन्तु इच्छा की जगह उसमें शून्य ही था। [illegible]

कामातुर और विरक्त के विरोध का यह बिलकुल [illegible] परन्तु कितना विलक्षण, शब्दचित्र है!

कुरूपता और सुरूपता का विरोध दिखलानेवाले दो [illegible] दिये जाते हैं। जब जब वीनस देखती है कि हम इतनी [illegible] और अडोनिस हमारी ओर देखता भी नहीं तब वह उससे कहती है:—

"मेरा चेहरा कठोर, सुकड़ा हुआ, जड़ होता, मैं यदि [illegible] अथवा [illegible] अष्टवक्रा, कर्कशा, चुड़ैल, लची हुई या बौनी होती, [illegible] आँखोंवाली, बेभद्दी और कालीकूट होती, तो तेरा दूर [illegible] और 'नहीं' कहना स्वाभाविक था। तब तो मैं अवश्य [illegible] योग्य नहीं होती। परन्तु जब कि मैं सब प्रकार से निर्दोष [illegible] भला मेरा तिरस्कार क्यों करता है?

मेरे कपोल पर एक सिमटा तुझे नहीं देख पड़ेगा। मेरे [illegible] वर्ण, तेजस्वी और चपल है। मेरा सौन्दर्य वसन्तऋतु [illegible] क्षण क्षण पर अधिकाधिक बढ़ता जाता है, मेरा शरीर [illegible] मुलायम, गुदगुदा और रसीला है। मेरा यह गुलगुला [illegible] देखिये! इसे अपने हाथ में लीजिए; देखो यह जैसे [illegible]

इस काव्य का सब हाल रम्भा-शुक-सम्वाद का सा है। [illegible] रम्भा की ही तरह अडोनिस से विपर्यय [illegible] के कारण [illegible] रही है। उस विनती के प्रकार में न जाने कितने भेद हैं। [illegible]

अपने सौन्दर्य और सौष्ठव का-अंगत. वर्णन करके उसे मोह लेना चाहती है; कभी अपने पूर्वपराक्रमों का वर्णन करके यह जतलाती है कि हमने आज तक किस किसको अपने मोहजाल में फाँस लिया और कैसे कैसे पराक्रमी पुरुषों ने हमसे प्रेम किया, इत्यादि; कभी अत्यन्त लीन होकर यह उससे दया की प्रार्थना करती है; कभी, जब देखती है कि उस प्रार्थना का कोई उपयोग नहीं होता तब, घबड़ाहट और निराशा के वेग में कहती है —

"प्राणप्रिय, तुझे पाने के लिए मैं जैसी तेरी विनती करती हूं वैसी ही मुझे पाने के लिए रणदेव मंगल ने मेरी विनती की। मंगल बहुत ही भव्य वीर था। उसकी वह मसीली गर्दन कभी किसीके सामने नहीं झुकी, पराजय तो उसने कभी सुना ही न था; परन्तु वही हमारा आज्ञाकारी दास बन गया। जो कुछ (प्रेम) मैं तुझे स्वयं देने करती हूं उसे पाने के लिए वह दीन होकर मुझसे भिक्षा मांगता था।

फिर तूही क्यों ऐसा निष्ठुर बना? तूही क्यों इतना कठिन हुआ? कंकड़ के समान, फौलाद के समान, पत्थर के समान कठोर बना? पत्थर तो पानी से घिस जाता है, पर तू उससे भी कठोर है। तू स्त्री ही के पेट से जन्मा है न? और प्रेम किसे कहते हैं, यह कैसे लगता है, सो तुझे मालूम नहीं? जिसका प्रेम पाने की अपने को इच्छा होती है उसका वह प्रेम यदि नहीं मिलता तो कैसा दुःख होता है, सो तुझे मालूम नहीं? तुझे पैदा करनेवाली तेरी माता का हृदय भी यदि ऐसा ही कठोर होता तो तुझे वह पैदा ही न करती—वैसी ही अपनी कठोरता से मर गई होती!

"तुझे धिक्कार है, धिक्कार है! तू निर्जीव चित्र ही है। तू चैतन्य-हीन पाषाण, अच्छी शृंगार की हुई मूर्ति, निश्चेतन प्रतिमा, सिर्फ आँखों को सुख देनेवाला पुतला है। तू मनुष्य के समान है, परन्तु स्त्री के उदर में आया हुआ—स्त्री का पाला हुआ नहीं है। तेरा रंग-रूप पुरुष का सा दिखता है, परन्तु तू वैसा नहीं है। कारण...... कारण अब क्या बतलाऊं?"

इतना कह कर वह स्तब्ध हो गई। सन्ताप के कारण आगे वह बोल ही न सकी। उसके कपोल लाल हो गये। आंखें सुर्ख हो गईं। वह आंसू बहाने लगी। वह और कुछ बोलना चाहती थी। परन्तु हुमकना रोक न सकी, इस कारण उसे स्तब्ध होकर बैठना पड़ा। ऐसी दशा में वह कभी अपनी गर्दन हिलाती, कभी उसका हाथ पकड़ कर हिलाती। कभी उसकी ओर टकटकी लगा कर देखती। कभी नीचे पृथ्वी की ओर देखती। इसी तरह वह नाना प्रकार की चेष्टा कर रही थी।

मान् राजा वीरविक्रमदेवजी।

परम शुचि चौहान-वंशज
देश-सेवक, धीर।
प्रजाप्रिय, खरियार-अधिपति,
दानवीर, गम्भीर॥
विनय-विद्या-सर्व-पूरित
कला-कुशल विचित्र।
सुखाये राजा वीरविक्रम-
देव विमल चरित्र॥

आप रायपुर जिला-अन्तर्गत खरियार नामक जमींदारी के अधिपति हैं। इस काल जब कि हमारे भारत के [illegible]-महाराजा "मदन, आलस्य, ईर्षा" के वश में पड़े हुए प्रजा के कष्टोपार्जित धन का [illegible] कर रहे हैं तब सच्चरित्र, प्रजा-पालक और गुणग्राहक नीतिवान् महात्माओं का राजकुल में जन्म धारण करना देश के कल्याण का हेतु है। राजा वीरविक्रमदेव एक ऐसे ही पुरुष हैं। आपके पिता मृत राजा ब्रज-राज देव ने इनको राजोचित विद्या से भूषित [illegible] अपनी दूरदर्शिता और स्वदेशाभि-मान का परिचय दिया है। आप संस्कृत, उड़िया और हिन्दी-साहित्य के उत्कृष्ट ज्ञाता [illegible] हैं। उड़िया में आपने ५०२५ श्लोक लिख कर पुरस्कार है और आप उड़िया [illegible] एक अच्छे और मार्मिक कवि भी हैं। श्रीयुत भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के कई [illegible] नाटकों का उत्कल भाषा में अनुवाद करके [illegible] उत्कल-साहित्य का भाण्डार भर दिया है। आप हिन्दीभाषा के भी अच्छे लेखक और ग्रन्थकार हैं। छत्तीसगढ़ में ऐसे काव्यानुरागी, कलाकुशल और चरित्रवान् राजा शायद ही कहीं हों।

आपके रचित "गजशास्त्र," और "राजकुमारशिक्षा" नामक ग्रन्थ हिन्दीभाषा के उज्वल रत्न हैं। आपने तुलसीकृत रामायण का उत्कल पद्यानुवाद किया है। इसके सिवा आप कारीगरी और चित्रविद्या में भी बड़े निपुण हैं। कवि और विद्वानों का आप खूब आदर करते हैं। रायबहादुर राधानाथ राय ने आपके गुणों पर मुग्ध होकर अपना "दशरथ-वियोग" काव्य आप ही को समर्पित किया है। आप बड़े ही प्रजाप्रिय, प्रजापालक और राज्यमान्य हैं। आप पर लक्ष्मी, सरस्वती दोनों की कृपा है। इसके सिवा आप बड़े ही विनयी सरलस्वभाव, मिलनसार और प्रियभाषी हैं! यदि भारतवर्ष के युवराजगण आपको अपना आदर्श मान कर आपके गुणों का अनुकरण करें तो देश का उपकार और उनके राज्य के दुःखों का संहार हो सकता है। ईश्वर करे वीरविक्रमदेवजी चिरंजीवि हों ताकि हमारी भाषा और देश का उनसे सतत उपकार होता रहे।

लोचनप्रसाद पांडेय।

सच बोलने में लाभ।

एक लड़का था। एक बार वह अपनी मा से बिदा होकर दूसरे गांव को, जो वहां से २० मील दूर था, जाने लगा। बिदा होते वक्त मा ने उसके कपड़ों में चालीस मोहर रख कर सी दिया। और कहा कि बेटा जब तुमको रास्ते में जरूरत पड़े तो इन मोहरों को काम में लाना। और झूट कभी मत बोलना! अच्छी मा का यह अच्छा लड़का जब रास्ते में बहुत दूर निकल गया तब उसे चार पांच डाकू मिले। डाकुओं ने लड़के को पकड़ लिया और कहा बोल तेरे पास क्या है! लड़के ने कहा मेरे पास चालीस मोहर हैं। डाकुओं ने समझा कि यह लड़का हमारे साथ दिल्लगी करता है। क्योंकि उसके कपड़े देखने से किसीको यह विश्वास नहीं हो सकता था कि इसके अन्दर चालीस मोहर होंगे। डाकुओं ने फिर पूछा तो लड़के ने फिर वही उत्तर दिया। तब वे उसको लेकर अपने सरदार के पास गये। सरदार ने भी लड़के से वही प्रश्न किया। लड़के ने निर्भय होकर कहा—मेरे पास चालीस मोहर हैं। सरदार ने कहा दिखाओ तो लड़के ने कपड़ा उतार कर फेंक दिया और कहा कि इसके अन्दर सी कर रखे गये हैं, फाड़ कर देख लो। सरदार ने वैसा ही किया तो सचमुच उसे कपड़े में चालीस मोहर मिले। सरदार को बड़ा अचम्भा हुआ। उसने कहा बेटा! तुम तो यह जानते होगे कि हम लोग डाकू हैं फिर तुमने अपना सच्चा सच्चा हाल क्यों कह दिया। लड़के ने कहा मेरी मा ने कहा है कि झूठ कभी मत बोलना तो मैं मा की आज्ञा का पालन करता हूं।

सरदार पर इस बात का बड़ा असर हुआ। उसकी आँखें भर आईं। उसने लड़के को उठा कर गले में लगा लिया। और [illegible] सब साथियों को बुला कर कहा, देखो [illegible] छोटा सा लड़का अपने प्राण की कुछ पर[illegible] करके अपनी मा की आज्ञा का पालन करता है। हम सब को धिक्कार है कि इतने बड़े होकर भी परम पिता भगवान् की आज्ञा के विरुद्ध चलते हैं। यह कह कर सरदार ने अपना सब लूट का माल साथियों को बांट दिया और कहा कि तुम लोग अपने अपने घर जाओ और अब इस बुरे कर्म को छोड़ दो। सरदार लड़के को लेकर, उसके ठिकाने पहुँचा दिया और खुद एक लंगोटी बांध कर जंगल की राह ली। सच बोलने से बोलनेवाले ही का उपकार नहीं होता बल्कि बहुतों का चाल चलन सुधर जाता है।

रामजीवन नेवटिया, विद्यार्थी।

डा० मिस यामिनी सेन।

आप भारत के [illegible] पहली [illegible] लंदन कालेज की [illegible] हैं।

हरिहर-भेट।

(१)

सज्जन हरिहर भेट मनोहर,
देख लीजिए हो प्रसन्न तर।
लक्ष्मी नारायण हस्ती पर,
गौरि शंकर हैं नन्दी पर।

(२)

हरि लक्ष्मी को थाम रहे हैं,
शिव गौरि को लिए हुए हैं।
गणपति सुख-सागर में पैठे,
गिरिजा की गोदी में बैठे।

(३)

शिव के कर में त्रिशूलादि हैं,
हरि के कर में त्यों गदादि हैं।
शम्भु कंठ पर फणी सुहावे,
विष्णु हिये कौस्तुभ मणि भावे।

(४)

शिव के शिर पै गंगा सोहे,
चन्द्रकला जग के मन मोहे।
विष्णु शीश पै मुकुट मनोहर,
शोभा देता है निर्मलतर।

(५)

भिक्षापात्र लिए हैं शिवजी,
भिक्षा देती हैं लक्ष्मीजी।
शंकर चकित विलोके गिरिजा,
हैं प्रसन्न मन में जलनिधिजा।

(६)

करी और नन्दी के आनन,
बने एक ही शोभा-कानन।
परियां उड़ी हुई आती हैं,
दृश्य देख कर सुख पाती हैं।

श्रीगिरिधर शर्मा।

ग्राहकों से निवेदन।

"चित्रमय-जगत्" के उन ग्राहकों का मूल्य, जो कि दिसम्बर सन १९११ से इस पत्र के ग्राहक हैं, इस संख्या के साथ समाप्त होता है, अतएव कृपया वे अपने अगले वर्ष का मूल्य मनीआर्डर से भेज कर कृतार्थ करें, अथवा हमें वी० पी० से अगला अंक भेजने की आज्ञा दें। आशा है कि हमारे कृपालु ग्राहक हमारी इस प्रार्थना पर ध्यान देंगे। मनीआर्डर के कूपन में अपना ग्राहक नम्बर अवश्य लिखना चाहिए।

व्यवस्थापक-मैनेजर।

सातवाँ महाराष्ट्र-साहित्य-सम्मेलन ।

महाराष्ट्र-साहित्य-सम्मेलन का सातवाँ अधिवेशन २६, ३० और ३१ अक्टूबर को अकोला (बरार प्रान्त) में बड़े धूमधाम के साथ हो गया। इसकी स्वागतकारिणी सभा के अध्यक्ष अकोला के प्रसिद्ध साहित्यसेवी रा० ब० विष्णु मोरेश्वर महाजनी एम० ए० थे और सम्मेलन के सभापति पूना के प्रसिद्ध ग्रन्थकार श्रीयुत हरि नारायण आपटे थे ।

रा० ब० विष्णु मोरेश्वर महाजनी।
[स्वागत कमेटी के अध्यक्ष]

महाजनी महाशय ने अपने व्याख्यान में अनेक बातों का विचार करते हुए कहा कि " इस सम्मेलन में मराठीभाषा और साहित्य का प्रसार, साहित्य सम्बन्धी चर्चा, ग्रन्थपरीक्षा, चलते फिरते हुए पुस्तकालय, इत्यादि अनेक बातों का विचार अवश्य होना चाहिए। परन्तु सम्पूर्ण कार्य के लिए केवल मौखिक सहानुभूति ही से काम नहीं चलेगा; किन्तु परिषद को पुस्तक प्रकाशन का काम भी अपने हाथ में लेना चाहिए और उसके लिए पाठकवर्ग की सहानुभूति प्राप्त करनी चाहिए। परिषद को रजिस्टर्ड करना चाहिए, और एक वेतनभोक्ता मंत्री रख कर परिषद-सम्बन्धी सभी हलचल बराबर वर्ष भर जारी रखने का प्रयत्न करना चाहिए। "

श्रीयुत आपटे ने अपने साहित्य की उन्नति दिखलाते हुए, इस प्रकार कहा, " विश्वविद्यालय के पदवीधरों का ध्यान भी अब मातृभाषा में ही होनी चाहिए, (३) साहित्यपरिषद के समान संस्थाओं को अपने कोश की एक ऐसी नवीन आवृत्ति तैयार करनी चाहिए जिसमें परकीय भाषाओं से अपनी भाषा में आये हुए शब्दों का भी समावेश हो; और (४) भारतीय मुख्य देशभाषाओं की सहकारिता से वैज्ञानिक परिभाषा स्थिर करनी चाहिए। इन साधनों के पूर्ण करने के लिए विश्वविद्यालय के अधिकारियों, राजा-महाराजाओं और सब भाषाओं के साहित्यप्रेमियों की सहानुभूति प्राप्त करनी चाहिए। हमें अपनी मातृभाषा का अभिमान रखना चाहिए। क्योंकि साहित्य के सब हेतु परिपूर्ण करने का सामर्थ्य उसमें आ गया है। अब, उस सामर्थ्य का उपयोग करके उसे अधिक समर्थ करना हमारा काम है। "

श्रीयुत हरि नारायण आपटे।
[सम्मेलन के अध्यक्ष]

सभापति के भाषण के बाद शेष समय में और दूसरे, तीसरे दिन अनेक विषयों पर निबन्ध पढ़े गये और व्याख्यान हुए। 'स्त्रीशि[illegible]' 'संस्कृत का प्र[illegible]' 'इतिहास ले[illegible]के गुण,' कवि, [illegible] सगीत, साहित्य, इत्यादि अनेक उपयोगी विषयों पर चर्चा हुई। यों तो कई चलतू प्रस्ताव पास हुए, परन्तु उनमें दो बड़े महत्व के थे। प्रथम " विश्वविद्यालय और देशी भाषा " और दूसरा " साहित्यपरिषद की रचना "।

इनमें से दूसरा प्रस्ताव इस प्रकार था " मराठी भाषा और

[illegible]

[illegible]

ना चाहिए और उसी समय परिषद् की भी ठक और वर्षभर का रिपोर्ट उपस्थित हुआ र। वार्षिक सम्मेलन में इस परिषद् का एक ध्यक्ष, पाँच उपाध्यक्ष, बीस सभासद, दो त्री और एक कोषाध्यक्ष नियत करके, इसी कार्यकारिणी सभा के बहुमत से परिषद की सारी हलचल हुआ करे, इत्यादि...... " यह स्ताव पास हो गया और कार्यकर्ता महाशयों की सभा भी बन गई। श्रीयुत महाजनी अभी परिषद के अध्यक्ष नियत हुए हैं। इसके सिवाय अन्य बड़े बड़े साहित्यसेवियों को दूसरे पदों पर नियत किया गया है।

कुछ मास पूर्व हमने 'चित्रमयजगत्' के द्वारा गुजराती साहित्यसम्मेलन का सचित्र वृत्तान्त उपस्थित किया था और आज "महाराष्ट्र-साहित्यसम्मेलन" का संक्षिप्त वर्णन हमारे पाठकों के सम्मुख है। क्या साहित्य-सम्मेलन के कार्यकर्तागण उक्त गुजराती और महाराष्ट्र-साहित्यसेवियों की परिपाटी का अनुकरण करेंगे?

साहित्य-चर्चा।

स्वामी दयानन्द सरस्वती का वेदभाष्य और अध्यापक मैक्समूलर।

लाहोर के उर्दू समाचारपत्र "आर्यगज़ट" के २३ कार्तिक के अंक में स्वामी दयानन्द सरस्वती के विषय में अनेक यूरोपि... विद्वानों के मत प्रकाशित किये गये हैं। उनमें प्रो० ... मैक्समूलर का भी मत दिया हुआ है। यह मत उक्त ... साहब ने आम तौर पर प्रकाशित किया था, कि... ... पत्र में नहीं। अतएव इसे विशेष प्रामाणिक मालूम ... ही पड़ेगा।

"स्वामी दयानन्द की जिन्दगी का हमारे पास बहुत मसाला है। उन्होंने ब्राह्मणधर्म में एक बड़ी भारी इस्लाह का काम किया। और जहाँ तक सोशल रेफार्म का काम है—वह बड़े फराग दिल और आज़ाद दिल मालूम होते हैं। वह ब्राह्मण-ग्रन्थों को वेदों की तरह ईश्वरकृत नहीं मानते थे। उन्होंने वेदों का अच्छी तरह भाष्य किया, जिनसे मालूम होता है कि वह संस्कृत के बड़े आलिम फ़ाज़िल थे और उनका मुतालअ बड़ा वसीह था।

उन्होंने विधवा-विवाह जायज़ ठहराया। लड़कों और लड़कियों की शादी की उम्र को बढ़ाने की तहरीक में खास हिस्सा लिया। और अपने आपको जात-पाँत, खान-पान वगैरः फ़िज़ूल पहलुओं में आज़ाद साबित किया। उन्होंने मूर्तिपूजा और बहुत से ईश्वर होने का खण्डन किया। यूरप में भी इनका नाम बहुत मशहूर हो गया है। इसमें शक नहीं कि वह बड़े बलवान् विपक्षी थे। और इनका प्रभाव बढ़ते बढ़ते यहाँ तक बढ़ा कि यह शुभा किया जाता है कि आखिर में उनके मुख़ालिफ़ लश्कर के फकीर कट्टर ब्राह्मणों ने अपने ज़बरदस्त विपक्षी को ज़हर दे दिया। इनकी मृत्यु अचानक हुई। लेकिन भारतवर्ष में इनके अनुयायियों का आर्यसमाज के नाम से अब भी बहुत बड़ा और बढ़ता हुआ गिरोह है, जो यूरोपियन प्रभावों से अलग रहता है।"

ग्रन्थसाहित्य।

१ तृतीय वैद्यक सम्मेलन के सभापति की वक्तृता:—प्रकाशक मंत्री आयुर्वेद महामण्डल प्रयाग। मूल्य ॥) आने। श्रीयुत कविराज पं० गणनाथ सेन महाशय से हमारे पाठक परिचित हैं। आपका सचित्र संक्षिप्त चरित "चित्रमय-जगत्" में प्रकाशित हो चुका है। आपने गत वर्ष प्रयाग में जो वक्तृता सभापति के नाते से दी, वही अब पुस्तकाकार प्रकाशित हो गई है। इसमें आपने भारतीय आयुर्वेद का सारगर्भित और मार्मिक विवेचन किया है। इसके पढ़ने से अपने आयुर्वेद की पूर्व-दशा पर अभिमान और वर्तमान दशा पर शोक होता है। प्रत्येक आयुर्वेद-प्रेमी को इसे एक बार पढ़ जाना चाहिए।

२ सम्मति प्रकाशिका:—लेखक पं० इन्द्रनारायण-शर्मा, पो० आ० सराय अकिल, प्रयाग। पृष्ठसंख्या ६५। मूल्य १) ६०। यह पुस्तक उक्त पंडितजी ने भ्रमग्रस्त ... की बुराई को दूर करने, आर्य-संस्कृति, सदाचार, इनके प्रचार करने, के लिए लिखी है। इसमें आपने पूर्णता का अनन्य साबित करने की चेष्टा की है और साथ ही अपने प्रतिपक्षियों की कटुभाषा भी, व्यर्थ गयी है। पंडितजी संस्कृत के विद्वान् मालूम होते हैं, अतएव 'भाषा' में उनका प्रयत्न लिखना अभिनन्दनीय है; परन्तु हम नहीं कह सकते कि आपका यह मत आधुनिक काल में कहाँ तक माना जा सकता है। भाषा इसकी परिमार्जनीय है।

३ शान्ता—ले० पं० ओंकारनाथ बाजपेयी। प्रकाशक ओंकारप्रेस, प्रयाग। पृ०सं० १५६। मूल्य आठ आना। स्त्रियों के लिए यह बहुत ही उपयोगी पुस्तक है। इसमें एक आदर्श सच्चरित्रा कन्या का जीवनवृत्तान्त लिखा गया है। इस कन्या ने अपने सद्गुणों से अपने कुटुम्ब को किस प्रकार स्वर्गधाम बना दिया, इसी बात का चित्र इस पुस्तक में अत्यन्त उत्तम रीति से खींचा गया है। प्रत्येक गृहस्थ को यह पुस्तक अपनी कन्या के हाथ में देना चाहिए—

लक्ष्मीदेवी बाजपेयी।

४ बालाबोधिनी (पाँच भाग):—सम्पादक पं० रामजीलाल शर्मा। प्रकाशक इंडियन प्रेस, प्रयाग। मूल्य क्रमशः २, ३, ४, ५, ६ आने। यों तो स्त्रियों के पढ़ने के लिए आर्यसमाज की कृपा से बहुत सी छोटी बड़ी पुस्तकें हिन्दी में बन चुकी थीं, परन्तु छोटी छोटी बालिकाओं के लिये ऐसी कोई पाठ्य पुस्तकावली हिन्दी में नहीं थी जिसे पढ़कर लड़कियाँ थोड़े ही में बहुत सा ज्ञान क्रमशः प्राप्त कर लें। जहाँ तक हम जानते हैं। सरकार की ओर से भी लड़कियों के लिए अभी तक पाठ्य पुस्तकें नहीं तैयार हुईं, ऐसी दशा में पं० रामजीलाल शर्मा और इंडियन प्रेस को इन पुस्तकों के प्रस्तुत करने के लिए जितना ही धन्यवाद दिया जाय, थोड़ा है। बालाबोधिनी के इन पाँचों भागों में सीता, सावित्री, दमयंती, कर्मदेवी, इत्यादि कई सती साध्वी स्त्रियों के जीवनचरित्र, कई उपदेशात्मक, मनोरंजक और भक्तिविषयक कविताएँ तथा अन्यान्य उपयोगी पाठ आ गये हैं। पुस्तकों की भाषा सरल और विषयों का निर्वाचन क्रमशः गम्भीर है। हमारी राय में यदि यही पुस्तकें गवर्नमेन्ट हिन्दी की कन्यापाठशालाओं में जारी कर दे तो बड़ा उत्तम हो। परन्तु जब तक गवर्नमेन्ट ऐसा न कर सके तब तक निजी तौर पर कन्यापाठशालाओं में और घर पर इन पुस्तकों के द्वारा कन्याओं को शिक्षा देना उचित होगा—**लक्ष्मीदेवी बाजपेयी।**

५ शालोपयोगी भारतवर्ष.—प्रकाशक दामोदर सांवलराम ऐण्ड कम्पनी, ठाकुरद्वारा, बम्बई। पृष्ठ संख्या ३७८। मूल्य १ रुपया। यह श्रीयुत गोविन्द सखाराम सरदेसाई, बी० ए० कृत मराठी-पुस्तक का हिन्दी अनुवाद है। सरदेसाई महाशय मराठी के प्रसिद्ध इतिहास-लेखक हैं। आपने मराठीभाषा में एक बहुत बड़ा विस्तृत भारतवर्ष का इतिहास लिखा है। उसीका सारांश लेकर आपने मूल पुस्तक कई वर्ष पहले मराठी में लिखी थी। इसकी कई आवृत्तियाँ हो चुकी हैं। उसीका यह हिन्दी-अनुवाद है। इसमें दिल्लीदरबार तक का सम्पूर्ण भारतवर्ष का इतिहास आ गया है। हिन्दी में अभी तक इस प्रकार का बालकोपयोगी इतिहास नहीं बना था। प्रत्येक हिन्दीहितैषी को यह पुस्तक देखनी चाहिए। जिल्द कपड़े की बहुत मजबूत पुट्ठे की बँधी हुई है।

६. श्रीभट्टिमहाकाव्यम्.—संस्कृत में यह काव्य प्रसिद्ध ही है। अब इसे पंडित धनुर्धर शर्मा ने मूल श्लोक के नीचे पदच्छेद, अन्वय, व्याख्या, और भावार्थ इत्यादि देकर सम्पादित किया है। पंडितजी संस्कृत के विद्वान् हैं। आपने हिन्दीभाषा-भाषियों को उक्त काव्य का रसास्वादन कराने के लिए जो प्रयत्न किया है वह प्रशंसनीय है। पर खेद है कि पुस्तक में असंख्य अशुद्धियाँ रह गई हैं जिनके लिए पंडितजी को पुस्तक के आदि में १४ पृष्ठ का "शुद्धाशुद्धपत्र" लगाना पड़ा है! यह पुस्तक १) में उक्त पंडितजी से जहानाबाद, जिला गया, के पते पर मिल सकती है।

७. मिथिलाविनोद:—ले० स्वामी हनुमानदासजी प्रकाशक पं० सिद्धिनाथजी दीक्षित, सुधानिधि आफिस, दारागंज, प्रयाग। पृष्ठसंख्या ३७। मूल्य ≈) आना। श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणजी जब जनकपुर के बाजार में गये हैं तब वहाँ अनेक प्रकार के सौदागरों ने अपने अपने माल की प्रशंसा करके उसे खरीदने के लिए उनसे आग्रह किया है। इसी विषय का इस पुस्तक में पद्यात्मक वर्णन है। यह प्रसंग धनुषयज्ञ में "नगरलीला" के नाम से आता है। आजकल के लीलाकार प्रायः इस प्रसंग पर अश्लील और उत्तेजित वचन कह कर लोगों का मनोरंजन करते हैं; अपनी प्राचीन प्रतिष्ठा का ध्यान बिलकुल ही नहीं रखते। परन्तु इस पुस्तक में सौदागरों के मुख से जो प्रशंसात्मक वचन कहलाये गये हैं वे बहुत ही उचित और मर्यादायुक्त हैं। आध्यात्मिक प्रसंग भी इसमें कई स्थलों पर आये हैं। कविता [illegible] है। आजकल के लीलाकार यदि [illegible] के दिन इस पुस्तक से काम लिया करें तो सुरुचि का प्रचार होने में बड़ी मदद मिल सकती है।

८ वैदिकसिद्धान्तवर्णनकाव्यम्.—(भाषानुवाद सहितम्) प्रणेता कविरत्न श्रीअखिलानन्दशर्मा। प्रकाशक इंडियन प्रेस, प्रयाग। पृ० सं० १३३। मूल्य १० आने। विद्वानों ने काव्य के जो अनेक लक्षण बतलाये हैं उनमें 'रमणीयता' एक मुख्य लक्षण है। कवि लोग अपनी अपनी शक्ति के अनुसार इसी काव्यगुण को अपने काव्यों में प्रकट करने का प्रयत्न करते हैं। कोई इस गुण को प्राकृतिक वर्णन में ही दर्शाते हैं और कोई दिव्य और ईश्वरीय वर्णन में। परन्तु प्रकृत्युपवर्णन करके अपनी वाणी को परिश्रम देना दिव्य कवियों ने हेय माना है। बस, इस काव्य में यह बात नहीं है। इसमें ईश्वरीय दिव्य विषय का अत्यन्त रमणीय शब्दों और वृत्तों में वर्णन किया गया है। यों तो संस्कृतभाषा में एक से एक बढ़ कर प्राचीन काव्य हैं, परन्तु जहाँ तक हम जानते हैं, इस ढँग का कोई भी काव्य नहीं है। वर्तमान समय में इस प्रकार का उत्कृष्ट काव्य लिखना कविरत्नजी का ही कार्य है। इस काव्य में पद पद पर ईश्वरीय महिमा का प्रकाश झलक रहा है। "महर्षियों के हृदय में ईश्वर से वेद इस प्रकार प्रकट हुए जैसे दीपक से प्रकाश"—यह भाव देखिये इस श्लोक में कविरत्नजी ने किस प्रकार दर्शाया है:—

> महेश्वरः सर्वगतः प्रतीयते
> निसर्गशुद्धे हृदये महर्षिणाम्।
> प्रतीयमानाभिगमस्य कल्पना
> प्रवर्तते दीपकतः प्रकाशवत्॥

हम अपने पाठकों से प्रार्थना करते हैं कि वे ... एक बार इस काव्य का दिव्य आस्वाद अपनी ... को चखावें।

९ व्यायाम—रचयिता और प्रकाशक श्रीयुत ... खेलावन, अहरौरा, जिला मिर्जापुर। मूल्य –)॥ आ... इस पुस्तक में गद्य-पद्य रूप से व्यायाम और ब्र... का महत्व वर्णन किया गया है। ग्रन्थकर्ता का एक ... भी इस पुस्तक के आदि में लगा है। उससे जान ... है कि आप स्वयं व्यायाम करते हैं और आपने जो ... पुस्तक में लिखी हैं वे अनुभवसिद्ध हैं।

१० श्रीरामावतार.—पं० शिवरत्न शुक्ल ... मूल्य तीन आने। मिलने का पता—दीनदयाल दी... बछरावाँ, जिला रायबरेली। इस पुस्तक में राम और रा... वतार से सम्बन्ध रखनेवाली कई व्यक्तियों के चरित्र ... संक्षिप्त समालोचना की गई है। पुस्तक अपने ढंग की नई ... है। चाहे इस पुस्तक के कोई कोई सिद्धान्त सर्वमान्य ... हों, तथापि यह पुस्तक अपने पाठकों को विचार करने ... प्रवृत्त करेगी।

शरद्विलास।

१

अरुण-उदय देखो व्योम में यों सुहाता,
कनक-मिलन जैसे नीलिमा में दिखाता,
रघुवर अथवा हैं मैथिली-संग जाते;
तड़ित-सहित या तो मेघ हैं श्याम आते।

२

रवि-कर यह आते भूमि की ओर कैसे,
गगन बरसता हो स्वर्ण की वृष्टि जैसे।
जिधर जिधर देखो श्यामता है लखाती,
सुखमय हरियाली शस्य की है सुहाती।

३

घर घर बजते हैं शंख गम्भीरघोष,
सब जन तजते हैं दुःख-दारिद्र्य-दोष।
हवन-पवन छाई है रही है सुवास,
सब विधि सुखदायी है शरद् का विकास!

मंगलसमाचार

दासबोध

हिन्दी-संसार बहुत दिनों से जिस ग्रन्थरत्न की मार्गप्रतीक्षा कर रहा था वही अलौ[illegible] ग्रन्थरत्न अब छप कर तैयार हो गया है। महाराष्ट्रकेसरी छत्रपति शिवाजी महाराज [illegible] समर्थ श्रीरामदास स्वामी का नाम हिन्दीसाहित्यप्रेमियों को मालूम ही है उन्हीं के रचे ग्रन्थराज दासबोध का यह हिन्दी-अनुवाद है। यह ग्रन्थ हिन्दीभाषा में अपने ढँग का [illegible]नोय है। श्रीसमर्थ ने अपनी प्रभावशालिनी वाणी से इसमें मनुष्यमात्र के लिए धार्मिक, व्यव[illegible]क और ईश्वरसम्बन्धी उपदेश दिया है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पदार्थों के पाने [illegible] इस ग्रन्थ में सुगम उपाय बतलाया गया है। श्रीसमर्थ इस ग्रन्थ के पहले समास में स्वयं [illegible]तिना के तौर पर लिखते हैं:—

"इस ग्रन्थ के सुनने से (पढ़ने से) अज्ञान, दुःख और भ्रान्ति नाश होती है, तथा [illegible] ही ज्ञान आ जाता है ॥ ३० ॥ योगियों का परम भाग्य वैराग्य प्राप्त होता है और [illegible]कमहित, यथायोग्य, चातुर्य का ज्ञान हो जाता है ॥ ३१ ॥ जो लोग भ्रान्त, अवगुणी और [illegible]णी हैं वे भी इस ग्रन्थ के पढ़ने से सुलक्षणी हो जाते हैं और चतुर, तार्किक तथा विच[illegible] लोग अवसर परखने लगते हैं ॥ ३२ ॥ जो आलसी हैं वे उद्योगी हो जाते हैं। पापी [illegible]ते हैं। भक्तिमार्ग की निन्दा करनेवाले उसीकी प्रशंसा करने लगते हैं। शुद्ध मनुष्य [illegible] बन जाते हैं; मूर्ख अति दक्ष हो जाते हैं और अभक्त लोग भी, भक्तिमार्ग पर आकर, [illegible] पाते हैं ॥ ३४ ॥ इस ग्रन्थ से नाना प्रकार के दोष नाश होते हैं। पतित लोग पावन हो [illegible] हैं और इसके श्रवणमात्र से प्राणी उत्तम गति पाते हैं ॥ ३५ ॥

बस, इससे अधिक और हम स्वयं इसकी प्रशंसा नहीं कर सकते। इस ग्रन्थ का अनु[illegible] प्रसिद्ध साहित्यसेवी पं० माधवराव सप्रे बी० ए० और पं० लक्ष्मीधरजी वाजपेयी (भू० सम्पादक "हिन्दी-केसरी" और वर्तमान सम्पादक "हिन्दी-चित्रमयजगत्") ने मिल [illegible]किया है। इससे पाठकगण पुस्तक के अन्तरंग का अनुमान सहज ही में कर सकते हैं। [illegible]क के बहिरंग के विषय में हम यह विश्वास दिलाते हैं कि वह "चित्रशाला प्रेस" के नाम [illegible] अनुकूल ही है। डेमी अठपेजी साइज़ के लगभग ५०० से अधिक पृष्ठ हैं। [illegible]समर्थ का सचित्र चरित्र भी है। इतनी बड़ी और उपयोगी पुस्तक का मूल्य हमने [illegible] रु० रखा है। इतनी कम कीमत रखने से हमारा तात्पर्य यही है कि जिससे यह [illegible] और ऐतिहासिक ग्रन्थ प्रत्येक हिन्दीभाषी के घर घर में प्रविष्ट हो जाय और [illegible] लोग इस अलौकिक ग्रन्थ का पाठ करके अपने जीवन को सार्थक कर सकें।

मैनेजर, चित्रशाला स्टीमप्रेस, पूना सिटी।

मुफ्त ! इनाम ! ! उपहार ! ! !

[illegible] ([illegible]) धन मान प्रतिष्ठा बढ़ाने और सुख का मार्ग दिखानेवाले सुन्दर २ [illegible] के उपदेश और [illegible] लाभ का बड़ा कैलेंडर इन मनुष्यों को मुफ्त में देंगे जो [illegible] [illegible] हिन्दी जाननेवालों के १०-२० नाम और पते साफ़ २ लिख भेजेंगे।

पता-पं० सूर्यप्रसाद शर्मा ([illegible]) मेरठ सिटी।

कन्या महाविद्यालय पुस्तकालय।

[illegible] शहर में [illegible] तौर पर कन्यापाठशालाओं के लाभार्थ [illegible] पुस्तकें [illegible] हैं और [illegible] और पुस्तकें भी [illegible] रक्खी हुई हैं।

मिलने का पता—

मैनेजर, कन्यामहाविद्यालय पुस्तकालय।

[illegible] कम्पनी के

स्वदेशी बटन।

[illegible]

संस्कृत-प्रबोध।

[illegible]

राजा रविवर्मा के

प्रसिद्ध चित्र।

यह एक ८८ चित्रों की पुस्तक मोटे और चिकने कागज (आर्टपेपर) पर छपी तैयार है। प्रत्येक चित्र के साथ उसकी ऐतिहासिक कथा भी दी गई है। आर्यभाषा में बिलकुल नई चीज़ है। आवरणपृष्ठ पर राजा रविवर्मा का प्रसिद्ध चित्र "शकुन्तला-जन्म" तीन रंगों में दिया है। पुस्तक की शोभा देखते ही बनती है। तिस पर भी मूल्य सब के सुभीते के लिए सिर्फ १) ही रुपया रखा है।

सूचना—पुस्तक की मांग धड़ाधड़ आ रही है। एक एक ग्राहक ने अपने और अपने मित्रों के लिए पांच पांच दस दस तक कापियां मँगवाई हैं। अब ग्राहकों के पास पुस्तकें भेजी जा रही हैं। कृपापूर्वक ग्राहकगण वी० पी० को स्वीकार करें। नवीन ग्राहक शीघ्रता करें। अन्यथा दूसरा एडीशन निकलने तक मार्गप्रतीक्षा करनी पड़ेगी।

मैनेजर-चित्रशाला प्रेस पूना।

कामशास्त्र।

सब प्रकार के शारीरिक क्लेश और दुराचरणों से बचने के लिए हमारी [illegible] कामशास्त्र पुस्तक [illegible] यह पुस्तक [illegible] सम्पत्ति की [illegible] मार्गदर्शक है। वैद्य शा० मणिशंकर गोविन्दजी, जामनगर, काठियावाड़।

डा० बाटलीवाले की रामबाण औषधें।

[illegible]

डा० [illegible] बाटली [illegible], [illegible] बम्बई।

चित्रमय-जापान।

([illegible] जापान की [illegible])

इस पुस्तक में जापान-विषयक [illegible] चित्र दिये गये हैं। [illegible]

[illegible]

होना चाहिए और उसी समय परिषद् की भी बैठक और वर्षभर का रिपोर्ट उपस्थित हुआ करे। वार्षिक सम्मेलन में इस परिषद् का एक अध्यक्ष, पाँच उपाध्यक्ष, बीस सभासद, दो मंत्री और एक कोषाध्यक्ष नियत करके, इसी कार्यकारिणी सभा के बहुमत से परिषद की सारी हलचल हुआ करे, इत्यादि...... " यह प्रस्ताव पास हो गया और कार्यकर्ता महाशयों की सभा भी बन गई। श्रीयुत महाजनी अभी परिषद के अध्यक्ष नियत हुए हैं। इसके सिवाय अन्य बड़े बड़े साहित्यसेवियों को दूसरे पदों पर नियत किया गया है।

कुछ मास पूर्व हमने 'चित्रमयजगत्' के द्वारा गुजराती साहित्यसम्मेलन का सचित्र वृत्तान्त उपस्थित किया था और आज "महाराष्ट्र-साहित्यसम्मेलन" का संक्षिप्त वर्णन हमारे पाठकों के सन्मुख है। क्या साहित्य-सम्मेलन के कार्यकर्तागण उक्त गुजराती और महाराष्ट्र-साहित्यसेवियों की परिपाटी का अनुकरण करेंगे?

साहित्य-चर्चा।

स्वामी दयानन्द सरस्वती का वेदभाष्य और अध्यापक मैक्समूलर।

लाहौर के उर्दू समाचारपत्र "आर्यगजट" के [illegible] नवंबर के अङ्क में स्वामी दयानन्द सरस्वती के विषय में अनेक यूरोपि[illegible] विद्वानों के मत प्रकाशित किये गये हैं। उनमें [illegible] मैक्समूलर का भी मत दिया हुआ है। यह मत उन[illegible] साहब ने आम तौर पर प्रकाशित किया था, कि[illegible] तो पत्र में नहीं। अतएव इसे विशेष प्रमाणिक [illegible] ही पड़ेगा।

'स्वामी दयानन्द की जिन्दगी का हमारे पास बहुत [illegible] है। उन्होंने ब्राह्मणधर्म में एक बड़ी भारी इसलाह का काम किया। और जहाँ तक [illegible] का [illegible] है—वह बड़े [illegible] दिल और आजाद दिल मालूम होते हैं। वह [illegible] वेदों की तरह ईश्वरकृत [illegible] मानते थे। उन्होंने वेदों का अच्छी तरह भाष्य किया, [illegible] मालूम होता है कि वह संस्कृत के बड़े [illegible] थे और उनका [illegible] था।

उन्होंने [illegible] विवाह [illegible]। लड़कों और [illegible] की [illegible] में [illegible] किया। और [illegible] जात-पाँत, खान-पान [illegible] बहुतों में [illegible] किया। उन्होंने [illegible] और [illegible] में ईश्वर होने का खण्डन किया। [illegible] इनका [illegible] बहुत [illegible] हो गया है। इसमें [illegible] कि वह बड़े [illegible] थे। और इनका [illegible] कि वह [illegible] किया [illegible] है कि [illegible] में इनके [illegible] के [illegible] में [illegible] दिया। [illegible] भारतवर्ष में इनके अनुयायियों [illegible] बहुत [illegible] और [illegible] है।'

ग्रन्थसमालोचना।

१ [illegible] के समालोचना की [illegible]

[illegible]

२ [illegible]

[illegible]

इसमें आपने पृथ्वी का अचला साबित करने की चेष्टा की है और साथ ही अपने प्रतिपक्षियों को, कटुवचनों में, खब खबर भी ली है। पंडितजी संस्कृत के विद्वान् मालूम होते हैं, अतएव 'भाषा' में उनका ग्रन्थ लिखना अभिनन्दनीय है; परन्तु हम नहीं कह सकते कि आपका यह मत आधुनिक काल में कहाँ तक माना जा सकता है। भाषा इसकी परिमार्जनीय है।

३ शान्ता:—लें० पं० ओंकारनाथ वाजपेयी। प्रकाशक ओंकारप्रेस, प्रयाग। पृ०सं० १५६। मूल्य आठ आना। स्त्रियों के लिए यह बहुत ही उपयोगी पुस्तक है। इसमें एक आदर्श सच्चरित्रा कन्या का जीवनवृत्तान्त लिखा गया है। इस कन्या ने अपने सद्गुणों से अपने कुटुम्ब को किस प्रकार स्वर्गधाम बना दिया, इसी बात का चित्र इस पुस्तक में अत्यन्त उत्तम रीति से खींचा गया है। प्रत्येक गृहस्थ को यह पुस्तक अपनी कन्या के हाथ में देना चाहिए—

लक्ष्मीदेवी वाजपेयी।

४ बालाबोधिनी (पाँच भाग):—सम्पादक पं० रामजीलाल शर्मा। प्रकाशक इंडियन प्रेस, प्रयाग। मूल्य क्रमशः २, ३, ४, ५, ६ आने। यों तो स्त्रियों के पढ़ने के लिए आर्यसमाज की कृपा से बहुत सी छोटी बड़ी पुस्तकें हिन्दी में बन चुकी थीं, परन्तु छोटी छोटी बालिकाओं के लिये ऐसी कोई पाठ्य पुस्तकावली हिन्दी में नहीं थी जिसे पढ़कर लड़कियाँ थोड़े ही में बहुत सा ज्ञान क्रमशः प्राप्त कर लें। जहाँ तक हम जानते हैं। सरकार की ओर से भी लड़कियों के लिए अभी तक पाठ्य पुस्तकें नहीं तैयार हुईं, ऐसी दशा में पं० रामजीलाल शर्मा और इंडियन प्रेस को इन पुस्तकों के प्रस्तुत करने के लिए जितना ही धन्यवाद दिया जाय, थोड़ा है। बालाबोधिनी के इन पाँचों भागों में सीता, सावित्री, दमयंती, कर्मदेवी, इत्यादि कई सती साध्वी स्त्रियों के जीवनचरित्र, कई उपदेशात्मक, मनोरंजक और भक्तिविषयक कविताएं तथा अन्यान्य उपयोगी पाठ आ गये हैं। पुस्तकों की भाषा सरल और विषयों का निर्वाचन क्रमशः गम्भीर है। हमारी राय में यदि यही पुस्तकें गवर्नमेन्ट हिन्दी की कन्यापाठशालाओं में जारी कर दे तो बड़ा उत्तम हो। परन्तु जब तक गवर्नमेन्ट ऐसा न कर सके तब तक निजी तौर पर कन्यापाठशालाओं में और घर पर इन पुस्तकों के द्वारा कन्याओं को शिक्षा देना उचित होगा—**लक्ष्मीदेवी वाजपेयी।**

५ शालोपयोगी भारतवर्ष—प्रकाशक दामोदर सावलाराम ऐण्ड कम्पनी, ठाकुरद्वारा, बम्बई। पृष्ठ संख्या ३०८। मूल्य १ रुपया। यह श्रीयुत गोविन्द सखाराम सरदेसाई, बी० ए० कृत मराठी-पुस्तक का हिन्दी अनुवाद है। सरदेसाई महाशय मराठी के प्रसिद्ध इतिहास-लेखक हैं। आपने मराठीभाषा में एक बहुत बड़ा विस्तृत भारतवर्ष का इतिहास लिखा है। उसीका सारांश लेकर आपने मूल पुस्तक कई वर्ष पहले मराठी में लिखी थी। इसकी कई आवृत्तियाँ हो चुकी हैं। उसीका यह हिन्दी-अनुवाद है। इसमें [illegible] तक का सम्पूर्ण भारतवर्ष का इतिहास आ गया है। हिन्दी में अभी तक इस प्रकार का बालोपयोगी इतिहास नहीं बना था। प्रत्येक हिन्दीहितैषी को यह पुस्तक देखनी चाहिए। जिल्द कपड़े की बहुत मजबूत पुट्ठे की बंधी हुई है।

६. श्रीमहिम्नकाव्यम्—संस्कृत में यह काव्य प्रसिद्ध ही है। अब इसे पंडित धनुर्धर शर्मा ने मूल श्लोक के नीचे पदच्छेद, अन्वय, व्याख्या, और भावार्थ इत्यादि देकर [illegible] किया है। पंडितजी संस्कृत के विद्वान् हैं। आपने [illegible] को उक्त काव्य का [illegible] करने के लिए जो प्रयत्न किया है वह प्रशंसनीय है। [illegible] है कि पुस्तक में [illegible] अशुद्धियाँ रह गई हैं [illegible] के अन्त में १४ पृष्ठ का "शुद्धा-शुद्धपत्र" [illegible] है; यह पुस्तक ॥) में [illegible] से [illegible] मिल सकती है।

७ मिथिलाविनोद:—[illegible]

[illegible]

अपनी प्राचीन प्रतिष्ठा का ध्यान बिलकुल ही नहीं रखते। परन्तु इस पुस्तक में सौदागरों के मुख से जो [illegible] वचन कहलाये गये हैं वे बहुत ही उचित और मर्यादायुक्त हैं। आध्यात्मिक प्रसंग भी इसमें कई स्थलों पर आये हैं। कविता रोचक है। आजकल के [illegible] यदि [illegible] के दिन इस पुस्तक से काम लिया करें तो सुरुचि का प्रचार होने में बड़ी मदद मिल सकती है।

८ वैदिकसिद्धान्तवर्णनकाव्यम्:—(भाषानुवाद समेतम्) प्रणेता कविरत्न श्रीअखिलानन्दशर्मा। प्रकाशक इंडियन प्रेस, प्रयाग। पृ० सं० १२१। मूल्य १० आने। विद्वानों ने काव्य के जो अनेक लक्षण बतलाये हैं उनमें 'रमणीयता' एक मुख्य लक्षण है। कवि लोग अपनी अपनी शक्ति के अनुसार इसी [illegible] गुण को अपने काव्यों में प्रकट करने का प्रयत्न करते हैं। कोई इस गुण को प्राकृतिक वर्णन में ही दर्शाते हैं, कोई दिव्य और ईश्वरीय वर्णन में। परन्तु प्राकृत[illegible] करके अपनी वाणी को परिश्रम देना दिव्य कवियों ने [illegible] माना है। बस, इस काव्य में यह बात नहीं है। इ[illegible] ईश्वरीय दिव्य विषय का अत्यन्त रमणीय शब्दों [illegible] वृत्तों में वर्णन किया गया है। यों तो संस्कृतभाषा [illegible] एक से एक बढ़ कर प्राचीन काव्य हैं; परन्तु जहाँ त[illegible] हम जानते हैं, इस ढंग का कोई भी काव्य नहीं है। वर्तमान समय में इस प्रकार का उत्कृष्ट काव्य लिखना कवि-रत्नजी का ही कार्य है। इस काव्य में पद पद [illegible] ईश्वरीय महिमा का प्रकाश झलक रहा है। "महर्षियों के हृदय में ईश्वर से वेद इस प्रकार प्रकट हुए जैसे दीप से प्रकाश"—यह भाव देखिये इस श्लोक में कविरत्नजी ने किस प्रकार दर्शाया है:—

> महेश्वरः सर्वगतः प्रतीयते
> निसर्गशुद्धे हृदये महर्षिणाम्।
> प्रतीयमानान्निगमस्य कल्पना
> प्रवर्तते दीपकतः प्रकाशवत्॥

हम अपने पाठकों से प्रार्थना करते हैं कि वे एक बार इस काव्य का दिव्य आस्वाद अपनी [illegible] को चखावें।

९ व्यायाम:—रचयिता और प्रकाशक [illegible] खेलावन, अहरौरा, जिला मिर्जापुर। मूल्य -)॥ इस पुस्तक में गद्य-पद्य रूप से व्यायाम और [illegible] का महत्त्व वर्णन किया गया है। ग्रन्थकर्ता [illegible] भी इस पुस्तक के आदि में लगा है। उससे [illegible] है कि आप स्वयं व्यायाम करते हैं और [illegible] पुस्तक में लिखी हैं वे अनुभवसिद्ध हैं।

१० श्रीरामावतार.—पं० [illegible] मूल्य तीन आने। मिलने का पता [illegible] बछरावाँ, जिला रायबरेली। इस पुस्त[illegible] बनारस से सम्बन्ध रखनेवाली कई [illegible] संक्षिप्त समालोचना की गई है। [illegible] है। चाहे इस पुस्तक के कोई [illegible] हों, तथापि यह पुस्तक अपने [illegible] प्रवृत्त करेगी।

अरुण-उदय
कनक-[illegible]
रघुवर [illegible]
[illegible]

[illegible]

एक प्रति का मूल्य आठ आने।
वर्ष २
अंक १२
मार्गशीर्ष, सम्वत् १९६९ विक्रमी–दिसम्बर, सन १९१२ ई०।
आणि

वर्ष २] मार्गशीर्ष, सम्वत् १९६९ विक्रमी—दिसम्बर, सन् १९१२ ईसवी। [अंक १२

परमपिता का आदेश।

सध्रीचीनान् वः संमनस्कृणो-
म्येकश्नुष्टीन त्संवननेन सर्वान्।
देवा इवामृतं रक्षमाणाः
सायं प्रातः सौमनसो वो अस्तु।

अथर्व० कां० ३ सू० ३० मं० ७।

सब सहृदय लोगो! चित्त-संस्कार पाओ,
सम सम सुख भोगो कार्य में ऐक्य लाओ।
बुधजन करते हैं ज्ञान का ज्यों प्रचार,
सतत हृदय में त्यों शुद्ध लाओ विचार॥

रामकृष्ण—वाक्सुधा।

विन्दु १५

पहले क्या?—ईश्वरप्राप्ति या समाजसुधार?

रात के ग्यारह बजे। नरेन्द्र आदि शिष्य सोने की तैयारी में लगे। महाराज की कोठरी ही में जमीन पर बिछौने डाल कर वे पड रहे।

श्रीरामकृष्ण का प्रातःस्मरण।

प्रभातकाल हुआ। कुछ शिष्य उठ कर बिछौने पर बैठ कर ईश्वर-चिन्तन करने लगे। और महाराज क्या कर रहे थे? वे अपनी अमृतसमानमधुर वाणी से नाम घोष कर रहे थे। बालक की तरह दिगम्बर वृत्ति से वे कोठरी में इधर उधर भ्रमण कर रहे थे। कोठरी में देवताओं के चित्र लगे हुए थे। उनमें से प्रत्येक चित्र के पास जा जा कर और दीवाल में अपना मस्तक घिस घिस कर वे उसे प्रणाम करते थे। इसके बाद दरवाजा खोल कर उन्होंने गंगा का दर्शन किया। तत्पश्चात् हरिनाम लेते हुए वे बीच ही में बोल उठे—"माता, सर्वत्र तू ही भरी हुई है। भागवत (भगवान् का चरित्र-ज्ञान-भजन) तू ही है, भक्त तू ही है, भगवान् भी तू ही है, (भजन, भजक, भज्य की त्रिपुटी तू ही है)। वेद, पुराण, तंत्र, गीता, गायत्री, इत्यादि के रूपों से प्रकट होनेवाली तेरी वाणी और तुझमें भिन्नत्व नहीं है, माता, तेरे भक्त भी केवल तेरे ही स्वरूप हैं! ब्रह्म तू ही है; शक्ति तू ही है, पुरुष तू ही है; प्रकृति तू ही है, विराट तू ही है; स्वराट् तू ही है, नित्य-लीलामयी तू ही है, चौबीस तत्व तू ही है।" गीता को सम्बोधन करके वे इतना ही बोले, "त्यागी, त्यागी, त्यागी, त्यागी।"

इतने ही में काली और राधाकान्त के मन्दिर में मंगलारति [illegible] की मिश्रित ध्वनि से [illegible] उठी, उस समय [illegible] थे। नौबतखाने से [illegible]

नरेन्द्र एक बात हुए कि [illegible] हुआ।

[illegible] इसके बाद वे प्रभु[illegible] पास आये। महाराज ईशान ओर की दालान में खड़े थे। उनके मुख पर हास्य झलक रहा था।

नरेन्द्रः—पंचवटी के पास अनेक नानकपंथी साधु बैठे हुए हमें देख पड़े।

महाराजः—हां, वे काल ही यहां आये हैं (नरेन्द्र से) तुम सब एक बार साथ ही बैठो तो। मैं एकबार आंखों भर तुम्हें देखना चाहता हूं।

सब शिष्य एक चटाई पर साथ ही बैठ गये। महाराज ने आनन्द से उनकी ओर देखा। इसके बाद वे उनसे भाषण करने लगे।

नरेन्द्रः—स्त्रीजन-संग-साधन तंत्र में कहा है न?

महाराजः—स्त्रीजनसंगसाधन! हां! पर वह मार्ग अच्छा नहीं।

स्त्रियों के तई मातृभाव।

तंत्र में ऐसा एक साधन कहा अवश्य है। पर यह बहुत अटपट है। उस मार्ग का स्वीकार करके सिद्धि प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है। उस मार्ग से साधक का पतन होना निश्चित ही है।

साधनमार्ग में चलते समय स्त्रीजनों की ओर साधक तीन भावनाओं से देख सकता है—वीरभाव, दासीभाव और सन्तानभाव। वीरभावसाधन में साधक रमण और स्त्री रमणी; दासीभावसाधन में साधक दासी और स्त्री स्वामिनी; और सन्तानभावसाधन में साधक सन्तान और स्त्री माता। मैं स्त्रीजनों की ओर मातृभाव से देखता हूं। दासीभाव बहुत बुरा नहीं। पर वीरभावसाधन से अपना पतन निश्चित ही रखा है। क्योंकि वह बहुत विकट है। सन्तानभाव ही बहुत शुद्धभाव है।

इतने ही में वे *नानकपंथी साधु* आये। वे महाराज को अभिवादन करके बोले:—नमो नारायण। बाद को महाराज ने उन्हें बैठने के लिए कहा।

ईश्वर के विषय में कुछ असम्भव नहीं।

महाराजः—ईश्वर के विषय में कुछ भी असम्भव नहीं। उसका स्वरूप मुख से कोई वर्णन नहीं कर सकता। उसके विषय में सब कुछ (ही) सम्भवनीय है। प्राचीन काल में दो योगी थे। ईश्वर-प्राप्ति के लिए वे साधन कर रहे थे। एक दिन नारदमुनि उनके आश्रमों के पास से जा निकले। उनमें से एक योगी नारदमुनि से बोला, "आप तो अभी वैकुंठ से पधारे होंगे? अतएव कृपा करके बतलाये कि नारायणजी इस समय क्या करते हैं।" नारद ने इस पर उत्तर दिया, "हां, आपका कहना सच है। मैं वैकुंठ ही से अभी आ रहा हूं। नारायण इस समय सुई के छिद्र से हाथियों और ऊंटों को पार करा रहे हैं, मैंने स्वयं ऐसा होते हुए देखा है।" यह सुन कर उनमें से एक योगी बोला "फिर उसमें आश्चर्य क्या है? ईश्वर के लिए कोई बात असम्भव नहीं।" पर दूसरा बोला, "यह कैसे हो सकता? यह बिलकुल असम्भव है। इससे तो यही जान पड़ता है कि आप वहां बिलकुल गये ही नहीं।"

पहला योगी बालक की तरह श्रद्धालु था। उसमें सच्ची श्रद्धा थी। *क्योंकि यह विचित्र ब्रह्मांड जिसने निर्माण किया है उसके लिए क्या असम्भव है?*

नव बजने आये। महाराज अपनी कोठरी में बैठे थे। इतने में मनमोहन (एक शिष्य) का कोननगर से सपरिवार आ पहुंचा। महाराज को प्रणाम करके वह बोला, "इन्हें मैं कलकत्ते लिए जाता हूं।" कुशल-प्रश्न पूछने के बाद महाराज उससे बोले, "आज प्रतिपदा है—आज का दिन अच्छा नहीं। और आज ही तू अपने बाल-बच्चों को कलकत्ते लिए जाता है! क्या कहूं भैया!" इतना ही कह कर वे हँसे और अन्य बातों की ओर चले।

नरेन्द्र और कलकत्ते के उनके मित्रों ने गंगा पर जाकर स्नान किया। इसके बाद कपड़े डालने के लिए वे महाराज की

बीजापुर-वर्णन।

ःसी समय यह नगर विजयपुर था। एक बार कभी न कभी विद्यापुर था। बद्यापुर, मुहम्मदपुर, बीजापुर, इत्यादि निरर्थक हुए ही हैं। परन्तु वर्तमान समय में इसे विजनपुर ही कहना ए! छै मील का तो शहरपनाह है; पर बस्ती छठवाँ हिस्सा भी या नहीं, इसमें संदेह ही है। अतएव, इस दृष्टि से विजनपुर जाय तो कुछ अनुचित नहीं। परन्तु हमारे कथन में कुछ और अर्थ है। विग्रह-व्युत्पत्ति की ओर अधिक ध्यान न देते हुए हम का यह अर्थ करते हैं कि यहां रहनेवाले लोगों के घरों की गा यदि छै हजार होगी तो गये हुए लोगों के लिए बनाये गये कीं, अर्थात् कब्रों की संख्या छै हजार एक पाई जायगी!

न कब्रों में से सब से प्रचण्ड, अतएव सब से पहले दृष्टि पडने- ति कब्र 'बोलगुम्बज' नामक है। यह चौदह पन्द्रह मील की दूरी से स्पष्ट देख पड़ती है, इसीसे इसकी प्रचण्डता पाठकों को म हो सकती है। इस गुम्बज ने बहुत विस्तृत जगह घेर ली है। तो लोग इसका नाम 'गोलगुम्बज' बतलाते हैं। परन्तु वास्तव सका नाम 'बोलगुम्बज' होना चाहिए; क्योंकि इसके अन्दर सा भी यदि कोई बोल देता है तो यह भी तुरन्त ही बोलने ता है; इसके सिवाय यह स्वयं कर दूसरे को बुलानेवाला है! न भीतर तो यह लोगों से बुल- ा ही है; किन्तु बाहर के भी ाने कितने लोग आज तक इसके य में बोलते आये हैं! अस्तु। गुम्बज़ सुलतान मुहम्मद आदिल- ह ने अपनी समाधि के लिए वाया। उस समय इस प्रकार के न बनवाने के विषय में बड़ी ाऊपरी हुआ करती थी। सुलतान म्मद के बाप को इब्राहीम जगद्- * कहते थे। उसने अपने ए जो रोज़ा बनवाया उसमें पूर्व सुन्दरता और कलाकौशल खलाया है। उसे शान्तिभवन ाने के लिए उसने अपने आग- स कुरान की आयतें खुदवा दी हैं। र कारण उसके लड़के मुहम्मद यह सोचा कि, अब इससे धिक अपनी समाधि के लिए क्या करना चाहिए। जान पड़ता है ; अपने पिता के रोज़े को नीचा दिखाने के लिए ही उसने बोलगुम्बज' को इतना भव्य बनवाया। परन्तु उसके बाद उसके ड़के दूसरे अली आदिलशाह ने भी अपने बाप के रोज़े को नीचा खाने के लिए एक प्रचण्डतर इमारत बनवाने का प्रारम्भ किया। हमके बाप की समाधि, अर्थात् इब्राहीम रोजा शहर के पश्चिम तरफ है और बाप का बोलगुम्बज़ पूर्व की ओर है। इन दोनों के बीच में करीब दो ढाई मील का अन्तर है। अतएव इस सुपुत्र ने अपनी प्रचण्डतर समाधि उन दोनों के बीच में बनवाने का प्रारम्भ करके सोचा था कि हमारी सुबह की छाया आजा के रोजा पर और सायंकाल की छाया पिता के गुम्बज पर पड़े, जिससे पितृपिता- मह को आश्रय मिले। परन्तु अली आदिलशाह का विचार उसके साथ ही चला गया और वह अधूरा ही रहा। अस्तु।

इब्राहीम रोजा तो शान्तिभवन है; परन्तु बोलगुम्बज ऐसा विचित्र है कि उसके अन्दर जानेवाला कोई भी और चाहे जैसे विचार उसके हों; पर उसके अन्दर जाकर बोलने भर की ही देरी होती है कि तुरन्त ही उसके मन में आनन्द की उत्पत्ति हो जाती है। प्रथम तो भीतर जानेवाले को यह गुम्बज भयानक सा मालूम होता है। परन्तु मीनार के सात जीने चढ़ कर जहां ऊपर गये और बाहर के छज्जे [illegible] विस्तृत [illegible] गुम्बज [illegible] जाना [illegible] मुख से निकल पड़ता है कि "देखिये तो यह रचना!" मुख से एक बार इन शब्दों के निकलते ही अनेक बार इसकी प्रतिध्वनि सुनाई देती है। यह विचित्रता देख कर ज्योंही मनुष्य हँसने लगता है कि बस चारों ओर से हास्य की ही प्रतिध्वनि सुनाई देती है-एक प्रकार का अट्टहास सा छा जाता है! लोग इसके अन्दर आकर इसी प्रकार से अनेक शब्दक्रीड़ाएं किया करते हैं।

(नं० १) बोलगुम्बज।

बीजापुर में समाधियों, मसजिदों और बावड़ियों की ही विशे- षता है। धनवान् मुसलमान इन तीनों में से किसी एक इमारत को ही बना कर अपने को धन्य सम- झता है। इस कारण आदिलशाही के दो सौ वर्ष के ज़माने में इन्हीं बातों की ओर विशेष कर कब्रों की अधिकता हो गई है, अतएव इस विजयनगर को कब्रिस्तान, अर्थात् श्मशान का रूप प्राप्त हो गया है!

इन कब्रों में से तीन कब्रें सब से बड़ी हैं अर्थात् सब से प्रचण्ड बोलगुम्बज, दूसरा सब से सुन्दर इब्राहीमरोजा और तीसरा सब से अपूर्ण अलीरोज़ा। इन तीनों का थोड़ा थोड़ा वर्णन ऊपर हो गया है।

(नं० २) अलीरोज़ा।

(नं० ३) इब्राहीमरोज़ा और मसजिद।

मसजिदों में सब से बड़ी और दर्शनीय जामा मसजिद है। इसके मुख्य भाग में देखो [illegible] हुई है कि जिसमें [illegible] हजार मुसलमान एक साथ ही नमाज़ पढ़ सकते हैं। इसके दोनों ओर दो बड़े बड़े [illegible] हैं और इसके बीच में भी [illegible] [illegible] ऊपर [illegible] है! यह सुन्दर और [illegible] हुई है। [illegible] में [illegible] हुई है और [illegible] हुआ है।

* [illegible]

कोठरी में आये उस समय महाराज बड़ी उत्सुकता के साथ नरेन्द्र से बोले, " जा, वटवृक्ष के नीचे बैठ कर कुछ देर ध्यान कर, आसन चाहिए ? "

नरेन्द्र और उसके ब्रह्मसमाजी बन्धु पंचवटी में जाकर ध्यान करने लगे।

साढ़े दस बजे। कुछ देर बाद महाराज वहां आये। एम् भी वहां आया। महाराज, नरेन्द्र तथा उसके मित्रों से बातचीत करने लगे।

ध्यान कैसे करना चाहिए ?

महाराज (नरेन्द्रादि शिष्यों से)—ध्यान करते समय वृत्ति बिलकुल तल्लीन होनी चाहिए। ईश्वर में मन पूर्णतया निमग्न होना चाहिए। यदि हम ऊपर ही ऊपर तैरते रहे तो नीचे के रत्न हमारे हाथ लगने की क्या आशा है ?

पहले ईश्वर का ज्ञान कर लो।

इसके बाद नरेन्द्र और उसके ब्राह्मबन्धु पंचवटी के चबूतरे से नीचे उतर आये और महाराज के आस-पास खड़े हो गये। महाराज दक्षिणाभिमुख होकर उनसे बात चीत करते हुए अपनी कोठरी की ओर चले। वे बोले, " डुबी मारने पर ही मगर तुम पर आक्रमण करेंगे; पर तुम्हारे शरीर में यदि हल्दी लगी होगी तो वे मगर तुम्हारी परछाई में भी खड़े न होंगे। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, और मत्सर, यही छै मगर हैं। ये हृदयरत्नाकर के अगाध जल में निरन्तर फिरते रहते हैं। परन्तु विवेक-वैराग्यरूपी हल्दी यदि तुम्हारे शरीर में लगी होगी तो वे मगर तुम्हारी तरफ देखेंगे भी नहीं। केवल ईश्वरमात्र सत्य है, बाकी सब कुछ मिथ्या है, यह विवेक के द्वारा मालूम होता है।

विवेकवैराग्य जब तक शरीर में भिद नहीं जाता तब तक, चाहे जितना पांडित्य हो, उससे कोई लाभ नहीं। और व्याख्यान ही क्या कर लेंगे ? ईश्वर सत्य है, और सब अनित्य है; इसीका नाम है विवेक। सिर्फ वही एक 'वस्तु' है और बाकी सब 'अवस्तु' है; यही विवेक है।

वक्तृत्व, व्याख्यान और समाज-सुधार पीछे हैं।

पहले हृदय-मन्दिर में उसकी प्रतिष्ठा करो. पहले ईश्वर का, अनुभवपूर्वक, ज्ञान कर लो। वक्तृत्व और भाषण भी चाहे करो; पर कब ? ईश्वर को देख लेने पर। पहले नहीं। लोग एक ओर तो संसारकर्दम में लोटते रहते हैं और दूसरी ओर शाब्दिक ब्रह्म की खिचड़ी पकाया करते हैं। जब विवेक-वैराग्य का गंध भी नहीं है तब फिर सिर्फ 'ब्रह्म ब्रह्म' बकने से क्या मतलब ? उससे लाभ क्या होगा ? मन्दिर में देवता की स्थापना तो की नहीं—फिर सिर्फ शंखध्वनि करने से क्या लाभ ? अब हम तुम्हें एक बड़े मजे की बात बतलाते हैं:—

हृदयमन्दिर में ईश्वर।

एक गावँ में पद्मलोचन नामक एक युवक सज्जन रहता था। वह 'पोदो' नाम से लोगों में प्रसिद्ध था। उस गावँ में एक गिरा हुआ मन्दिर था। उस मन्दिर की देवमूर्ति भी जगह पर न रही थी। मन्दिर पर और मन्दिर के आस-पास अश्वत्थादि वृक्षों के पत्ते बहुत से पड़े हुए थे और चारो ओर गन्दगी छाई हुई थी। पक्षी और चमगीदड़ इत्यादि प्राणियों ने उस मन्दिर को अपना निवासस्थान बना रखा था। वहां की पृथ्वी धर और प्राणियों के विष्ठा से भर गई थी। उस मन्दिर में कभी कोई भी पैर नहीं रखता था।

एक दिन वहां बड़े आश्चर्य की बात हो गई। संध्या समय के बाद कुछ समय में उस उजाड़ मन्दिर में शंख की ध्वनि लोगों के कानों में आने लगी। लोग बड़े अचम्भे में पड़े। 'भों-ओं-ओं-भों' करके यह शंख की ध्वनि इस मन्दिर में कौन करता है ? पुरुष, स्त्री, लड़के इत्यादि सब उसी मन्दिर की ओर चले, अवश्य ही उस गावँ के सब लोगों को मालूम हुआ कि उस मन्दिर में, इधर कुछ दिनों से किसीने देवमूर्ति स्थापित की होगी; और कोई भक्त इस समय उसकी पूजा करके आरती करता होगा। अतएव स्वाभाविक ही सब छोटे-बड़े लोगों की भीड़ उस मन्दिर के आगे जा लगी। सब लोग देवता का दर्शन करके आरती देखना चाहते थे, परन्तु भीतर जाने की आह किसीकी न पड़ती थी। सब लोग हाथ जोड़े, शंख की मधुरध्वनि सुनते हुए मन्दिर के बाहर ही खड़े थे।

उनमें से एक ने धीरज धर कर धीरे से ही मन्दिर का द्वार खोला और भीतर देखा। उस समय उसने भीतर क्या देखा ? उसने देखा कि, अकेला पद्मलोचन (उपर्युक्त पोदो) वहां है और वहीं 'भों भों' करके शंख बजा रहा है। यह देख कर उसे बड़ा ही आश्चर्य हुआ। मन्दिर का मार्जन नहीं हुआ था, जमीन पर विष्ठा इत्यादि की गन्दगी वैसी ही पड़ी थी, और किसी देवता की नवीन प्रतिष्ठा भी वहां नहीं हुई थी ! यह देख कर वह सन्ताप से चिल्ला कर बोला, " अरे पोदो ! इस तेरे मन्दिर में माधव की मूर्ति का तो ठिकाना नहीं है, तब फिर केवल शंखध्वनि का यह कोलाहल क्यों मचा रखा है ? मन्दिर झाड़ना चाहिए, यह कूड़ाकचरा और गन्दगी, जो अनेक वर्षों से एकत्र हो रही है, उसे निकाल डालना चाहिए, और मन्दिर की भूमि गंगोदक से धो डालना चाहिए;यह सब तो एक ओर रहा; और इस तेरी केवल शंखध्वनि से ही क्या होगा ? मन्दिर में रातदिन ग्यारह चमगीदड[1] गन्दगी कर रहे हैं, उनको क्या पहले दूर न करना चाहिए ? "

पहले हृदयमन्दिर में माधव की प्रतिष्ठा करनी चाहिए, पहले भगवत्प्राप्ति कर लेनी चाहिए। यह न करते हुए सिर्फ "भों भों" करके शंख बजाने से क्या होगा ? भगवत्प्राप्ति होने के पहले, हृदय मन्दिर में माधव की प्रतिष्ठा होने के पहले, उस मन्दिर की सब गन्दगी निकाल डालनी चाहिए। पापरूपी मल धो डालना चाहिए। इन्द्रियों की उत्पन्न की हुई विषयासक्ति को दूर कर देना चाहिए। अर्थात् पहले चित्त को शुद्ध करना चाहिए। जहां मन की शुद्धि हुई कि फिर उस पवित्र आसन पर भगवान् अवश्य ही आ बैठे परन्तु यदि मलमूत्र की गन्दगी बनी रही तो माधव वहां कहां आवेगा। हृदयमन्दिर की पूर्ण स्वच्छता होने पर माधव उस [illegible] प्रकट होगा। फिर चाहे तो शंख भी बजाओ ! सामाजिक सु[illegible] के विषय में तुम्हें बोलना है ? अच्छा, बोलो। परन्तु पहले ईश्व[illegible] प्राप्ति कर लो और फिर वैसा करो। ध्यान में रखो कि प्राचीन [illegible] के ऋषियों ने ईश्वरप्राप्ति के लिए ही अपनी गृहस्थी पर तुलसी [illegible] रख दिया था। बस, यही चाहिए। अन्य जितनी बातें तुम्हें चा[illegible] वे सब फिर तुम्हारे पैरों में आकर पड़ेंगी।

समुद्रतल के रत्नों की यदि तुम्हें आवश्यकता हो तो पहले डु[illegible] मार कर समुद्रतल में जाओ। पहले डुबी लगा कर रत्न हाथ कर लो। फिर दूसरी बात। पहले अपने हृदयमन्दिर में माधव-प्रति[illegible] करो; फिर शंखध्वनि की बात करो ! पहले परमेश्वर को प[illegible] चानो, फिर चाहे व्याख्यान झाड़ो और सामाजिक सुधार करो !

डुबी मारने का श्रम कोई नहीं चाहते ! साधन नहीं चाहते, भ[illegible] नहीं चाहिए, विवेकवैराग्य नहीं चाहिए ! बस, दो अक्षर सी[illegible] लिये और लम्बी लम्बी जीभें निकाल कर लगे व्याख्यान देने ! [illegible] हुए कृतार्थ !

महत्त्व।

जनशिक्षा का कार्य कुछ सहज नहीं, बड़ा कठिन है। भगवा[illegible] का दर्शन पहिले चाहिए। दर्शन हो जाने [illegible] बाद, भगवान् की आज्ञा मिलने पर जनशिक्ष[illegible] का कार्य हाथ में लेना उचित है। जिसे भगवा[illegible] का दर्शन हो जाय और भगवान् की आज्ञा जिसे मिल जाय उसी को व्याख्यान देने के लिए अपनी जिह्वा उठाना चाहिए।

[1] ग्यारह इंद्रियां—पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांच कर्मेन्द्रियां, और मन।

मुमुक्षु को एक साधु का उपदेश।

१

वेदाभ्यास करो सदा रति रखो वेदोक्त ही धर्म में,
मिथ्याचार तजो, रखो तुम नहीं आसक्ति भी कर्म में।
संसारी सुख दोष युक्त समझो पापक्रिया से बचो,
सत्य स्वात्मसुधार्थ उद्यम करो सद्ग्रन्थ भारी रचो ॥

२

सन्तों का तुम सत्समागम करो भक्ती रखो राम में,
सारे सद्गुण भोग भी शुभ सभी खोजो धराधाम में।
जाओ सद्-गुरु सन्त की शरण में, सेवा उन्हींकी करो,
ध्याओ ईश्वर, चित्त में उपनिषद्वाक्यार्थ को भी धरो ॥

३

सत्यज्ञान सिखो, सदा तुम करो वेदार्थ का आदर,
रक्खो भाव सही, कुतर्क न करो वेदान्ततत्त्वों पर।
'मत्वाहं' मन में धरो, हयतनु के छोड़ो अहं भाव को,
काम क्रोध मदादि षड्रिपु हनो त्यागो न सद्भाव को ॥

४

छोड़ो वाद-विवाद व्यर्थ, मन में शान्ती रखो सर्वदा,
तृष्णा उत्तम वस्तु की मत रखो सन्तोष धारो सदा।
युक्ताहार-विहार-साधन करो भोगी उदासीनता,
शीतोष्णादिक द्वन्द्व भी सब तजो, छोड़ो न शालीनता ॥

बीजापुर-वर्णन।

किसी समय यह नगर विजयपुर था। एक बार कभी न कभी यह विद्यापुर था। बचापुर, मुहम्मदपुर, बीजापुर, इत्यादि निरर्थक नाम हुए ही हैं। परन्तु वर्तमान समय में इसे बिजनपुर ही कहना चाहिए! छै मील का तो शहरपनाह है। पर बस्ती छठवाँ हिस्सा भी होगी या नहीं, इसमें संदेह ही है। अतएव, इस दृष्टि से बिजनपुर कहा जाय तो कुछ अनुचित नहीं। परन्तु हमारे कथन में कुछ और ही अर्थ है। विग्रह-व्युत्पत्ति की ओर अधिक ध्यान न देते हुए हम इसका यह अर्थ करते हैं कि यहां रहनेवाले लोगों के घरों की संख्या यदि छै हजार होगी तो गये हुए लोगों के लिए बनाये गये घरों की, अर्थात् कब्रों की संख्या छै हजार एक पाई जायगी!

इन कब्रों में से सब से प्रचण्ड, अतएव सब से पहले दृष्टि पड़नेवाली कब्र 'बोलगुम्बज' नामक है। यह चौदह पन्द्रह मील की दूरी परसे स्पष्ट देख पड़ती है, इसीसे इसकी प्रचण्डता पाठकों को मालूम हो सकती है। इस गुम्बज ने बहुत विस्तृत जगह घेर ली है। यों तो लोग इसका नाम 'गोलगुम्बज' बतलाते हैं। परन्तु वास्तव में इसका नाम 'बोलगुम्बज' होना चाहिए; क्योंकि इसके अन्दर जरा सा भी यदि कोई बोल देता है तो यह भी तुरन्त ही बोलने लगता है; इसके सिवाय यह स्वयं बोल कर दूसरे को बुलानेवाला है! अपने भीतर तो यह लोगों से बुलवाता ही है, किन्तु बाहर के भी न जाने कितने लोग आज तक इसके विषय में बोलते आये हैं! अस्तु। यह गुम्बज सुलतान मुहम्मद आदिल शाह ने अपनी समाधि के लिए बनवाया। उस समय इस प्रकार के स्थान बनवाने के विषय में बड़ी चढ़ाऊपरी हुआ करती थी। सुलतान मुहम्मद के बाप को इब्राहीम जगद्गुरु * कहते थे। उसने अपने लिए जो रोजा बनवाया उसमें अपूर्व सुन्दरता और कलाकौशल दिखलाया है। उसे शान्तिभवन बनाने के लिए उसने अपने आसपास कुरान की आयतें खुदवा दी हैं। इस कारण उसके लड़के मुहम्मद ने यह सोचा कि, अब इससे अधिक अपनी समाधि के लिए क्या करना चाहिए। जान पड़ता है कि अपने पिता के रोजे को नीचा दिखाने के लिए ही उसने 'बोलगुम्बज' को इतना भव्य बनवाया। परन्तु उसके बाद उसके लड़के दूसरे अली आदिलशाह ने भी अपने बाप के रोजे को नीचा दिखाने के लिए एक प्रचण्डतर इमारत बनवाने का प्रारम्भ किया।

(नं० १) बोलगुम्बज।

तरफ है और बाप का बोलगुम्बज पूर्व की ओर है। इन दोनों के बीच में करीब दो ढाई मील का अन्तर है। अतएव इस सुपुत्र ने अपनी प्रचण्डतर समाधि उन दोनों के बीच में बनवाने का प्रारम्भ करके सोचा था कि हमारी सुबह की छाया आजा के रोजा पर और सायंकाल की छाया पिता के गुम्बज पर पड़े, जिससे पितृपितामह को आश्रय मिले। परन्तु अली आदिलशाह का विचार उसके साथ ही चला गया और यह अधूरा ही रहा। अस्तु।

इब्राहीम रोजा तो शान्तिभवन है; परन्तु बोलगुम्बज ऐसा विचित्र [illegible] में विचार [illegible] होती है [illegible] है। प्रथम तो भीतर जानेवाले को यह गुम्बज भयानक सा मालूम होता है। परन्तु मीनार के सात जीने चढ़ कर जहां ऊपर गये और बाहर के [illegible] मुख से निकल पड़ता है कि "देखिये तो यह रचना!" मुख से एक बार इन शब्दों के निकलते ही अनेक बार इसकी प्रतिध्वनि सुनाई देती है। यह विचित्रता देख कर ज्योंही मनुष्य हँसने लगता है कि बस चारों ओर से हास्य की ही प्रतिध्वनि सुनाई देती है—एक प्रकार का अट्टहास सा छा जाता है! लोग इसके अन्दर आकर इसी प्रकार से अनेक शब्दक्रीड़ाएं किया करते हैं।

बीजापुर में समाधियों, मसजिदों और बावड़ियों की ही विशेषता है। धनवान् मुसलमान इन तीनों में से किसी एक इमारत को ही बना कर अपने को धन्य समझता है। इस कारण आदिलशाही के दो सौ वर्ष के जमाने में इन्हीं बातों की ओर विशेष कर कब्रों की अधिकता हो गई है, अतएव इस विजयनगर का कबरिस्तान, अर्थात् श्मशान का रूप प्राप्त हो गया है!

इन कब्रों में से तीन कब्रें सब से बड़ी हैं अर्थात् सब से प्रचण्ड बोलगुम्बज, दूसरा सब से सुन्दर इब्राहीमरोजा और

(नं० २) अलीरोज़ा।

इसके आजा की समाधि, अर्थात् इब्राहीम-रोजा शहर के पश्चिम

(नं० ३) इब्राहीमरोजा और मसजिद।

तीसरा सब से अपूर्ण अलीरोजा। इन तीनों का थोड़ा थोड़ा वर्णन ऊपर हो गया है।

मसजिदों में सब से बड़ी और प्राचीन जुम्मा मसजिद है। इसके मुख्य भाग में ऐसी उत्तम प्रकार बनी हुई है कि जिसमें करीब ढाई हजार मुसलमान एक साथ ही नमाज पढ़ सकते हैं। इसके दोनों ओर दो बड़े बड़े शिलालेख हैं और इसकी भीत में भी करीब करीब ऐसा [illegible] है! यह [illegible] बनी हुई है। [illegible] में एक [illegible] बनी हुई है और उस पर सोने का मुलम्मा किया हुआ है।

* इस [illegible] हिन्दू [illegible] जगद्गुरु कहा करते थे। [illegible] [illegible]

हो तो उन्हें कदाचित् उन बालों के दर्शन हुए हों। सारांश, मुसलमान लोगों की भावना है कि ये बाल यहां पर हैं; बस इसके सिवाय और कोई प्रमाण नहीं। तथापि जब हजारों मुसलमान यात्री यहां आते हैं तो ये बाल यहां होने ही चाहिए। अस्तु।

यहां की "मुलकमैदान" तोप भी बहुत ही प्रसिद्ध है। इसका नाम महाराष्ट्र के छोटे छोटे बच्चे तक जानते हैं। यह तोप आठ दस हाथ लम्बी है। इसको देख कर उस समय के मराठों और मुसलमानों के युद्ध का स्मरण हो आता है। परन्तु उससे भी भयंकर एक 'लांडाकसाब' नामक तोप यहां पर है। इसकी लम्बाई ३० फीट है। यह तोप बीजापुर कोट के दक्षिण ओर एक मजबूत बुर्ज पर रखी हुई है। वर्तमान बस्ती से दक्षिण ओर करीब मील भर की दूरी पर बिलकुल एक ओर यह बुर्ज है। इसका असली नाम नियामत बुर्ज है। परन्तु आज कल तोप के नाम पर ही इस बुर्ज का नाम भी पुकारा जाता है। यह तोप स्वाभाविक ही बड़ी सुन्दर, दर्शनीय और आल्हादजनक वस्तु है। "मुलकमैदान" तोप से यह बड़ी तो है ही; किन्तु यह ढाली हुई है और यह गढ़ी हुई है।

अस्तु; अभी तक जिन बातों का वर्णन हुआ वे सब मनुष्यकृत हैं। अब अन्त में बीजापुर के एक वृक्ष का वर्णन करके हम यह विषय समाप्त करेंगे। यह वृक्ष इमली का है और बहुत प्राचीन है। गोल-गुम्बज की तरह यह वृक्ष भी बड़ा प्रचण्ड है। इसके तने का घेरा ४५॥ फीट है! इसे "फाँसी की इमली" कहते हैं। बादशाही जमाने में अपराधियों को इसी वृक्ष में टांग कर फाँसी देते थे, अथवा इसके तने में अपराधियों का शिर तोड़ डाला जाता था! इस वृक्ष का नाम सुन कर उस काल की जुल्मी राज्यपद्धति का चित्र सामने खड़ा हो जाता है।

मूर्तिपूजकों की अमेरिका पर चढ़ाई।

सुप्रसिद्ध ब्रह्मीभूत स्वामी विवेकानन्द ने, शिकागो की धर्मपरिषद् में जाकर, जब से अमेरिकन लोगों में आर्यधर्म के उच्च तत्व प्रकट किये तब से आर्यधर्म के तत्वों का-उच्च वेदान्त का और योगमार्ग का-अध्ययन करने की जिज्ञासा उन लोगों में उत्पन्न हुई। यहां के कितने ही बुद्धिमान् तथा कार्यकुशल स्वामियों ने अमेरिका में जा कर उस जिज्ञासा को और भी बढ़ाया, इस कारण वहां 'वेदान्त-जिज्ञासु' लोगों की संस्थाएं और 'योग'-शिक्षा के वर्ग स्थापित हुए। युनिवर्सिटी के कितने ही पदवीधर और धनवान सज्जन आर्य-तत्वज्ञान के भक्त बने और वेदान्ती लोगों की संस्थाओं को भूमि इत्यादि की बड़ी बड़ी [illegible]

श्री स्वामी त्रिगुणातीत।

([illegible])

बुद्धिमान और सहृदया अमेरिकन स्त्रियां भी अपने रजोगुण का त्याग करके सात्विक बन गईं। सात्विक विचारों से, सात्विक खानपान से, और सात्विक आचरण से उनका अन्तःकरण परमार्थ में लग गया और कितनी रमणियां स्वार्थ को छोड़ कर 'जोगिनी' बन गईं। परन्तु पाश्चात्य आचरण, विचारप्रणाली, और महत्वाकांक्षा में ही मस्त रहनेवाले तथा भारत के मिशनरियों के मिथ्या और अतिशयोक्तिपूर्ण भयंकर वर्णनों से हिन्दुओं को जंगली माननेवाले अमेरिकन स्त्री-पुरुषों को यह बात दुःसह हो गई। इसके सिवाय यह भी है कि, स्वामी और धर्मोपदेशक बन कर वहां जानेवाले सभी लोग विद्वान्, योग्य अथवा शुद्ध नहीं होते, और पौर्वात्य तत्व-ग्रहण करने की उत्सुकता में पड़ कर कितनी वाहियात बातों का भी स्वीकार अमेरिकन स्त्रियों ने किया होगा। अतएव उससे चिढ़ कर और वैदिक जगत् में देख पड़नेवाले अहंकार से प्रेरित होकर कुछ अमेरिकन लेखकों ने यदि पौर्वात्यों की अमेरिका की हलचल पर शस्त्र उठाया तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। उनकी चिढ़ दर्शानेवाले लेखों के विकार को छोड़ कर यदि उन्हें एक आर्य की दृष्टि से पढ़ें तो यह अच्छी तरह मालूम हो सकता है कि सभ्यों में सभ्य और सात्विक से भी सात्विक अमेरिका में हमारे यहां के आर्य मिशनरियों ने अपने धर्म की कैसी छाप बिठा दी है। इसी दृष्टि से आज हम अपने पाठकों के लिए यहां पर उनके एक लेख का सारांश देते हैं। यह लेख "मूर्तिपूजकों की चढ़ाई" शीर्षक से मेबल पॉटर डैगेट नाम की एक स्त्री ने "हैम्पटन कोलम्बियन मेगज़ीन" नामक एक अमेरिकन मासिक पत्र में लिखा है। वह स्त्री कहती है:—

"परमेश्वर की यह आज्ञा है कि, नन्दनवन के वृक्षों के फलों में हाथ न लगाना, परन्तु इस आज्ञा को भंग करके परमेश्वर की निर्माण की हुई पहली स्त्री ने-'ईव' ने-उसकी अवज्ञा की। बस, आज कल अमेरिका में इसी की पुनरावृत्ति देख पड़ रही है। [illegible] का हृदय, [illegible] से हल करके [illegible], [illegible] और [illegible] करने की आशा से अमेरिका की अनेक [illegible] पश्चात् [illegible] पूर्व [illegible] और [illegible] के [illegible] में पड़ कर अपने [illegible] को [illegible] कर रही है। अमेरिका में [illegible] का विस्तार हो रहा है और [illegible] करने की [illegible] हजारों अमेरिकन स्त्री-पुरुष भारत के [illegible] [illegible] हो रहे हैं [illegible] [illegible] हो! बस, 'योग' का अर्थ [illegible] है, पर [illegible]

परिणाम देखा जाय तो इस मार्ग का अवलम्बन करनेवाले कितने ही लोग अपनी गृहस्थी से वंचित रह कर पागल बन बैठे और अन्त में काल के गाल में चले गये! ये योग सिखलानेवाले पौर्वात्य गुरु, मधुर और मनोमोहक भाषा से, अमेरिकन युवतियों का मन मोह लेते हैं; और जहां इन्होंने कान में मंत्र फूँक दिया कि बस तुरन्त ही उन रमणियों के मन पर जादू का सा असर हो जाता है और वे इन गुरुओं की आज्ञाकारिणी दासी सी बन जाती हैं। अमेरिका के चर्च, परदेश में क्रिश्चियनधर्म का प्रचार करने के उद्देश से उधर दो करोड़ डालर वार्षिक खर्च करते हैं और इधर मूर्तिपूजकों ने अमेरिका पर इस प्रकार चढ़ाई की है! अब अमेरिका के सियेटल नामक मुकाम में बुद्ध का और सैन्फ्रान्सिस्को में हिन्दुओं का मन्दिर स्थापित हुआ है, तथा लास एंजिलिस में तो कृष्ण की स्थापना हो चुकी है। न्यूयार्क में 'वेदान्त सोसायटी' का अस्तित्व हुआ है और इस संस्था ने 'वेस्टकार्नवाल' में एक बहुत बड़ा मठ स्थापित करने का कार्य आरम्भ किया है। भारत में कुछ पत्थरों और वृक्षों में लाल रंग लगा कर लोग उन्हें पूजते हैं, अब यहां-अमेरिका में-भी लाल रंग के मन्दिर खड़े किये गये हैं, और इन मन्दिरों की इमारतों पर वेदान्तियों के पवित्र शब्द "ओ३म-[illegible]" खुदा पत्थर जहां तहां देखा जाता है। शिकागो, इलिनाइस और मायेन में [illegible] का एक मन्दिर है और [illegible] में भी एक वैसा ही मन्दिर बन रहा है। शिकागो में एक [illegible] पर का भी मन्दिर दृष्टि पड़ने लगा है। सन् १८९३ में शिकागो में जो सारे जगत के भिन्न भिन्न पंथों के अनुयायियों की सभा हुई थी उसमें एक हिन्दू स्वामी को भी, कृपा करके, व्याख्यान देने का मौका दिया गया था। पर उसका परिणाम बहुत ही भिन्न [illegible] हुआ। तब से भारत के अनेक बाबा और स्वामी इधर-अमेरिका में-आते हैं, सन्यासी का अपना भगवा भेष छोड़ कर ऐसे भेष पहनने लगते हैं जो पाश्चात्य-दृष्टि को प्रिय हैं और उनके ये रेशमी कपड़े, उनकी वे पादुका, लम्बी टीप-टॉप, मधुर भाषण और मनोमोहक बर्ताव देख कर अमेरिका के भोग-भाग्य [illegible] [illegible] घर में बुलाती हैं और बड़े सम्मान से अपने कमरे में बैठा कर 'केक' और चाय खिलाती हैं और बड़े आदरपूर्वक प्रेम से उनकी सेवा करती हैं। कवि, लेखक, चित्रकार, [illegible], इत्यादि को जो [illegible] समाज में [illegible] है उससे भी अधिक [illegible] अमेरिका में इन सन्यासियों को मिलने लगा है। कुछ सन्यासी [illegible] आये, उनका अमेरिका में [illegible] हुआ और उनकी [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] भारत में [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], और [illegible] अमेरिका की [illegible]। सन् १८९६ में [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible]

उनके शिर पर छत्र रक्खा था; दूसरी एक रमणी ने पंखे से उनके ऊपर हवा करने का काम लिया था; और कुछ वनिताएं आगे जा कर रास्ते के फाटक खोल रही थीं। जहां गुरु ने कान में मंत्र दे दिया कि बस गुरुशिष्य में ऐसा कुछ बन्धन उत्पन्न हो जाता है कि संसार का अन्य कोई भी बन्धन इतना मजबूत न होगा; और गुरु का बतलाया हुआ गुह्य बाहर निकालना तो मानो अपने को परमेश्वर के कोप का पात्र बना लेना ही है; अतएव यह भी लोगों को नहीं मालूम होता कि यह मंत्रोपदेश किस प्रकार का होता है।"

"गुरुमंत्र लेने पर घरद्वार का छोड़ देना भी एक मामूली बात है। इसके अनेक उदाहरण हैं। पडर्यू कालेज के अध्यक्ष की पत्नी कहने लगी कि, 'यह कुछ नहीं कि, मैं अपने पति को और लड़कों को प्रेम का विशेष पात्र समझूं।" एक धनवान् महाशय की ग्रेजुएट लड़की ने 'सिस्टर देवमाता' नाम धारण किया है और वेदान्ती लोग उसके विषय में स्पष्ट कहते हैं कि, "हम अपने पूर्व के नाते बिलकुल ही नहीं पहचानते। उसके कुटुम्ब का उस पर जितना हक पहुँचता है उससे अधिक अब हमारा हक उस पर है।"

चाहे अमेरिकन स्त्री ने यह लेख धिक्कारवश होकर सन्ताप से लिखा है और उसमें कुछ सत्यांश भी हो, तथापि इससे यह स्पष्ट मालूम हो सकता है कि मूर्तिपूजक भारतीय लोगों के धर्म अथवा तत्वज्ञान की कैसी प्रतिष्ठा वहां स्थापित हो रही है।

मारवाड़ का प्रभात।

१

जो यह कौतुक-पूर्ण रम्य संसार बना है।
सर्व-शक्ति-सम्पन्न प्रभो! तेरी रचना है॥
वेदों ने कह 'नेति नेति' तेरा यश गाया।
हारे ऋषि, मुनि, सुकवि किसीने पार न पाया॥

२

तू आनंद-निधान खिलाड़ी खेल खिलाता।
कर्म-चक्र में बाँध अनोखा मेल मिलाता॥
कहाँ हुआ था जन्म! कुटुम्ब कहाँ है मेरा!
कहाँ हो रहा आज मुझे दिन रात सवेरा!!

३

जागो हुआ प्रभात अंत रजनी का आया।
नव प्रकाश का मेल मंजु मेरे मन भाया॥
लिए विविध रस पवन मंदगति लगा विचरने।
किया लेख प्रारम्भ लेखनी ले कवि वर ने॥

४

उठ कर माली लोग कुएं से जल भरते हैं।
मस्त राग में, मौज भरे मेहनत करते हैं॥
मिला तान में तान भूण चक्कर खाती है।
इस विवाद में नींद कहो किसको आती है?

५

जागे कंक, कपोत, काक, केकी-कुल कूके।
चहके चातक, कीर, कमेड़ी, चिड़े न चूके॥
कुटबुड़, बुलबुल, बया, कूंज, कावरिया बोले।
पिदिया, घुरदांतली, चटक, तीतर, मुँह खोले॥

६

खोल चोंच, घुग्घली मुदित, मैना गाती है।
कर्ण-कुहर में अरुणशिखा की ध्वनि आती है॥
सब का मिल कर नाद, बंध गया समां सुरीला।
हुआ मुग्ध मन देख, प्रकृति की अद्भुत लीला॥

७

गरजा रासभ राज, उपोर दहाड़ रहा है।
पाजी परदा हाय! कान का फाड़ रहा है॥
जो आलसी अबोध, नहीं इस पर भी जागे।
क्या सो गये अचेत, सदा के लिये अभागे?

८

हिम सम शीतल रेत, बड़ी ठंडक पड़ती है।
शीत देह के द्वारपाल से आ लड़ती है॥
सिकुड़े पड़े दरिद्र, नहीं जिनके पट घर में।
कूँ कूँ करते श्वान, दबा दुम दबके दर में॥

९

यहां न भाबर, भील न झरना, सरिता, सर हैं।
यहां न लता-वितान, न पादप गुल्म-निकर हैं॥
यहां न सुमन-समूह, न छाया छत्र पसारे।
यहां नहीं कलकंठ, नहीं मधुकर गुंजारें॥

१०

यहां शुष्क मरुभूमि, मुलायम मखमल सी है।
टीबों की टकसाल, निराली निर्मल सी है॥
रेतीला मैदान, सफाचट चमक रहा है।
रवि-किरणों से कनक-रजत-सा दमक रहा है॥

११

पतली पगड़ी बांध, मारवाड़ी नर सारे।
उठ कर प्रातःकाल नगर से दूर सिधारे॥
घूंघट से मुख मूंद, खोल उर उदर, लजाती।
प्रमदा सर्वा समोद छमाछम पैर बजाती॥

श्रीरामनरेश त्रिपाठी।

श्राविकाश्रम की जैन महिलाएं।

ज्यू पंथ की स्त्रियां अपने बायबल की अपेक्षा भगवद्गीता अथवा ज़ेन्दावेस्ता, इत्यादि धर्मग्रन्थों को अधिक मानने लगी हैं। इन्हें अक्षय तारुण्य प्राप्त होने की कल्पना बहुत रुचने लगी है और उसको प्राप्त करने के लिए वे सूक्ष्म रहस्यों का द्वार खोल देनेवाले 'योग' का अवलम्बन कर रही हैं। ये स्त्रियां समझती हैं कि योग के द्वारा सृष्टिनियमों पर भी सत्ता चलाई जा सकती है, आरोग्य तथा दीर्घायु तो कोई बात नहीं; अतएव प्रत्यक्ष नन्दनवन का सुख भोगनेवाली स्त्री भी यदि 'योग' सीखने के लिए मोहित हो तो कोई आश्चर्य नहीं। परन्तु 'ग्रीन एकर' नामक संस्था स्थापन करने के लिए जिसने अपनी सम्पत्ति दी वह स्त्री मिस सारा फार्मर इस धर्मज्ञान के पीछे पागल होकर पागलखाने में चली गई! शिकागो की एक स्त्री का भी इसी प्रकार माथा फिर गया। एक विख्यात तन्तुकार की विधवा भ्रमिष्ट होकर मर गई; और भी कितनी ही स्त्रियों की प्रकृति योग के कारण सदा के लिए बिगड़ गई। एक उच्च तरुणी को डा० विलियम् आर० सी० लैट्सन् नामक महाशय पौर्वात्य धर्मज्ञान सिखलाते थे। उनके मरने पर उनकी शिष्या भी उनके चरणों में अपने प्राण अर्पण करने के लिए तैयार हुई!

स्त्रियों की दशा गौ से भी शोचनीय है। क्योंकि गाय यद्यपि तथापि वह पवित्र तो मानी गई है, अतएव उसकी दशा स्त्रियों से अच्छी ही समझना चाहिए। बाबा भारती ने एक कार पत्र के सम्वाददाता से बड़े अभिमान के साथ क अमेरिका के मेरे ५००० शिष्यों में स्त्रियों की ही संख्या अधि परन्तु भारतीय स्त्रियों की दशा कैसी शोचनीय है और कुछ बातें सरकार को कैसे बन्द करनी पड़ीं, इत्यादि बातों का हमसे भारतवर्ष की ही पंडिता रमाबाई ने बतलाया है। अमे स्त्रियां क्या उस वर्णन को भूल गईं? बाबा भारती ने 'श्री ईश्वर' कृष्ण का ढोंग मचाया है; पर इस कृष्ण के १६००० स्त्रि और उनसे १८०००० लड़के हुए, ब्रह्मा, विष्णु और महेश से तैंतीस करोड़ देवता हुए!"

आज कल करीब १५००० अमेरिकन माज़्दा और सूर्य के बने हैं और यूनाइटेड स्टेट्स् के तीस शहरों में इन पंथों के मठ इसके सिवाय कानडा, दक्षिणी अमेरिका, इँगलैंड, जर्मनी, स्विट् लैंड, इत्यादि देशों में मत का प्रचार हो रहा है। यह पंथ अमे में पहले पहल सन् १६०१ में आया; और इतने ही थोड़े सा

लाफायेटी, (इंडियाना) की पडर्यू युनिवर्सिटी के अध्यक्ष विन्थ्राप एलसवर्थ स्टोन की रूपवान् और सुशिक्षित पत्नी ने अपने पति, लड़के बालों और घरद्वार को छोड़ कर 'योग'-मार्ग को स्वीकार किया। पौर्वात्य तत्वज्ञान ऊपर ऊपर देखने से तो बड़ा मनोमोहक है; पर वास्तव में उससे हमारा नाश हो रहा है। "चित्त एकाग्र करने में सहायता देनेवाला" चाहे भले ही हो; परन्तु बुद्ध और कृष्ण की छोटी छोटी मूर्तियां अमेरिका के घरों में अब देख पड़ने लगी हैं। नवीन देवताओं की भक्ति में रत होनेवाले हजारों अमेरिकन अब देखने को मिलेंगे। स्वामी विवेकानन्द ने १३५, वेस्ट एटियथ स्ट्रीट, न्यूयार्क में पहले पहल "वेदान्त सोसायटी" स्थापित की। उनके बाद स्वामी अभेदानन्द ने उनका काम जारी रखा है। इस सोसायटी की शाखाएं अन्य शहरों में स्थापित हो चुकी हैं। वेदान्तधर्म के अनुयायियों का कथन है। "अखिल मानवों का धर्म यही है। इस धर्म में, प्राचीन देवताओं में, पूजास्थान में यदि और भी नवीन देवता सम्मिलित कर लिये जायें तो कोई हज नहीं। 'ओ३म्'-स्वरूपी देवता का पूजन, काली, बुद्ध, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, कृष्ण, रामकृष्ण, इतना ही नहीं; किन्तु ईसामसीह के द्वारा भी, किया जा सकता है। आप चाहे जिस देवता का चुनाव करिये वही देवता इन नवीन मतवालों में चल जायगा और इस कारण इनका मत अत्यन्त व्यापक सभीते का हो गया है। आपकी पाश्चात्य धर्म-

उसका इतना प्रचार हुआ। इस उपासना के पंथ में यह नियम जहां तक हो सके कम कपड़े में पहनना चाहिए। नग्नस्थिति रह कर सूर्यकिरणों की वर्षा वित्र होने की एक चाल उस है। मांस वर्ज्य करना चाहिए; मिट्टी की चुटकी बीच बीच में चाहिए, इत्यादि बातें भी इस लोग करते हैं। इसी पंथ की की "इनर स्टडीज़" नामक पुस्तक दस डालर कीमत की है वह सिर्फ उतनी श्रेष्ठता तक हुए लोगों को ही मिलती है।"

"बड़ोदा से आये हुए इनायत नामक एक मनुष्य ने सूफी पंथ के मतों की शिक्षा अमेरिका में चल और तांत्रिक नामक बिलकुल हिन्दूमत का भी प्रचार अमे में होने लगा है। नग्नस्त्रियों की इत्यादि का ढोंग उसीमें है। क को पूजा भी उसीका एक भाग मूर्तिपूजा से लेकर भगवद्गीता उच्च तत्वों तक सारी बातों का स्तभाव जिस हिन्दूधर्म में होता यही हिन्दूधर्म अमेरिका में 'यो लाया है। इस योग के चौरासी सन हैं। उसमें विशिष्ट प्रकार श्वासोच्छ्वास करने की क्रिया इसमें यदि भूल हो जाती है मनुष्य पागल हो जाता है उसके जी पर भी आ बनती है।"

"ये पौर्वात्य लोग यदि मूर्तिपूजा ही सिखाते तो भी बहुत भयंकर बात न थी, किन्तु लोग मनुष्यों की भी पूजा कर

श्रीस्वामी अभेदानन्द।

(न्यूयार्क के वेदान्तमंडल के चालक।)

बुद्धि में यदि कोई देवता पसन्द न पड़ेगा तो उसके लिए यह नवीन बिलकुल आग्रह न रखेगा। ये स्वामी अपने उपदेश में इतनी कविता भर देते हैं कि वह एकदम हृदय में जम जाती है! वेस्ट कार्नवाल के आश्रम में-इस आश्रम के लिए ३०० एकर जमीन लगा दी गई है-उपदेश करते हुए स्वामी अभेदानन्द ने कहा कि, "प्रत्येक मानवी प्राणी के इस जन्म के पहले हजारों जन्म हो चुके हैं और अब भी मोक्ष हो जाने के पहले और भी हजारों जन्म उन्हें लेने पड़ेंगे। ईश्वर और हममें भेद नहीं है, इस बात का अनुभव कर लेना ही जीवन का हेतु है। विचार, चित्त की एकाग्रता और योग के मार्ग से यह हेतु साध्य होगा।" पर यह योगमार्ग तलवार की धार है। यह बात उपनिषद् में कही है-सो उन्होंने हमें बतलाया। स्वामी ने कहा कि हमारा धर्म तीन हजार वर्ष का प्राचीन है; पर इस तीन हजार वर्ष के प्राचीन धर्म से हिन्दूस्त्रियों की दशा अबतक भी नहीं सुधरी। स्त्री को घर में बैठा रहना चाहिए; पति की आज्ञा बिना घर के बाहर न जाना चाहिए; पति को देवता मानना चाहिए; ऐसी अनेक बातें हैं। बालविवाह, बालमरण वैधव्य, इत्यादि, अनेक बातें भारतवर्ष में हैं। सिर्फ दक्षिण भारत में १२००० लड़कियां देवता पर चढ़ाई जाती हैं और स्त्रियों को शिक्षा तो नहीं दी जाती। भारतीय

सिखाते हैं, गुरु को पूजना सिखाते हैं! अमेरिका की स्त्रियां स्वा विवेकानन्द के चरणों को चूमने लगी थीं, गुरु को दानदक्षिणा दे पुण्यकारक है। सूर्यउपासना सिखानेवाले गुरु को कीमती कप उसके शिष्यों ने दिये हैं। उसके एक अंग की कीमत ३५०० डाल है। बोस्टन में बाबा भारती जिस भव्य और सुखदायक स्थान रहते हैं उसका भाड़ा शिष्यलोग ही देते हैं; स्वामी अभेदानन्द प्रवास का खर्च देनेवाले उनके शिष्य ही हैं।"

"स्वामी अभेदानन्द के आश्रम में अमेरिकन स्त्रियां अपने हाथ से उनके लिए रसोई बनाती हैं, गाय का दूध दुहती हैं, स्वामी कपड़े धोती हैं और अन्य काम करती हैं। घर के प्रबन्ध की देख भाल का काम एक सुन्दर रमणी करती रहती है। वह स्वतंत्र धनवान् है। वह धूप में आकर अपने गुरु के लिए भाजी लाती है, धूप से उसका मुखकमल आरक्त हो जाता है और हाथ में वह कुएं से पानी निकाला करती है, इसी प्रकार के नीच काम वह स्वयं आनन्द से करती है-ये सब हमारी देखी हुई बातें हैं।"

"ग्रीन एकर में एक स्वामी मेज लांघ कर व्याख्यान देने के लिए जा रहे थे। उस समय का उनका ठाटबाट सुनिये -- वह शिष्य

ने उनके शिर पर छत्र रखा था; दूसरी एक रमणी ने पंखे से उनके ऊपर हवा करने का काम लिया था, और कुछ वनिताएं आगे जाकर रास्ते के फाटक खोल रही थीं। जहां गुरु ने कान में मंत्र दे दिया कि बस गुरुशिष्य में ऐसा कुछ बन्धन उत्पन्न हो जाता है कि संसार का अन्य कोई भी बन्धन इतना मजबूत न होगा; और गुरु का बतलाया हुआ गुह्य बाहर निकालना तो मानो अपने को परमेश्वर के कोप का पात्र बना लेना ही है; अतएव यह भी लोगों को नहीं मालूम होता कि यह मंत्रोपदेश किस प्रकार का होता है।"

"गुरुमंत्र लेने पर घरद्वार का छोड़ देना भी एक मामूली बात है। इसके अनेक उदाहरण हैं। एडवर्ड् कालेज के अध्यक्ष की पत्नी कहने लगी कि, 'यह कुछ नहीं कि, मैं अपने पति को और लड़कों को प्रेम का विशेष पात्र समझूं।" एक धनवान् महाशय की ग्रेज्युएट लड़की ने 'सिस्टर देवमाता' नाम धारण किया है और वेदान्ती लोग उसके विषय में स्पष्ट कहते हैं कि, "हम अपने पूर्व के नाते बिलकुल ही नहीं पहचानते। उसके कुटुम्ब का उस पर जितना हक पहुँचता है उससे अधिक अब हमारा हक उस पर है।"

चाहे अमेरिकन स्त्री ने यह लेख धिक्कारवश होकर सन्ताप से लिखा हो और उसमें कुछ सत्यांश भी हो, तथापि इससे यह स्पष्ट मालूम हो सकता है कि मूर्तिपूजक भारतीय लोगों के धर्म अथवा तत्वज्ञान की कैसी प्रतिष्ठा वहां स्थापित हो रही है।

मारवाड़ का प्रभात।

१

जो यह कौतुक-पूर्ण रम्य संसार बना है।
सर्व-शक्ति-सम्पन्न प्रभो! तेरी रचना है॥
वेदों ने कह 'नेति नेति' तेरा यश गाया।
हारे ऋषि, मुनि, सुकवि किसीने पार न पाया॥

२

तू आनंद-निधान खिलाड़ी खेल खिलाता।
कर्म-चक्र में बाँध अनोखा मेल मिलाता॥
कहाँ हुआ था जन्म! कुटुंब कहाँ है मेरा!
कहाँ हो रहा आज मुझे दिन रात सवेरा!!

३

जागो हुआ प्रभात अंत रजनी का आया।
तम प्रकाश का मेल मंजु मेरे मन भाया॥
लिए विविध रव पवन मंदगति लगा विचरने।
किया लेख प्रारम्भ लेखनी ले कवि वर ने॥

४

उठ कर माली लोग कुएं से जल भरते हैं।
मस्त राग में, मौज भरे मेहनत करते हैं॥
मिला तान में तान भूण चक्कर खाती है।
इस विषाद में नींद कहो किसको आती है?

५

जागे कंक, कपोत, काक, केकी-कुल कूके।
चहके चातक, कीर, कमेड़ी, चिड़े न चूके॥
बुटबुट, बुलबुल, बया, कूंज कावरिया बोले।
पींदया, फुरदोतली, चटक तीतर, मुंह खोले॥

६

लोल लाँच, धूरमली मुदित, मैना गाती है।
कर्ण-कुहर में अरुणशिखा की ध्वनि आती है॥
सब का मिल कर नाद, बंध गया समाँ सुरीला।
हुआ मुग्ध मन देख, प्रकृति की अद्भुत लीला॥

७

गरजा रासभ राज, घोर दहाड़ रहा है।
पाजी परदा हाय! कान का फाड़ रहा है॥
जो आलसी अबोध, नहीं इस पर भी जागे।
क्या सो गये अचेत, सदा के लिये अभागे!

८

हिम सम शीतल रेन, बड़ी ठंढक पड़ती है।
शीत देह के द्वारपाल से आ लड़ती है॥
सिकुड़े पड़े दरिद्र, नहीं जिनके पट घरमें।
कूँ कूँ करते श्वान, दबा दुम दबके दर में॥

९

यहां न झाबर, झील न झरना, सरिता, सर हैं।
यहां न लता-वितान, न पादप गुल्म-निकर हैं॥
यहां न सुमन-समूह, न छाया छटा पसारे।
यहां नहीं कलकंठ, नहीं मधुकर गुंजारें॥

१०

यहां शुष्क मरुभूमि, मुलायम मखमल सी है।
हीरों की टकसाल, निराली निर्मल सी है॥
रेतीला मैदान, सफाचट चमक रहा है।
रवि-किरणों से कनक रजत-सा दमक रहा है॥

११

पतली पगड़ी बांध, मारवाड़ी नर सारे।
उठ कर प्रातःकाल नगर से दूर सिधारे॥
घूंघट से मुख मूंद, खोल उर उदर, लजाती।
प्रमदा चलीं समोद दमादम पैर बजातीं॥

श्रीरामनरेश त्रिपाठी।

श्राविकाश्रम की जैन महिलाएं।

विषयों से आख्यायिकाओं की तरह थोड़े श्रम से मनोरंजन नहीं होता; वे विषय समझने के बाद मन को आनन्द होता है। पर, जैसा कि ऊपर कहा गया है कि, उन्हें समझने में पहले कष्ट होता है। अतएव जिस मनुष्य को आख्यायिकाएं पढ़ने में ही प्रीति होती है वह ऐसे विषय, कि जिनमें आनन्ददायक वर्णन और नाना प्रकार के पात्र नहीं हैं, पढ़ने के लिए तैयार नहीं होता। इस प्रकार ऐसे महत्वपूर्ण विषयों का ज्ञान सम्पादन करना उनसे नहीं होता।

आख्यायिकारूप रचना आमिष के समान है। ज्ञान या उपदेश पहले पहल रूक्ष और निरस जान पड़ता है। आख्यायिकारूप रचना के योग से, शक्कर मिली हुई औषध की तरह, उसमें मिठास आता है। अबोध रोगी को पहले औषध देते समय उसमें शक्कर बहुत मिलानी पड़ती है और औषधि बहुत थोड़ी डालनी पड़ती है। पर धीरे धीरे औषधि की उपयुक्तता की ओर उसका ध्यान दिला कर उसकी मात्रा बढ़ानी पड़ती है। आख्यायिकारूप रचना का भी इसी प्रकार उपयोग करना चाहिए। यह सच है कि पठनप्रेम उत्पन्न करने के लिए पहले आख्यायिकाओं का ही उपयोग करना चाहिए; परन्तु यह काम इस ढँग और डौल के साथ करना चाहिए कि आख्यायिकाएं पढ़ते पढ़ते ही उसे ज्ञान के विषय में प्रीति उत्पन्न हो जाय, आख्यायिकाओं की अपेक्षा उच्च प्रकार का साहित्य पढ़ने की प्रवृत्ति हो जाय।

एक बात और है। आख्यायिका पढ़ते समय कितने ही लोगों का मन केवल उसके पात्रों के परिणाम की ओर लगा रहता है [illegible]

[illegible] में से साधारणतया अच्छी बुद्धि के पाठकों के लिए किसी वि[षय] की आख्यायिका की अपेक्षा, उसका तात्विक परन्तु सहज वि[वे]चन ही अधिक लाभदायक हो सकता है।

उपर्युक्त विवेचन से सहज ही यह बात पाठकों के ध्यान में आ जायगी कि पुस्तकपठन से प्रेम तो होना ही चाहिए, परन्तु उस[के] साथ ही वह प्रेम सिर्फ आख्यायिका पढ़ने के विषय में ही न होना चाहिए, किन्तु उच्च प्रकार का साहित्य पढ़ने की ओर भी प्रवृ[त्ति] होनी चाहिए, ज्ञान प्राप्त करने की उत्कंठा अन्तःकरण में उत्प[न्न] होनी चाहिए यह बात साध्य होने के लिए सामयिक पु[स्तकों और] मासिक पत्रों में निश्चित प्रकार की आख्यायिकाओं की सं[ख्या अधिक] न होनी चाहिए। भिन्न भिन्न देशों का चालव्यवहार, [भिन्न भिन्न] देशों के महा पुरुषों के चरित्र, भिन्न भिन्न देशों के इ[तिहास के] चित्ताकर्षक और स्फूर्तिदायक प्रसंग, अपने समाज में [होने] वाली कुप्रथाएं, प्रवासवर्णन, इत्यादि विषय समय समय पर रहने चाहिए।

डांसों की जीवनकथा।

हमारे कुछ पाठक कहेंगे कि डांस क्या और उनके जीवन की कथा क्या? ऐसे क्षुद्रजीव नित्यश हजारों उत्पन्न होते हैं और हजारों मरते हैं। परन्तु ऐसा कहनेवालों को नास्तिकों की श्रेणी में समझना चाहिए। क्योंकि चींटी से लेकर मनुष्य और हाथी तक प्रत्येक प्राणी की उत्पत्ति, शरीरघटना, जीवनक्रम, इत्यादि बातों का सूक्ष्मता से अवलोकन करने पर यह कहने का साहस किसीको

आकृति १.

नहीं हो सकता कि यह सृष्टि केवल यदृच्छाघटित है। यही नहीं किन्तु इसके विरुद्ध उसके कर्त्ता की कल्पकता, योजकता और सब जीवों की रक्षा तथा पालन के लिए बनाये हुए अनेक साधनों की ओर जब उसका ध्यान जाता है तब उसके हृद सृष्टिकर्ता के विषय में आदरबुद्धि और प्रेम उत्पन्न हुए बिना नहीं रहता। इसी दृष्टि से

आ० २.

आज हम अपने प्रेमी पाठकों के सन्मुख डांसों की उत्पत्ति की कथा बतलाते हैं।

उजेला होने के लगभग प्रातःकाल ही डांसों की मादी किसी जलाशय के पास उड़ती हुई आती है। उस समय उसकी तीक्ष्ण गुनगुनाहट से उसके आने का समाचार हमें मिल जाता है। उसका वह गुनगुनाना किसी छोटे वाष्पवाहन की सीटी की तरह [है।] उस समय वह डांस की मादी पानी के पृष्ठभाग पर अंडे र[खने के] लिए अच्छी सी जगह ढूँढ़ती रहती है। मनोनीत स्थान मि[लने पर वह] पानी के ऊपर वह अपने पैर इस प्रकार टेकती है कि वे भि[गने नहीं] पाते। इसके बाद पानी पर उतरानेवाले किसी पत्ते के टुक[ड़े को] अपने अगले पैरों से पकड़ कर वह अपने अंडे रखने लग[ती है।]

आ० ३.

हवा के झोकों के साथ यह पत्ते का टुकड़ा पानी में इधर [उधर] उतराता रहता है। उस समय ऐसा जान पड़ता है कि मानो किसी छोटे जहाज पर ही बैठ कर अपने अंडे रखने का काम करती है। वह एक ऐसे पदार्थ से अंडों को पास पास चिप[का] जाती है जो पानी से भीग नहीं सकता। पूरा पूरा उजेला [नहीं] होने पाता कि इतने ही में उसके पिछले दोनों पैरों में उक्त प्रका[र] रखे हुए दो तीन सौ अंडों की एक गोल घरिया दृष्टि पड़ती [है।] आकृति १ में ऐसी एक घरिया दिखलाई गई है। यह अपने [आ]कार से बहुत बड़ी है।

आ० ४.

डांस की उत्पत्ति के विषय में एक विशेष बात ध्यान में [रखने] लायक है। वह यह कि मादी अपने अंडे उजेला होने के पूर्व [...] बाद की कुछ समय तक रखती है। इसके सिवाय अन्य कि[सी] समय उसे नहीं सूझता।

किसी जलाशय का विशिष्ट भाग रात्रि के पूर्व और मध्यभाग [में] आप अनेक बार देख डालिये, उस समय वहां पर एक भी [...] आपको नहीं देख पड़ेगा। परन्तु सुबह देखिये तो [...] दिखलाई पड़ते हैं; इससे उक्त बात सिद्ध होती है।

इस रीति से जलपृष्ठ पर तैरनेवाली अंडों की घरिया तैयार [...]

उसके मुख ही नहीं होता। कोशयुक्त कीटक के मुख के भागों का इस अवस्था में रूपान्तर हो जाता है। और डांस हमें काटते समय जिन तीक्ष्ण भालों का उपयोग करते हैं वे भाले इसी अवस्था में मुख के भाग में बनते रहते हैं।

मुग्ध कीटक चार पांच दिन इस स्थिति में रहते हैं। इसके बाद उनका रूपान्तर होने लगता है। इस अवधि में भावी डांसों की पूर्ण बाढ़ होती है। उसके पतले पक्ष, उनके कठिन कांटे, उसके लम्बे लम्बे छै पैर, घुमावदार शरीर अनेक संयुक्त आंखोंवाला सिर, इत्यादि सब अवयव इन दो स्थितियों में उसे प्राप्त होते हैं। काटने के लिए और फिर रक्त चूसने के लिए उसके मुख में एक सूंड और दूसरी, शस्त्रों के समान तीक्ष्ण इन्द्रियां लगी रहती हैं। करीब दो

आ० ९

अठवाड़े के भीतर डांस इस दशा में पहुँच जाता है। अपना भक्ष्य प्राप्त कर लेने के लिए, इन भयंकर इन्द्रियों का उपयोग करने के लिए और पानी का रहना छोड़ कर हवा में संचार करने के लिए वह सब प्रकार से योग्य हो जाता है।

अब यह देखिये कि मुग्धावस्था से यह स्थित्यन्तर कैसे होता है। पानी के ऊपर स्वस्थ रहनेवाला मुग्ध कीटक एकाएक अपना मुड़ा हुआ शरीर सीधा कर लेता है और उससे डांस प्रकट होने लगता है। आ० ७ में पानी के पृष्ठ पर रहनेवाले दो चार मुग्ध कीटक दिखलाये गये हैं। उनमें एक सीधा होता हुआ कीटक भी दिखलाया गया है। आ० ८ में मुग्धकोश फोड़ कर एक डांस अपना सिर और अगले पैर ऊपर निकाल रहा है और आ० ९ में

यह अपने नाजुक पंख बाहर निकाल [illegible] हुआ है।

मुग्धकोश से अपने पिछले पैर निकालते [illegible] कुछ गड़े तौर पर सीधा बाहर निकलना पड़[illegible] में यदि वह न सम्हल सका और पानी में गि[illegible] अवश्य किसी, मुहँ फैला कर बैठे हुए, प्राणी [illegible] है। कोश से बाहर निकलने के बाद उस का[illegible] धीरे वह अपने पंख सम्हालता है और यह [illegible] हाथ पैर अच्छी तरह छूटे हैं या नहीं। कोई [illegible] आकाशयान, हवा में उड़ाने के पहले, उसका[illegible] ध्यानपूर्वक देखता है उसी प्रकार यह डांस

आ० १०

उड़ने के पूर्व इस बात की जांच करता है कि [illegible] भाग योग्य स्थिति में हैं या नहीं। अन्तर केव[illegible] वैमानिक अपना आकाशयान उड़ाता है और उ[illegible] ही को उड़ाता है।

इस प्रकार सब तैयारी हो जाने पर जब उसे [illegible]

साहस उसे कैसे हुआ सो कौन बतला सकता है

विल-पावर (Will Power)

(मानसिक शक्ति के योग से की जानेवाली व्यायाम पद्धति।)

यह बड़े सन्तोष की बात है कि आज कल सुशिक्षित लोगों के सिर में व्यायामसम्बन्धी बातें आने लगी हैं। परन्तु, शरीर में जो नैसर्गिक रचना परमेश्वर ने की है उसके योग से व्यायाम न करते हुए ये लोग अन्य बाहरी साधनों का उपयोग करते हैं। इस कारण जितना लाभ उन्हें होना चाहिए उतना नहीं होता और कुछ न कुछ नैसर्गिक शक्ति गमा देते हैं। यह अनुभवसिद्ध सिद्धान्त है। यह

(Anatomy) के मूलतत्वों के अवलम्बन पर र[illegible] उसके स्थायित्व के विषय में शंका नहीं [illegible] कालिदास ने कहा है कि "बलवदपि शिक्षिता[illegible] इस लिए इस व्यायाम के विषय में कितने ही [illegible] पड़े हैं।

इस भवसागर में सुखपूर्वक और योग्य रीति [illegible]

(१) पीठ—Trapezius. (२)—कन्धे Deltoid. (३) दंड—Triceps & Biceps. (४) हाथ—Supinator longus. (५) पिंडली Gastrocnemious soleus.

सिद्धान्त मान लेने पर हम आज Will Power की व्यायाम- [illegible] Will Power (विल पावर) मान[illegible]

(१) पीठ—Trapezius (२) दंड—Tri[illegible] हाथ—Extensors.

लिए प्रत्येक मानवप्राणी प्रयत्न किया करता है [illegible] आरोग्य की बड़ी आवश्यकता रहती है। [illegible]

अन्तर्भूत हैं। उदाहरणार्थ हम हाथ नीचे करने की क्रिया लेते हैं। प्रत्येक मनुष्य यह बात समझ सकता है कि जिस मनुष्य के स्नायु मज़बूत होंगे वह इस क्रिया को बहुत देर तक और कोई भारी पदार्थ लिये हुए भी कर सकेगा और स्नायु को मज़बूत करने के लिए उन्हें व्यायाम की आवश्यकता है। अब हम यह देखते हैं कि स्नायु सुदृढ़ कैसे होते हैं। मनुष्य का शरीर भाफ के इंजन की तरह है। उसके चलनार्थ जो कोयला लगता है वही अन्न समझना चाहिए। पेट के रसों के योग से अन्न पर रासायनिक परिणाम होने पर वह रक्त में समा जाता है और यह अन्नमय रक्त कलेजे के द्वारा नलियों से शरीर के सब भागों में जाता है। अब अगर किसी स्नायु में चलन होकर व्यायाम हो गया तो उसका कुछ भाग जल

गर्दन —Sterno-cleido Mastoid. (२) कंधेः-Deltoid. (३) दंड—Biceps. (४) Serratus Magnus (५) ...:—Extensors (६) छातीः—Pectoralis Major

। परन्तु रक्त के योग से उसकी फिर पूर्ति होती है। ...ों का आकुंचन होने पर उनमें आनेवाला रक्त का प्रवाह बन्द ...ा है और फिर फैलते ही रक्त भीतर विशेष जोर से आने ...है। इस प्रकार रक्त का अभिसरण होने पर उन स्नायुओं को ...लती है और इससे उनकी शक्ति भी बढ़ती है। हम अपने ...व्यवहार में चलना, दौड़ना, बोलना, आदि जितने काम ... उनमें ऊपर की बतलाई हुई क्रिया होती रहती है। अधिक हमारी निद्रितावस्था में कलेजे और पचनेन्द्रियों की जो ...होती रहती है उनके लिए भी नियम लग सकता है। ...न (Contracted) स्नायुओं के चलन को हम व्यायाम ...। इस व्याख्या के अनुसार ऊपर बतलाये हुए व्यवहार के

(१) दंड —Biceps. (२) छाती—Pectoralis major. (३) & Serratus magnus.

...भी व्यायाम में आ जाते हैं और यह शंका उत्पन्न होती है कि ...व्यायामपद्धति का प्रचार है उसकी हमें आवश्यकता क्या है। ...के नित्य व्यवहार के कामों में भी व्यायाम हो जाता है। हां, ...कहना सच है और इससे शरीर सदृढ़ बनता है। प्राचीन काल ...मनुष्यों को उदरनिर्वाह के लिए जो श्रम करना पड़ता था उससे ...ही शरीर सदृढ़ बनता था। परन्तु सुधार में मनुष्य की ज्यों ज्यों ...उन्नति होने लगी त्यों त्यों उसे उदरनिर्वाह में कम श्रम पड़ने लगा ...शरीर सदृढ़ करने में विशिष्ट व्यायामों की पद्धतियों की ...आवश्यकता होने लगी।

...रि, व्यायाम करने की दो रीतियां हैं। उनमें से पहली (Strain-ing) स्नायुओं को तान कर करने की रीति है। उसमें योगासन इत्यादि का समावेश हो सकता है। इस विषय पर हमें यहां कुछ विवेचन नहीं करना है। दूसरे प्रकार का व्यायाम स्नायुओं के आकुंचन (Contraction) और चलन (Motion) के योग से होता है। परन्तु स्नायुओं का आकुंचन किसी न किसी प्रकार का प्रतीकार (Resistance) हुए बिना नहीं हो सकता। उदाहरणार्थ, कोई भारी पदार्थ उठाने का जब हम प्रयत्न करते हैं तब हमें देख पड़ता है कि हमारे दंड के स्नायु सुदृढ़ हो जाते हैं। उस समय हम उन्हें 'आकुंचित स्नायु' कहते हैं। स्नायु में प्रतीकार लाने के दो प्रकार हैं। उनमें से पहला वजन इत्यादि बातों से लाने का (External resistance) है। इसमें जोड़, बैठक, जोड़ी, डंबेल्स, इत्यादि व्यायाम की पद्धतियां आ जाती हैं। अब, प्रतीकार (Resistance) लाने का दूसरा प्रकार उलटी और रहनेवाले स्नायुओं के योग से हो सकता है। उसमें ये परस्पर विरुद्ध रहनेवाले स्नायु एक दूसरे को खींच कर पकड़ते हैं और इस कारण इन दोनों का व्यायाम होता है। इस रीति से किये जानेवाले व्यायाम को 'Will Power' अथवा 'मानसशक्ति के योग से किया जाने वाला व्यायाम' कहते हैं।

(१) दंड –Triceps (२) हाथ –Extensors. (३) छाती –Pectoralis-major

ऊपर जो स्नायु बतलाये गये हैं वे दो प्रकार के काम करते रहते हैं, अर्थात् क्रिया और प्रतिक्रिया करते रहते हैं। और इससे जहां एक स्नायु का आकुंचन (Contraction) हुआ कि दूसरे का प्रतान (extension) होता रहता है। पहले प्रकार के व्यायाम में वजन मुख्य बात होती है, इस कारण, ...होती रहती है उसकी प्रतिक्रिया की ओर ध्यान देने का कोई कारण नहीं होता। इससे एक समय में एक ही स्नायु अपने सहचारी (Brother muscle) अर्थात् प्रतिक्रिया करनेवाले स्नायु को छोड़ कर काम करता रहता है। इस कारण अधिक स्नायु उपयोग में लाना जो व्यवहार में उपयुक्त होनेवाली मुख्य बात है वह एक ओर रह जाती है। परन्तु विलपावर (Will power) में पहले ही पहल दो स्नायुओं का उपयोग एक स्नायु की जगह किया जाता है और करनेवाले की इच्छा हो तो चाहे जितने स्नायु वह एक ही समय में उपयुक्त कर सकता है और इससे मनुष्य का जोश और स्वेग (Vigor) बढ़ता है। यह लाभ वजन के व्यायाम (Weight Systems) में नहीं हो सकता। क्योंकि उसमें बहुत ही कम स्नायु उपयोग में आते हैं। (Will Power) में कम से कम दो स्नायुओं को तान देना मुख्य बात है। तान देने से स्नायु हाथ में सघन लगता है। यह व्यायाम करते समय क्रिया और उसकी प्रतिक्रिया करनेवाले स्नायु सघन होते हैं। उन्हें सघन करने की रीति इस प्रकार है—

(१) पीठः—Trapezius. (२) कंधेः—Deltoid (३) छातीः-Pectoralis. Major

हमें अपने किसी दोस्त से अपने हाथ कलाई के पास पकड़ने के लिए कहना चाहिए और स्वयं किसी के पास हाथ टेढ़ा करते समय उसे बाहर खींचने के लिए कहना चाहिए, अर्थात् टेढ़ा न करने देने के लिए कहना चाहिए। उसी समय अपने दूसरे हाथ से अपना दंड टटोल कर देखने से मालूम होगा कि हमारा यह कार्य जिस स्नायु में होता है वही स्नायु (उसे Biceps कहते हैं) सघन होता है। इसके बाद अपना स्नायु जितना सघन हमने देखा उतना ही सघन उस दोस्त को, अपना जोर थोड़ा कम करते हुए, रखने का मन से प्रयत्न करना चाहिए। अपना दूसरा हाथ टटोलने के लिए जगह पर ही रखना चाहिए। वह दोस्त जब अपना सब जोर कम कर देगा और हमारा पूर्व का स्नायु भी उतना ही सघन बना रहेगा तब मालूम होगा कि हमारे उस दोस्त का कार्य दूसरे एक स्नायु ने स्वीकार किया है। ऐसे समय में दोनों स्नायु सघन होते हैं। (दो स्नायु सघन करने की उपर्युक्त क्रिया सीखते समय अपना हाथ पूरा न बन्द करते हुए और पूरा न खोलते हुए सीखना चाहिए।) ऊपर बतलाई हुई व्याख्या के अनुसार सघन होने वाले स्नायु हिलाना ही व्यायाम है और इसी कारण एक दूसरे की प्रतिक्रिया के योग से सघन होने वाले स्नायुओं की गति (Motion) ही मानसिक शक्ति का व्यायाम (Will Power) है। जगत में हमेशा पहनेवाले दो प्रकार के व्यायाम इसमें किये जा सकते हैं। ये दो प्रकार के व्यायाम ये हैं—एक गति का व्यायाम (जिसमें गति ही अधिक रहती है) और दूसरा तान का व्यायाम (जिसमें तान मुख्य है)।

(१) कन्धे:—Deltoid (२) दंड:—Triceps & Biceps (३) छाती:—Pectoralis Major

व्यायाम करते समय श्वासोच्छ्वास की क्रिया पर भी ध्यान रखना पड़ता है। जिसके योग से, हमारा व्यायाम पूर्ण होने तक श्वास अच्छी तरह से चले ऐसा श्वासोच्छ्वास करना प्रत्येक व्या[याम के] साथ ध्यान में रखने योग्य बात है। गति जिस प्रमाण से ब[ढ़ती है] उसी प्रमाण से श्वास वेग के साथ चलने लगता है औ[र गति] अधिक होते समय श्वास रोकना श्रेयस्कर नहीं होगा। यो[ग] में श्वासोच्छ्वास पर जो अधिकार किया जाता है उसका [कारण] यही है कि योगसाधन में गति बिलकुल है ही नहीं [...] बिना श्वास सावकाश चलना असम्भव है। इसी तत्व प[र] दौड़, इत्यादि व्यायाम गति पर ही अवलं[बित] श्वास रहता है। विल- [Will] Power) का व्यायाम जिस तरह की गति अनुसार श्वास रखने [...] चाहिए। यह निश्चित [...] श्वासोच्छ्वास कैसे लेना [...] ध्यान में रखने योग्य [...] कि व्यायाम के प्रारम्भ के [...] प्रकार का श्वास रख[...] प्रकार का श्वास व्यायाम [...] रहना चाहिए। श्वास [...] क्रिया में व्यायाम करने[...] तौर पर ध्यान में रखना [...] हम जो व्यायाम करते [...] के लिए नहीं, किन्तु व्या[...] लिए करते हैं। इस सूच[...] सार चलने से प्रत्येक व्याय[ाम] योग्य रीति ही से चलने लगेगा।

गति के व्यायाम में स्नायुओं का आकुंचन करके जो भा[ग] होता है उस भाग में वेग से गति लेनी चाहिए और ता[न के व्या]याम में अधिक तान देकर गति कम करना चाहिए। व्यायाम करना हो उसे प्राणिमात्र (Anatomy) में व्या[याम करने] का कोई पट (Chart) लेकर करना चाहिए।

मगन।

(३)
घबराहट का काम नहीं है,
भय का बिलकुल नाम नहीं
सिंह-बाल को उठा लिया है,
वाम बगल में दबा लिया है

(४)
बाघिन जो इस पर घुर्राई,
इसने झट-पट छुरी उठाई।
क्या यह बाघिन को मारेगा?
वही करेगा! जो धारेगा!

(५)
अपने पग को आगे रख कर,
भली भाँति से दृष्टि जमा कर
खड़ा हो गया सम्मुख डट कर,
जावे ज्यों डर भी इससे डर

(६)
धीर मूर्ति क्या सुघर रही है!
बाघिन को भी दबा रही है!
"होशियार हूँ" बता रही है:
हृदय अनोखा दिखा रही है।

(७)
है वह कौन? पुत्र है किसका?
क्या वृत्तान्त ज्ञात है इसका?
क्यों यह ऐसा निडर हुआ है!
[illegible]

(८)
[illegible]

(९)
[illegible]

माननीय गोखले की अफ्रीका–यात्रा।

माननीय गोपालकृष्ण गोखले अपनी अफ्रीका की यात्रा समाप्त कर १३ नवम्बर को बम्बई आ पहुँचे। १५ तारीख शनिवार को बम्बई के लोगों ने बड़ी धूमधाम से उनका स्वागत किया। इसके बाद १६ तारीख को माननीय गोखले पूने में आये, और गुरुवार ता० १८ नवम्बर को आपने "दक्षिण अफ्रीका के भारतीय लोगों की दशा" इस विषय पर वहां एक व्याख्यान भी दिया। दक्षिण अफ्रीका के भारतीय लोगों की दशा बोर युद्ध के पहले से ही अत्यन्त कष्टप्रद थी। परन्तु युद्ध के बाद यह प्रदेश ब्रिटिश सत्ता के नीचे आया, तथापि वह दशा सुधरी नहीं; और सन् १९०७ में, जब से कि दक्षिण अफ्रीका को स्वराज्य मिला तब से तो वह दशा और भी बुरी हो रही है, और वहां के प्रसिद्ध देशभक्त गांधी ने यदि अपने अलौकिक स्वार्थत्याग से निःशस्त्र प्रतिकार की हलचल न जारी की होती तो इसके पहले ही वहां से भारतीय लोग निकाल दिये गये होते। निःशस्त्र प्रतिकार के पुरस्कर्ता दे० भ० गान्धी को अपनी हलचल में बहुत सफलता हुई, इस कारण पहले का मार्ग छोड़ कर भारतीय लोगों को पूर्ण प्रतिबन्ध-कारक अथवा अधिक कष्टदायक नियम बनाने का उपक्रम दक्षिण अफ्रीका के गोरे लोगों ने शुरू किया। परन्तु ऐसे नियम बनाने के लिए साम्राज्य-सरकार का अनुमोदन नहीं मिला, अतएव उनका यह प्रयत्न वैसा ही रहा। अब भारतीय लोगों के नेता गांधी और गोरे उपनिवेशवालों के बीच में कुछ सुलह करके नवीन नियम बनाने की बातचीत चली है। दक्षिण अफ्रीका के भारतीय लोगों को जो जो संकट हैं, उनके जो झगड़े हैं और उन्हें वहां जो कष्ट मिल रहे हैं उन सब का यदि विस्तृत वर्णन किया जाय तो एक स्वतन्त्र ग्रन्थ ही लिखना चाहिए। अतएव इस विषय को हम यहीं छोड़ कर आज हम इतना ही विचार करेंगे कि माननीय गोखले दक्षिण अफ्रीका में जिस कार्य के लिए गये थे उस कार्य में उन्हें कहां तक सफलता प्राप्त हुई।

दे० भ० गांधी, ट्रान्सवाल।

दक्षिण आफ्रीका की अपनी यात्रा समाप्त करके माननीय गोखले ज्यों ज्यों बम्बई-बन्दर के समीप आने लगे त्यों त्यों अनेक सार्वजनिक स्वागत की कल्पना जोर से सामने आने लगी। क्रिया और प्रतिक्रिया सदा विरुद्ध दिशा की ओर परन्तु समान बल से रहती हैं। इस नैसर्गिक नियम के अनुसार ही उनके स्वागत की तैयारी प्रारम्भ हुई। अतएव कितने ही महाशयों ने यह सवाल पेश किया कि माननीय गोखले ने ऐसा कौन सा बड़ा कार्य किया? वास्तविक दृष्टि से इसमें दोनों पक्षों की ओर से कुछ मर्यादातिक्रम हुआ। इन्होंने विशेष अच्छी न रहते हुए केवल अपने देशबान्धवों के आग्रह से उन्होंने डेढ़ दो महीने की यात्रा अंगीकार की और दक्षिण अफ्रीका के भारतीय लोगों की स्थिति प्रत्यक्ष अवलोकन करके बड़ी लेजिस्लेटिव कौंसिल में उनके विषय में प्रश्न निकलने पर उस पर 'अप्राप्तिर्न भवति' करने के लिए प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त कर लिया इसके लिए उनका अभिनन्दन करना और कुशलपूर्वक यात्रा समाप्त होने पर आनन्द प्रदर्शित करना स्वाभाविक बात है और इस विषय में निस्सन्देह सब का एक ही मत होना चाहिए। परन्तु यह भी बात नहीं है कि इस यात्रा में कोई अपूर्व कार्य हुआ हो। दक्षिण अफ्रीका की आज तक की सारी हलचल के कर्ता धर्ता दे० भ० गान्धी हैं। माननीय गोखले ने दक्षिण अफ्रीका की यात्रा करके जो [illegible] किया वह यही कि गांधी के कार्य के विषय में इन्होंने वहां जाकर आदर व्यक्त किया और भारतीय लोगों की ओर से उन्हें आश्वासन और प्रोत्साहन दिया। इसी लिए सच्चा [illegible] सहकर [illegible] प्राप्त करनेवाले वीर और उनका स्वागत करके उनका अभिनन्दन करनेवाले उनके मित्र, इन दोनों के कार्य में जितना अन्तर है उतना ही गांधी और गोखले के वर्तमान कार्य में अन्तर है। माननीय गोखले की स्वागत सभा के लिए जिन्होंने आज [illegible] थोड़ी अथवा आक्षेप किये उनके मन में भी यही तारतम्यभाव आया होगा और वे इस गड़बड़ में पड़े होंगे कि स्वयं गांधी अब कभी यदि यहां आवेंगे तो अब हम उनका स्वागत किस धूमधाम से करेंगे?

अस्तु; अब हम इस स्वागतोत्सव के भाव को छोड़ कर इस बात पर विचार करते हैं कि माननीय गोखले की इस यात्रा से क्या परिणाम हुआ। 'यात्रा का परिणाम' ये शब्द हमने जानबूझ कर लिखे हैं। क्योंकि माननीय गोखले दक्षिण अफ्रीका का कोई कर्तव्य बजाने के लिए हेतुपूर्वक नहीं गये थे; किन्तु यात्रा के लिए चलने के पहले उनके कार्यक्षेत्र की सिर्फ इतनी ही सीमा निश्चित हुई थी कि दक्षिण अफ्रीका की जो दशा आज तक कानों से सुनते थे वह प्रत्यक्ष नेत्रों से देखना चाहिए (और गान्धी के निमंत्रण को मान देना चाहिए) परन्तु विलायत के प्रधानमण्डल और विशेष कर उपनिवेश के प्रधान मि० हारकोर्ट की अनुकूलता के कारण और उन्हीं की सिफारिस से मा० गोखले दक्षिण अफ्रीका के राजनीतिज्ञ मंडल से मिल सके और वहां के अन्य उपनिवेशियों से इस प्रश्न पर चर्चा कर सके। अर्थात् दक्षिण अफ्रीका से लौट आने के बाद भारत सरकार की मार्फत पत्रों पत्रों से जो चर्चा शुरू होती उसका "सूतउवाच" वहीं किया गया, और कागजपत्रों के द्वारा जिन बातों की चर्चा के लिए और शंकाओं के निराकरण के लिए जितने महीने लगते उतनी घड़ियों में ही वैसे प्रश्नों का निपटारा वहां किया जा सका। अब वह निपटारा अनुकूल हुआ या प्रतिकूल–यह बात अभी गुलदस्ते में ही है। परन्तु वह निपटारा चाहे जैसा हुआ हो तथापि उसके पापपुण्य के भागी अकेले मा० गोखले ही नहीं हैं। हां, यह बात सच है कि उन्हें जो योगायोग मिल गया उससे लाभ उन्होंने अवश्य उठा लिया।

अफ्रीकन प्रधानमंडल की मुलाकात और वहां के उपनिवेशी व्यापारियों की भेंट इत्यादि काम आकस्मिक योगायोग से ही गये। तो फिर यह प्रश्न बना ही है कि माननीय गोखले का पहले का निश्चित किया हुआ कार्य कौन है? यह बात स्वयं वही कहते हैं कि गांधी के निमंत्रण को मान देना और वहां के भारतीय लोगों की दशा प्रत्यक्ष अवलोकन करना,—बस इतना ही हमारा उद्देश्य था। परन्तु आज तक जितनी चर्चा और टीकाटिप्पणी हुई उसमें उपर्युक्त प्रश्न के मूल तक कोई नहीं पहुँचा। इस सारी यात्रा का मूल यदि गान्धी के निमंत्रण में है तो पहले यही देखना चाहिए कि देशभक्त गान्धी का क्या उद्देश्य होगा, और वह उद्देश्य यदि सफल या निष्फल हुआ हो तो उसका पाप या पुण्य भी गान्धी के ही माथे मढ़ना चाहिए।

जिस समय देशभक्त गान्धी ने माननीय गोखले से दक्षिण अफ्रीका में आने की विनती की उस समय साधारणतया ये उद्देश्य उनके मन में होंगे,—

(१) अफ्रीका की हलचल की ओर भारतीय लोगों का ध्यान आकर्षित हो और उन्हें उनकी नैतिक और आर्थिक सहायता मिले।

(२) नेटाल के मजदूरों का [illegible] दक्षिण अफ्रीका[illegible] कोई [illegible] बड़ी कौंसिल में निकलने पर माननीय गोखले अपनी वाक्-चातुरी से काम लेवें और कौंसिल पर उनके मत का प्रभाव पड़े।

(३) माननीय गोखले के समान श्रेष्ठ दर्जे के भारतीय सज्जन के साथ दक्षिण अफ्रीका के गोरे लोगों का [illegible] [illegible] उन्हें देख कर उनके अनुसार अपने [illegible] का [illegible] जाय।

(४) [illegible] महत्वपूर्ण [illegible] है। [illegible]

" प्रभा "

हिन्दी-भाषा की एक उच्च सचित्र नवीन मासिक-पत्रिका।

जो भाषा राष्ट्रभाषा कही जाने वाली हो, उसका साहित्य कितना उच्च तथा आदर्श होना चाहिये; इस बात का विचार हमारे हिन्दी-भाषाभाषी देश-बंधुओं को करना चाहिये। पश्चिमीय देशों में नीति, धर्म, आत्मविद्या, विज्ञान, सुधार, चित्रविद्या, राजनीति, आदि सहस्रों विषयों के अलग २ पत्र निकल कर साहित्य के सब अंगों की पुष्टि की अनुकरणीय ही नहीं वरन् अभिनन्दनीय चेष्टा कर रहे हैं।

क्या हम भी अपनी भाषा के हेतु, प्यारी मातृ-भाषा के हेतु, जिसका हम जननी जन्मभूमि भर पर प्रचार किया चाहते हैं; कुछ कर रहे हैं ! नहीं, कुछ नहीं ! हम स्वार्थ के सामने परम पूजनीया मातृ-भाषा का कुछ भी ध्यान नहीं रखते। इसके सिवाय डिग्री धारियों का वह दल, जो मातृ-भाषा की सेवा से अपने को अपमानित समझता है; हमारे दुर्भाग्य से अभी घटा नहीं है। यदि अपने समाज की रक्षा का हमें कुछ ध्यान है, तो हमारा काम है, कि अब हम, मातृ-भाषा के अंगों की पुष्टि के लिये आत्मसमर्पण कर दें।

" प्रभा " इन्हीं विचारों की तथा इन्हीं आवश्यकताओं की पूर्ति का एक साधन है। खण्डवा के साहित्य प्रेमियों की एक समिति ने " प्रभा " नामक सचित्र मासिक पत्रिका प्रकाशित करना निश्चित किया है। इसके सम्पादक "श्रीयुत बाबू कालूरामजी गङ्गराडे बी० ए० एल० एल० बी० " नियत किये हैं। पत्रिका का आदर्श महात्मा स्टेड द्वारा सम्पादित होने वाला इङ्गलैण्ड का प्रसिद्ध पत्र " रिव्यू आफ रिव्यूज "(Review of Reviews) है। इसकी पृष्ठ संख्या लगभग ६४ या ७० होगी। पत्रिका का वार्षिक मूल्य ३) रु० है। चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से पत्रिका प्रकाशित होगी। प्रबन्ध के विषय में विशेष कहना उचित नहीं। उसकी उत्तमता के हेतु समिति प्रयत्न कर रही है।

हम आशा करते हैं कि हमारे देश-बन्धु समिति के इस कार्य में योग देकर अपनी गुण-ग्राहकता, मातृ-भाषा भक्ति, उदारता, प्रेम तथा उत्साह आदि गुणों का परिचय दे अनुगृहीत करेंगे। लेख, कविता समालोचनार्थ पुस्तकें, बदले के पत्र, तथा साहित्य-सम्बन्धी पत्र " सम्पादक ' प्रभा ' "खण्डवा " इस पते पर, तथा वार्षिक मूल्य, प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र एवं विज्ञापनादि नीचे लिखे पते पर आना चाहिये।

विज्ञापन दाताओं के विज्ञापन जनवरी के पश्चात् आने पर पत्रिका की प्रथम संख्या में प्रकाशित न हो सकेंगे। विज्ञापन नियम भी नीचे लिखे पते पर लिखने से मिल सकेंगे।

निवेदकः—

मैनेजर " प्रभा "

खण्डवा (मध्यप्रदेश)।

बाल उड़ाने की शर्तिया गारंटीवाला वही जगत प्रसिद्ध

वैश्य एन्ड कंपनी मथुरा का बनाया बढ़िया इत्रों का

बाल उड़ाने का साबुन।

खरीदनेसे पहिले विज्ञापनी [illegible] पैसा [illegible] हमारे फोटो [illegible] हमारे साबुन को [illegible] १४ [illegible] में बालउड़कर [illegible] [illegible] है इसीसे [illegible] भी [illegible] है। [illegible] [illegible], [illegible], [illegible] की डिबिया

१) दा०-१ डिबिया का बक्स १।=) दा०, नींबू, कपूर, [illegible] की डिबिया ।-) दा० १ डिबिया का बक्स ॥=) दा०।

जरूरत है एजेन्टों की जरूरत है। [illegible] एजेन्टों को कम से कम १०) रु० का माल मंगाने से ३॥) [illegible] [illegible] और खर्च माफ।

मंगाने का पताः—एल० वी० गुप्त वैश्य एन्ड कम्पनी, मथुरा।

छापने के कागज़।

ग्लेज़-सफ़ेद, रंगीन। रफ़-सफ़ेद रंगीन। आकार डेमी, रायल, क्राउन, फुल्सकेप आदि। सिंगल डेमी १७॥×२२॥ रंगीन ग्लेज रंग गहरा पीला, फीका पीला, नीला गुलाबी, वजन प्रत्येक रिम १८ पौंड, कीमत प्रत्येक रिम की २ रु० १० आने। एकदम दस अथवा इससे अधिक रिम लेने से कीमत प्रति रिम २ रु० ८ आ० १७॥×२२॥ बफ कवर पेपर मोटा ४० पौंड वजन, ५०० कागज़। कीमत ६॥) रुपये। १७॥×२२॥ बफ कवर पेपर पतला वजन २० पौंड कीमत ३।) रुपये। ड्राइंग पेपर आकार २०×३०, वजन ४० पौंड, कीमत आठ रुपये। सफेद ग्लेज, आकार २०×३०, वजन २८ पौं०, की० ४ रु० १२ आने।

सफेद ग्लेज़ डेमी १७॥×२२॥, वजन ५० पौंड, की० २ रु०। सफेद ग्लेज़ रायल २७×४० पौंड ५०, कीमत २ रु०। फुल्सकेप डबल २७॥×२६॥, पौंड ५४, की० ५।) रु०। एन्टी बुक पेपर, आकार २०×३०, वजन ३० पौंड की० ६ रुपये आर्ट डेमी १७॥×२२॥ पौंड ३५, की० २ रु० २ आने। आर्ट क्राउन डबल २०×३०, वजन ५० पौंड, की० १४ रु०। रायल रफ २७×५७ पौंड २४, दर प्रत्येक रिम २ रु० १२ आने। एकदम १० रिम लेनेसे प्रति रिम २ रुपये ११ आने।

मराठा राजा और सरदार

१ श्रीछत्रपति शिवाजी २ राजा व्यंकोजी, तंजौर ३ सभाजी ४ ताराबाई ५ शाहू ६ श्रीमान् पहले बाजीराव पेशवा ७ बालाजी बाजीराव उर्फ नानासाहेब ८ राघोबा दादा ९ ज्येष्ठ माधवराव पेशवा १० नरायणराव ११ सवाई माधवराव १२ यशोदाबाई (सवाई माधवराव की पत्नी) १३ नाना फड़नवीस १४ महादजी सेंधिया १५ जयाजीराव सेंधिया १६ अन्तिम बाजीराव १७ हरीपंत फड़के १८ मल्हारराव होलकर १९ बापू गोखले २० अहल्याबाई होलकर २१ गंगाधर शास्त्री पटवर्धन, बड़ोदा २२ रणजीतसिंह २३ गुरुनानक २४ राना भीमसिंह, उदयपुर २५ नरायणराव पेशवा का खून।

अँगरेजी राज्यकर्ता, गवर्नर जनरल और योरोपियन सरदार।

१ [illegible] २ लार्ड क्लाइव ३ वारन हेस्टिंग्स ४ लार्ड कार्नवालिस ५ मार्किस वेलस्ली ६ नेपोलियन बोनापार्ट ७ लार्ड हेस्टिंग्स ८ लार्ड विलियम बेंटिंग ९ [illegible] १० लार्ड [illegible] ११ लार्ड एलिनबरो १२ [illegible] १३ लार्ड [illegible] १४ लार्ड डलहौसी १५ लार्ड [illegible] १६ [illegible] १७ [illegible] १८ लार्ड [illegible] १९ लार्ड [illegible] २० लार्ड [illegible] २१ लार्ड [illegible] २२ लार्ड [illegible] २३ लार्ड [illegible] २४ लार्ड [illegible] २५ लार्ड [illegible] २६ लार्ड [illegible] २७ [illegible] २८ [illegible] २९ [illegible] ३० [illegible]। [illegible]।

[illegible]—[illegible] प्रेस, पूना।